भारत में

व्यापार और यातायात

(Trade & Transport in India)

आगरा विश्वविद्यालय के नये पाठ्यक्रमानुसार
बी० कॉम कक्षाओं के लिये

लेखक
सी० पी० श्रीवास्तव एम. ए., बी. कॉम.,
प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग,
डी० ए० वी० कालिज, कानपुर।
भूतपूर्व प्रिंसिपल, ए० के० डिग्री कालिज, शिकोहाबाद।
तथा
सी० बी० मेमोरिया एम. ए., एम. काम,
प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग,
महाराणा भूपाल कालिज, उदयपुर।

प्रकाशक
कमला पब्लिशिंग हाउस
मेरठ (उत्तर प्रदेश)

प्रथम संस्करण] १९५२ [मूल्य ५—०—०

प्रकाशक

सत्यव्रत रस्तौगी

अध्यक्ष—कमला पब्लिशिंग हाउस मेरठ।

मुद्रक

भास्कर प्रेस, मेरठ।

दो शब्द

कुछ समय पूर्व से ही हमारी केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों ने उच्च शिक्षा का माध्यम हिन्दी घोषित कर दिया है, फलतः अनेक विश्वविद्यालयों की उच्च कक्षाओं में हिन्दी द्वारा अध्यापन-कार्य प्रारम्भ हो गया है परन्तु इस ओर अध्यापकों और छात्रों को अपनी मातृभाषा में पुस्तकों का अत्यन्त अभाव अनुभव हो रहा है। अतः प्रस्तुत पुस्तक हमारे दीर्घकालीन गम्भीर चिन्तन तथा अध्ययन का ही विस्तृत रूप है जो पाठकों के सम्मुख सुव्यवस्थित रूप में रखने का एक प्रयास मात्र है।

देश के स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात, आज देश में 'व्यापार और यातायात' के विषय का महत्व बहुत ही बढ़ गया है। आज देश के प्रत्येक व्यक्ति को देश की विभिन्न आर्थिक समस्याओं के अध्ययन के लिये व्यापार के विषय में थोड़ा बहुत जानना अत्यन्त आवश्यक है। इसी उद्देश्य को सामने रखते हुये हमारे देश के विभिन्न विश्व-विद्यालयों ने अपने पाठ्यक्रमों में इस विषय को अत्यन्त महत्व दिया है और हमें हर्ष है कि इस वर्ष से आगरा विश्व-विद्यालय ने भी देश की इस बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिये पग उठाया है।

प्रस्तुत पुस्तक की भाषा सरल एवं सुबोध बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया गया है। प्रायः हिन्दी की पुस्तकों में प्रवाह की कमी दीख पड़ती है अतः इसमें इस बात का भली भांति विचार रखा गया है। पारिभाषिक तथा अन्य कठिन शब्दों के साथ २ अंग्रेजी भाषा के शब्द भी विषय को सरल बनाने के लिये दे दिये गये हैं।

हमारा विश्वास है कि यह पुस्तक न केवल भारतीय विश्वविद्यालयों और विभिन्न संस्थाओं की बी० कांम कक्षाओं के "व्यापार एवम् यातायात" विषय पर एक प्रामाणिक पाठ्य और सहायक पुस्तक का कार्य देगी वरन् जन-साधारण को भी देश की विभिन्न समस्याओं को समझने में काफी लाभदायक सिद्ध होगी।

पुस्तक शीघ्रता से छपी है, अतः सम्भव है कि सजग रहते हुये भी प्रूफ सम्बन्धी कुछ अशुद्धियां पुस्तक में सिमट कर चली आई हों। इनको अगले संस्करण में सुधार दिया जायेगा। किन्तु विषय सम्बन्धी अशुद्धियों को स्वयम् लेखकगण जानने में असमर्थ हैं अतः सहृदय पाठकों से संशोधन और सुधार के लिये उचित सुझाव की प्रार्थना की जाती है।

विजय दशमी, २००६

सी० पी० श्रीवास्तव
सी० बी० मेमोरिया

खण्ड—१

व्यापार (Trade)

खण्ड—२

यातायात (Transport)

अध्याय १

भारत का व्यापार

TRADE OF INDIA

भारतीय व्यापार को चार श्रेणियों में बांटा जा सकता है :—

(१) आन्तरिक व्यापार।

(२) तटीय व्यापार।

(३) पुनः निर्यात व्यापार।

(४) विदेशी व्यापार।

आन्तरिक व्यापार (Internal Trade)

भारत के लिए आन्तरिक व्यापार का महत्व बहुत अधिक है। उसका आंतरिक व्यापार विदेशी व्यापार से पंद्रह गुना अधिक है। भारत बहुत विशाल देश है अस्तु सामुद्रिक व्यापार की अपेक्षा इसका आन्तरिक व्यापार बहुत अधिक है जब कि ब्रिटेन, बेलजियम और जापान जैसे छोटे २ देशों का अधिकांश व्यापार विदेशी व्यापार ही होता है। भारत में विभिन्न प्रकार की जलवायु पाई जाती है। पैदावार की भिन्नता है तथा जनसंख्या इतनी अधिक और देश का विस्तार इतना विशाल है कि व्यापार में यह देश बहुत कुछ स्वावलम्वी बन सकता है, किन्तु दुर्भाग्यवश भारत के आन्तरिक व्यापार की ओर किसी ने भी ध्यान नहीं दिया। कारण यह था कि अंग्रेज सरकार की रुचि भारत के विदेशी व्यापार को बढ़ाने में थी न कि आन्तरिक व्यापार की वृद्धि करने में। अतएव अंग्रेज सरकार ने भारत के विदेशी व्यापार की ओर ही अधिक ध्यान दिया। एक दूसरा कारण यह भी था कि द्वितीय महायुद्ध के पूर्व तक भारत एक ऋणी राष्ट्र था इस कारण भारत को विदेशों से ३० करोड़ रुपये का निर्यात अधिक करना पड़ता था।

मोटे तौर पर अनुमान किया जाता है कि भारत का आन्तरिक व्यापार प्रतिवर्ष ७००० से ८००० करोड़ रुपये तक का होता है। भारत के आन्तरिक व्यापार का महत्व इसी बात से जाना जा सकता है कि "यदि भारत की सम्पूर्ण

कृषि उत्पत्ति का ध्यान किया जाय तो आँकड़े यह बताते हैं कि जहां प्रति एकड़ भूमि जो अनाज, तिलहन, अथवा कच्चा सामान निर्यात के लिए उत्पादित करती हैं वहां ११ एकड़ भूमि से जो वस्तुयें उत्पन्न होती हैं ने केवल देश के उपभोग में ही आ जाती हैं।"* आधुनिक काल में देश में यातायात के साधनों की प्रगति हो जाने से हमारा आन्तरिक व्यापार बढ़ा है। अर्थशास्त्रियों का विचार है कि यदि भारत के आन्तरिक व्यापार का ठीक प्रकार से संगठन किया जाय तो उसकी और भी उन्नति हो सकती है। भारत के आन्तरिक व्यापार को बढ़ाने के संबंध में अर्थशास्त्रियों ने अपने २ सुझाव रखे हैं। प्रो० शाह ने इस बात पर अधिक जोर दिया है कि प्रादेशिक विभागों में व्यापार राष्ट्रीय धरातल पर हो इसमें वस्तुयें एक निश्चित योजना के अनुसार उत्पादित की जाकर सारे देश में वितरित की जा सकें।"+ प्रो० नायडू का कहना है कि भारत एक विशाल देश है जिसकी गुप्त-सम्पत्ति का उपभोग करके देश को विदेशी व्यापार पर निर्भर होने से बचाया जा सकता है और आन्तरिक व्यापार को देश की आर्थिक स्थिति में एक महत्वपूर्ण स्थान दिया जा सकता है।† प्रो० सेन का कहना है कि देश में ही इतना विस्तृत बाजार है कि यदि उसकी पूर्ति के प्रयत्न किए जायें तो विदेशी व्यापार पर हम कम निर्भर रह सकेंगे।†† अस्तु भारत के आन्तरिक व्यापार को बढ़ाने की आवश्यकता है।

भारत में आन्तरिक व्यापार कितना है इसके बारे में कोई विश्वासजनक आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं परन्तु रेलवे द्वारा ढोये गए सामान से उसका कुछ २ पता लगाया जा सकता है। नीचे की तालिका में पिछले कुछ वर्षों के आंकड़े प्रस्तुत किए गए हैं :—

रेलों द्वारा माल की ढुलाई और रेलों की आय

वर्ष	राज्य द्वारा संचालित रेलों की आय (करोड़ रुपयों में)	कुल डिब्बे लादे गए (००० में)
१९२८-२९	६६·६१	६,९६३

*देखिये, J. Worswik : Economic Resources of the Empire पृ० ४४५

+देखिये, K. T. Shah : Principles of Planning. पृ० ६१-६२

†देखिये, P. C. Jain : Industrial Problems of India. पृ० १२३

††देखिये, Sen : Economic Reconstruction of India पृ० २६४

१६२६-३०	६७·५३	६,८६८
१६३०-३१	६०·४०	६,६३२
१६३१-३२	८२·५४	६,०६८
१६३२-३३	८२·११	५,६६६
१६३३-३४	८४·६४	६,४८६
१६३४-३५	८७·२४	६८,५०
१६३५-३६	८८·३६	६६,६२
१६३६-३७	६२.०४	६६,००
१६३७-३८	६४·८५	७,१६१
१६३८-३६	६४·३६	७,२२५
१६३६-४०	६८·४४	७,५०६
१६४०-४१	११२·१६	७,५८६
१६४१-४२	१२६·३७	७,४६६
१६४२-४३	१५६·४६	६,५५३
१६४३-४४	१८५·४६	६,६१०
१६४६	२१५·०	—
१६५०	२६०·०	

आन्तरिक व्यापार में मुख्यतः तीन चीजों का व्यापार होता है :—

अनाज—विशेषकर चावल, गेहूं, जौ, चना, तिलहन, दालें, शक्कर, कोयला, जूट, नमक, घी, फल, चाय तथा सूती वस्त्र और मशीनें आदि।

समस्त भारत को आन्तरिक व्यापार की सुविधा से २२ भागों में बांटा गया है। आन्तरिक व्यापार की वस्तुयें भी १० श्रेणियों में विभाजित की गई हैं यथा कोयला और कोक, कच्ची रुई, सूती वस्त्र, दाल, अनाज और आटा, कच्चा चमड़ा कच्चा जूट, जूट के बोरे तथा टाट आदि, लोहे की छड़ें और चादरें, तिलहन और शक्कर। नीचे की तालिका में भीतरी व्यापार सम्बन्धी कुछ वर्षों के आंकड़े प्रस्तुत किए गये हैं :—

वस्तुयें	१९३७-३८	३८-३९	३९-४० (००० मनों में)	४०-४१	४१-४२	४२-४३	४३-४४
१. कोयला और कोक	४६४,२८६४	४९,८५४	४६६,५१३	—	—	—	—
२. कच्ची रुई	१६,१८५	१६,५३८	२०,७१२	२०,६१४	२०,६०७	१७,७७५	१५,३५८
३. सूती वस्त्र	११,१६०	११,०७७	११,२६४	१२,७७१	११,४४४	१०,३५१	११,००४
४. अनाज दालें और आटा	१३१,६००	१३१,२७२	१४३,३५६	१३०,१८७	१३५,००४	१०४,७३१	१०७,४०५
५. चमड़ा	२,६७०	२,६७९	३,३८३	—	—	—	—
६. कच्चा जूट	३२,५७४	३१,४९७	३२,७६७	२८,०७४	२५,६५४	१८,१४५	१६,५६०
७. जूट का तैयार माल	५,३३६५	,२१८	५,४८४	५,८५६	७,०११	१२,८८६	८,४५६
८. लोहे की छड़ें और चादरें	३८,६५५	४१,८६४	४१,९८६	—	—	—	—
९. तिलहन	३९,६४६	५०,०६३	४३,७७५	३९,३६६	४३,५४४	३६,१४१	३०,४७१
१०. शक्कर (गुड़, राव सहित)	३९,४८५	३८,०७६	२८,९४६	३८,८६६	३९,०८०	११,६६१	३०,००७
योग	७७५,२२७	७८१,१६८	८२८,२१९	—	—	—	—

भारत का आन्तरिक व्यापार दो प्रकार का होता है :-

(१) प्रथम वह व्यापार जो देश के विभिन्न भागों से रेलों अथवा नदियों द्वारा देश के प्रमुख बन्दरगाहों को होता है।

(२) दूसरा वह व्यापार जो देश के विभिन्न प्रान्तों में होता है।

प्रथम प्रकार के व्यापार के अन्तर्गत देश की कृषि—जन्य वस्तुये निर्यात के लिये बन्दरगाहों को लाई जाती हैं और विदेशों से आयात माल बन्दरगाहों द्वारा देश के भीतरी भागों में वितरित किया जाता है। यहां हम प्रमुख बन्दरगाहों द्वारा होने वाले व्यापार का वर्णन करेंगे :—

कलकत्ता भारत का प्रमुख बन्दरगाह है जिसका पृष्ठ देश पश्चिमी बंगाल, उत्तर प्रदेश, बिहार और आसाम तक फैला है। इन प्रान्तों से यहां चावल, जूट, कोयला, तिलहन, चाय, चमड़ा, अनाज, दालें, घी आदि निर्यात के लिए आता है तथा आयात किए हुए माल—नमक, चावल, मिट्टी का तेल, मशीनों आदि को देश में रेलों द्वारा भेजा जाता है।*

बम्बई नगर का व्यापार-क्षेत्र बहुत विस्तृत है। यह बम्बई प्रान्त, सौराष्ट्र, राजस्थान, मध्य प्रदेश, मध्य भारत, तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश और हैदराबाद तक फैला है। इन प्रान्तों की पैदावारें—तिलहन, रूई, मैंगनीज, गेहूं, पशु और खालें आदि यहां आती हैं तथा उस बन्दरगाह द्वारा इन प्रान्तों में सूती वस्त्र, शक्कर, मशीनें, चांदी सोना, मिट्टी का तेल आदि वितरित किया जाता है। नीचे की तालिका में बम्बई द्वारा होने वाला व्यापार बताया गया है:—

वर्ष	*आयात*	*निर्यात* (टनों में)	*जोड़*
१९३९–४०	३,३५०,०००	१,९७५,०००	५,३२५,०००
१९४२–४३	३,५२१,०००	२,८३५,०००	६,३५६,०००
१९४५–४६	४,५४८,०००	१,९०२,०००	६,४५०,०००
१९४७–४८	४,६८३,०००	१,६८७,०००	६,३७०,०००
१९४८–४९	४,९४८,०००	१,६३४,०००	६,५८२,०००

मद्रास के बन्दरगाह का व्यापार अधिकांशतः मैसूर, मद्रास तथा दक्षिणी भारत और हैदराबाद राज्यों के साथ ही होता है। यहां रुई, चमड़ा, मूंगफली, चावल, मसाले, अनाज आदि इकट्ठा किया जाता है और इन भागों में यहां से

*देखिये, C.W.E. Cotton Hand book of Commercial Information for India. पृ० ९३

सूती वस्त्र, धातुऐं, मसाले, मशीनें, पशुओं का भोजन, सूत, आदि वितरित किया जाता है। मद्रास बन्दरगाह का व्यापार इस प्रकार है :—

वर्ष	आयात	निर्यात	जोड़
		(टनों में)	
१९३९–४०	८९५,६५१	३९१,९५५	१,२८७,६०६
१९४२–४३	३३७,१८८	१५८,५९१	४९५,७७९
१९४५–४६	१,८३३,४०६	३८६,६७४	१,७३६,९०३
१९४७–४८	१,३८२,७९५	२७८,३६९	१,६६१,१६४
१९४८–४९	१,६६४,८८१	२४०,०११	१,९०४,८९२

कोचीन के बन्दरगाह द्वारा दक्षिणी भारत तथा पश्चिमी समुद्रतटीय प्रान्तों का व्यापार होता है। यहां के मुख्य निर्यात नारियल की चटाइयां, रस्से, कोकोजैम, रबर; कहवा, चाय, सोंठ, मसाले आदि हैं तथा आयात अनाज, खनिज तेल, सूती वस्त्र, मशीनें और अन्य वस्तुएं हैं। यहां के व्यापार के आंकड़े इस प्रकार हैं :—

वर्ष	आयात	निर्यात	जोड़
१९४४–४५	२२६,११८	७१,२५७	२९७,३७५
१९४५–४६	३८०,५६४	१११,९९१	४९२,५५५
१९४६–४७	९७०,३१२	२९६,०२६	१,२६६,३८८
१९४७–४८	८५०,९९५	३१६,३१५	१,१६७,३१०
१९४८–४९	९९१,३५३	२५०,९३२	१,२४२,२८५

अन्तर्प्रान्तीय व्यापार (Inter-Provincial Trade)

यह व्यापार एक प्रान्त और दूसरे प्रान्त के बीच में होता है। यहां हम अन्तर्प्रान्तीय व्यापार की विवेचना करेंगे।

१. आसाम राज्य का व्यापार मुख्यतः पश्चिमी बंगाल से ही होता है। यहां के मुख्य निर्यात कोयला, जूट, चाय, चावल, मिट्टी का तेल, मोमबत्तियां, आदि तथा आयात सूती वस्त्र, अनाज, दालें, शक्कर, नमक और चावल हैं। चूंकि आसाम में चाय के बाग बहुत बड़े क्षेत्र में फैले हैं तथा यहां आवागमन के मार्गों की कठिनाइयां हैं अस्तु यहां का व्यापार बड़े २ नगरों में केंद्रित न होकर छोटे २ केन्द्रों द्वारा ही होता है।

२. पश्चिमी बंगाल का व्यापार उत्तर प्रदेश, आसाम, मध्य प्रदेश तथा बिहार उड़ीसा से होता है। उत्तर प्रदेश से यहाँ शक्कर, चमड़ा, गेहूं, तिलहन, दालें और सूती वस्त्र प्राप्त कर बदले में कोयला, चावल, जूट का तैयार माल,

मिट्टी का तेल, तम्बाकू चाय तथा चमड़ा देता है। आसाम को यहां से मसाले, शक्कर तथा सूती वस्त्र जाते हैं और उनके बदले में चाय, चावल, जूट, लकड़ी, चमड़ा और मिट्टी का तेल आता है। मध्य प्रदेश से व्यापार थोड़ी मात्रा में ही होता है। यहां से चमड़ा, लाख, कच्चा रेशम, मैंगनीज, कोयला और शकर भेजा जाता है बदले में पश्चिमी बंगाल सूती वस्त्र और मशीनें, मिट्टी का तेल तथा चाय और जूट के बोरे देता है। यहां के मुख्य व्यापारिक केन्द्र कलकत्ता, सीरामपुर, बरहामपुर तथा बर्दवान हैं।

३. बम्बई प्रान्त का व्यापार राजस्थान, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, पूर्वी पंजाब, मध्य भारत, दक्षिणी भारत और सौराष्ट्र से होता है। यहां के मुख्य निर्यात सूती वस्त्र—जो मध्य भारत, मध्य प्रदेश, राजस्थान, पूर्वी पंजाब और मद्रास को जाते हैं—नमक (मध्य प्रदेश को) तम्बाकू (राजस्थान, मध्य भारत और सौराष्ट्र को) तथा मशीनें, मिट्टी का तेल आदि हैं। यहाँ के आयात रूई, अनाज, शक्कर, चमड़ा, लकड़ी, लाख, आदि हैं। यहां के प्रमुख व्यापारिक केन्द्र शोलापुर, सूरत, भूसावल, पूना, अहमदाबाद, भड़ौंच, बेलगाम तथा नासिक है।

मध्य प्रदेश का व्यापार केवल कृषि-जन्य वस्तुओं तक ही सीमित है क्योंकि इसका औद्योगिक विकास पूर्ण रूप से नहीं हो पाया है। यहां का ६०% व्यापार बम्बई से होता है। बंगाल से यहां कोयला, बोरे, रेशम आदि आते हैं तथा बदले में कपास, सूत, शकर, चावल आदि जाते हैं। बम्बई से सूती वस्त्र, शक्कर, तथा चमड़ा और मशीनें आती हैं और बदले में यहां से अनाज, दालें, तथा चावल जाता है। नागपुर, जबलपुर, हुब्ली, काम्पटी, रायपुर, हिंगनघाट, अोकाला, अमरावती, वर्धा, कटनी, योवतमाल प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र है।

मद्रास का अन्तर्प्रान्तीय व्यापार रेल द्वारा बहुत थोड़ा होता है। जो कुछ व्यापार है वह केवल मैसूर और हैदराबाद से होता है। इन राज्यों को सूती वस्त्र, शक्कर तथा अन्य भोज्य पदार्थ निर्यात किए जाते हैं और उनके बदले में चमड़ा, मूंगफली, आदि प्राप्त करता है। मद्रास के प्रमुख व्यापारिक केन्द्र मैसूर, बंगलौर, अन्नामलाई, त्रिचनापल्ली, मदुरा हैं।

५. पूर्वी पंजाब, उत्तर प्रदेश से शक्कर, चावल तथा चमड़े का सामान, राजस्थान से नमक, बम्बई से सूती वस्त्र, बंगाल से जूट के बोरे, चावल, कोयला आदि प्राप्त करता है। यहां के प्रमुख व्यापारिक केन्द्र, अमृतसर, लुधियाना, जलंधर और शिमला है।

६. उत्तर प्रदेश का अन्तर्प्रान्तीय व्यापार सब प्रान्तों से अधिक होता है। यहां से शकर, घी, चमड़े का सामान, पुस्तकें, कागज आदि वस्तुऐं राजस्थान, मध्य भारत, पूर्वी पंजाब, बम्बई और बंगाल को जाती है, तथा अन्य प्रान्तों से

यहाँ चावल, सूती वस्त्र, कोयला, नमक आदि आता है। यहां के मुख्य व्यापारिक केन्द्र इलाहाबाद, आगरा, कानपुर, हाथरस, मेरठ, हापुड़, खतौली, शामली, मुज्जफरनगर, गाजियाबाद, सहारनपुर, लखनऊ, बनारस, बिजनौर, जौनपुर और चंदौसी हैं।

७. राजस्थान का अधिकतर भीतरी व्यापार पड़ौसी राज्यों से ही होता है। यहां से नमक, घी, पशु, अनाज, पत्थर, ऊन, लकड़ी के खिलौने, खनिज पदार्थ, जीरा, धनिया आदि वस्तुएं निर्यात की जाती हैं और बदले में मशीनें, सूती वस्त्र, शक्कर, चावल, घी आदि लिया जाता है। यहाँ के व्यापरिक केन्द्र ब्यावर, केकड़ी, अजमेर, जैपुर, भीलवाड़ा, जोधपुर, गोविंदगढ़, रामगंज, सीकर आदि हैं।

अन्तर्प्रान्तीय व्यापार में प्रान्तीय व्यापार के साथ २ स्थानीय व्यापार (Local Trade) भी होता है। प्रदेशीय व्यापार इस प्रकार होता है। कृषक अपनी उपज तीन प्रकार से बाजार में लाता है।

१. वह गांव के महाजन या बनिये के हाथ बेच देता है।

२. गांव में व्यापारी या उनके एजेन्टों के हाथ माल बेच देता है, या

३. शहर की मंडी में जाकर स्वयं बेच देता है।

गांव में या गांव के नजदीक प्रायः एक महाजन या बनिया होता है जो किसान को ऋण देता है और ब्याज की दर बहुत ऊंची लगाता है। कभी २ तो यह शर्त भी लगा देता है कि किसान अपनी फसल को निश्चित भाव पर उसके हाथ बेच देगा। यह निश्चित भाव बाजार भाव से काफी नीचा होता है। कभी २ बनिये किसान को खेती के लिए बीज ब्योढ़े पर देते हैं। उस समय बीज की कीमत अधिक होती है। उस बीज का मूल्य बही में दर्ज करते हैं और फिर वापसी के समय उस रकम का अनाज लेते हैं। इस समय अनाज सस्ता रहता है। इस प्रकार किसान जितना अनाज लेता है उससे बहुत ज्यादा अनाज उसे वापस करना पड़ता है। फसल कट जाने पर ऋणी होने के कारण सारी फसल नीचे दामों पर बनिये के हाथ में चली जाती है।

शहरों में व्यापारी होते हैं जो फसल कटने पर स्वंय गांव २ का दौरा करते हैं या अपने एजेन्टों को भेजते हैं। यह अपनी बैलगाड़ी, तराजू और बांट भी ले जाते हैं और गांव में पहुंच कर किसान से सब उपज उसके सामने तौल कर खरीद लेते हैं और फिर उसे अपनी गाड़ी में भर कर शहरमें थोक व्यापारी या आढ़त वालों के हाथ बेच देते हैं। इसमें व्यापारियों को काफी लाभ होता है। फसल तैयार होने के समय कृषि उपज का भाव गिर जाता है अतः वह सस्ते भाव पर माल खरीदते हैं। इसके अतिरिक्त किसान बाजार भाव से भी पूर्ण-तया परिचित नहीं होते। व्यापारी उससे झूठ बोलकर सस्ता भाव बतलाते हैं और उनके स्वयं के बांट बटहरे

होते हैं तथा वे स्वयं तौलते हैं। इस प्रकार व्यापार को काफी सस्ता सामान मिल जाता है और खर्चा भी नाम मात्र को ही होता है। शहर में वह ऊंचे भाव से सामान थोक खरीदारों के हाथ बेचते हैं और इस प्रकार किसान तथा थोक खरीददारों के बीच में आकर स्वयं अच्छी रकम कमा लेते हैं। शहर के व्यापारी बड़े चतुर होते हैं। वे भली भांति जानते हैं कि किस स्थान पर किस प्रकार का और किस मात्रा में सामान प्राप्त होगा और इस सामान की कहां खपत होगी। अस्तु, वे टूटे फूटे तथा कच्चे रास्तों में गाड़ियां लेकर पहुंच जाते हैं और किसानों के उनके द्वार पर ही फसल का नकद रुपया चुका देते हैं।

कभी २ कृषक अपना माल स्वयं मंडी ले जाकर भी बेचता है। मंडियों में किसान गाड़ियों में या बानगी में अपनी उपज लेकर जाते हैं और थोक खरीददार दलालों की मार्फत बोली लगाकर माल खरीद लेते हैं। किन्तु इस व्यापार में किसान घाटे में रहते हैं। उनको न केवल आढ़तियों बल्कि धर्मादा, प्याऊ खाता, हमाली, मेहतर, ब्राह्मण, तुलावटिया, करदा, पिंजरापोल, दलाली, शागिर्दी, आदि के लिए भी कुछ न कुछ पैसा देना ही पड़ता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि किसान की उपज की विक्री की सबसे बड़ी समस्या मध्य पुरुषों (Intermediaries) की है। भारतीय केन्द्रीय कपास समिति (Indian Central Cotton Committee) ने शाही कृषि-कमीशन के सम्मुख निम्न आशय का निर्देशन प्रस्तुत किया था—

नं० १ में गांव के बनिये उन व्यापारियों के हाथ में सामान बेचते हैं जो गांव में आजाते है।

नं० ३ में गांव के बनिये स्वयं बाजार में माल बेचने ले जाते हैं। परन्तु नं० २ में थोक व्यापारों, निर्यात करने वाले व्यापारी, या मिल के एजेंट उत्पादकों से स्वयं माल आकर खरीदते हैं।

उत्पादक

१	२	३
१. गांव का बनिया	—	१. गांव का बनिया
२. घूमता हुआ व्यापारी	—	२. बाजार (दलालों द्वारा)
३. मध्य पुरुष एक या एक से अधिक	थोक व्यापारी का एजेन्ट निर्यात करने वाला या मिल के खरीदार	३. मध्य पुरुष एक या एक से अधिक
४. कच्चे आढ़तिये		४. आढ़तिया एक या एक से अधिक

५. थोक के व्यापारी मिल या निर्यात करने वाले	थोक के व्यापारी, मिल, या निर्यात करने वाले	५. थोक के व्यापारी, मिल या निर्यात करने वाले

इस प्रकार ज्ञात होगा कि कृषक को अपने माल पर बहुत थोड़ा पैसा मिल पाता है। अधिकांश पैसा मध्य पुरुषों को चला जाता है। नीचे की तालिका में भिन्न भिन्न व्यक्तियों को मिलने वाला भाग प्रतिशत में बताया गया है :—*

माल	*कृषक का भाग* (%)	*किराया* (%)	*मिश्रित व्यय* (%)	*थोक व्यापारी का भाग* (%)	*खुर्दा व्यापारी का भाग* (%)
शक्कर	६५.१७	१०.७१	६.१८	५.३६	६.५८
चावल	६६.८०	०६.५६	१७.२०	३.१६	६.२५
गेहूं	६८.५०	१६.००	६.३०	१.६	३.३०
अलसी	७६.३६	८.४०	६.३५	१.६	×
मूंगफली	७४.७०	८·५३	१६.७७	×	×
तम्बाकू	४२.१८	६.६६	३४.४६	१६.७०	×
आलू	५६.१३	११.६०	६.८०	५.४	१८.६
अंगूर	२६.४०	६.६५	११.५५	×	१४.६०
नारंगी	३२.४८	१६.२०	२६.५४	×	२४.६८
कोफी	६४.७७	×	१४.७०	६.६०	६.४०
अंडे	×	×	×	×	×
दूध	६४.७५	×	×	१४.७५	२०.५०

पुनः निर्यात व्यापार (Entrepot Trade)

भारत के विदेशी व्यापार का एक भाग ऐसा है कि दूसरे देशों से भारत में माल आता है और फिर वही माल पड़ौसी देशों को निर्यात कर दिया जाता है। इसी को पुनः निर्यात व्यापार (Entrepot Trade) कहते हैं। बहुधा ऐसा होता है कि विदेशी जहाज जो माल भर कर लाते हैं वह भारतीय बन्दरगाहों पर भी उतार देते हैं ताकि वहां से वह निकटवर्ती देशों को पुनः निर्यात किया जा सके। अमेरिकन जहाज प्रायः फारस की खाड़ी के बन्दरगाहों पर उतारा जाने वाला सारा माल बम्बई बन्दरगाह पर ही उतार देते हैं वहां यह माल चुंगी आदि चुका कर गोदामों में रख दिया जाता है जहाँ से पुनः जहाजों द्वारा निर्देशित स्थानों को माल रवाना कर दिया जाता है। पुनः निर्यात व्यापार का मुख्य उद्देश्य यह है कि यह विदेशों में निर्मित अथवा उत्पादित वस्तुओं को उनके गन्तव्य स्थानों

* देखिये, M. C. Munshi : From Farmer to Consumer, पृ० ३४

पर न उतार कर बीच में पड़ने वाले मुख्य केन्द्रों पर उतार दिया जाता है जहां से वह पुनः निर्यात किया जा सके।*

पुनः निर्यात व्यापार करने के लिए कई बातों का होना आवश्यक है—(१) देश की स्थिति मध्यवर्ती होनी चाहिए जिसके समीपवर्ती पड़ौसी देशों को विदेशों से निर्यात किया गया माल सुगमतापूर्वक भेजा जा सके। इस सम्बंध में भारत की स्थिति बड़ी ही महत्वपूर्ण है। यह हिंद महासागर के सिरे पर एशिया के दक्षिणी भाग में स्थित है जहां से सामुद्रिक मार्ग पूर्व, पश्चिम, दक्षिण तथा दक्षिण-पश्चिम को जाते हैं। इस प्रकार यह पश्चिमी देशों के तैयार माल को पूर्वी देशों और मध्य पूर्व तथा मध्य एशिया के देशों को वितरण करने का काम करता है।

(२) पुनः निर्यात व्यापार के विकास और प्रगति के लिए यह भी आवश्यक है कि उसका पृष्ठ देश धनी हो, जहां न केवल वस्तुओं का उत्पादन ही होता है बल्कि जहां की वस्तुएं निर्यात करनेके लिए भी उपलब्ध हो सकें तथा जहां जनसंख्या अधिक हो जिससे विदेशी माल का वितरण किया जा सके। इस विचार से भी भारत की स्थिति बड़ी महत्वपूर्ण है। नैपाल, शान की रियासतें, अफगानिस्तान, ईरान, तिब्बत, पश्चिमी चीन, फारस, मध्य एशिया तथा स्याम आदि राज्य भारत का पृष्ठ देश बनाते हैं। इनमें से कई देशों का अपना समुद्रतट नहीं है। ये देश प्राकृतिक साधनों में धनी हैं। अस्तु ये अपना आयात निर्यात भारत के द्वारा ही कर सकते हैं किन्तु यातायात के साधनों का अविकसित दशा में होने तथा इन देशों के निवासियों का जीवन-स्तर निम्न होने आदि के कारण भारत का पुनः निर्यात व्यापार पूरी तरह से विकसित नहीं हो पाया है।

(३) विदेशों से आयात माल को पुनः वितरण करने के लिए देश का जहाजी बेड़ा उन्नत दशा में होना चाहिए। इसी जहाजी बेड़े के फलस्वरूप हालैंड और इंग्लैंड जैसे छोटे २ देशों ने भी विश्व के अधिकांश क्षेत्रों में अपना अधिपत्य जमाया किन्तु दुर्भाग्यवश अभी तक भारत का जहाजी बेड़ा पूर्ण उन्नत अवस्था में नहीं है अब यह प्रयत्न किया जा रहा है कि भारत का अपना जहाजी बेड़ा काफी व्यवस्थित हो।

पूर्वी भूमण्डल के मध्य में स्थिति होने से पूर्व और पश्चिम के बीच में होने वाले व्यापार के लिए भारत एक अच्छा विश्राम-स्थल है। यही कारण है कि प्राचीन काल से भारत इस तरह के व्यापार में भाग लेता आता है। प्राचीन समय में भारत के पुनः निर्यात व्यापार की मुख्य चीजें रेशमी कपड़ा, चीनी का

*देखिये, K. T. Shah : Principles of Planning पृ० ६५

सामान (जो चीन से लाया जाता था), मोती (लंका से आयात किए जाते थे) पूर्वी समूहों से मसाले और बहुमूल्य पदार्थ थे। यह सब सामान पश्चिम के देशों को निर्यात किए जाते थे और वेनिशिया का कांच का सामान पूर्वी देशों को वितरित किया जाता था।*

नीचे की तालिका में भारत के इस पुनः निर्यात व्यापार का हाल बताया गया है :—

वर्ष	मूल्य करोड़ रुपयों में
१८८२–८३	५.८०
१९२०–२१	१८.०४
१९२४–२५	१३.५०
१९२५–२६	१०.५०
१९२७–२८	९.५०
१९२९–३०	७.००
१९३१–३२	४.६५
१९३२–३३	३ २२
१९३३–३४	३.४२
१९३४–३५	३.५५
१९३५–३६	३.७६
१९३७–३८	८.२८
१९३८–३९	६.४२
१९३९–४०	९.६४
१९४०–४१	११.८१
१९४१–४२	१५.३३
१९४२–४३	७.०
१९४३–४४	११.०
१९४८–४९	७.२१
१९४९–५०	१३.२६
१९५०–५१	२७.८२

जैसा कि ऊपर कहा गया है तिब्बत, नैपाल, अफगानिस्तान आदि ऐसे देश हैं जिनका अपना कोई समुद्र तट नहीं है। उनका आयात निर्यात भारत द्वारा ही होता है बम्बई इस प्रकार के व्यापार का प्रमुख बन्दरगाह है।

*देखिये, K. T. Shah : Principles of Planning, पृ० ९२

पुनः निर्यात व्यापार में पश्चिमी देशों से आयात किए हुए, पक्के माल—विशेष कर सूती और ऊनी कपड़ा—दवाइयां रसायनिक-पदार्थ तथा जीवित पशु—का वितरण तथा पड़ौसी देशों से प्राप्त फल, ऊन, कच्चा रेशम, रेशमी कपड़ा, शक्कर, चाय, मसाला, चमड़ा, कच्ची धातु आदि निर्यात किया जाता है।

पुनः निर्यात व्यापार में भाग लेने वाले प्रमुख देश संयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मनी, जापान, लंका, अदन, ईराक, अरब, ईरान, केनिया उपनिवेश, स्टेट्स सैटलमैंटस, एंग्लो-मिश्री और बर्मा है। नीचे की तालिका में पिछले वर्षों का प्रमुख देशों का पुनः निर्यात व्यापार में हिस्सा बताया गया है:—

वर्ष	*इङ्गलैंड*	*संयुक्त राज्य*	*बर्मा*	*जापान*
	%	%	%	%
१९३७–३८	५०	६	११	४
१९३८—३९	४३	६	१७	४
१९३९—४०	३०	२८	१२	—
१९४०—४१	२	५१	१६	—
१९४१—४२	—	४८	८	—

सीमा प्रान्तीय व्यापार (Transfrontier Trade)

भारत की स्थलीय सीमा ४००० मील से भी अधिक है जो उत्तर, उत्तर-पश्चिमी, उत्तर पूर्वी भागों में फैली हुई है। केवल उत्तर पश्चिम को छोड़ कर शेष सभी ओर से भारत को आना जाना प्रायः कठिन ही है क्योंकि या तो इस ओर घने जंगल, गहरी घाटियां हैं अथवा पर्वत-हिमाच्छादित हैं जिनके दर्रे वर्ष के अधिकांश महीनों में बर्फ से जमे रहते हैं अस्तु आना जाना बंद सा ही रहता है। भारत का सीमा प्रान्तीय व्यापार पाकिस्तान, अफगानिस्तान, तिब्बत, ईरान, ईराक, शान की रियासतें, बर्मा, पश्चिमी चीन और मध्य एशिया के देशों से होता है। इन सभी देशों में प्राकृतिक साधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है किन्तु फिर भी उत्पादन कम होने अथवा देश गरीब होने से न तो अधिक वस्तुएँ खरीदी ही जाती है और न बेची ही। सीमा प्रान्तीय व्यापार का विवरण नीचे की तालिका में दिया जाता है:—

	१९१६–१७	१९१८–१९	१९२०–२१	१९२४–२५
आयात	१२·८१	१५·९६	१८·१६	२३·०८
निर्यात	१०·३४	१४·८७	१५·८१	१८·७३
कुल सीमाप्रांतीय व्यापार	२३·१५	३०·८३	३३·९७	४१·८१

भारत के समुद्री व्यापार की तुलना में सीमा प्रान्तीय व्यापार प्रायः नगण्य सा है। सीमा प्रान्तीय व्यापार की मुख्य निर्यात की वस्तुएं विदेशी और देशी सूती कपड़े, रंग, मशीनें, कटलरी, मिट्टी का तेल, शक्कर, चावल, गेहूं, चाय, दालें, चमड़े का सामान, तम्बाकू और रेशमी वस्त्र है। मुख्य आयात गेहूं, चना, दालें, ऊन, कच्चा जूट, तम्बाकू, तिलहन, पशु, सुहागा, फल, आदि हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रमुख आयात कच्चे सामान और निर्यात तैयार माल का ही होता है।

सीमा प्रान्तीय व्यापार भारत और पड़ौसी देशों के बीच निम्न व्यापारिक मार्गों के द्वारा होता है:—

(१) एक मार्ग बिलूचिस्तान में चमन से खोजक दर्रा में होकर कंधार और हिरात को जाता है।

(२) क्वेटा से जहीदान तक रेल द्वारा और फिर वहां से कारवां द्वारा ईरान को।

(३) पेशावर से खैबर के दर्रे में होकर जलालाबाद तक।

(४) पश्चिमी पंजाब में अटक से चित्राल और हिन्दुकुश होकर सिक्यांग से काशगर को।

(५) डेरा इस्माइलखां से गोमल दर्रे में होकर जलालाबाद तक।

भारत से अफगानिस्तान को जूते, पशु, चमड़े का सामान, सिमेंट, लोहे का सामान, चाय, सूती कपड़े, रेशमी कपड़े और कागज तथा अफगानिस्तान से भारत में फल, ऊन, खालें, जीवित पशु, हींग तथा गलीचे आदि आते हैं। नीचे की तालिका में अफगानिस्तान और भारत के बीच होने वाले व्यापार का मूल्य बताया गया है:—

१६०० से ०५ तक	औसत व्यापार प्रति वर्ष	१,३०	लाख रुपये
१६३७–३८	,,	५८७	,,
१६४६–५०	,,	२२६	,,
१६५०–५१	,,	३७५	,,

तटीय व्यापार (Coastal Trade)

भारत की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि वह हिन्द महासागर के व्यापारिक मार्गों का प्रमुख केन्द्र है। साथ ही उसका २५०० मील से अधिक लम्बा तट है। ऐसी दशा में भारत को एक प्रमुख नाविक देश होना चाहिए था किन्तु विदेशी शासन की चक्की में पिसते रहने के कारण वह नाविक दृष्टि से उन्नति न कर सका।* उसका तटीय व्यापार अधिकतर अंग्रेजी जहाजी कम्पनियों के हाथ में था जो

* देखिये. C. B, Mamoria: Bharat Ka Arthik Bhugol. पृष्ठ ३८७

थोड़ी बहुत भारतीय जहाजी कम्पनियां देश का २५% तटीय व्यापार करती थी उनको भी अंग्रेजी कम्पनियां नष्ट कर देना चाहती थी। इसके लिए उनमें और देशी कम्पनियों में व्यापार के लिए भीषण प्रतिस्पर्धा थी। श्री हाजी तथा दूसरे लोगों ने भारत सरकार पर बहुत जोर डाला कि भारत का तटीय व्यापार भारतीय जहाजों के लिए ही सुरक्षित कर दिया जाय किन्तु तत्कालीन अंग्रेजी सरकार ने यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। दूसरे महायुद्ध के पूर्व भारत के पास केवल १½ लाख टन के जहाज थे। जो विश्व के व्यापारिक जहाजों का केवल २% था। स्वतंत्र हो जाने के बाद राष्ट्रीय सरकार इस बात की भरसक चेष्टा कर रही है कि देश के जहाजी बेड़े में वृद्धि हो। इस कार्य के लिए सरकार ने तीन निगम—प्रत्येक की अधिकृत पूंजी १० करोड़ रुपया होगी—बनाने का प्रस्ताव स्वीकृत किया है जो विदेशी व्यापार में भाग लेंगे। भारत सरकार द्वारा नियुक्त जहाजी नीति समिति ने कम से कम २० लाख टन वाले जहाजी बेड़े का होना नितांत आवश्यक बताया है। १९५० में हमारे जहाजों का टनेज ३·८ लाख होगया। इस समय देश में ७१ जहाज हैं जिनका वजन २ लाख टन है, यह भारतीय तटीय व्यापार में लगे हैं।

भारत का तटीय व्यापार भी दो तरह का है। देशी तटीय व्यापार जिसके अनुसार एक प्रान्त के दो या दो से अधिक बन्दरगाहों के बीच व्यापार होता है। दूसरे विदेशी तटीय व्यापार जिसके अन्तर्गत एक प्रान्त के बन्दरगाहों और दूसरे प्रांत के बन्दरगाहों के बीच व्यापार होता है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि भारत का तटीय व्यापार लगभग ७० लाख टन चावल, तिलहन, नमक, कोयला और लकड़ी आदि में होता है। यात्रियों को लाना ले जाना भी बड़े महत्व का है। पश्चिमी तट पर प्रतिवर्ष लगभग १·५० लाख यात्री ले जाये जाते हैं किन्तु इस व्यापार का अधिकांश भाग अब तक विदेशी कम्पनियों के हाथ में था जिनका तटीय व्यापार में एक तरह से एकाधिकार ही था।

तटीय व्यापार में मुख्य वे ही प्रान्त भाग लेते हैं जिनका अपना समुद्र तट है यथा—पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा, बम्बई, मद्रास आदि। भारत का तटीय व्यापार ब्रह्मा से भी होता है। ब्रह्मा से भारत में चावल, मिट्टी का तेल, लकड़ियां, मोमबत्ती, चना, दालें, आदि आते हैं। इनके बदले में ब्रह्मा में सूती कपड़े, जूट के बोरे, गेहूं, दालें, मसालें, तम्बाकू, लोहे का सामान, चाय, शक्कर, और तिलहन आदि जाते हैं। १९३७–३८ में ब्रह्मा को ४२·६५ करोड़ रुपये का सामान निर्यात किया गया और उस वर्ष ब्रह्मा से भारत में ४२·५१ करोड़ रुपये का आयात हुआ।

नीचे की तालिका में भारत के तटीय व्यापार की स्थिति बताई गई है:—

	१६१८–१६		१६३७–३८		१६३६–४०	
	आयात	*निर्यात*	*आयात*	*निर्यात*	*आयात*	*निर्यात*
बंगाल	१४१६२८	११४६७०	८५८२१	५४१०१	७५१६५	४०११६
बिहार	२४३३	१०६७	१३२४	६२४	८०१	१६६६
उड़ीसा						
बम्बई	३८६०३५	२१३४०४	१४४०५४	२०४६६६	१२०८२६	१७०३२२
मद्रास	६५२०६	८५८०६	१०८३६५	७८७२३	८०७०३	६५६२१

तटीय व्यापार में लगे मुख्य बन्दरगाह बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, कोच्चीन, तूतीकोरिन और विजगापट्टम है।

अध्याय २

भारत का विदेशी व्यापार

INDIA'S FOREIGN TRADE

अत्यन्त प्राचीन काल से ही भारत वासी अपने विभिन्न प्रकार के कला कौशल, जैसे सुन्दर ऊनी वस्त्रों के उत्पादन, अलग २ रंगों के समन्वय, धातु और जवाहरात के काम तथा इत्र आदि के उत्पादन के लिए संसार प्रसिद्ध रहे हैं। औद्योगिक कमीशन के शब्दों में, उस समय जबकि पश्चिमी यूरोप में जो कि आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था का जन्मदाता है, असभ्य लोग निवास करते थे, भारत अपने राजा और नवाबों की सम्पत्ति तथा अपने कारीगरों के कौशल के लिए विख्यात था। उसके बाद भी, जबकि पश्चिम के व्यापारी पहले पहल यहां आये, यह देश औद्योगिक विकास की दृष्टि से पश्चिम के जो अधिक उन्नत राष्ट्र हैं उनसे आगे बढ़ा हुआ न हो तो किसी प्रकार कम तो नहीं था।* एम० मार्टिन ने तो यहां तक लिखा है कि "जब आधुनिक लंदन नगर का कहीं पता भी न था, उस समय भी भारत विश्व का सबसे प्रमुख व्यापारिक केन्द्र था।" अस्तु, अत्यन्त प्राचीन काल से ही भारत का विदेशों से व्यापारिक सम्बन्ध था। इस बात के यथेष्ठ प्रमाण मिले हैं कि सन् ३००० ई० पू० में भारत और बेबीलोन में व्यापारिक सम्बन्ध थे, सन् ई० १—२००० तक की पुरानी मिश्र की कब्रों में जो शव हैं वे भारत की बहुत बढ़िया मलमल में लिपटे हुए पाये गए हैं।+ भारतीय लोहे और स्पात का भी निर्यात फारस, अरब तथा इंग्लैंड देश को होता था। 'रोम में भारत के तैयार माल की बहुत खपत थी।' एल्डर प्लिनी भी इस बात का समर्थन करता है। उसकी शिकायत यह थी कि 'भारत से व्यापार करने के कारण बहुत सा रुपया भारत को चला जाता है।' पं० मदनमोहन मालविया ने औद्योगिक आयोग की रिपोर्ट में अपने मतभेद सूचक टिप्पणी में यह लिखा था कि ढाका की मलमल से यूनान के निवासी परिचित थे और वे उसे 'गेजेटिका' के नाम से जानते थे।× बाद में चीन, फारस,

---

*देखिये, Industrial Commission's Report. (1918) पृ० १

+देखिये, रानाडे की 'Essays on Indian Economics' पृ० १७१

×देखिये, 'Industrial Commission Report. पृ० २८५

अरब, जर्मनी, जावा, सुमात्रा तथा जापान का भी भारत से व्यापार होने लगा। यह व्यापार चीन से मुख्यतः स्थल मार्गों द्वारा और अन्य देशों को फारस की खाड़ी और लालसागर द्वारा होता था। उन दिनों व्यापार कीमती और बहुमूल्य वस्तुओं में (जिनका वजन कम होता था) होता था। जैसे बढ़िया रेशमी कपड़ा, मलमल, धातुएं, रंग, इत्र, मसाला, हाथीदांत का सामान, जवाहरात और सोना, दुशाले, कसीदे की बनी वस्तुएँ आदि। यह वस्तुएँ विदेशों में बहुत पसंद की जाती थीं। विदेशों से विशेषतः ऐसी धातुएं जो भारत में नहीं होती थी—तांबा, टिन, शीशा अथवा शराब, घोड़े, मोती आदि वस्तुएं मंगवाई जाती थीं।× इस प्रकार इस काल में भारत से निर्यात व्यापार में उत्तम प्रकार का तैयार माल ही अधिक होता था। इसके बदले में बाहर से सोना और चांदी ही ज्यादातर आता था। इसका अर्थ यह है कि भारत दूसरे देशों को जितने मूल्य का माल निर्यात करता था उससे कम मूल्य का माल दूसरे देशों से वह मंगवाता था। इस प्रकार जो अन्तर रह जाता था वह सोना चांदी जैसी कीमती धातु मंगा कर पूरा किया जाता था। अस्तु भारत का व्यापार सर्वदा अनुकूल ही रहता था। इस काल में भारत से मुख्यतः तैयार वस्तुएं ही निर्यात की जाती थी अतः यदि भारत को विश्व का कारखाना कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।*

भारतीय व्यापार का हम निम्न कालों में अध्ययन करेंगे

१. मुस्लिम काल (११००—१७००)
२. अंग्रेजी काल का प्रथम युग (१७००—१६००)
३. प्रथम महायुद्ध के पूर्व का काल (१६००—१६१४)
४. प्रथम महायुद्ध काल (१६१४—१८)
५. महायुद्ध के पश्चात् का काल (१६१८—२६)
६. विश्व व्यापारिक मंदी का काल (१६२६—३५)
७. द्वितीय महायुद्ध के पूर्व का काल (१६३५—३६)
८. द्वितीय महायुद्ध काल (१६३६—४५)
६. महायुद्ध के पश्चात् का काल (१६४५—५१)

१. मुस्लिम काल में भारतीय व्यापार (Muslim Period) ११००-१७००

मुसलमानों के शासन-काल के प्रारंभिक वर्षों में अनिश्चित राजनैतिक स्थिति के कारण विदेशी व्यापार को बड़ा धक्का लगा। १३ वीं शताब्दी के

×देखिये, R. T. Shah. Trade, 'Tariffs and Transport' पृ० ६

*देखिये, S. A. Palekar : Trade of India. पृ० १६

आरंभ में कुछ समय के लिए अफगानिस्तान, मध्य एशिया, तथा ईरान को जाने वाले उत्तर–पश्चिम के स्थलमार्ग मंगोलों के आक्रमण के कारण कुछ समय के लिए अवरुद्ध हो गये किंतु ये मार्ग थोड़े समय बाद ही पुन: व्यापार के लिए संकट रहित हो गये। इस समय दक्षिणी भारत से मसालों (इलायची, लौंग, काली मिर्च, जावित्री) और कपूर का निर्यात पश्चिमी देशों को बड़ी मात्रा में होता था। इसके अतिरिक्त भारत के मोती, अनेक प्रकार के वस्त्र, सिंध के बढ़िया फर्श और गलीचे, हाथीदांत और उसकी बनी चीजें, गैंडे के चमड़े व उससे निर्मित वस्तुएं, जूते, नारियल, कस्तूर, नील, काला नमक, अनेक प्रकार की औषधियां तथा मेवे ईराक, ईरान, मिश्र और अरब को भेजे जाते थे। इनके बदले में अरब से घोड़े, लोहा, सोना, चांदी, खजूर, मिश्र से पन्ने की अंगूठियां, हीरा, मूंगे और मिश्री शराब तथा ईरान से ऊनी वस्त्र, केवड़ा, गुलाबजल और मिट्टी का तेल आता था। † सोलहवीं शताब्दी में भारत से उत्तर पश्चिम को जाने वाले मार्ग मुख्य थे—एक स्थल मार्ग और दूसरा जल मार्ग। पहला लाहौर और मुलतान से पेशावर तथा कंधार को जाता था। कंधार से एक मार्ग चीन और दूसरा मध्य एशिया को जाता था। जलमार्ग भी दो थे—एक फारस की खाड़ी हो कर और दूसरा लालसागर होकर। भारत से भेजा जाने वाला माल पहले फारस की खाड़ी पर स्थित उरमुज बन्दरगाह को भेजा जाता था वहां जहाजों पर माल लाद कर फारस की खाड़ी होकर बसरा पहुंचता था, और वहां से दजला, फरात नदियों के मार्ग से ईराक के उत्तरी भाग में पहुंचता था। वहां से ऊंटों और खच्चरों आदि पर लाद कर पहले दामश्क और फिर वहां से एशिया माईनर तथा दक्षिण और पश्चिमी यूरोप को पहुंचाया जाता था।*

सत्रहवीं शताब्दी के प्राय: मध्य तक एशिया का व्यापार मुख्यतया अरब, आरमेनिया, गुजराती, मलाबारी तथा बंगाली व्यापारियों के हाथ में था। इन सबमें भी अरब वालों का प्राधान्य था। इनके जहाज बड़ी संख्या में अरब सागर, लाल सागर और फारस की खाड़ी में दिखाई पड़ते थे। १६ वीं १७ वीं शताब्दी में भारत में सूरत, कालीकट, मच्छलीपट्टम, सतगांव, चिटगांव आदि निर्यात के मुख्य केन्द्र थे। इन स्थानों से छींट, कीमती सूती वस्त्र, कपास, रेशम, चावल, शक्कर, नील और काली मिर्च आदि मसालेका विदेशों को बड़े रूप में निर्यात होता था। †† सूती कपड़े पूर्व में हिंद चीन थाइलैंड, मलक्का, जापान, बोर्नियो, सुमात्रा, जावा आदि को जाते थे। पश्चिम

† देखिये. कृष्णदत्त वाजपेयी : भारतीय व्यापार का इतिहास (१९५२) पृ० २१४—२१५

* देखिये, Moreland : India At the Death of Akbar' पृ० २१६

†† देखिये, Petermundy : Travels in Asia Vol II पृ० १५४-६

में ये वस्त्र ईरान, अफगानिस्तान, दक्षिण और पूर्व अफ्रीका, मिश्र तथा पश्चिमी अरब को भेजे जाते थे। टैवनियर लिखता है कि टर्की, पोलैंड आदि में दक्षिण भारत के छपे हुए कपड़ों की मांग बहुत थी। पश्चिमी यूरोप को गुजरात, कोरोमंडल तथा बंगाल की छींट और रेशम का निर्यात अधिक होता था। १७ वीं शताब्दी का भारतीय निर्यात यह सूचित करता है कि यहां के कारीगर कितनी सफलता के साथ विदेशों के विभिन्न वर्गों के लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। एक ओर शासक वर्ग और अमीरों की और दूसरी ओर साधारण तथा निम्नवर्ग के लोगों की रुचि के अनुकूल वस्तुएं तैयार करने में वे बड़े कुशल थे। सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक भारत संसार के व्यापार का केन्द्र रहा। *करेरी* लिखते हैं 'कि सारे संसार का सोना चांदी घूम फिर कर अन्त में भारत में पहुंचता है।' * *सर टामस रो* लिखता है कि "यूरोप की बरबादी पर एशिया फलफूल रहा है।" + भारत की समृद्धि का प्रधान कारण यह था कि जहां इसका निर्यात बहुत अधिक था वहां आयात बहुत कम था। आयात में मोती आदि रत्न, तांबा, सीसा, शीशे की वस्तुएं, हाथी-घोड़े, दालचीनी, लौंग, जायफल, मसाले, फल और मेवे तथा उनकी बनी वस्तुएं थीं। मोती और मसाले पूर्वी द्वीपों से आते थे, घोड़े ईरान, उजबेग और अरब से, धातु यूरोप से और फल-मेवे अफगानिस्तान और ईरान से आते थे। ††

ई० १५ वीं शताब्दी में यूरोप में व्यापारिक जागृति प्रारम्भ हुई जिसके फल स्वरूप यहां के निवासी दूर देशों का पता लगा कर उनसे व्यापारिक सम्बन्ध बढ़ाने तथा वहां अपने उपनिवेश स्थापित करने के लिए उसी प्रकार समुद्रों में निकल पड़े जैसे इसके पूर्व भारतीय और अरब नाविक लगन और उत्साह के साथ इस ओर प्रवृत्त हुए थे। १५ वीं शताब्दी के अन्त में सबसे पहले पुर्तगाल वाले भारत में आए। धीरे २ उन्होंने भारत के पश्चिमी समुद्रतट पर गोआ, डामन, डयू आदि स्थानों पर अधिकार कर लिया। १६ वीं शताब्दी में पुर्तगाल वालों को पूर्वी देशों के साथ व्यापार करने का एकाधिकार प्राप्त हो गया। धीरे २ वे पूर्व में अराकान तक बस गये। परन्तु इस समय इन लोगों के असीम लोभ के कारण भारतीय व्यापार को धक्का लगने लगा। पुर्तगालियों ने एशिया और यूरोप के व्यापार में एकाधिकार प्राप्त करने का जी तोड़ परिश्रम किया। इसके लिए वे अनुचित तरीकों के प्रयोग में भी न हिचकते थे। अब भारतीय तथा अन्य जहाजों को डुबाना उनका नित्य का काम हो गया। अरब, मिश्र तथा भारतीय व्यापारियों को उनके कारण बहुत कष्ट उठाने पड़े। पूर्वी

* "All the Silver and gold which circulates throughout the word at last centres here (in India)"

† "Europe Bleedeth to enrich Asia."

†† देखिये, R. K. Mukerjee: Economic History of India पृ० ५४-५८

देशों की ओर जाने के लिए इन व्यापारियों को तब तक जाने की आज्ञा न थी जब तक कि वे डयू के पुर्तगाली अध्यक्ष से अनुमति पत्र (Passport) न प्राप्त कर लेते। आर्थिक लाभ के अतिरिक्त पुर्तगाल वालों ने धार्मिक कट्टरता को अपनाया। भारतीय निवासियों के साथ वे प्रभुता के आवेश में आकर दुर्व्यवहार करने लगे। हज करने के लिए मक्का जाने वाले मुसलमानों को भी बहुत तंग करते थे। इससे भारतीब जनता उनकी विरोधी बन गई। पूर्व के व्यापार में इनको बड़ा लाभ होता था। इनका केंद्र हुगली था। वे चीन से रेशम, टीन और जवाहारात भारत लाते और भारत के सूती तथा रेशमी वस्त्र और मिर्च-मसाले ईरान, अरब ईराक और यूरोप को भेजते थे। ईरान और अरब से ये लोग भारत में घोड़े, खजूर, दरियां, और चांदी; यूरोप से काच के बरतन, शराब, तलवारें आदि; अफ्रीका से हाथी दांत, कस्तूरी और कहवा लाते थे। गोआ और सूरत उनके प्रधान केन्द्र थे।

पुर्तगालियों के अत्याचार के कारण भारत तथा पश्चिमी देशों के मुसलमान उनसे नाराज हो गए थे और उन्हें भारतीय समुद्रतट से निकालने की चेष्टा करने लगे। जनता की सहानुभूति खो देने से उनकी शक्ति बहुत घट गई। इससे पुर्तगाल के व्यापार को बड़ा धक्का लगा। पुर्तगालियों की शक्ति को तोड़ने में डचों का भी बड़ा हाथ था, १६ शताब्दी के अंत तक इनका प्रभुत्व पूर्वी द्वीपों में हो गया। डचों की कोठियां भारत में ढाका, हुगली, बालासोर, चिनसुरा, कासिम बाजार तथा पटना में स्थापित की गईं। इन लोगों ने धीरे २ कोरोमंडल तट पर मछलीपट्टम आदि स्थानों में भी अपनी कोठियां स्थापिब कीं। डच लोग मसाले, रेशमी और सूती वस्त्र, चावल, अफीम और शोरा बाहर भेजते थे। डचों की बढ़ती व्यापारिक शक्ति को पुर्तगाली, अंग्रेज और फ्रांसीसी लोग सहन नहीं कर सके। अस्तु तीनों में पारस्परिक झगड़े होने लगे। अंग्रेजों और फ्रांसीसीयों के साथ युद्ध होने से डचों ने भारत में काफी हानि उठाई। फ्रांसीसियों और डचों के पारस्परिक युद्धों से इंग्लैंड ने बड़ा लाभ उठाया।

अंग्रेजों ने धीरे २ भारत में अपना अधिकार बढ़ाना आरम्भ किया। २४ सितम्बर १५९९ को लंदन के कुछ व्यवसायियों ने मिलकर पूर्वी देशों से व्यापार करने के सम्बन्ध में विचार विनिमय किया और ३१ दिसम्बर १६०० को इंगलैंड की रानी एलिजाबेथ ने पूर्वी देशों से व्यापार करने के लिये रायल चार्टर प्रदान कर दिया। इस कम्पनी का नाम "The Governor and Company of Merchants of London trading into the East Indies" था। अंग्रेजों को आरम्भमें भारतके साथ व्यापार करनेमें अनेक बाधाओंका सामना करना पड़ा। इस कार्य में न केवल पुर्तगाल वालों ही से अपितु डचों से भी भयानक प्रति-स्पर्द्धा हुई। १७ वीं शताब्दी में अंग्रेजों को अब भारतीय व्यापार की ओर ही अपना सारा ध्यान लगाना पड़ा।

अंग्रेजों ने अपनी दूरदर्शिता से तत्कालीन मुगल सम्राटों तथा प्रादेशिक शासकों को यथा सम्भव सन्तुष्ट ही रखा। यह नीति अंग्रेजों के हक में बड़ी लाभ-दायक सिद्ध हुई और भारत में उनके पैर जम गये। आरम्भ में ईस्ट इंडिया कम्पनी की नीति अपने व्यापार को बढ़ाने के लिए भारतीय उद्योगों को प्रोत्साहन देने की रही किन्तु बाद में यह कम्पनी अपनी पूर्व निर्धारित नीति से हटकर मन माना काम करने लगी। पार्लियामेंट में इस बात की चर्चा की जाने लगी कि कम्पनी ने अपनी जिम्मेदारियों का उल्लंघन किया है, उसके कर्मचारियों में व्यक्तिगत स्वार्थ हद से अधिक बढ़ गया है और वे राज्य के व्यापार की अपेक्षा अपने निजी व्यापार में अधिक ध्यान दे रहे हैं। परन्तु इन आलोचनाओं का कम्पनी पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। १६९३ में तो लिनावाईल नामक कम्पनी के एक प्रमुख डायरेक्टर ने लम्बी रिश्वत के द्वारा इङ्गलैंड की पार्लियामेंट में एक नया आज्ञापत्र प्राप्त कर लिया। परन्तु शीघ्र ही सब रहस्य खुल गया जिसके फलस्वरूप दूसरे ही वर्ष पार्लियामेंट ने यह आज्ञा जारी करदी कि भारत के व्यापार पर ईस्ट इंडिया कम्पनी का ही एकाधिकार नहीं है, इंगलैंड का कोई भी व्यक्ति भारत के साथ व्यापार कर सकता है। इसके परिणाम स्वरुप १६९८ में एक नई कंपनी खुली जिसका नाम English Company Trading to the East Indies" रखा गया। अब दोनों कम्पनियों में पूरी व्यापार के लिए होड़ चलती रही। देश की दो शक्तियों में कटुता बढ़ती हुई देखकर अन्त में इङ्गलैंड की पार्लियामेंट ने दोनों कम्पनियों को एक होजाने के लिए बाध्य किया। १७०२ में वे दोनों मिल कर एक होगई। इस सम्मिलित कम्पनी का नाम "United Company of Merchants of England Trading to the East Indies" रखा।

जब तक इङ्गलैंड का भारत से सीधा आयात-निर्यात सम्बन्ध न स्थापित हुआ था तब तक इङ्गलैंड, पुर्तगाल और हॉलैंड से आवश्यक माल खरीदा करता था। प्रतिवर्ष लगभग पांच लाख पोंड का वस्त्र इन दोनों देशों से खरीदा जाता था। जब ईस्ट इंडिया कम्पनी स्थापित होगई और उसने भारत आकर स्वयं यहां की स्थिति का अध्ययन किया तो पता चला कि हॉलैंड और पुर्तगाल से कपड़ा न खरीद कर इङ्गलैंड भारत की छींट और मलमल खरीदे तो उसका लगभग आधा रुपया प्रतिवर्ष बच जाया करे। भारतीय कपड़ा इतना हल्का और सुन्दर था कि अंग्रेज जनता ने उसे बहुत पसन्द किया। अस्तु १६७५ ई० से इङ्गलैंड ने फ्रांस का बारीक कपड़ा (जिसे धनिक वर्ग की महिलायें पहनती थीं) मंगाना बिल्कुल बन्द कर दिया। अब उसके बदले में भारतीय मलमल और छींट खरीदी जाने लगी। अंग्रेज महिलाओं ने इन्हें बहुत पसन्द किया। १६५८-६४ के बीच केवल हुगली से प्रतिवर्ष १५,००० की संख्या में वस्त्र इंगलैंड भेजे गए। १५७३-७८ के बीच

इनकी संख्या ६१,००० प्रतिवर्ष और १६८०—८३ के बीच ४,५५,००० वार्षिक होगई। १६६५-६६ में ५० हजार वस्त्र इंगलैंड भेजे गये।* कमीजें, टाइयां, मोजे, रुमाल, औरतों के गाउन, पेटीकोट और जो सभी भारतीय, मलमल और छींट के बनते थे। भारत के इन कपड़ों के बारे में डा० पी० जे० थामस ने लिखा है कि "वे ऐसे हल्के होते थे और ऐसे महीन जैसे मकड़ी का जाला।" मलमल और छींट के अतिरिक्त भारत से रुई, रेशम, रेशमीवस्त्र, मसाले, नील और शोरा बड़े परिमाण में इंगलैंड जाता था। डा० सरकार का अनुमान है कि ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना के प्रथम ६० वर्षों में भारत से प्रतिवर्ष औसतन एक लाख पौंड (लगभग ८० लाख रुपया) का माल इंगलैंड भेजा गया। १६८१ में २२,३४,२५६ पौं० का माल इंगलैंड को भेजा गया।* १७ वीं शताब्दी के आरम्भ में भारत से प्रतिवर्ष पांच करोड़ गज (४०,००० गांठ) कपड़ा विदेश को जाता था जिसके मुख्य खरीदार अंग्रेज, पुर्तगाली, फ्रांसीसी, अरब, और ईरानी थे।

अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अंग्रेजों की व्यापारिक शक्ति बहुत बढ़ गई। अब तक भारत के बढ़िया वस्त्र इंगलैंड को बड़ी मात्रा में जाया करते थे। अपना देशी शिल्प बढ़ाने के लिए ब्रिटिश पार्लियामेंट ने पहले १७०० ई० में और फिर १७१० ई० में कानून द्वारा भारतीय छींट के आयात पर रोक लगादी। यहां तक कि पहनने पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया। इस कानून के अनुसार इंगलैंड में भारतीय छींट बेचने वाले पर २० पौंड और पहनने वाले पर ५ पौंड जुर्माना घोषित किया गया। धीरे २ अन्य भारतीय वस्त्रों पर भी रोक लगादी गई। लेकी ने लिखा है कि अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यदि कोई अंग्रेज महिला भारतीय वस्त्र पहनती थी तो उसे दंडित किया जाता था।† इसका फल यह हुआ कि भारतीय वस्त्रों का इंगलैंड जाना बन्द होने लगा और भारतीय शिल्प की बलि पर लंकाशायर की मिलें उन्नति करने लगीं। अस्तु, भारतीय माल भी अब घटिया तैयार किया जाने लगा। छींट तथा मलमल की मांग यूरोप के अन्य देशों में भी कम होती गई। इस प्रकार भारतीय व्यापार को इस शताब्दी में गहरा धक्का लगा। अब भारत के तैयार कपड़े की जगह कच्ची रुई यूरोप जाने लगी।

१७ वीं शताब्दी के अन्त होते २ भारतीय व्यापार की बड़ी दुर्गति होने लगी। जहां एक ओर विदेशियों को उनके व्यापार के लिए सभी प्रकार की सुविधायें प्रदान की जा रही थीं वहां दूसरी तरफ देशी लोगों के लिए अड़चनें बढ़ाई जा

* देखिये, कृष्णदत्त: भारतीय व्यापार का इतिहास पृ० २७४

* देखिये, जदुनाथ सरकार: Studies in Aurangzeb's Reign.

* देखिये, मुकर्जी, Economic History of India पृ० १८२-८३

† देखिये, Leck: History of England in 28 th Century. पृ० २५५-७६

रही थी। अंग्रेज जैसे विदेशी व्यापारी सब प्रकार की चुंगियों से मुक्त थे और जहां चाहे वहां व्यापार कर सकते थे किन्तु भारतीय व्यापारियों को पहले लम्बी रकमें चुंगी के रूप में चुकानी पड़ती थी तब कहीं वे व्यापार कर सकते थे। चुंगी की दरों में भी भेद भाव था। जहां मुस्लिम व्यापारियों को यातायात के माल पर २½% महसूल चुकाना पड़ता था वहां हिन्दु व्यापारियों को ५%। अंग्रेजों को २½% चुंगी देनी पड़ती थी किन्तु बाद में वह भी माफ कर दी गई। भारतीय व्यापारियों को अधिक चुंगी देने के साथ २ चुंगी के दरोगाओं और जमीदारों को भी भेंट देनी पड़ती थी। इतने से ही छुटकारा नहीं मिल जाता था। इन दरोगाओं, जमीदारों और प्रादेशिक शासकों के अत्याचारों के कारण हजारों व्यापारियों और यात्रियों का माल, उनकी इज्जत, और जीवन हमेशा खतरे में रहता था। भारतीय व्यापारियों को विदेशी लुटेरे भी हर प्रकार से परेशान करते थे। मुगल साम्राज्य की ओर से देशी व्यापारियों की इन कठिनाइयों को दूर करने का कोई समुचित प्रबन्ध न था। अस्तु भारतीय व्यापार चौपट होने लगा। विदेशियों के पौ-बारह थे। उनको राज्य की ओर से सभी सुविधायें प्राप्त थी। १६९८ में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने गर्व के साथ लिखा, "कम्पनी के दानपत्रों, आज्ञापत्रों तथा पारस्परिक समझौतों द्वारा भारत के अधिकतर भागों में इतने बड़े अधिकार एवं सुविधायें प्राप्त कर ली हैं जो कि स्वयं भारतीयों को अप्राप्त हैं। जो कुछ व्यापार बचा था उसकी सुरक्षा के लिए भी राज्य की ओर से कोई उचित प्रबन्ध न था। अंग्रेज लोग प्रादेशिक मुस्लिम गवर्नरों को यह धमकी देते रहते थे कि यदि उनकी मांगें पूरी न की गई तो वह भारतीय जहाजों को लूटते, छीनते और समुद्र में डुबाते रहेंगे। इस प्रकार की धमकियों को मुगल शासक बिना किसी हिचकिचाहट के बर्दाशत करते रहे।।

इस प्रकार भारतीय व्यापार को गहरा धक्का पहुंचाने में मुगल शासन बहुत कुछ उत्तरदायी था। इस काल का अन्त होते २ पश्चिमी भारत के अधिकांश बन्दरगाहों का महत्व समाप्त प्रायः हो गया। पूर्व की ओर भी यही हालत हुई। व्यापार के ह्रास से शिल्प की अवनति अवश्यंभावी हो गई। इधर यूरोप वालों ने इस देश में उपलब्ध व्यापारिक सुविधाओं का उपभोग अपनी ही आर्थिक एवं राजनैतिक शक्ति को दृढ़ करने में किया न कि भारत के निजी वाणिज्य व्यवसाय को उन्नति में। अन्त में नौबत यहां तक आई कि भारतीय व्यापारियों को ईस्ट इंडिया कम्पनी की गुलामी स्वीकार करनी पड़ी।

मुगलकाल में १८वीं शताब्दी के मध्य तक हिन्दू व्यापारी देशी शिल्प और व्यापार के प्रवर्धन में प्रयत्नशील रहे किन्तु राज्यकीय अत्याचारों, विपरीत परिस्थितियों और देश में अशांति और असंतोष के वातावरण से न केवल मुगल साम्राज्य ही नष्ट भ्रष्ट हो गया बल्कि देश के व्यापार को भी गहरा धक्का पहुंचा।

शनैः २ भारतीय व्यापारी व्यापार में भाग लेने से अप्रत्यक्ष रूप में पीछे हटते रहे और उनका स्थान विदशी व्यापारियों ने ले लिया।

२. अंग्रेजी कालका प्रथम युग (Early European-Period, 1700-1900)

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है भारतीय सामुद्रिक मार्ग को खोज निकालने के लिए अपने २ सम्राटों के संरक्षण में न केवल डच, पुर्तगाली और फ्रांसीसी ही भारत में आये बल्कि अंग्रेजों ने भी इस ओर काफी प्रयास किया। इन सभी विदेशियों शक्तियों में भारतीय और पूर्वी देशों के व्यापार के लिए बड़ी प्रतिस्पर्धा हुई और कई युद्ध भी हुए जिनमें अन्ततः अंग्रेज की ही जीत हुई। इस विजय के परिणामस्वरूप भारत में अंग्रेज ईस्ट इंडिया कम्पनी का प्रभुत्व स्थापित हो गया। इसका सबसे बुरा प्रभाव यह पड़ा कि विदेशी व्यापार में भारतीयों का भाग कम होने लगा और उसका स्थान विदेशी शक्ति के हाथ में आता गया। ये विदेशी व्यापारी यूरोप के देशों से अधिक लाभदायक व्यापार करते रहे और भारतीयों के जिम्मे केवल तटीय स्थानों का व्यापार ही रहा। ईस्ट इंडिया कम्पनी के डायरेक्टर अपनी मन मानी करने लगे व्यक्तिगत लाभ के सामने कम्पनी के लाभ का कोई विचार नहीं किया गया। वास्तव में बर्क के शब्दों में कम्पनी द्वारा होने वाला व्यापार कम्पनी के नौकरों के भाग्य को चमका रहा था।* अस्तु अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए कम्पनी के कर्मचारीगण येन केन प्रकारेण व्यापार को अधिक से अधिक बढ़ाने में लगे। इसके फलस्वरूप अमेरिका और अफ्रीका में नए बाजार स्थापित किए गए तथा यूरोप और एशिया के बाजारों को और व्यवस्थित किया गया। इस काल में भारत से विदेशों को सूती और रेशमी वस्त्र, मसाले, शक्कर, नील, खनिज पदार्थ, दवाईयां और सूत तथा रेशम जाता था और उसके बदले में चांदी, सोना तथा ऊनी तैयार माल आता था। किन्तु यह स्थिति अधिक समय तक न रह सकी। यूरोप के लिए भारतीय व्यापार का लक्षण (भारतीय माल के बदले में सोना चांदी प्राप्त करना) एक चिन्ता का विषय बन गया। ईस्ट इंडिया कम्पनी की नीति आरम्भ में भारतीय उद्योग धन्धों को प्रोत्साहन देने की थी क्योंकि उसका निर्यात व्यापार इसी बात पर निर्भर था। किन्तु थोड़े समय बाद ही ब्रिटिश पूंजीपतियों के विरोध के कारण उसे यह नीति छोड़नी पड़ी। ब्रिटिश पूंजीपति यह चाहते थे कि कम्पनी ब्रिटिश कारखानों के लिए आवश्यक कच्चा माल भारत से निर्यात करने पर जोर दे। अस्तु, कम्पनी ने अपनी २ नीति बदली और अब भारत से तैयार माल की अपेक्षा अधिकाधिक मात्रा में कच्चा माल निर्यात किया जाने

*देखिये I. D. Prashad Soree Aspects of Indian Foreign Trade (1875-1882) पृ. ६६

लगा और उसकी जगह भारत में इंग्लैंड के कारखानों में बना हुआ तैयार माल आने लगा। इसका प्रभाव यह हुआ कि भारत अब औद्योगिक देश न रहकर केवल कृषि प्रधान देश बना दिया गया। इसका घातक प्रभाव हमारे व्यवसायों और व्यापार दोनों पर ही पड़ा।* श्रीमती नौल्स के शब्दों में, "भारत अब इंगलैंड में हुई औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप उन्नत कारखानों के लिए कच्चा सामान रूई, चमड़ा, तिलहन रंग, जूट आदि निर्यात करने लगा और बदले में अधिकाधिक मात्रा में इंगलैंड से लोहे और सूत का तैयार माल खरीदने लगा जबकि अन्य यूरोपीय देशों की क्रय शक्ति फ्रांसीसी युद्धों के कारण कमजोर पड़ चुकी थी।"†

इस काल में भारतीय माल पर चुंगी का बढ़ाना इंगलैंड और उसके व्यापारियों के लिए बड़ा लाभप्रद सिद्ध हुआ। जो कपड़ा इंगलैंड में बनता वह २½% चुंगी देने के बाद भारत पहुंचाया जाता था किन्तु भारत में बना हुआ वस्त्र १७½% चुंगी चुकाने के बाद बाजार में बिक सकता था। चमड़े, लोहे, चीनी आदि पर भी भारतीय व्यापारियों को २०% से २५% चुंगी देनी पड़ती थी। कभी २ तो उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान तक माल पहुंचाने में १०–१२ जगह चुंगी चुकानी पड़ती थी। १६ वीं शताब्दी में इंगलैंड में भारतीय वस्तुओं पर चुंगी की जो दरें थीं उनका पता नीचे की तालिका से लगता है:—

चुंगी की दर

वस्तु	१८१६ में	१८२४ में	१८३२ में
मलमल	२७½%	३७½%	१०%
ऊनी शाल-दुशाले	७१¾ ,,	६७½ ,,	१० ,,
अन्य सूती वस्त्र	२७½ ,,	५० ,,	२० ,,
छींट	७१ ,,	६७½ ,,	३० ,,
कलईदार बर्तन	७१ ,,	६८½ ,,	३० ,,
चटाइयां	६८½ ,,	५० ,,	३० ,,
शक्कर	१००% से अधिक	२००% से अधिक	१००% से अधिक

१८३२ ई० में रिचर्ड नामक अंग्रेज ने ब्रिटिश पार्लियामैंट में बताया था कि किसी २ भारतीय वस्तु पर ३०००% तक महसूल लिया जाता था।

१८१३ ई० के नये नये आज्ञापत्र द्वारा कम्पनी का भारतीय व्यापार से एकाधिकार उठा लिया गया और उसके शासन-संबंधी अधिकारों में वृद्धि की गई।

* देखिये. B D. Basu: Ruin of Indian Trade & Industry.

† देखिये, L. C. A. Knowles: The Economic Development of the Overseas Empire. पृ० ४७७

** देखिये, कृष्णदत्त भट्ट: भारत का आर्थिक इतिहास (सं० २००५) पृ० २३१

अब इंगलैंड के प्रत्येक निवासी को भारत के साथ व्यापार करने की पूरी स्वतंत्रता मिल गई। इससे कितनी ही निजी कम्पनियों का निर्माण हुआ जो भारत का पूरी तरह शोषण करने लगीं। धीरे २ भारत को इंग्लैंड की मुख्य मंडी बना दिया गया। पहले इंग्लैंड का तैयार माल यहां सस्ता बेचा जाने लगा जिससे जनता उस माल की ओर अधिक आकर्षित हो। धीरे २ उसके दाम बढ़ाये गए। दूसरे माल के अभाव में भारतीय जनता इंग्लेंड की वस्तुओं को खरीदने के लिए बाध्य हो गई। कच्चा माल बड़े परिमाण में इंग्लैंड जाने लगा। इस पर जान बूझ कर कम चुंगी लगाई जाती थी तथा उसके ले जाने का अधिकार अंग्रेजों को ही सौंपा जाता था। 'खुले व्यापार' (Free Trade) की तथा कथित नीति द्वारा भारत की समृद्धि का पूरी तरह हरण किया जाने लगा। सर हंटर ने १८८६ में बड़े गर्व के साथ लिखा, "खुले व्यापार की नीति द्वारा भारत की प्राकृतिक संपत्ति के वास्तविक उद्गम का पता लगाना हमारे ही भाग्य में लिखा हुआ था। हम खिलौने के बक्स देकर यहां से कच्चे माल की गांठ ले सकने में सफल हुए। भारत की रूई, अनाज, तिलहन और जूट की बदौलत अब इंग्लेंड की एक बड़ी आबादी पल रही है।"

१८ वीं शताब्दी के मध्य तक इंग्लैंड का सोना चांदी काफी परिमाण में भारत आता था किन्तु धीरे २ उसका आयात बंद कर दिया गया। इसके दो मुख्य कारण थे एक तो भारत के तैयार माल का आयात इंग्लैंड में कम कर दिया गया और दूसरे इंग्लैंड अपने यहां से इतना अधिक तैयार माल भारत भेजने लगा कि भारत को उससे सोना आदि पाने के बजाय उसे देने की नौबत आ गई। उन्नीसवीं शताब्दी का आरंभ होते ही हम इसे प्रत्यक्ष देखने लगते हैं।*

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य के बाद भारत के व्यापार में बड़ा परिवर्तन हुआ। १८६६ ई० में स्वेज नहर का मार्ग खुल जाने से भारत के विदेशी व्यापार में एक नये युग का प्रारंभ हुआ। भारत और यूरोप के बीच ५,००० मील का फासला कम हो गया इस कारण से माल के लाने-ले जाने में अब कम समय लगने

*	भारत से इग्लैंड को सूती कपड़े की गांठों का निर्यात	इंग्लैंड से भारत में आयात (रुपयों में)
१८१४	३,८४२ गांठ	१६,२५,२१५ रु० के कपड़े
१८२४	१,८७८ ,,	
१८२७	५४१ ,,	
१८२८	४३३ ,,	३,०१,४६,५१५ ,,

लगा। इसी समय कुछ और कारण भी ऐसे उपस्थित हो गये जिनसे हमारे विदेशी व्यापार को बड़ा प्रोत्साहन मिला। यथा—

१. भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना हो जाने से देश शासन व्यवस्था के विचार से एक सूत्र में बंध गया तथा देश के विभिन्न भागों में राजनैतिक अशांति का अब अंत हो गया। इससे निवासियों को व्यापार करने में बड़ी सुरक्षा मिली।

२. यातायात के साधनों का देश में काफी विकास हुआ। देश के आन्तरिक भागों से बन्दरगाहों तक आना जाना सुगम हो गया तथा वहां से स्वेज नहर द्वारा यूरोप, अमेरिका, अफ्रीका, फारस, इटली, मिश्र, आस्ट्रीया आदि देशों को माल भेजने की सुविधा हो गयी। यात्रा में अब समय कम लगने लगा जिससे अनाज आदि काफी मात्रा में निर्यात किए जाने लगे।

३. बम्बई और स्वेज के बीच में समुद्री तार से संबंध स्थापित हो गया और जहाज-निर्माण के उद्योग में बड़ी प्रगति होने से व्यापारिक जहाजी बेड़ों का भी इसी समय विकास हुआ।

इन कारणों के फल स्वरूप अब भारत से कम कीमत की किन्तु भारी वस्तुएँ विदेशों को जाने लगी—यथा गेहूं, चावल, तिलहन, चमड़ा, जूट आदि और उसके बदले में सूती वस्त्र, मशीनें, रेलों का सामान, कांच का सामान आदि पहले इंग्लैंड से और फिर जर्मनी, संयुक्त राज्य और जापान से आने लगा। यद्यपि कहने के लिए भारत से व्यापार करने की सब देशों को स्वतंत्रता थी पर वास्तव में इंगलैंड का भारत के विदेशी व्यापार पर बड़ा प्रभुत्व था। इसके कई कारण थे—भारतीय रेलों में ब्रिटिश पूंजी लगी थी तथा उन पर अंग्रेजों का ही अधिकार था, बैंकिंग तथा जहाजी कम्पनियां भी अंग्रेजों के ही अधिकार में थी, तथा देश में अर्थनीति निर्धारण करने का काम भी इन्हीं के हाथ में था। १६ वीं शताब्दी के अन्त तक इंग्लैंड की यह प्रभुता बनी रही।

इस काल में भारत का कुल निर्यात आयात की अपेक्षा अधिक रहा और प्रायः प्रतिवर्ष कुछ न कुछ बाकी बचती रही, पर यह बाकी भारत को नाम मात्र ही प्राप्त होती रही। इसका अधिकांश इंडिया आफिस के खर्च, इंडियन सिविल सर्विस के नौकरों की पेंशनों, ब्रिटेन की ब्याज वाली रकमों, अंग्रेज व्यापारियों को जहाजी किरायों और बीमा तथा विनिमय के अनेक प्रकार के खर्चों में कट जाता रहा। जो थोड़ी सी रकम बाकी बचती रही उसका भुगतान सरकारी हुंडियों द्वारा किया जाता रहा। नीचे विभिन्न वर्षों में भारतीय आयात-निर्यात तथा बाकी के आंकड़े प्रस्तुत किए गए हैं :—*

* देखिये, कृष्णदत्त बाजपेयी; Principles of Planning पृ० ११२—११३

(लाख रुपयों में)

वर्ष	आयात	निर्यात	बाकी
१८६४–६५ से १८६८–६९	३,१७०	५,५८६	२,४१६
१८६९–७० से १८७३–७४	३,३०४	५,६२५	२,३२१
१८७९–८० से १८८३–७४	५,०१६	७,९०८	२,८९२
१८८९–९० से १८९३–९४	७,०७८	१०,४६४	३,३८३
१८९९–१९०० से १९०३–४	८,४६८	१२,४९२	४,०२४

अध्याय ३

भारत का विदेशी व्यापार (२)

३. प्रथम महायुद्ध के पूर्व का काल (Pre-world war Period, 1900–14)

इस काल में भारत का विदेशी व्यापार काफी चमका क्योंकि विश्व में आर्थिक उन्नति की लहर चल पड़ी। सोने के उत्पादन में वृद्धि होने और राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय कीमतों में वृद्धि होने के कारण समस्त विश्व में व्यापारिक कार्यों में प्रगति हुई। यह प्रगति केवल १९०८–०९ में कुछ कमजोर पड़ गई क्योंकि इस समय मानसून फेल हो गये, तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में कई बैंकों की स्थिति बिगड़ गई। किन्तु यह परिस्थिति अधिक काल तक न रह सकी और पश्चिमी देशों की आर्थिक स्थिति सुधरने तथा रुपये और पौंड का विनिमय निश्चित हो जाने से भारतीय व्यापार को काफी प्रोत्साहन मिला। इसका सबूत नीचे के आंकड़ों से लगेगा† :—

वर्ष	आयात	निर्यात	जोड़
		(करोड़ रुपयों में)	
१९००–०१	७६·२७	१०४·१६	१८०·४३
१९०५–०६	१०३·०८	१६९·१०	२७२·१८
१९०७–०८	१०७·५०	१४८ ४५	२५५·९५
१९११–१२	११७·७२	२०२·[illegible]४	३१९·९६
१९१३–१४	१५०·३५	१९६·६२	३४६·९७

नीचे की तालिका में इन वर्षों में हुई व्यापार की बाकी बतायी गई है*:—

वर्ष	करोड़ रुपयों में	वर्ष	करोड़ रुपयों में
१९००–०१	२२·९१	१९०७–०८	११·७६
१९०१–०२	३४·८६	१९०८–०९	३१.३२
१९०२–०३	३५·७५	१९०९–१०	४२·२०
१९०३–०४	४५·३४	१९१०–११	५१·४१

† देखिये, Parimal Pay: India's Foreign Trade Since 1870, पृ० ७९

*देखिये, Y.S. Pandit: India's Balance of Indebtedness. पृ० ४६–४७

१६०४–०५	३८·५४	१६११–१२	५०·६७
१६०५–०६	३२·८३	१६१२–१३	४१·४४
१६०६–०७	२७·६२	१६१३–१४	५३·६६

इस काल में भारतीय विदेशी व्यापार की मुख्य विशेषतायें ये थीं:—

(१) भारत से निर्यात किए जाने वाले माल में कच्चे सामान की अधिकता और आयात व्यापार में तैयार माल की अधिकता रहती थी।

(२) हमारा निर्यात व्यापार आयात व्यापार से मात्रा और मूल्य में अधिक होता था जिससे व्यापार को बाकी हमारे अनुकूल रहती थी।

(३) भारत से निर्यात किए गए कच्चे माल और अनाज आदि लेने में इंगलैंड का हिस्सा सबसे ज्यादा रहता था।

(४) इंगलैंड के अतिरिक्त भारत के व्यापारिक सम्बन्ध असाम्राज्य देश (Non Empire Countries) से क्रमशः बढ़ रहा था। इस प्रकार हमारा व्यापार न केवल जापान और संयुक्त राज्य से ही होता था बल्कि यूरोप महाद्वीप के इटली, जर्मनी, फ्रांस आदि देशों से भी होता था।

(५) इंगलैंड के प्रभाव से भारत ने भी मुक्त व्यापार नीति को अपनाया जिससे इंगलैंड के तैयार माल को भारत में बेचने के लिए एक बड़ी मण्डी प्राप्त हो सके।

(६) इस काल के पिछले वर्षों में विदेशी व्यापार में कुछ कमी आई। इसके प्रमुख कारण–महाद्वीप में औद्योगिक झगड़ों, बाल्कन युद्ध के आरम्भ होने से भारतीय माल की अमेरिका में मांग न होना तथा मानसून का अनिश्चित होना और देश में बैंकिंग संकट उपस्थित होना था।

(७) इस काल में भारतीय बाजार में इंगलैंड और जर्मनी तथा जापानी माल में आपसी प्रतिस्पर्धा का होना।

(८) इस काल में कच्ची रुई और जूट का निर्यात इंगलैंड को बढ़ने लगा।

वास्तव में इस काल में जैसा कि वेरा ऐन्स्टी ने लिखा है, "बीसवीं शताब्दी के प्रथम १४ वर्षों में भारतीय व्यापार में बड़ी उन्नति और वृद्धि हुई किन्तु व्यापार में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। यद्यपि प्रथम महायुद्ध के पूर्व भारत का अधिकांश व्यापार इंगलैंड से होता था किन्तु जापान और संयुक्त राज्य अमेरिका का महत्व भीबढ़ता जा रहा था। यही हाल मध्य यूरोपीय देशों का था।" †

† देखिये Vera Anstey : Trade of Indian Ocean.

४. प्रथम महायुद्ध काल (First world war Period 1914-18):–

प्रथम महायुद्ध के आरम्भ होने के साथ ही साथ भारत का विदेशी व्यापार कम हो गया। १९१३–१४ के आधार पर आयात में ६७% और निर्यात में ३४% की कमी होगई। दोनों में ४८% की कमी हुई। जहां १९१४ में कुल विदेशी व्यापार ४२७ करोड़ रुपये का था (आयात १८३ करोड़ और निर्यात २४४ करोड़) वहां १९१९–२० में कुल व्यापार २२३ करोड़ रुपये का हो रह गया (आयात ६३ करोड़ रुपये और निर्यात १६० करोड़ रुपये)।* नीचे की तालिका में निर्यात और आयात व्यापार सम्बन्धी आंकड़े प्रस्तुत किए गए हैं:—†

वर्ष	आयात (निजी व्यापार)	कुल आयात	निर्यात (निजी व्यापार)	कुल निर्यात
१९०९-१०से१९१३-१४	१४५·८५	१९८·८७	२१९·५०	४३१·४२
१९१३–१४	१८३·२५	२३४.७५	२४४·२०	४९०·८४
१९१४–१५	१३७·९३	१६६·७४	१७७·४८	३५४·२०
१९१५–१६	१३१·९९	१५०·११	१९२·५६	३५७·९०
१९१६–१७	१४९·६३	१९८·७०	२३७·१०	४५२·४९
१९१७–१८	१५०·४२	२१६·१२	२३३·४४	४६८·५६
१९१८–१९	१६९·०२	२५९·९३	२३९·३२	५२४·२५
युद्ध काल का औसत	१४७·८०	२१५·९७	१९८·३२	४३१·४५

इस काल में कच्चे माल का निर्यात १९१३–१४ में ३९·९% से बढ़कर १८१९–२० में ५१·७% होगया तथा इसी अवधि में तैयार माल के आयात में ७९·५% से ७०·४% की कमी होगई। ऊपर दिए हुए आंकड़ों से ज्ञात होगा कि युद्ध काल में भारतीय आयात–निर्यात व्यापार में कमी हुई यदि भारत युद्ध काल में मशीनों को विदेशों से मंगा सकता अथवा निर्माण कर सकता था तो भारत को आशातीत औद्योगिक उन्नति हो सकती थी। जापान और संयुक्त राज्य अमेरिका ने इस अवसर का उपयोग करके ही न केवल अपने उद्योग धन्धों को बढ़ाया बल्कि इनका विदेशी व्यापार भी खूब बढ़ा। युद्ध काल में व्यापार कम होजाने के मुख्य कारण यह थे—

(१) पड़ौसी देशों अथवा महाद्वीप के देशों के यातायात में युद्ध के फलस्वरूप बड़ी गड़बड़ी उत्पन्न होगई जिससे भारत का व्यापार इन देशों में कम होगया।

(२) महायुद्ध के पूर्व भारत का व्यापार जर्मनी के साथ बढ़ गया था किन्तु युद्ध आरम्भ होने के साथ २ शत्रु–देश घोषित होजाने से हमारा व्यापार जर्मनी से

* देखिए, P. C Jain: Industrial Problems of India. पृ० १७६

† देखिये, परिमल रे: वही पुस्तक पृ० ८९

प्राय: नष्ट ही होगया। रूस आदि देशों से यातायात की कठिनाइयों के कारण ही हमारा व्यापार रुक गया।

(३) शत्रु देशों से व्यापार बिल्कुल बन्द होगया तथा मध्य यूरोप के देशों से युद्ध के कारण व्यापार करना कठिन होगया।

(४) बहुत से देशों का युद्ध काल में व्यापार विध्वंस होगया जिसके फलस्वरूप उनकी क्रय शक्ति कम होगई। अस्तु, वे अब भारतीय वस्तुओं को कम मात्रा में खरीदने लगे।

(५) बहुत से देशों ने विदेशों से माल लेना बन्द कर अपने देश में ही युद्ध सामग्री उत्पादन करना आरम्भ कर दिया जिससे भारतीय माल की मांग इन देशों में कम होगई।

(६) यद्यपि युद्ध के समय भारतीय कच्चा सामान विदेशों को कम जाने लगा किन्तु भारत परतन्त्र था और न उसे विदेशों से मशीनें आदि मंगवाने की ही सुविधा थी अत: भारत इसको तैयार माल में परिणित नहीं कर सकता था।

(७) आयात व्यापार पर पहले से अधिक कर लगा दिया गया था अत: इससे भी भारतीय व्यापार को धक्का पहुंचा। भारत सरकार ने चाय और जूट पर निर्यात कर भी लगा दिया जिससे इन वस्तुओं का निर्यात युद्ध काल तक के लिए कम होगया।

(८) युद्ध काल में माल ले जाने के लिए जहाजों की भयंकर कमी होगई। जो जहाज भारतीय समुद्रों में माल ले जाने पर नियुक्त थे अब वे अंग्रेजों के लिए युद्ध सामग्री ले जाने लगे। बाल्टीक तथा काला सागर में मित्र राष्ट्रों के जहाजों का भी जाना बन्द कर दिया गया तथा बहुत से जहाज जर्मन सेनाओं द्वारा नष्ट कर दिए गए इस प्रकार भारतीय व्यापार को माल ले जाने के लिए जहाजों की नितान्त कमी पड़ गई।

(९) युद्ध काल में जहाजों की कमी होने तथा सामान भेजने की अधिक मांग होने के कारण जहाजी-भाड़े में वृद्धि होगई तथा समुद्री बीमे का व्यय भी अधिक पड़ने लगा अस्तु हमारा विदेशी व्यापार घट गया।

(१०) बहुत से देशों में अन्धाधुन्ध कागजी मुद्रा छापी गई। इस मुद्रा स्थिति का परिणाम यह हुआ कि भारतीय वस्तुएं वहां बहुत महंगी पड़ने लगीं।

१९१४ के पूर्व भारत के विदेशी व्यापार की मुख्य विशेषतायें ये थीं—

(क) उपरोक्त कारणों से हमारे निर्यात और आयात व्यापार में काफी कमी होगई।

(ख) यद्यपि हमारे व्यापार में मात्रा की वृद्धि हुई किन्तु आयात और निर्यात व्यापार पर कर लग जाने से हमें नुकसान ही हुआ क्योंकि मूल्य में कमी हुई फिर भी वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि होने से हमें व्यापार की बाकी अनुकूल ही रही।

(ग) भारत मुख्यतः कच्चा माल विदेशों को भेजता था और पक्का माल विदेशों से मंगवाता था। किन्तु अब विदेशों को अधिकतर कच्चा माल तो भेजा जाता रहा किन्तु पक्के माल के निर्यात में क्रमशः कमी होगई।

५. प्रथम महायुद्ध के पश्चात का काल (Post War Period, 1918-29)

इस अवधि के प्रथम आधे वर्षों तक युद्ध का अहितकर प्रभाव जारी रहा। भारतीय व्यापार की उन्नति इस बात पर निर्भर करती थी कि यूरोपीय देशों की आर्थिक स्थिति में शीघ्र सुधार हो। किन्तु युद्ध के पश्चात मित्र राष्ट्र द्वारा की गई संधि इतनी दोषपूर्ण थी कि यूरोपीय देशों की आर्थिक स्थिति सुधरने में काफी समय लग गया और इसीलिये जैसा कि सोचा गया था कि युद्ध के पश्चात भारतीय व्यापार शीघ्र ही बढ़ जायगा इसके प्रतिकूल ही हुआ। इंगलैंड में स्वर्णमान पद्धति त्याग दी गई तो भारतीय व्यापार को और भी धक्का पहुंचा। जर्मनी आदि देशों में अंधाधुंध मुद्रास्फिति के कारण भारतीय व्यापार इन देशों के साथ कम हो गया। इंगलैंड की देखादेखी भारत में भी मुद्रासंकोचन की नीति का अनुसरण किया जा रहा था। इससे भी भारतीय व्यापार में कमी आ गई। देश में सभी जगह श्रम सम्बन्धी झगड़े हो रहे थे तथा रेलों में अधिक भीड़ रहने से भी देश के आन्तरिक भागों का व्यापार भी कम हो रहा था। नीचे की तालिका से इस काल के व्यापार की स्थिति स्पष्ट हो जायगी।*

वर्ष	*आयात*	*निर्यात*	*व्यापार की बाकी*
	(करोड़ रुपयों में)		
१९१९-२०	२२१·७	३३६·६०	+११४·३
१९२०-२१	३४७·५३	२६७·६७	—७९·८०
१९२१-२२	२८२·५९	२४८·६५	—३३·९४
१९२२-२३	२४६·१९	३१६·०७	+६९·८८
१९२३-२४	२३७·१८	३६३·३७	+१२६·१९
१९२४-२५	२५३·३७	४००·२४	+१४६·८७
१९२५-२६	२३६·००	३८६·८२	+१५०·८२
१९२६-२७	२४०·८२	३११·०५	+७०·२३
१९२७-२८	२६१·५३	३३०·२६	+६८·७३

* देखिये B. V. Narainswamy Indian Trade पृ० ४२.

१६२८-२६	२६३·४०	३३६·१५	+७५·७५
१६२६-३०	२४६·७१	३१८·६६	+६६·२८

इस तालिका से स्पष्ट होगा कि प्रथम महायुद्ध के समाप्त होने के समय से विश्व व्यापी मंदी के काल तक भारत के विदेशी व्यापार में कई प्रकार के उतार चढ़ाव आए। प्रथम वर्ष में भारत की व्यापार की बाकी अनुकूल रही किन्तु १६२०-२१ और १६२१-२२ में यह प्रतिकूल हो गई। युद्ध के तुरन्त बाद ही यद्यपि व्यापार एक दम बढ़ गया क्योंकि युद्ध कालीन प्रतिबन्ध हट गए। जहाजों का किराया कम हो गया और युद्ध के समय में जिन राष्ट्रों से व्यापार बन्द हो गया था वह फिर से चालू हो गया। पर यह स्थिति शीघ्र ही समाप्त हो गई देश के निर्यात व्यापार में कई कारणों से कमी आ गई यथा—

(१) यूरोपीय देश क्रय-शक्ति के अभाव में भारतीय माल विशेष मात्रा में न खरीद सकते थे।

(२) ब्रिटेन, अमेरिका और जापान में भी पहले ही से इतना भारतीय माल खरीद लिया गया कि अब उनके पास भी अधिक माल खरीदने की गुंजाइश नहीं थी।

(३) भारत में लगातार वर्षा की कमी होने (१६१८-२१) से अनाज की कमी हो गई और अनाज के भाव चढ़ गए। अतः अनाज का निर्यात रोकना पड़ा।

(४) जापान भी आर्थिक संकट में फंस जाने के कारण अधिक माल नहीं मंगा सकता था।

(५) भारतीय रुपये के विदेशी मूल्य को बढ़ा देने (१ शि. ६ पैं. से बढ़ाकर २ शि. कर दिया गया) से भारतीय निर्यात पर बुरा असर पड़ा।

इस प्रकार हमारा निर्यात व्यापार कम हुआ किन्तु उधर आयात व्यापार में वृद्धि होने लगी। युद्ध के कारण जो आयात रुका हुआ था वह अब सुगमतापूर्वक होने लगा। रुपये का विदेशी विनिमय बढ़ जाने से भी आयात को प्रोत्साहन मिला और इसी प्रकार विदेशों से तैयार माल अधिकाधिक मात्रा में आयात किया जाने लगा। १६२०-२१ में भारत का निर्यात से आयात ७६·८ करोड़ रुपये का अधिक था। परन्तु धीरे २ यह स्थिति बदली और १६२२-२३ तक निर्यात आयात अपनी सामान्य स्थिति में पहुंच गये। यूरोपीय मुद्राओं में अब स्थिरता आ गई थी और यूरोपीय देशों की आर्थिक स्थिति में सुधार हो गया था। १६२६ तक स्थिति संतोषजनक रही।

इस काल में हमारे व्यापार की मुख्य विशेषतायें ये थीं :—*

(१) विदेशों से सूती कपड़े कम मात्रा में आयात किये जाने लगे क्योंकि देश में ही अब सूती कपड़े का मिल व्यवसाय क्रमशः उन्नति कर रहा था।

(२) रसायनिक पदार्थ अत्यधिक मात्रा में आयात किये जा रहे थे क्योंकि देश में ही ऐसे कई कारखाने खुल चुके थे जिनमें इनकी आवश्यकता पड़ती थी।

(३) भारत में महायुद्ध के पश्चात के काल में सड़कों आदि की उन्नति होने तथा जलाने के लिये उपयोग में आने के लिये मिट्टी का तेल आयात हो रहा था।

(४) इस काल में प्रथम बार विदेशी चावल का आयात भारत में हुआ।

(५) भारत से निर्यात किये जाने वाले तैयार माल में क्रमशः वृद्धि हो रही थी, और विदेशों से इस प्रकार के माल की आयात में कमी हो रही थी। इसका कारण देश में राष्ट्रीय भावनाओं का जोर पकड़ जाना था। भारतीयों ने स्वतन्त्रता आन्दोलन के फलस्वरूप विदेशी कपड़ों का बायकाट करना शुरू कर दिया। इसके अतिरिक्त हमारे देश में भी अब कई कारखाने चल रहे थे जो देश में कपड़े की मांग को बहुत हद तक पूरा करते थे।

(६) हमारे व्यापार में, इस काल में, इंगलैंड का हिस्सा कम होने लगा और उसके स्थान पर विश्व के अन्य देशों को अब अत्यधिक मात्रा में हमारा माल जाने लगा।

६. विश्व व्यापारिक मंदी का काल (Trade Depression Period, 1929–35)

सन् १६२६ में विश्व-व्यापी मंदी आरंभ हो गई। विभिन्न देशों ने अपनी अपनी आर्थिक सुरक्षा करने की दृष्टि से विदेशी व्यापार पर अनेकों प्रकार के प्रतिबन्ध (निर्यात प्रतिबन्ध, ऊंची दरें तथा कोटा—पद्धति) लगाना शुरू कर दिये। दुनियां के विदेशी व्यापार की मात्रा घटने लगी। भारत कृषि-प्रधान देश था और कृषि-पदार्थों का मूल्य अधिक गिरा था, अस्तु, भारत के विदेशी व्यापार को विशेष-तौर से अधिक हानि हुई। १६२६–३० में हमारा कुल निर्यात ३१८ करोड़ रुपये का ही हुआ। पिछले वर्ष के निर्यात से यह २० करोड़ रुपये से कम का था। जबकि इसी काल में आयात २५० करोड़ रुपये का हुआ। यह आयात पिछले वर्ष के आयात से १५ करोड़ रुपये कम का था। १६३१–३२ में जब इंग्लैंड ने स्वर्ण पद्धति को छोड़ा तब सारा सोना अमेरिका, फ्रांस आदि देशों को सिमट कर जाने

* देखिये C. W. E. Cotton 'Handbook of Commercial Information for India' (1937) पृ. १२७

लगा। इसका प्रभाव भारत पर भी पड़ा। भारत से सोना अत्यधिक मात्रा में (चूंकि उसकी कीमत में वृद्धि हो गई थी) विदेशों को जाने लगा किन्तु फिर भी हमारे निर्यात आयात व्यापार पर कोई लाभ नहीं हुआ। पिछले वर्ष की अपेक्षा इस वर्ष निर्यात व्यापार में ६५ करोड रुपये की कमी हुई। इसी प्रकार आयात व्यापार में भी ४३ करोड़ रुपये की कमी हुई। इस काल में विदेशों व्यापार की बाकी ३०.५६ करोड़ रुपये की भारत के पक्ष में रही। निर्यात व्यापार के मूल्य में कमी होने का मुख्य कारण कृषि जन्य वस्तुओं की कीमत में कमी हो जाना था। १६३२-३३ में जब संयुक्त राज्य अमेरिका ने स्वर्णमान-पद्धति को छोड़ा तो विश्व के देशों में आर्थिक सुरक्षा आंदोलन की एक लहर सी चल पड़ी। इसका असर भारत पर भी पड़ा। विश्व के प्रमुख देशों ने मिल कर अपने आपको कई व्यापारिक संगठनों में बांटा किन्तु भारत अपनी पराधीनता के कारण किसी भी संगठन में सम्मिलित होने में असमर्थ रहा। किन्तु फिर भी इस वर्ष भारत के आयात में २५ करोड़ रुपये की वृद्धि और निर्यात में २५ करोड़ रुपये की कमी हुई और व्यापार को बाकी १.०६ करोड़ रुपया ही रही। आयात में वृद्धि होने का एक मात्र कारण देश में राजनैतिक स्थिति में सुधार होने तथा भारत का ब्रिटेन के साथ पहला व्यापारिक समझौता (Ottawa Agreement) होना था। इस वर्ष संयुक्त राज्य अमेरिका से हमारा व्यापार कम हुआ किन्तु इंग्लैंड के साथ हमारे व्यापार में वृद्धि हुई।

१६३३-३४ में हमारे व्यापार में कुछ प्रगति हुई। निर्यात १३६.०७ करोड़ से १५०.२३ करोड़ रुपये को पहुंच गया और आयात में १७ करोड़ रुपये की कमी हो गई। विश्व मंदी का प्रभाव १६३२-३३ तक रहा। १६३३-३४ से स्थिति में सुधार आने लगा। इसका मुख्य कारण यह था कि संयुक्त राज्य अमेरिका तथा अन्य देशों ने अपनी आर्थिक मंदी का सुधार करने की अनेक योजनायें कार्यान्वित की। भिन्न २ देशों में कच्चे माल की उत्पत्ति पर नियंत्रण लगाये गए, युद्ध के भय के कारण शस्त्रों पर अंधाधुंध व्यय होने लगा तथा ब्रिटिश साम्राज्य के देशों ने जो ओटावा पैक्ट किया उससे भारत के विदेशी व्यापार को थोड़ा लाभ हुआ। १६३४ में भारत जापानी व्यापारिक समझौते (Indo-Japanese Trade Agreement) के कारण जापान से हमारे व्यापारिक संबंध अच्छे हो गये।

नीचे की तालिका में विश्व-व्यापारिक मंदी के काल में भारतीय आयात निर्यात व्यापार के आँकड़े प्रस्तुत किये गए हैं*:—

* देखिए, पालेकरः वही पुस्तक, पृ० ३७

वर्ष	आयात	निर्यात	व्यापार की बाकी
		(करोड़ रुपयों में)	
१६२६–३०	२४६·७१	३१८·६६	+ ६६·२८
१६३०–३१	१७३·०६	२२६·५०	+ ५३·४४
१६३१–३२	१३०·६४	१६१·२०	+ ३०·५६
१६३२–३३	१३५·०१	१३६·०७	+ १·०६
१६३३–३४	११७·२८	१५० २३	+ ३२·६५
१६३४–३५	१३४·५६	१५५·५०	+ २०·६१

इस प्रकार व्यापारिक मंदी के काल में भारतीय व्यापार में कमी होने के मुख्य कारण यह थे :—**

(१) संसार का ६०% सोना संयुक्त राज्य अमेरिका के पास था अस्तु अन्य देशों में स्वर्ण की कमी होने के कारण उन्हें अपनी मुद्रा का संकोचन करना पड़ा इस कारण वस्तुओं के मूल्य गिर गए।

(२) संसार के सभी देशों में युद्ध काल तथा उसके उपरान्त यांत्रिक खेती होने लगी इस कारण खेती की पैदावार बहुत अधिक बढ़ गई। उस समय उद्योग-धंधों का भी विकास हुआ और माल की उत्पत्ति बढ़ गई।

(३) भारत तथा अफ्रीका में राजनैतिक उथल-पुथल के कारण भी वस्तुओं के मूल्य गिरे।

(४) आर्थिक मंदी के कारण प्रत्येक देश में आर्थिक राष्ट्रीयता की लहर दौड़ गई और आयात माल पर भारी कर लगाये गए इससे भी व्यापार कम हो गया।

(५) जब कि अन्य सभी देशों ने अपनी मुद्रा का अवमूल्यन किया था तब भारतीय रुपये का मूल्य १ शि० ६ पे० बहुत अधिक था अतएव जापानी माल भारत में बहुत सस्ता पड़ता था।

(६) कच्चे माल का मूल्य तैयार माल के मूल्य की अपेक्षा बहुत गिर गया था। इस कारण भी भारत का निर्यात व्यापार बहुत कम हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत का निर्यात आयात से बहुत कम हो गया और भारत को १६३० और १६३८ के बीच में ३५० करोड़ रुपये का सोना विदेशों को भेजना पड़ा इस प्रकार इस काल में होने वाले विदेशी व्यापार की मुख्य विशेषतायें ये थीं:— (१) आयात और निर्यात व्यापार के मूल्यों में क्रमागत कमी होना (२) भारत में

** देखिए, Jathar & Beri: Indian Economics Vol II (1949) पृ० १७३

अधिकाधिक संरक्षण करों का लगाया जाना। (३) भारत और अन्य देशों के व्यापारिक संबंधों में वृद्धि होना। (४) विदेशों को अधिक मात्रा में सोने का निर्यात किया जाना। (५) भारत से संयुक्त राज्य अमेरिका में व्यापार की कमी और जापान के साथ व्यापार में वृध्दि होना। (६) चावल, तिलहन, गेहूं, काफी, चमड़ा, कच्ची रुई तथा तैयार सूती माल और लाख के निर्यात में क्रमशः वृद्धि होना।+

+ देखिये: C W E. Cotton Hand Book of Commercial Informations पृ० १३६—४१.



अध्याय ४

भारत का विदेशी व्यापार

(७) द्वितीय महायुद्ध के पूर्व का काल (Pre-Second world war Period, १९३५–३९)

१९३५–३६ से ही विश्व व्यापारिक मंदी के समाप्त होजाने से विश्व के व्यापार में आशातीत वृद्धि हुई। भारत का व्यापार भी इसके बिना प्रभावित हुए न रह सका। विश्व के औद्योगिक देशों की आर्थिक स्थिति में सुधार आजाने से अब भारतीय कच्चे माल की मांग विदेशों में अधिक बढ़ने लगी इससे भारत की व्यापार की बाकी में अच्छी वृद्धि हुई। नीचे की तालिका में इस काल में हुए व्यापार के आंकड़े प्रस्तुत किए गए हैं–*

वर्ष	आयात	निर्यात	जोड़	व्यापार की बाकी
		(करोड़ रुपयों में)		
१९३५–३६	१३४	१६१	२९५	+ २७
१९३६–३७	१२५	१९६	३२१	+ ७१
१९३७–३८	१७२	११८	२९०	— ५४
११३८–३९	१५२	१६३	३१५	+ ११

प्रथम दो वर्षों में व्यापार की बाकी भारत के पक्ष में ही रही। प्रथम वर्ष में जहां यह २७ करोड़ रुपये थी वहाँ अगले वर्ष यह बढ़ कर ७१ करोड़ रुपये हो गई। सभी व्यापार की वस्तुओं में प्रगति हुई। जूट, कच्ची रुई, चमड़ा तथा तिलहन आदि कच्चा सामान अधिक निर्यात किया जाने लगा। इस समय जूट और सूती तैयार माल के निर्यात में भी वृद्धि हुई। किन्तु आयात व्यापार में तैयार सूती माल शक्कर, तथा लोहे आदि के सामान में साधारणतया कमी हुई। फिर भी ऑइलमैंस प्रोवीजन्स और मशीनों का आयात अधिक हुआ इससे प्रतीत होता है कि इन वर्षों में देश की औद्योगिक उन्नति की प्रगति हुई। १९३६–३७ बड़ा महत्वपूर्ण वर्ष रहा इस वर्ष निर्यात व्यापार १९६ करोड़ तक पहुंच गया इससे हमें ७१ करोड़ रुपए का लाभ हुआ। इसके अतिरिक्त इस वर्ष कृषि–जन्य वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि हो

* देखिये, P C Jain Industrial Problems of India पृ० १८२

जाने से (केवल जूट और कपास को छोड़ कर) हमारी निर्यात की हुई वस्तुओं के मूल्य में भी १७% को वृद्धि हुई। इसी वर्ष भारत में १४ करोड़ रुपयों की चांदी विदेशों से आयात की गई किन्तु विदेशों से आयात किए गए माल में ६ करोड़ रुपयों की कमी होगई। १६३७-३८ के अन्त तक पुनः व्यापार में कमी होजाने से हमारी आर्थिक स्थिति बिगड़ गई और देश को ५४ करोड़ रुपये का अधिक माल विदेशों से निर्यात की अपेक्षा आयात अधिक करना पड़ा। निर्यात माल केवल ११८ करोड़ रुपये का ही था जबकि आयात माल का मूल्य १७२ करोड़ रुपये था। इसका मुख्य कारण विदेशों से कच्ची रुई, मशीनें तथा धातुएं और मोटरें आदि का अधिक मात्रा में मंगवाया जाना था। इस वर्ष एक बड़ी महत्वपूर्ण बात यह हुई कि १ अप्रेल १६३७ से भारत ब्रह्मा से पृथक कर दिया गया, किन्तु दोनों देशों के बीच ३ वर्षों के लिए एक व्यापारिक समझौता होगया। १६३८-३६ में सभी देशों को युद्ध की आशंका होने लगी। प्रत्येक देश युद्ध को तैयारी करने लगा। इससे माल के मूल्य कुछ ऊंचे होगए फिर भी भारत का व्यापार अधिक नहीं बढ़ा। इस वर्ष जहां १५२ करोड़ रुपये का माल आयात हुआ वहां १६३ करोड़ रुपये का माल निर्यात किया गया। व्यापार को बाकी केवल ११ करोड़ रुपये की भारत के पक्ष में रही। इधर जापान चीन से युद्ध में रत था इस कारण भारतीय वस्तुओं की वहाँ अधिक मांग नहीं बढ़ी थी तथा भारतीय किसान को क्रय शक्ति कम थी इस कारण विदेशी माल की भारत में मांग कम थी।

इस प्रकार इस अवधि काल में हमारे विदेशी व्यापार की मुख्य विशेषतायें ये रहीं —

(१) आरम्भ में निर्यात वस्तुओं के मूल्य में कुछ वृद्धि होजाने से निर्यात व्यापार कुछ बढ़ा किन्तु पुनः कृषि-जन्य पदार्थों की कीमतों में कमी होजाने से निर्यात व्यापार घट गया।

(२) देश में औद्योगिक उन्नति के विकास के फलस्वरूप कच्चे माल का निर्यात कम होगया तथा विदेशों से तैयार माल के आयात में कमी हुई।

(३) कच्ची रुई और तिलहन के व्यापार में कमी हुई किन्तु चाय, जूट तथा सूती कपड़े के व्यापार में वृद्धि हुई।

(४) ब्रिटिश साम्राज्य के देशों से व्यापार में कमी हुई किन्तु जापान और जर्मनी से हमारा व्यापार बढ़ा।

(५) व्यापार की बाकी अधिक अनुकूल नहीं रही।

(७) द्वितीय महायुद्ध के समय (Second World War Period, 1939-45)

१९३९ में जब द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हुआ तो उसका हमारे विदेशी व्यापार पर भी गहरा प्रभाव पड़ा। युद्ध के कारण कीमतें बढ़ने लगीं और भारतीय कच्चे माल की विदेशों में मांग भी बढ़ने लगी। इसका परिणाम यह हुआ कि हमारा निर्यात बढ़ गया जहां १९३८-३९ में केवल १६३ करोड़ रुपये का माल निर्यात किया गया वहां १९३९-४० में २०४ करोड़ रुपये का माल निर्यात हुआ। इसी प्रकार व्यापारियों के युद्ध काल में माल की कीमतों में वृद्धि होने के डर से अधिक मात्रा में माल खरीदकर इकट्ठा कर लेने की प्रवृति से आयात में भी वृध्दि हुई। जहा १९३८-३९ में १५२ करोड़ रुपयोंके मालका आयात हुआ वहां १९३९-४०में यह मात्रा १६५ करोड़ रुपये तक पहुंच गई। इस प्रकार इस वर्ष भारत की व्यापार की बाकी ३८.६३ करोड़ रुपये की रही। किन्तु १९४०-४१ में यह पुनः ३० करोड़ रुपये की ही रह गई। इसका कारण यह था कि शत्रु राष्ट्रों के साथ हमारा व्यापार बन्द हो गया तथा निर्यात और आयात पर राज्य का नियन्त्रण हो गया। जहाजों की कमी तथा किराये में वृद्धि हो जाने से भी हमारे आयात निर्यात पर काफी प्रभाव पड़ा। इस वर्ष फ्रांस की स्थिति युद्ध के कारण बिगड़ गई तथा अंग्रेजों की आर्थिक स्थिति भी युद्ध के कारण कुछ कमजोर हो गई उनके जो जहाज व्यापार में लगे रहते थे वे अब युद्ध सामग्री लाने ले जाने के लिए भूमध्यसागर में व्यस्थ कर दिये गये अस्तु माल ले जाने वाले जहाजों की कमी हो गई। कई यूरोपीय देशों में—हालैंड, डैनमार्क, बेलजियम, फ्रांस, इटली आदि देशों में युद्ध होते रहने के कारण—हमारा व्यापार बन्द हो गया। जर्मनी और रूस से भी हमारा व्यापारिक सम्बन्ध टूट गया। इधर जापान के युध्द में प्रवेश हो जाने तथा उसके ब्रह्मा, हिन्द चीन, थाईलैंड, पूर्वी द्वीप समूह और मलाया आदि पर अधिकार कर लेने से इन देशों से भी हमारा व्यापार कम हो गया। ब्रह्मा पर जापानियों का अधिकार हो जाने से केवल भारत का एक अच्छा बाजार छिन गया, बल्कि ब्रह्मा होकर चीन जाने वाला मार्ग भी अवरुद्ध हो गया इससे हमारा व्यापार चीन से भी बन्द हो गया। इस प्रकार इन देशों से युध्द पूर्व के आधार पर हमारा ५०% व्यापार कम हो गया। इसका प्रभाव आयात और निर्यात दोनों पर पड़ा।

इतना ही नहीं स्वीटजरलैंड तथा स्वीडन जैसे निष्पक्ष देशों से भी उनके युध्द कालीन देशों की निकटता के कारण—हमारा व्यापार एक दम कम हो गया। यातायात के मार्ग खतरे से खाली न थे। अगर माल भेजा भी जाता तो उसके शत्रुओं के हाथ में पड़ जाने का डर था। अस्तु जिन देशों के साथ भारत अपना व्यापार कर सकता था वे इंगलैंड, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिय

तथा ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत अन्य देश, तथा निकट और सुदूर पूर्व के देश थे। किन्तु इन देशों से व्यापार करने में भी एक बड़ी कठिनाई थी—जहाजों की कमी। इसके अतिरिक्त जापान के युद्ध में उतर जाने के कारण प्रशान्त महासागर के मार्ग भी सुरक्षित न रह सके। माल लाने ले जाने के लिए जहाजों की कठिनाई, बढ़ा हुआ जहाजों का किराया तथा बढ़ी हुई बीमा कम्पनियों की दरों के कारण भी विदेशी व्यापार में कठिनाई उपस्थित हुई। युद्ध के समय इंग्लैंड और अमेरिका अपने कारखानों में युद्ध-सामग्री तैयार करने में व्यस्त थे अतः भारत को इन देशों से तैयार माल मंगाने में भी कठिनाई होने लगी। इन तमाम परिस्थितियों के कारण विदेशी व्यापार की मात्रा कम हुई।

१९४१–४२ में निर्यात तथा आयात व्यापार में कुछ वृद्धि हुई। इस वर्ष निर्यात २३७ करोड़ रुपयों और आयात १७३ करोड़ रुपयों का हुआ। जबकि पिछले वर्ष केवल १८७ करोड़ और १५७ करोड़ रुपये का क्रमशः निर्यात और आयात हुआ। इस वृद्धि का कारण अटलांटिक महासागर में जर्मनी आक्रमण की रुकावट, युद्ध का पूर्वी देशों में आरम्भ, रुस और जर्मन युद्ध का आरम्भ आदि होना था। इन सबके फलस्वरूप अब भारत को अधिकाधिक मात्रा में मध्य पूर्व के देशों और रूस को न केवल भोज्य पदार्थ ही बल्कि युद्ध का सामान भी निर्यात करना पड़ा। इसी वर्ष मित्रों राष्ट्रों से भी हमारा व्यापार बढ़ा इसके दो कारण थे (१) प्रथम, तो इङ्गलैंड और मित्र राष्ट्र अपने कारखानों में युद्ध सामग्री उत्पादन करने में ही व्यस्त थे, अतः इन देशों के लिए भारत के कच्चे माल, भोज्य पदार्थ और तैयार माल की मांग होने लगी। (२) दूसरे ये देश मध्य पूर्व के देशों को अपने यहां का तैयार माल निर्यात करने में असमर्थ पा रहे थे अतः मध्य पूर्व के बाजारों में भी भारतीय माल की अधिकाधिक मांग होने लगी। इस प्रकार भारत से अमेरिका, इंगलैंड आदि देशों को कच्चा माल, भोज्य पदार्थ, युद्ध की सामग्री तथा तैयार माल आदि निर्यात किया गया। कई नये बाजारों का पता लगाया गया। १९४२-४३ में ब्रह्मा का शत्रु के हाथ में चले जाने से हमारा व्यापार पुन कम हुआ। इस वर्ष निर्यात व्यापार केवल १८७ करोड़ रुपये और आयात व्यापार केवल ११० करोड़ रुपये का हुआ।

नीचे की तालिका में युद्ध कालीन व्यापार के आंकड़े प्रस्तुत किये गये हैं :–

वर्ष	आयात	निर्यात	जोड़	व्यापार की बाकी
		(करोड़ रुपयों में)		
१९४०-४१	१५७	१८७	३४४	+३०
१९४१-४२	१७३	२३७	४१०	+६४
१९४२-४३	११०	१८७	२९७	+७७

१९४३-४४	११८	१९९	३१७	+८१
१९४४-४५	२०४	२१०	४१४	+६

इस प्रकार युद्ध काल में भारत का व्यापार काफी नीचा रहा। युद्ध काल में मध्य यूरोप, फ्रांस, इटली, हालैंड, डेनमार्क आदि देशों के बाजार भारत के लिये सर्वथा बन्द हो गये क्योंकि वे शत्रु के अधिकार में चले गये थे। पूर्व के देशों से भी व्यापार कम हो गया। युद्ध के कारण सेना तथा सैनिक सामग्री को ले जाने के लिये अधिक से अधिक जहाजों की आवश्यकता पड़ती थी, अस्तु व्यापार के लिये जहाज बहुत कम मिलते थे। केवल वे ही वस्तुयें भेजी जा सकती थीं जिनको आवश्यक वस्तु माना जाता था। कम आवश्यक वस्तुओं को नहीं ले जाया जाता था। ऊपर से कल्पनातीत ऊंचा भाड़ा तथा समुद्री बीमे का व्यय भी विदेशी व्यापार के लिये बाधक सिद्ध होता था। जैसे २ युद्ध लम्बा होता गया इंगलैंड और संयुक्त राज्य अमेरिका ने पक्का माल भारत को भेजना बन्द कर दिया क्योंकि उनके कारखाने युद्धके लिए आवश्यक सामान बनानेमें व्यस्त थे। यह भी एक कारण था कि भारत का आयात बहुत घट गया। भारत के आयात उसके निर्यात की अपेक्षा काफी घट गये। युद्ध के अन्तिम वर्ष में जो आयात बढ़े उसका एक मात्र कारण यह था कि माल ढोने के लिये जहाज मिलने में सुविधा हो गई और शत्रु कम जहाज डुबा पाता था। शत्रु की पनडुब्बियों तथा यू-बोटों पर विजय प्राप्त कर ली गई थी।

निर्यात नियन्त्रण (Export Control)

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है युद्ध काल में हमारे आयात और निर्यात पर सरकार का नियन्त्रण था जो अब तक चला आ रहा है। जब तक युद्ध चलता रहा विदेशी व्यापार पर सरकारी नियन्त्रण की एक मात्र उद्देश्य यही रहा कि युद्ध संचालन में सरकार को सहायता मिले। आयात और निर्यात दोनों पर नियन्त्रण लगाये गये। निर्यात पर जो नियन्त्रण लगाये गये थे उनका उद्देश्य शत्रु राष्ट्रों को माल भेजने पर रोक लगाना था, कुछ चीजों को जो शत्रु राष्ट्र नहीं थे, उनको भी भेजने से मना करना; तथा कुछ चीजें जो शत्रु राष्ट्र नहीं थे उनको लाइसेंस द्वारा ही माल भेजने की स्वीकृति देना और कुछ देशों को कुछ चीजें बिना लाइसेंस या खुला साधारण लाइसेंस के अन्तर्गत भेजने को स्वीकृति देना था। मार्च १९४० से विदेशी विनिमय पर सरकार का नियन्त्रण हो जाने से भी निर्यात पर नियन्त्रण हो गया। जब तक निर्यात से मिलने वाले विदेशी विनिमय का सरकार के नियन्त्रण सम्बन्धी नियमों के अनुसार उपयोग करने का प्रमाणपत्र पेश नहीं किया जाता था तब तक

निर्यात करने की स्वीकृति नहीं दी जाती थी। इस सबका प्रयोजन यही था कि निर्यात के कारण जो विदेशी मुद्रा प्राप्त हो उस पर सरकार का पूरा नियन्त्रण रह सके।

आयात नियन्त्रण (Import Control)

आयात पर नियन्त्रण युद्ध आरम्भ होने के कुछ समय पश्चात किया गया। शुरु २ में मित्रराष्ट्रों को छोड़कर किसी भी देश से माल मंगाने की पूरी स्वतन्त्रता नहीं थी। पहले ऐसी वस्तुओं के आयात पर प्रतिबन्ध लगाये गये जिसका उपभोग बिना कठिनाई के कम किया जा सकता था अथवा जिनका प्रयोग देश में निर्मित वस्तुओं द्वारा ही किया जा सकता था अथवा ऐसे देशों से आयात किया जाता था जहां विदेशी विनिमय की समस्या इतनी विकट नहीं थी। आयात नियन्त्रण चालू करने का मुख्य उद्देश्य (१) विदेशों से आयात में दिये जाने वाली रकम का जमाव किया जा सके (२) जहाजों की संख्या में किफायत की जा सके जिससे युद्ध सामग्री अधिक ले जाई जा सके और (३) मित्र राष्ट्र अधिक से अधिक युद्ध सामग्री का उत्पादन कर सकने में समर्थ हों। मई १९४० में विदेशी विनिमय और खास तौर से दुर्लभ मुद्रा का संचय करने की दृष्टि से आयात के लाइसेंस देने की व्यवस्था चालू की गई। बिना आयात लाइसेंस प्राप्त किए विदेशों को माल चुकारा करने पर रिजर्व बैंक ने प्रतिबन्ध लगा दिया था। मई १९४० में ६८ वस्तुओं के आयात पर नियन्त्रण लगाया गया। बाद में यह संख्या बराबर बढ़ती गई। जनवरी १९४२ तक लगभग आयात की सब वस्तुओं पर नियन्त्रण कायम हो गया।

इस प्रकार युद्ध काल में बिना सरकारी कंट्रोलरों की आज्ञा प्राप्त किए कोई भी व्यापारी न तो कोई वस्तु विदेशों को भेज सकता था और न विदेशों से कोई वस्तु मंगवा ही सकता था। व्यक्तिगत व्यापारियों को बहुत जांच पड़ताल के बाद ही लाइसेंस दिया जाता था। तटस्थ राष्ट्रों में बहुत सी फर्मों का नाम काली सूची में रख दिया गया जिन पर यह सन्देह था कि उनके द्वारा वस्तुयें शत्रुओं को पहुंच सकती थीं। उन फर्मों से कोई भी व्यापार करने की मनाही कर दी गई थी। जैसे २ समय व्यतीत होता गया यह नियन्त्रण तथा बन्धन और भी कठोर होते गये। अस्तु, सरकारी नियन्त्रण की कड़ाई अथवा ढिलाई का सीधा प्रभाव हमारे आयात निर्यात पर पड़ता था। जब नियन्त्रण ढीला होता था तो विदेशी व्यापार की मात्रा बढ़ जाती थी और अगर नियन्त्रण कठोर होता था तो मात्रा कम हो जाती थी।

(८) द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् विदेशी व्यापार (Post war Period, 1945-51)

युद्ध काल और युद्ध के उपरांत हमारे विदेशी व्यापार की विशेष उल्लेखनीय बात यह हुई कि व्यापार का अन्तर हमारे विपक्ष में रहा। इसका मुख्य कारण

यह था कि देश में खाद्यान्न की भारी कमी थी। विदेशों से बहुत बड़ी मात्रा में खाद्यान्न मंगाना पड़ रहा था। यही नहीं युद्ध काल के लम्बे समय में उपभोक्ता पदार्थों का देश में टोटा था अतएव लोग उनके लिये लालायित थे। सुलभ मुद्रा के देशों (Soft Currency areas) से आयात के बारे में भारत सरकार की नीति १९४२ में अधिक उदार होगई। अस्तु ज्योंही उपभोक्ता पदार्थों पर से कड़ा नियंत्रण हटता था, बहुत बड़ी राशि में वे भारत में आते थे। इसके अतिरिक्त विभाजन के फलस्वरूप कच्चा कपास, जूट आदि कच्चा माल भी हमें विदेशों से मंगाना पड़ता था। कारखानों के लिए मशीनें आदि भी भारत को विदेशों और विशेषकर संयुक्त राज्य से मंगवानी ही पड़ती थी। देश के अन्दर भी चीजों की कीमत बढ़ती जा रही थी। इसका प्रभाव भी हमारे निर्यात व्यापार पर बुरा पड़ा। इंग्लैंड से कुछ सेना का बचा हुआ सामान जो भारत में था वह हमने खरीदा और पैंशन आदि का रुपया भी अंग्रेजों को हमें चुकाना पड़ा। पाकिस्तान को भी उसके हिस्सेका पौंड पावना चुकाना पड़ा। इन सब कारणों से १९४५ से ही माल सम्बन्धी विदेशी व्यापार का संतुलन बराबर हमारे विपक्ष में होता गया। १९४४-४५ में २.९६ करोड़ और १९४५-४६ में २५.७१ करोड़ का माल हमने अधिक आयात किया। १९४६-४७ में ५१.२ करोड़ रुपये, १९४७ में ८१ करोड़ रुपये और १९४८ में १०२.७ करोड़ रुपये का माल हमने निर्यात की अपेक्षा अधिक आयात किया, डालर प्रदेश के बारे में हमारी स्थिति विशेषतौर से बिगड़ गई। इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि १९४६ में गैर-सरकारी आधार पर किए गए व्यापारका दुर्लभ मुद्राके प्रदेशों से सम्बन्ध रखने वाला संतुलन ४६.३ करोड़ रुपये से हमारे पक्ष में था किन्तु १९४७ में यह २५.२ करोड़ रुपये से हमारे विपक्ष में होगया, अर्थात् १९४७ में १९४६ की अपेक्षा लगभग ७१ करोड़ रुपये का अधिक माल हमने दुर्लभ मुद्रा के देशों से मंगाया। १९४६ और १९४७ में विपक्षीय व्यापारिक संतुलन के कारण हमारे सामने कोई गम्भीर परिस्थिति उत्पन्न नहीं हुई क्योंकि हमारे पौंड पावने को दूसरे देशों की मुद्रा में बदलने पर कोई प्रतिबन्ध न होने से उसका उपयोग हम इस विपक्षीय व्यापारिक संतुलन को ठीक करने में कर सकते थे। पर १९४८ के आरम्भ में ही स्टरलिंग प्रदेश के केन्द्रीय कोष में कमी आजाने के कारण यह प्रतिबन्ध लग गया। १९४९ के मई के महीने तक हमारी स्थिति और भी बिगड़ गई। विदेशी व्यापार सम्बन्धी इस बिगड़ती हुई स्थिति की ओर भारत सरकार का ध्यान गया। उसने १९४९ में आयात के बारे में जो जुलाई १९४८ में उदार नीति स्वीकार की थी उसे रद्द करके अब कड़ी नीति बरतने का निर्णय किया। मई १९४९ में ४०० वस्तुओं के खुले साधारण लाइसेंस के बजाय थोड़ी वस्तुओं को खुले साधारण लाइसेंस की श्रेणी में मंजूर किया। जून १९४९ में दुर्लभ मुद्रा प्रदेश से आयात की स्वीकृति

देना स्थगित कर दिया गया। जुलाई १९४९ में लन्दन में कामनवैल्थ के वित्त-मंत्रियों का सम्मेलन हुआ उसमें दुर्लभ मुद्रा प्रदेशों से १९४८ के मुकाबले में २५% आयात में कमी करने का निश्चय किया गया और भारत ने भी इस निश्चय को मंजूर किया। भारत-इंग्लैंड के बीच के आर्थिक समझौते पर जब अगस्त १९४९ में विचार किया गया तब फिर आयात पर और अधिक नियंत्रण करने का निश्चय किया गया।

एक तरफ तो आयात को कम करने के प्रयत्न किए गए, दूसरी ओर निर्यात को बढ़ाने का भी सरकार ने प्रयत्न किया। १९४९ की जुलाई में निर्यात प्रवर्तक समिति (Export Promotion Committe) की नियुक्ति की गई जिसने देश के निर्यात बढ़ाने सम्बन्धी कई प्रमुख सिफारिशें कीं यथा—निर्यात पर जो कर लगाये जाते थे वे हटाये जांय, निर्यात के माल सम्बन्धी अत्यधिक सट्टे पर नियंत्रण किया जाय, निर्यात होने वाले माल का देश में उत्पादन बढ़ाया जाय। सरकार ने कमेटी की सिफारिशों के अनुसार कार्य करने का प्रयत्न भी किया। इन प्रयत्नों के फलस्वरूप आयात पर रोक लग गई और निर्यात में थोड़ा सुधार हुआ। पर १९४९ में फिर भी विदेशी व्यापार का सन्तुलन हमारे विपक्ष में ही रहा पर इसके बाद हमारी स्थिति में सुधार आने लगा और १९५० में कई वर्षों के बाद पहली बार विदेशी व्यापार का सन्तुलन हमारे पक्ष में रहा। इस सुधरती हुई स्थिति के मुख्य कारण रुपये का अवमूल्यन, निर्यात के प्रति प्रोत्साहन की नीति और निर्यात की वस्तुओं की बढी हुई कीमत, तथा कोरिया युद्ध के कारण उत्पन्न हमारे माल की युद्ध की तैयारी की दृष्टि से बढ़ती हुई मांग है। नीचे की तालिका में युद्ध के पश्चात भारत के विदेशी व्यापार की स्थिति बताई गई है :—

वर्ष	*आयात*	*निर्यात*	*कुल*	*व्यापार का संतुलन*
		(करोड़ रुपयों में)		
१९४६	३१६·३८	३०५·७१	६२२·०९	— १०·६७
१९४७	४४५·८१	४०८·२४	८५४·०५	— ३७·५८
१९४८	५४२·९१	४२३·३८	९६६·२३	— ११९·५३
१९४९	५६०·५१	४८५·८०	१०४६·३१	— ७४·७१
१९५०	५६५·४६	५८५·८८	११५१·३४	+ २०·४२
१९५१	३८४	४१८	८०२	+ ३४

युद्ध की समाप्ति के पश्चात् १९४६ और १९४७ के पहले सात महीनों में भारत सरकार ने नरम नीति का पालन किया। दुर्लभ मुद्रा के बारे में भी सरकार की नीति नरम ही रही। पर अगस्त १९४७ के बाद सरकारी नीति की कड़ाई हो गई यहां तक की भारत इंग्लैंड के बीच हुए समझौते (जनवरी-जून १९४८) के

अनुसार हमारे जमा पौंड पावने के कोष में से जो पौंड पावना हमें मिला था खर्च करने के लिए हमें मिली थी वह भी हम न खर्च कर सके। दुर्लभ मुद्रा क्षेत्र से आने वाले माल के बारे में विशेष कड़ी नीति बरती गई। डालर क्षेत्र से कुछ माल के आयात को बिल्कुल ही रोक दिया गया। उन पूंजी पदार्थों के आयात की भी स्वीकृति नहीं दी जाती थी जो इंगलैंड में उपलब्ध थे। इसका परिणाम यह हुआ कि देश में माल की तंगी आ गई और आयात बहुत गिर गए। आयात संबंधी इस कड़ी नीति का कारण डालर की कठिनाई को हल करना था पर उसका प्रभाव मंहगाई बढ़ने का भी हुआ। यह वह समय था जब देश के विभाजन के फलस्वरूप देश में बहुत अव्यवस्था फैली हुई थी। यातायात की कठिनाई के कारण उत्पादन घट रहा था और नियंत्रण हटाने की नीति का प्रयोग किया जा रहा था। इन सब बातों का सम्मिलित प्रभाव यह हुआ कि देश में माल की हर तरह से कमी हो गई और थोक कीमतों का मूलांक जो नवम्बर १९४७ में ३०२ था वह १९४८ की जुलाई में ३८९.६ हो गया आयात में नरम नीति बरतने का यह उपयुक्त समय था। इस विपरीत अनुभव के कारण जुलाई १९४८ से भारत सरकार की आयात नीति में फिर से नरमी आई। खुले साधारण लाइसैंस के अन्तर्गत आने वाली चीजों की संख्या में काफी वृद्धि की गई और ४०० के लगभग वह संख्या पहुंच गई। कई चीजें जिनका आयात बिलकुल बंद था उनको उस श्रेणी से हटा लिया गया। इस नीति का असर यह हुआ कि हमारा आयात बहुत बढ़ गया और व्यापार का संतुलन हमारे बहुत विपक्ष में जाने लगा। हालांकि मंहगाई पर इस नीति का अच्छा असर हुआ पर विदेशी विनिमय की कठिनाई हमारे सामने आ उपस्थित हुई। जो पौंड पावना हम पहले खर्च नहीं कर पाये थे वह सब खर्च हो गया और इसके अलावा जितना हमने कमाया था उससे कहीं अधिक स्टरलिंग और डालर हमने खर्च कर दिया। फल यह हुआ कि फरवरी १९४९ में भारत सरकार की आयात-निर्यात नीति में फिर कठोरता आ गई। डालर प्रदेश से आयात कम करने की कोशिश की गई। खुला साधारण लाइसैंस के अन्तर्गत आने वाली चीजों की संख्या बहुत कम कर दी गई। १ अगस्त १९४९ से भारत-इंग्लैंड के बीच में फिर आर्थिक समझौते में संशोधन हुआ और इंग्लैंड ने भारत को जो डालर का घाटा हो रहा था उसे पूरा करने का वचन दिया। इसके बदले में भारत साम्राज्य-डालर निधि (Empire Dollar Pool) का सदस्य बन गया। सरकार ने अपनी आयात नीति को फिर कड़ा करने का निश्चय किया। खुला साधारण लाइसैंस के अन्तर्गत वस्तुओं की संख्या अब केवल २० ही रह गई। सितम्बर १९४९ में जो आयात नीति सरकार ने घोषित की उसके अनुसार आयात को तीन श्रेणियों में बांटा गया।

(१) वे चीजें जिनके लिए साधारणतया लाइसेंस नहीं दिए जायेंगे।

(२) वे चीजें जिनके लिए एक निश्चित परिणाम के आधार पर लाइसेंस दिए जायेंगे।

(३) वे चीजें जिनका समय २ पर लाइसेंस दिया जा सकेगा बशर्ते कि उनके आयात का हर समय उचित कारण बताया जा सके। दुर्लभ मुद्रा प्रदेश से आयात करने की स्वीकृति उसी हालत में मिलने वाली थी जब कि स्टरलिंग प्रदेश में वह या उसकी जगह काम में आ सकने वाला दूसरा माल न मिलता हो। अगर किसी चीज की आयात की व्यवस्था किसी द्विपक्षीय व्यापारिक समझौते में की जा चुकी है तो उनको दूसरी जगहों से आयात करने की स्वीकृति नहीं दी जा सकती।

रिजर्व बैंक ने जनवरी १६४८ से अनधिकृत आयात का चुकता करने के लिए विदेश रुपया भेजने की जो सुविधा दे रखी थी वह भी अब वापस लेली गई। इसके बाद भी जैसी २ आवश्यकता पड़ी अलग २ चीजों के आयात के बारे में कुछ फेर-फार होता रहा पर मूल नीति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। इस बीच में रुपये का भी सितम्बर १६४६ में अवमूल्यन हो चुका था और उसका हमारे विदेशी व्यापार के संतुलन पर अनुकूल प्रभाव भी पड़ रहा था, परन्तु २५ फरवरी १६५० को जनवरी जून १६५० के लिए जो आयात नीति घोषित की गई थी वह पहले की अपेक्षा अब थोड़ी सी उदार थी। कच्ची रुई, कच्चा रेशम, रेशम का सूत, अलौह धातु, भारी रासायनिक पदार्थ और दवाइयां आदि जैसे आवश्यक उपभोग के पदार्थों को सुलभ मुद्रा प्रदेशों से मंगाने की स्वीकृति दी गई। कच्चे कपास का आयात दुर्लभ मुद्रा प्रदेशों से करने की भी इजाजत थी। जुलाई १६५० से दिसम्बर १६५० के समय के लिए भी आयात नीति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। लगभग ३७ से ४० करोड़ रुपये प्रति मास के आयात की व्यवस्था की गई। लगभग इतनी व्यवस्था ही पिछली जनवरी-जून १६५० के समय के लिए ही की गई थी। जनवरी १६५१ से जून १६५१ के लिए घोषित आयात नीति के बारे में भी कोई विशेष उल्लेखनीय बात नहीं थी। पर जुलाई-दिसम्बर १६५१ के समय के लिए सरकार ने अपनी आयात नीति की फिर घोषणा की। इसके अनुसार आयात को प्रोत्साहन देने का विशेष तौर से प्रयत्न किया गया है। बाहर से आने वाले माल के परिमाण और मूल्य दोनों में ही वृद्धि की गई, और नई चीजों को भी आयात की सूची में जोड़ा गया है। उपरोक्त विवरण से ज्ञात होगा कि भारत सरकार की आयात नीति में युद्ध समाप्त होने के बाद का भी विचार करें तो ज्ञात होगा कि उसमें बराबर परिवर्तन होता रहा है। युद्ध समाप्त होने के बाद जुलाई १६४७ तक आयात नीति नरम रही। पर अगस्त १६४७ से जून १६४८ तक हमारी आयात नीति कड़ी हो गई। फिर जुलाई १६४८ में नरम नीति अपनाई गई। फरवरी १६४६ में फिर कठोर नीति शुरू हुई। फरवरी १६५० में यह नीति नरमी की ओर बदली और अभी भी वही नीति चल रही है।

भारत सरकार की निर्यात सम्बन्धी नीति पहले तो प्रतिबन्धात्मक थी। पर जब हमारा विदेशी व्यापार का संतुलन बिगड़ने लगा और विदेशी विनिमय की तंगी आ गई तो भारत सरकार की नीति निर्यात को प्रोत्साहन देने की हो गई। बढ़ी हुई कीमतें, बढ़ी हुई देश के अन्दर की मांग और देश के विभाजन के कारण बड़ा प्रतिकूल असर हमारे निर्यात व्यापार के मार्ग में बाधक हुए। परन्तु भारत सरकार ने इन सब बाधाओं के बावजूद भी १६४८–४६ में निर्यात व्यापार को प्रोत्साहन देने की नीति जारी रखी। कई चीजों को नियन्त्रण से मुक्त कर दिया गया और बहुतों को आसानी से लाईसैंस मिलने वाली श्रेणी में ले लिया गया। इन सबके बावजूद भी १६४६ के पहले ६ महीने में हमारे निर्यात व्यापार की स्थिति पहले से भी गिर गई। जुलाई १६४६ में भारत सरकार ने निर्यात प्रवर्तक समिति की नियुक्ति की। इस कमेटी की सिफारिशों के अनुसार कई चीजें जिनका निर्यात मना था लाइसेंस के बाद निर्यात होने वाली वस्तुओं की श्रेणी में आगई। खुलासाधारणलाइसेंस के अन्तर्गत, जो बिना लाइसैंस के सब देशों को निर्यात की सुविधा देता है, चीजों की संख्या बढ़ गई। लाइसेंस देने की पद्धति को पहले से सरल बनाने का प्रयत्न किया गया और व्यापार मंत्रालय से ही निर्यात लाइसैंस मिलने की व्यवस्था की गई। पहले जो खाद्य पदार्थ के लाइसैंस खाद्य मंत्रालय से मिलते थे वे अब व्यापार मंत्रालय से मिलने लगे। जो कर निर्यात में बाधक थे उन्हें कम किया गया या हटाया गया। कोरिया के युद्ध के कारण आगामी युद्ध की तैयारी की दृष्टि से दुनिया के देशों ने कच्चे माल का संचय करना शुरू किया उसका भी निर्यात पर असर पड़ा। इन सब कारणों का सम्मिलित प्रभाव यह हुआ कि हमारे निर्यात व्यापार में वृद्धि हुई और १६५०–५१ में गत महायुद्ध के बाद पहली बार व्यापार का संतुलन हमारे पक्ष में हुआ। किन्तु १६५१–५२ में यह फिर उल्टा हो गया। इस वर्ष हमने ७६३ करोड़ रुपये का माल निर्यात किया और ८५० करोड़ रुपये का आयात किया इस प्रकार इस वर्ष हमें ८७ करोड़ रुपये का घाटा रहा।

भारत सरकार के आयात–निर्यात की नियंत्रण नीति का ऊपर विवेचन किया गया है। भारत सरकार को इस काम में *निर्यात सलाहकार समिति* (Export Advisory Committee) और *आयात सलाहकार समिति* (Import Advisory Committee) सलाह और सहायता देती है। भारत सरकार की आयात नियन्त्रण नीति की कई बातों को लेकर आलोचना की जाती थी। उदाहरणार्थ–लाइसैंस मिलने में होने वाली आवश्यक देरी, लाइसैंस पद्धति की पेचीदगी, तथा आयात नीति की अस्थिरता आदि जिनको लेकर सरकार के प्रति असन्तोष था। सरकार ने १६५० में सारी आयात नीति पर विचार करने के लिए *आयात नियंत्रण जांच समिति* (Import Control Enquiry Committee) की नियुक्ति

की। इस कमेटी ने अक्टूबर १९५० में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें सबसे अधिक जोर इस बात पर दिया कि आयात सम्बन्धी नीति और संचालन में स्थिरता होनी चाहिए। और स्वीकृति नीति का शीघ्र और क्षमता के साथ पालन होना चाहिए। (२) आगामी दो वर्षों में ४०० करोड़ रुपये वार्षिक का आयात भारत में होना चाहिए। (३) आयात की चीजों की प्राथमिकता के बारे में भी इस कमेटी ने अपनी राय दी। प्राथमिकता के लिए कमेटी ने ९ श्रेणियों में विभिन्न वस्तुओं को विभाजित किया था। (४) आयात सम्बन्धी सिद्धान्तों का विवेचन करते हुए कमेटी ने राय दी कि हमें अपने आयात की मर्यादा विदेशी विनिमय की स्थिति के अनुसार ही तय करनी चाहिए और बाहर से आने वाली चीजों की प्राथमिकता इस दृष्टि से निश्चित होनी चाहिए जिससे देश के कृषि उद्योग के विकास और उपभोक्ताओं की आवश्यक वस्तुओं की मांग का लिहाज रखा जा सके। इसी के साथ २ किन्हीं वस्तुओं के मूल्य में अत्यधिक उतार–चढ़ाव को कम करने का भी प्रयत्न किया जाना चाहिए, पर यह उसी हद तक जिस हद तक कि विदेशी विनिमय सम्बन्धी मर्यादा और हमारे कृषि–उद्योग के विकास तथा उपभोक्ताओं की आवश्यकता के साथ इसका मेल बैठ सके। (५) लाइसैंस के समय को बढाना, लाइसैंस पद्धति का विकेन्द्रीकरण करना, नए आयात के व्यापारियों को सुविधायें देना, सुलभ मुद्रा प्रदेश के किसी देश से माल मंगाने की अधिक स्वतन्त्रता, और किसी हद तक दुर्लभ मुद्रा क्षेत्र से माल मंगाने की आजादी और आयात नियन्त्रण व्यवस्था में आवश्यक सुधार करने के लिए भी सुझाव दिए।

भारत सरकार ने कमेटी द्वारा आयात संबंधी उपर्युक्त सिद्धान्तों से अपनी सहमति प्रकट की है, और ४०० करोड़ के वार्षिक आय की मर्यादा को ध्यान में रखने की घोषणा की है। प्राथमिकता के लिए भारत सरकार ने वस्तुओं की केवल ४ मोटी श्रेणियां (९ के बजाय) बनाई हैं(१) आवश्यक कच्चा माल,उद्योग धंधोंको कायम रखने और पुरानी मशीनों को बदलने के लिए पूंजी पदार्थ(Capital goods) और मशीनों के विभिन्न भाग और जनता के स्वास्थ्य और जीवन के लिए आवश्यक उपभोक्ता पदार्थ; (२) अन्य कच्चा माल और पूंजी पदार्थ, (३) अन्य आवश्यक पदार्थ और (४) कम आवश्यक पदार्थ। इसके अलावा लाइसैंस पद्धति और उसके संचालन सम्बन्धी सिफारिशों को स्वीकार कर उन्हें दो भागों में बांटा है। प्रथम भाग में वे जिन पर तत्काल अमल किया जा सकता है और दूसरे भाग में वे जिन पर बाद में अमल करना संभव होगा। लाइसैंस सुलभ मुद्रा और दुर्लभ मुद्रा इन इलाकों के लिए होगी। जापान की अलग तीसरी श्रेणी होगी।

विदेशी व्यापार के प्रचार और प्रसार के साधन

द्वितीय महायुद्ध काल में जब कई यूरोपीय बाजार युद्ध के कारण हमारे हाथ से निकल गए तो नए बाजारों को हस्तगत करने के प्रयत्न किए गए। देश के विदेशी व्यापार के प्रचार और प्रसार के लिए यह आवश्यक है कि विभिन्न देशों में भारत सरकार के व्यापारिक प्रतिनिधि रहें, व्यापारिक कमीशनर्स और काउन्सल्स नियुक्त किये जायें। समय २ पर विदेशों को व्यापारिक मिशन भेजना, विदेशों से व्यापारिक मिशन आना, अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनियों में भाग लेना और अपने देश में ऐसी प्रदर्शनियों का आयोजन करना तथा 'शो-रूम' या प्रदर्शनालय का विदेशों में संगठन करना भी विदेशी व्यापार के प्रचार और प्रसार के अन्य साधन हैं। इस समय भारत के व्यापारिक कमिश्नर्स लन्दन, पेरिस, न्यूयार्क, टोरेन्टो, ब्यूनेस आयरेस, तहरान, सिकन्द्रिया, मोम्बासा, कोलम्बो, सिडनी, मास्को, जापान, रंगून आदि में हैं। करांची, ढाका, बर्न, फ्रैंकफर्ट, रोम, बगदाद, अदन, वैंकूवर, रायेडी जानेइरो, और प्रेग आदि स्थानों में भारत के व्यापारिक प्रतिनिधि स्थित हैं। भारत सरकार ने यूरोप के लिए आर्थिक और व्यापारिक मामलों के लिए एक कमिश्नर-जनरल Commissioner-General for Economic and Commercial Affairs) की भी नियुक्ति की है जिसका केन्द्रीय कार्यालय पेरिस में है और इनका काम यूरोप के व्यापारिक कमिश्नरों के काम की देख भाल करना और व्यापारिक समझौतों और आर्थिक मामलों पर सरकार को सूचना देते रहना है।

भारत से समय २ पर व्यापारिक मंडल भी विदेशों को जाते रहे हैं—यथा जुलाई १९४० में ग्रिगेरी-मीक मंडल अमेरिका गया, इसी प्रकार एक भारतीय व्यापारियों का मंडल १९४८ में जर्मनी, जैकोस्लोवेकिया और फ्रान्स को गया। दूसरा मंडल अफगानिस्तान, ईरान और पूर्वी अफ्रीका को तथा तीसरा मंडल मिश्र को गया। १९५० में एक मंडल दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों को भेजा गया।

भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनियों में भी भाग लेना आरंभ किया है और विदेशों में प्रदर्शनालय भी स्थापित किये हैं। भारत सरकार का 'Commercial Intelligence and Statistics Deptt.' भारत सरकार के पास जो व्यापार संबंधी जानकारी होती है वह जनता और व्यापारियों तथा व्यवसायियों तक पहुंचाने की व्यवस्था करता है। विदेशी व्यापार संबंधी जानकारी एकत्रित करना और उसको प्रसारित करना तथा भारत-व्यापी महत्व के उद्योग-व्यापार आदि संबंधी आकड़ों को तैयार करना और प्रकाशन करना इस विभाग के दो मुख्य काम हैं। १९३३ में Central Statistical Research Beaurau' की इसी विभाग के तत्वावधान में स्थापना हुई थी। १९३७ में भारत सरकार के आर्थिक सलाहकार की देख रेख में यह ब्यूरो काम करता है।

अध्याय ५

भारतीय व्यापार की विशेषतायें

PECULIAR FEATURES OF FOREIGN TRADE

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है भारत के व्यापारिक संबंध मिश्र, अरब, फारस, बैबीलोनिया, यूरोप के महाद्वीप देशों, चीन, तिब्बत, जापान, पूर्वी द्वीपसमूह आदि देशों से बहुत प्राचीन काल से हो रहे हैं। यूरोपीय अनुसंधान कर्ताओं के आने के बाद से ही भारत के व्यापार में और भी अधिक वृद्धि हुई। यूरोपीय कंपनियों ने एशिया, यूरोप, अमेरिका, और अफ्रीका आदि देशों में नए बाजार स्थापित किए। इस समय भारतीय व्यापार पर विदेशी शक्तियों की जीत का बड़ा असर पड़ा। प्लासी के युद्ध के बाद से ही जब भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी का प्रभुत्व जम गया—भारत का व्यापार इंग्लैंड के साथ बढ़ने लगा। आज भी यह प्रगति बहुत हद तक वर्तमान है। प्रथम महायुद्ध के पूर्व इंग्लैंड से हट कर संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान और जर्मनी के साथ बढ़ने लगा। इसका एक मात्र कारण अमेरिका और जर्मनी के कारखानों में इतना अधिक सामान तैयार होने लगा था कि ये देश इंग्लैंड से भारतीय बाजारों में प्रतिस्पर्धा करने लगे। १६०० में जर्मनी का हमारे आयात व्यापार में २.५% भाग था किंतु १६१४ में यह बढ़ कर ६.६% हो गया। इसी प्रकार भारत से जर्मनी जाने वाले निर्यात में भी इस काल में ५० लाख पौंड से १७५ लाख पौंड की वृद्धि हुई। जापान और संयुक्त राज्य अमेरिका से भी भारत के व्यापारिक संबंध बढ़ गए।

प्रथम महायुद्ध के अन्त तक भारत के व्यापार की दिशा

१६१६ के पूर्व भारत के विदेशी व्यापार की नीचे लिखी मुख्य विशेषतायें थी:—

पहले महायुद्ध के पूर्व भारत के निर्यात और आयात व्यापार में ब्रिटेन का बहुत बड़ा भाग था। १६१४ के पूर्व भारत अपने कुल आयात का ४०% ब्रिटेन से मंगवाता था। क्रमशः ब्रिटेन से आने वाले माल का प्रतिशत घटने लगा और १६३६ में वह ३०% ही रह गया। फिर भी ब्रिटेन का हिस्सा अन्य देशों की तुलना में अधिक था। इसका मुख्य कारण यह था कि भारत पर ब्रिटेन का अधिपत्य था। जहां तक भारत के निर्यात का प्रश्न था १६१४ के पूर्व कुल निर्यात का केवल २५% ब्रिटेन को जाता था। क्रमशः यह प्रतिशत बढ़ता गया

और १९३९ में ३४% हो गया। ब्रिटेन ने भारत के उद्योग धंधों में बहुत अधिक पूंजी लगा रखी थी, ब्रिटेन की जहाजी कंपनियां, बैंक, बीमा कम्पनियां भारत को अदृष्टि सेवा (invisible services) करतीं थीं अत: ब्रिटेन को प्रति वर्ष अपनी पूंजी पर लाभ तथा अपनी अदृष्टि सेवाओं का मूल्य मिलता था। इसी कारण ब्रिटेन को भारत से अधिक निर्यात होता गया। १९१४ के पूर्व जर्मनी का भारत के आयात व्यापार में २.४% भाग, संयुक्त राज्य अमेरिका का १.७%, जापान का ०.६% था किंतु १९१४ में बड़ा परिवर्तन हुआ। न केवल ब्रिटेन के भाग में ही कमी हो गई बल्कि जर्मनी के व्यापार में ६.९% वृद्धि, और जापान तथा संयुक्त राज्य के प्रत्येक के साथ व्यापार में २.६% की वृद्धि हुई। बेलजियम के व्यापार में ३.९% से २.३% की कमी हो गई। निर्यात व्यापार की दिशा में भी इसी प्रकार से परिवर्तन हुआ। इस शताब्दी के आरंभ में इंग्लैंड का भाग २९%, यूरोपीय देशों का २५%, पूर्वी देशों का २४% और संयुक्त राज्य का ७% था किन्तु १९१३–१४ में यह भाग क्रमशः १४%, २९%, १७%, और ९% ही रह गया। इस प्रकार प्रथम महायुद्ध के पूर्व तक इंग्लैंड का भाग क्रमशः घटता गया किंतु अन्य देशों के साथ उसके व्यापारिक संबंध बढ़ते गये। सुदूर पूर्व के देशों के साथ व्यापार में हुई कमी को छोटे २ देशों के साथ व्यापार बढ़ा कर दूर की गई। वैयक्तिक देशों के साथ भारत के व्यापार में वृद्धि हुई जिसके फलस्वरूप जर्मनी जो १९०० में भारत का तीसरा बड़ा खरीदार था, १९१४ में उसका स्थान दूसरा हो गया। जापान की स्थिति भी छठे से तीसरी हो गई और चीन का स्थान दूसरे से हट कर छठा हो गया।*

१९१४–१८ की अवधि में इंग्लैंड का व्यापार भारत के साथ कम होता गया इसका मुख्य कारण उसका युद्ध में व्यस्त रहना तथा अंग्रेज सरकार द्वारा निर्यात किए जाने वाले व्यापार पर कड़ा प्रतिबन्ध लगा दिया जाना था। इसी लिए आयात व्यापार में उसका भाग १९१३–१४ में ६४·१% से १९१८–१९ में ४५·५% ही रह गया। सम्पूर्ण युद्ध काल का विचार करें तो कहा जा सकता है कि युद्ध पूर्व के काल के औसत ६२·८% से युद्ध काल के औसत ५६·५% तक ही रह गया। इसी समय भारत के बाजार से हट जाने के कारण जापान और संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ होने वाले व्यापार में वृद्धि हुई। पहले लोहे की मशीनें जो इंगलैंड द्वारा भेजी जाती थी अब वह इन दोनों देशों से आयात की जाने लगी। इसके अतिरिक्त जापान से काच का सामान, कागज और सूती वस्त्र तथा अमेरिका से रंग आदि भी मंगवाया जाने लगा। इन दोनों देशों ने अपना व्यापारिक संगठन स्थापित करने के भरसक प्रयत्न किये।

---

* देखिये, R. M. Joshi India's Export Trade पृ० १५८-६०

निर्यात व्यापार में इंगलैंड और अंग्रेजी साम्राज्य के देशों के साथ वृद्धि हुई क्योंकि युद्ध काल में अधिकाधिक माल भारत से खरीदा जानें लगा। इस प्रकार इंगलैंड का भाग हमारे निर्यात व्यापार में १६१३–१४ में २३·४% से १६१८–१६ में २६·२% होगया। इंग्लैंड और बृटिश साम्राज्य दोनों को मिलाकर युद्ध पूर्व के २५·१% और ४१·१% से युद्ध काल में ३१·१% और ५१·७% होगया। जर्मनी का भारत से व्यापारिक सम्बन्ध प्रायः टूट सा गया। जर्मनी का फ्रांस तथा बैलजियम के कई भागों पर अधिकार होजाने से इन दोनों देशों से भी हमारा व्यापार कम होगया किन्तु जापान और संयुक्त राज्य से निर्यात व्यापार में वृद्धि हूई। यह वृद्धि जापान के साथ ६·२% से १२·१% और संयुक्त राज्य अमेरिका से ८·६% से १२·८% की हुई। इस वृद्धि का मुख्य कारण यह था कि ये देश युद्ध की विभीषिका से दूर थे तथा मित्र राष्ट्र होने के नाते वे भारत को वस्तुएं खरीद सकने में समर्थ थे। इस प्रकार युद्ध काल में भारत का विदेशी व्यापार बहुत ही थोड़े देशों के साथ सीमित था। यद्यपि निर्यात व्यापार से अधिक प्राप्ति होती थी किन्तु आयात की कीमतें बढ़ जानें से हमें चुकाना भी अधिक पड़ता था।

प्रथम महायुद्ध के पश्चात के आरम्भ के वर्षों में हमारे विदेशी व्यापार में कुछ उन्नति हुई किन्तु शीघ्र ही ब्रिटेन का माल भारत में आना कम होगया, इसका मुख्य कारण स्वदेशी आंदोलन का प्रारम्भ होजाना था। इससे १६३१–३२ में तो ब्रिटेन का हमारे व्यापार में ३५·५% ही भाग रह गया। इस काल में भी इंग्लैंड को जापान, जर्मनी और संयुक्त राज्य अमेरिका से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ी। इसके अतिरिक्त देश में भी औद्योगिक प्रगति हो रही थी इसके कारण भी इंग्लैंड से अब तैयार माल कम मात्रा में आयात किया जाने लगा। किन्तु १६३१–३२ में ओटावा समझौता होजाने से ब्रिटेन का भाग हमारे व्यापार में कुछ बढ़ गया। अस्तु १६३३-३४ में इसका भाग ४१·७% होगया किंतु पुनः यह भाग १६३६–३७ में ३८·४% १६३८–३६ में ३०·५% और १६३६–४० में २५·२% ही रह गया।

१६१४ के युद्ध के समय जापान और अमेरिका ने भारतीय बाजारों में जो ख्याति पाई थी वह अब समाप्त होगई क्योंकि १६२०–२१ में जापान में आर्थिक संकट खड़ा होगया। इसके अतिरिक्त इन दोनों देशों के प्रतिस्पर्धी पुनः भारतीय बाजारों में आगये थे। इस प्रकार प्रथम महायुद्ध की समाप्ति के उपरांत जैसे २ अन्य देशों की औद्योगिक उन्नति होती गई भारत के आयात व्यापार में ब्रिटेन का भाग कम होता गया। आंशिक रूप में ब्रिटेन का स्थान जापान, जर्मनी और संयुक्त राज्य अमेरिका ने ले लिया। १६३८–३६ में भारत के कुल आयात का ६·४% जापान से, ६·६% जर्मनी से, और ८% अमेरिका से आया। नीचे की तालिका में मुख्य देशों का हमारे विदेशी व्यापार में प्रतिशत में भाग बताया गया है:—

देश	१९०९-१४			१९१४-१८			१९१९-२३			१९३८-३९		
	आयात	निर्यात	जोड़	आयात	निर्यात	जोड़	आयात	निर्यात	जोड़	आयात	निर्यात	जोड़
इंगलैंड	६२·८	२५·१	४०·०	५६·५	३१·१	४१·२	५७·६	२४·२	३६·५	३०·५	३४·३	२५·२
ब्रह्मा	—	—	—	—	—	—	—	—	—	१६·०	६·६	११·०
लंका	०·५	३·७	२·४	१·१	४·३	३·०	०·७	४·८	२·५	०·८	३·२	२·०
स्ट्रेट्स सैटलमैंटस	२·१	३·४	२·९	३·०	२·७	२·८	१·९	२·७	२·३	२·७	१·३	२·०
आस्ट्रेलिया	०·७	१·४	१·१	०·८	२·२	१·७	१·३	१·७	१·५	१·६	१·८	१·७
हांगकांग	०·७	४·१	२·७	०·९	२·०	१·६	०·७	२·३	१·६	०·८	०·५	०·४
मारीशस आदि	१·८	०·६	१·१	१·१	०·६	०·८	२·२	३·१	२·७	—	०·५	०·३
ब्रिटिश साम्राज्य की जोड़	६६·७	४१·१	५२·३	६५·४	५१·७	५७·१	६५·२	४१·४	५२·३	५८·१	५३·६	५५·७

अमेरिका	३'१	७'५	५'८		७'०	११'९	९'९		८'५	१२'०	१०'४		६'४	८'५	८'४
जावा	६'४	१'३	३'३		७'८	१'१	३'८		६'८	१'०	३'७		०'३	०'४	०'४
फ्रांस	१'५	६'६	४'६		१'३	४'५	३'२		०'९	४'८	३'०		०'९	३'७	२'४
इटली	१'०	३'२	२'३		१'२	३'९	२'८		१'०	३'२	२'२		१'८	१'५	१'७
चीन	१'१	३'९	२'८		१'३	२'०	१'७		१'२	३'६	२'५		१'१	१'५	१'३
ईरान	०'४	०'५	०'५		०'६	१'६	१'२		०'७	१'३	१'०		२'३	०'५	१'३
रूस संघ	०'१	०'९	०'६		०'१	१'२	०'८		०'१	—	०'१		०'१	०'२	०'२
नीदरलैंडस	०'९	१'५	१'३		०'६	०'२	०'३		०'९	१'५	०'९		०'९	२'२	१'६
बेलजियम	१'९	५'३	३'९		०'३	०'५	०'४		१'८	३'७	४'९		१'९	२'५	२'२
जर्मनी	६'४	९'८	८'५		०'७	०'९	०'८		२'८	४'९	४'०		८'५	५'०	६'६
आस्ट्रिया	२'२	३'५	२'९		०'२	०'४	०'३		०'२	०'२	०'२		०'३	—	०'२
अन्य देशों का जोड़	३०'३	५८'९	४७'७		३४'६	४८'३	४२'९		३४'८	५८'६	४७'७		४१'९	४६'४	४४'३

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व

(१) भारत विदेशों से मुख्यत: पक्का माल मंगवाता था, जिसमें वस्त्र, लोहे का सामान, यंत्र, घड़ियां, चमड़े का सामान, शीशे का सामान, मोटरें, साइकिल, कपड़ा सीने की मशीनें, बिसात-खाने का सामान, तेल, साबुन, दवाइयें, कागज, शक्कर, दियासलाई मुख्य था। नीचे की तालिका में भारत का आयात व्यापार बतलाया गया है:—

भारत का आयात व्यापार

(कुल आयात का प्रतिशत)

वस्तुएें	१९२०–२१	१९३८–३९	१९३९–४०
१. भोज्य पदार्थ, पेय पदार्थ तथा तम्बाकू	११	१६	२२
२. कच्चा औद्योगिक माल	५	२२	२२
३. पक्का माल	८४	६२	५६

जैसे २ समय व्यतीत होता गया, भारत में भी कारखानें स्थापित होते गये, अस्तु पक्के माल का आयात कम होता गया और कच्चे माल का आयात बढ़ता गया, जैसा कि ऊपर के आंकड़ों से स्पष्ट होगा। १९२० तक भारत अपने कुल आयात का ८४% पक्का माल विदेशों से मंगवाता था। इसके उपरांत सरकार ने धंधों को संरक्षण देने की नीति स्वीकार की जिसके फलस्वरूप वस्त्रों के उद्योग, दियासलाई, शक्कर तथा लोहे के धंधे का संरक्षण प्राप्त हुआ। अस्तु जब ये धंधे देश में स्थापित हो गये तो विदेशों से पक्के माल का आयात कम हो गया जैसा कि नीचे दी गई तालिका से ज्ञात होगा :—

पक्के माल का आयात (लाख रुपयों में)

माल	१९२०–२१	१९३२–३३	१९३८–३९
सूती वस्त्र	८३,७८	१३,३७	१४,१५
लोहे का सामान	३१,२९	५,३०	६,६६
शक्कर	१८,५०	४,२३	२४
माचिस	१,६७	१	—
सिमेंट	१,३९	२९	५

(२) द्वितीय महायुद्ध के पूर्व भारत के विदेशी व्यापार की दूसरी विशेषता यह थी कि भारत मुख्यत: खेती की पैदावार तथा औद्योगिक कच्चा माल विदेशों को निर्यात करता था। प्रथम महायुद्ध के पूर्व भारत अपने निर्यात का ७०% भोज्य पदार्थ और कच्चे माल के रूप में भेजता था। प्रथम युद्ध के उपरांत पक्के माल के

प्रतिशतमें थोड़ी सी वृद्धि हुई फिर भी ६४% निर्यात, भोज्य पदार्थों और कच्चे माल के रूप में ही होता था। यह स्थिति महायुद्ध के आरंभ होने तक रही। इसका अर्थ यह था कि भारत अपने कच्चे माल का उचित उपभोग नहीं करता था। नीचे की तालिका में भारत का निर्यात व्यापार बताया गया है:—

भारत का निर्यात व्यापार
(निर्यात का प्रतिशत)

पदार्थ	१९२०-२१	१९३२-३३	१९३८-३९	१९३९-४०
भोज्य तथा पेय पदार्थ और तम्बाकू	२८	२९	२३	२०
कच्चा माल	३५	४२	४५	४३
पक्का माल	३६	२९	३०	३८

(३) जहां भारत विदेशों से बहुत प्रकार की तैयार वस्तूए मंगवाता था वहां भारत के निर्यात कुछ ही मालों तक सीमित थे यथा—जूट, कपास, अनाज, तिलहन, खालें और चाय आदि। भारत के निर्यात व्यापार में नीचे लिखी वस्तुएं मुख्य थीं:—

(लाख रुपयों में)

वस्तुएं	१९२०–२१	१९३२–३३	१९३८–३९
कपास	४१,६३	२०,३७	२१,८२
जूट	१६,६३	९,३७	१३,४०
तिलहन	९,००	८,००	८,००
चाय	१२,१५	१७,१५	२३,२९
सूती कपड़ा	७,५१	२,०९	७,५७
जूट का तैयार माल	५२,४५	२१,४०	२६,२६
चमड़ा	५,२४	२,७६	६,०४

(४) भारत के विदेशी व्यापार की चौथी विशेषता यह थी कि भारत के विदेशी व्यापार का अन्तर भारत के पक्ष में रहता था क्योंकि भारत अधिकतर जितने रुपये का माल विदेशों को भेजता था उससे कम रुपयों का माल विदेशों से मंगवाता था। नीचे की तालिका में हमारे व्यापार की बाकी के आंकड़े दिए गये हैं:-

(करोड़ रुपयों में)

व्यापार	१९२०–२१	१९२९–३०	१९३८–३९	१९३९-४०
आयात	३४७·५६	२४९·७१	१५२·३३	१६५·२९
निर्यात	२६७·७६	३१८·९९	१६२·७८	२०३·९२
व्यापार की बाकी	–७९·८०	+६९·२८	+१०·४५	+३८·६३

द्वितीय महायुद्ध के काल में विदेशी व्यापार की दिशा

द्वितीय महायुद्ध के छिड़ते ही प्रत्येक देश ने कच्चे माल और पक्के माल को इकट्ठा करने की चेष्टा की, इससे भारत के माल की विदेशों में बहुत मांग होगई। परन्तु जब जर्मनी ने यूरोप के अधिकांश देशों को अपने अधिकार में कर लिया तो वे बाजार भी भारत के लिए बन्द होगये। जापान के युद्ध में आजाने से और पूर्वी द्वीपों पर उसका अधिकार होजाने से स्थिति और भी खराब हो गई। यद्यपि इसका फल यह हुआ कि भारत का निर्यात व्यापार कम हुआ किन्तु फिर भी निर्यात व्यापार बहुत नहीं गिरा क्योंकि जैसे २ युद्ध लम्बा होता गया मित्र राष्ट्रों की मांग भारतीय माल के लिए बढ़ती गई और मध्य पूर्व के देशों को भारत अधिकाधिक माल निर्यात करने लगा।

युद्ध काल में भारत के निर्यात व्यापार में कुछ परिवर्तन हुआ। पक्का माल अधिक निर्यात किया गया। जूट का सामान हमारा प्रमुख निर्यात रहा। १९४२-४३ में ३६ करोड़, १९४३-४४ में ४९ करोड़ और १९४४-४५ में ६० करोड़ रुपये के मूल्य का जूट का सामान विदेशों को भेजा गया। युद्ध काल में हमारे सूती कपड़े का निर्यात बहुत बढ़ गया था। जहां १९३९ के पूर्व भारत केवल ६ करोड़ रुपये का सूती कपड़ा बाहर भेजता था, वहां १९४२-४३ में ४६ करोड़ रुपये का कपड़ा और १९४४-४५ में ३८ करोड़ रुपये का कपड़ा बाहर गया। जापान के युद्ध में फंस जाने के कारण भारत को मध्य-पूर्व अफ्रीका, मलाया इत्यादि देशों के बाजारों को अपने हाथ में कर लेने की सुविधा हो गई। चाय की भी यूरोप तथा अमेरिका में अधिक मांग बढ़ी, और १९४४-४५ में ३८ करोड़ रुपये की चाय भारत से निर्यात की गई। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व भारत से फ्रांस और इङ्गलैंड को मुख्यतः मूंगफली भेजी जाती थी—लगभग ९ लाख टन—किन्तु युद्ध काल में भारत में वनस्पति-तेल का उत्पादन इतना अधिक बढ़ गया कि अधिकांश मूंगफली की खपत देश में ही होने लगी और अब भारत से मूंगफली का तेल निर्यात किया जाने लगा। भारत ने १९४३-४४ में २०० करोड़ तथा १९४४-४५ में २२७ करोड़ रुपये का माल विदेशों को भेजा जिसमें से १०५ करोड़ और ११६ करोड़ रुपये का तो पक्का माल ही था। नीचे दी गई तालिका से स्पष्ट हो जायगा कि युद्ध काल में भोज्य पदार्थों तथा पक्के माल के निर्यात में क्या अनुपात रहा ;—

भारत का समुद्री व्यापार (करोड़ रुपयों में)
निर्यात व्यापार

माल	*१९४०-४१*	*१९४१-४२*	*१९४२-४३*	*१९४३-४४*	*१९४४-४५*
भोज्य पदार्थ	२४	२८	८	७	९

कच्चा माल	४२	५०	५२	६४	११७
पक्का माल	७०	९४	४६	४५	६५
फुट कर	२	२	१	२	२
जोड़	१३८	१७४	११०	११८	२०३

निर्यात व्यापार

माल	१९४०-४१	१९४१-४२	१९४२-४३	१९४३-४४	१९४४-४५
भोज्य पदार्थ (चाय सहित)	४२	६०	४९	४८	५०
कच्चा माल	६८	७३	४५	५४	५८
पक्का माल	८६	११५	९८	१०६	११६
फुट कर	२	४	३	२	३
जोड़	१९८	२५२	१९५	२१०	२२७

नीचे की तालिकाओं में भारत के प्रमुख निर्यात और आयात व्यापार के आंकड़े प्रस्तुत किए गए हैं :—

मुख्य वस्तुओं का निर्यात

(करोड़ रुपयों में)

वस्तुयें	१९३८-३९	१९४२-४३	१९४५-४६
जूट का तैयार माल	२६·४	३६·४	५९·५
कच्ची रुई	१३·४	९·०	१५·८
सूती वस्त्र	४·८	३८·८	३०·६
कपास	२४·७	५·३	१६·०
कमाया हुआ चमड़ा	४·८	४·४	६·३
कच्चा चमड़ा	३·८	३·३	४·९
तिलहन	१५·२	१०·५	१४·५
तेल	·७	·९	·६
अभ्रक	१·१	२·७	२·५
मैंगनीज	१·१	१·९	·७
चाय	२३·३	३१·९	३५·७
तम्बाकू	२·५	१·४	१·९
तम्बाकू तैयार	·८	·१	·५

प्रमुख वस्तुओं का आयात
(करोड़ रुपयों में)

	१९३८–३९	१९४२–४३
अनाज, आटा, दालें	१३·८	००·३१
तेल (वानस्पतिक तथा खनिज)	१५·६	२८·००
कपास	८·५	१५·०
दवाइयां	५·६	६·०
रंग	४·०	५·०
मशीनें	१९·७	११·०
मोटरें आदि	६·७	
सूत और सूती वस्त्र	१४·२	१·०
कच्चा ऊन	०·६२	३·०

युद्ध काल में भारत का व्यापार ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत देशों से तथा मध्य पूर्व के देशों से ही अधिक रहा। आस्ट्रेलिया, कनाडा, मिश्र, ईराक तथा मध्य पूर्व के देशों से भारत का व्यापार बहुत बढ़ गया। १९४३ और १९४४–४५ में ईरान और बहरीन टापू से हमारे यहाँ ३१ करोड़ और ५३ करोड़ रुपये का मिट्टी का तेल आया। १९४४–४५ में संयुक्त राज्य अमेरिका तथा भारत का व्यापार ६५ करोड़ रुपये का था जब कि ब्रिटेन के साथ उसी वर्ष १०५ करोड़ रुपये का व्यापार हुआ। नीचे की तालिका में भारत के विदेशी व्यापार की दिशा बताई गई है :—

निर्यात की दशा
(निर्यात व्यापार करोड़ रुपयों में)

देश	१९३८–३९	१९४२–४३	१९४५–४६
इङ्गलैंड	५५·४	५७·३	६८·३
ब्रह्मा	१०·०	·३	·१
लंका	५·१	१४·५	१६·७
आस्ट्रेलिया	३·०	१६·६	१०·६
कनाडा	२·१	३·८	६·७
द० अफ्रीका	१·५	१०·५	७·३
अन्य साम्राज्य के देश	८·१	२३·३	२५·३
अमेरिका	१३·९	२७·८	६१·४
जापान	१४·६	—	—
मिश्र	१·२	३·७	२·८
अन्य विदेशी देश	४८·५	३४·४	४२·७
जोड़	१६३·४	१९२·२	२४१·९

निर्यात का प्रतिशत			
(क) अंग्रेजी साम्राज्य के अन्तर्गत देशों को	५२.२	६७.१	५५.८
(ख) विदेशों को	४७.६	३२.६	४४.२

आयात व्यापार की दिशा

(आयात व्यापार करोड़ रुपयों में)

देश	१९३८–३९	१९४२-४३	१९४५–४६
इङ्गलैंड	४६.५	२६.५	६१.३
ब्रह्मा	२४.४	१.५	.४
लंका	१.२	४.४	३.७
आस्ट्रेलिया	२.४	३.३	७.६
कनाडा	.९	५.५	८.७
द० अफ्रीका	.४	२.३	२.७
साम्राज्य के अन्य देश	१२.९	१४.८	२१.०
अमेरिका	९.८	१९.०	६८.३
जापान	१५.४	२.८	—
मिश्र	२.२	८.१	१.१
अन्य देश	३९.९	३७.०	५६.०
जोड़	१५६.०	१२८.२	२४४.८
आयात का प्रतिशत			
(क) साम्राज्य के देशों से	५८.१	५५.५	४३.१
(ख) विदेशों से	४१.९	४४.५	५६.९

युद्ध काल में भारत के विदेशी व्यापार का अन्तर भारत के पक्ष में रहा जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट होगा :—

व्यापार की बाकी

(करोड़ रुपयों में)

१९३८–३९	+ १७.५	१९४२–४३	+ ८४
१९४०–४१	+ ४२.०	१९४३–४४	+ ९२
१९४१–४२	+ ८०.०	१९४४–४५	+ ४२

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात व्यापार की दिशा

१९४५ में युद्ध होने के उपरांत भारत के विदेशी व्यापार में एक उल्लेखनीय परिवर्तन यह हुआ कि भारत के विदेशी व्यापार का अन्तर भारत के विपक्ष में हो गया। १९४८ में हमने कुल निर्यात ४२८ करोड़ रुपये का किया और आयात

४७० करोड़ रुपये का अर्थात व्यापार का अन्तर ४२ करोड़ रुपये भारत के विपक्ष में रहा। १६४६ में यह अन्तर १६७ करोड़ रुपये का हो गया क्योंकि विदेशों से जहां ६२५ करोड़ रुपये का माल भारत में आया वहां भारत से इन देशों को केवल ४२५ करोड़ रुपये का ही माल गया। १६४२ में डालर क्षेत्रों को भारत ने २०६ करोड़ रुपये का माल भेजा और २४० करोड़ रुपये का माल विदेशों से खरीदा अर्थात डालर क्षेत्र के व्यापार में भारत के विपक्ष में ३४ करोड़ रुपये का अन्तर था। १६४६ में यह अन्तर १४५.५ करोड़ रुपये का हो गया। साम्राज्य के अन्तर्गत देशों का अन्तर १६४८ और १६४६ में क्रमशः ८ करोड़ और ५१ करोड़ रुपये रहा। किंतु स्थिति में थोड़ा सुधार सितम्बर १६५० के उपरांत हुआ जब कि भारत ने रुपये का अवमूल्यन किया और डालर क्षेत्र से माल मंगवाने पर कड़ा नियंत्रण स्थापित कर दिया। जैसा कि नीचे की तालिका से ज्ञात होगा :—

वर्ष	*निर्यात*	*आयात*	*व्यापार का अन्तर*
१६५०	५४३	५०५	+ ३८ करोड़ रुपये
१६५१ (पहले ६ महीने)	४१०	३५८	+ ५२ ,,

युद्ध काल में जो भारत ने अधिकाधिक पक्का माल विदेशों को भेजना आरंभ किया था उस प्रकृति में कोई अन्तर नहीं आया है। देश में औद्योगिक उन्नति अधिक होने से पक्के माल के निर्यात में वृद्धि होती रही है जैसा कि नीचे की तालिका से ज्ञात होगा :—

निर्यात व्यापार (करोड़ रुपयों में)

वर्ष	*भोज्य पदार्थ*	*कच्चा माल*	*पक्का माल*	*अन्य सामान*
१६४५	५३	५७	१०४	२
१६४६	५३	६१	१३०	—
१६४८	८०	१०८	२३०	—
१६४६	११४	६३	२१६	२
१६५०	१२२	१०५	२६३	२
१६५१ (जन० से जून तक)	६७	६५	२१३	१५

भारत को विभाजन के पूर्व मिश्र से थोड़ी बढ़िया कपास मंगवानी पड़ती थी किन्तु विभाजन के फलस्वरूप स्थिति बिलकुल बदल गई। भारत को अब अधिकाधिक कपास मिश्र, सूदान और पाकिस्तान से मंगवाना पड़ रहा है। पाकिस्तान ने अपने रुपये का अवमूल्यन नहीं किया इससे पाकिस्तान और भारत का व्यापार १६४६-५० में प्रायः ठप हो गया। इससे सूती कपड़े की मिलों तथा जूट की मिलों को बड़ी कठिनाई उपस्थित हो गई। विभाजन के फलस्वरूप भारत में सम्मिलित भारत की सारी मिलें आ गई हैं और १३% कच्चा जूट के क्षेत्र पाकिस्तान

को चले गए। अतएव जूट और बढ़िया कपास के लिए भारत और पाकिस्तान पर निर्भर हो गया। यही बात नीचे के आंकड़ों से स्पष्ट ज्ञात होगी :—

वर्ष	*कपास की गाँठे (लाखों में)*	*जूट की गांठे (लाखों में)*
१९४९	१७·७	३१
१९५०	२६·३	३३
१९५१	२९·३	४६

भारत के सामने एक भयंकर समस्या यह रही है कि भारत में खाद्यान्न की कमीं हो गई है। उसको पूरा करने के लिए भारत सरकार को प्रतिवर्ष विदेशों से अधिकाधिक मात्रा में अनाज मंगवाना पड़ रहा है। भारत को १९४८ में ११० करोड़ रुपये का अनाज अर्जेनटाइना, टर्की, इटली, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, रूस, आस्ट्रेलिया, थाईलैंड और बर्मा से मंगाना पड़ा। १९४९ में ३७ लाख टन अनाज १५० करोड़ रुपए से भी अधिक मूल्य का विदेशों से आया। १९५० में २१·६ लाख टन अनाज १०० करोड़ से भी अधिक का आया। १९५१ में ५५ लाख टन अनाज तथा १९५२ में इससे भी अधिक मात्रा में अनाज आयात किये जाने का अनुमान है। नीचे की तालिका में भारत के प्रमुख आयात बताये गए हैं :—

वर्ष	*भोज्य पदार्थ*	*कच्चा माल*	*पक्का माल*	*अन्य माल*
	(करोड़ रुपयों में)			
१९४५	२२	१२८	८८	३
१९४६	३३	२७	१४९	७
१९४८	८३	११०	२७०	५
१९४९	१२४	१५९	३३४	५
१९५०	८७	१७८	२३१	२·५
१९५१ (जन. से जून)	८३	११३	१५९	२

युद्ध के पश्चात् से ही भारत के व्यापारिक सम्बन्धों में क्रमशः बहुत परिवर्तन होता जा रहा है। यद्यपि ब्रिटेन का स्थान अब भी बहुत ऊंचा है परन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका उसके बराबर पहुंच गया है। आस्ट्रेलिया, ब्रह्मा, पाकिस्तान, कनाडा और मिश्र का भी हमारे विदेशी व्यापार में अच्छा स्थान बन गया है। युद्ध काल में भारत का जो मध्य पूर्व के देशों से नया व्यापारिक सम्बन्ध जुड़ा है इसके आगे बढ़ने की बहुत अधिक संभावना है। सुदूरपूर्व से भारत के व्यापार का भविष्य भी उज्ज्वल है। युद्ध के उपरांत हमारे विदेशी व्यापार में एक उल्लेखनीय परिवर्तन यह हुआ कि जहां पहले भारत के विदेशी व्यापार में ब्रिटिश साम्राज्य के देशों का भाग अधिक रहता था वहां कामनवैल्थ के बाहर के देशों का भाग कामनवैल्थ के देशों के लगभग बराबर पहुंच गया है। नीचे की तालिका से यह बात स्पष्ट हो जायगी :—

(करोड़ रुपयों में)

क्षेत्र	१९३८-३९			१९४७-४८			१९४८-४९			१९४९-५०		
	आयात	निर्यात	बाकी	आयात	निर्यात	बाकी	आयात	निर्यात	बाकी	आयात	निर्यात	बाकी
१. स्टर्लिंग क्षेत्र और अन्य सुलभ मुद्रा के क्षेत्र	१०६'६	११६'५	+९'९	२६५'२	२७६'९	+११'७	३६३'८	२९६'८	–६७	५०१	५२३	+२२
२. मध्यम करेंसी वाले क्षेत्र (स्वीडन स्वीटजरलैंड)	३'०	०'६	–२'४	१२'५	४'०	–८'५	१४'७	३'३	–११'४	२३१	२९३	+६२
३. दुर्लभ मुद्रा क्षेत्र	४२'९	४९'७	+६'८	१६८'१	१२७'३	–४०'८	१३९'५	१२२'७	–१६'८	२७०	२३०	–४०

इस प्रकार भारत के विदेशी व्यापार की विशेषताएँ वर्तमान काल में इस प्रकार हैं :—*

(१) अधिकांश भारतीय व्यापार ६८% समुद्र के द्वारा होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि भारत के पड़ौसी देश अफगानिस्तान, तिब्बत, मध्य एशिया बहुत पिछड़े हुए और निर्धन हैं। इन देशों का व्यापार नाममात्र को है। वे भारत से न तो अधिक खरीदते ही हैं न अधिक बेचते ही हैं। इन देशों का धरातल ऊबड़-खाबड़ है और हिमालय के ऊंचे पहाड़ों के कारण मार्गों की सुविधा भी नहीं है। अस्तु भारत का वैदेशिक व्यापार मुख्यतः समुद्र के द्वारा ही होता है। कलकत्ता, मद्रास, विजगापट्टम, कोचीन, कंडला और बम्बई भारत के मुख्य व्यापारिक प्रदेश द्वार हैं।

(२) विदेशी व्यापार के बारे में दूसरी मुख्य बात यह है कि हमारे निर्यात व्यापार में तैयार माल का स्थान बढ़ता जा रहा है और आयात व्यापार में अन्न तथा कच्चे माल का महत्व बढ़ता जा रहा है। देश के विभाजन से इस प्रवृति को प्रोत्साहन मिला है। इस का मुख्य कारण यह है कि अब देश में ही औद्योगिक उन्नति हो रही है। इसकी पुष्टि इस बात से होती है कि आयात में कच्चे माल का भाग १६४८-४६ में २६·३%, १६४६-५० में २५·७% और १६५०-५१ में ३६·७% रहा। असल निर्यात में १६४८-४६ में तैयार माल २२६·०६ करोड़ रुपये का था वह १६४६-५० में २४६·६१ करोड़ और १६५०-५१ में ३०७·५५ करोड़ रुपए का हो गया। कुल असल निर्यात के अनुपात को अगर हम लें तो अनुपात १६४८-४६ में ५५%, १६४६-५० में ५२% और १६५०-५१ में ५६% आता है।

(३) हमारे विदेशी व्यापार में युद्ध के बाद के वर्षों में जहां तक आयात का तालुक है कामनवैल्थ राष्ट्रों और इंगलैंड का भी अनुपातिक भाग कम हुआ है और कामनवैल्थ के बाहर के देशों विशेषकर अमेरिका का महत्व बढ़ रहा है। इसी प्रकार निर्यात के सम्बन्ध में भी कामनवैल्थ राष्ट्रों का महत्व घट रहा है। नीचे की तालिका से यह बात साफ प्रकट होती है :—

	कुल आयात का प्रतिशत			*कुल निर्यात का प्रतिशत*		
वर्ष	इंगलैंड	कामनवैल्थ	अमेरिका	इंगलैंड	कामनवैल्थ	अमेरिका
१६३८	३१·६%	५७·३%	७·४%	३४·१%	५२·७%	८·३%
१६४५	२१·२	३७·६	२६·६	२६·३	६६·६	२३·२
१६४६	३८·४	५५·६	१७·७	२५·२	५०·८	२५·८
१६४७	३०·०	४६·१	२८·७	२७·५	५१·३	१६·२

*देखिये C. B. Mamoria : Bharat Ka Arthik Bhugol (1952) Page 333-335.

यदि करेंसी प्रदेशों के आधार पर संकलित आंकड़ों को हम लें तो हम देखेंगे कि पाकिस्तान के अतिरिक्त स्टरलिंग प्रदेश का भाग हमारे आयात में १९३८-३९ में ५८% था, वह १९४७-४८ में ४२%, १९४८-४९ में ४४% और १९४९-५० में ५३·९% (पाकिस्तान सहित) हो गया। इसी प्रकार निर्यात में १९३८-३९ में ५३%, १९४७-४८ में ४८%, १९४८-४९ में ४२% और १९४९-५० में ५०% हो गया।

(४) भारत के विदेशी व्यापार का संतुलन अब तक भारत के पक्ष में रहता था किन्तु कई वर्षों से वह भारत के विपक्ष में होता जा रहा है किन्तु १९५०-५१ से पुनः यह हमारे पक्ष में हुआ है। नीचे की तालिका से यह बात प्रकट होगी :—

वर्ष	आयात	निर्यात	कुल	व्यापार का संतुलन
		(करोड़ रुपयों में)		
१९४६	३१६·३८	३०५·७१	६२१·०९	—१०·६७
१९४७	४४५·८२	४०८·२४	८५४·०५	—३७·५८
१९४८	५४२·९१	४२३·३८	९६६·२३	—११९·५३
१९४९	५६०·५१	४८५·८०	१,०४५·७१	—७४·७१
१९५०	५६५·४६	५८५·८८	१,१५२·३४	+२०·४२

(५) भारत का वैदेशिक व्यापार प्रति मनुष्य पीछे अन्य देशों की तुलना में बहुत कम है क्योंकि देश निर्धन है और सम्पत्ति की उत्पत्ति कम है।

अध्याय ६

व्यापार की दिशा

DIRECTION OF INDIA'S TRADE

व्यापार की दिशा से हमारा अर्थ यह होता है कि भारत का वैदेशिक व्यापार किन २ देशों से होता है तथा उन देशों से भारत क्या खरीदता है अथवा बदले में उनको क्या देता है। व्यापार के बिचार से विश्व के देशों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—प्रथम वे देश जो कामनवैल्थ के अन्तर्गत आते हैं और दूसरे वे देश जो अंग्रेजी साम्राज्य के बाहर हैं। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात दोनों ही देशों से भारतका व्यापारिक सम्बन्ध प्रायः बराबर सा ही रहा है जैसा कि निम्न तालिका से ज्ञात होगा:—

	कामनवैल्थ के देश	(करोड़ रुपयों में)	अन्य देश	
वर्ष	*आयात*	*निर्यात*	*आयात*	*निर्यात*
१९३८–३९	६१	६१	६४	७९
१९४९–५०	१५९	२५९	३०१	२२६
१९५०–५१	२४४	२९६	३२१	२९०

१९०९–१४ की अवधि में कामनवैल्थ के देशों से हमारे कुल आयात का ७०% भाग आता था किन्तु तब से इसमें काफी कमी होगई है। १९५०–५१ में तो यह भाग केवल ४३% ही रह गया और शेष ५७% हमें अन्य देशों से आयात करना पड़ा। इस प्रकार अब भारत अपनी पूंजीगत वस्तुओं के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका, वेलजियम, जैकोस्लोवेकिया, आदि देशों पर अधिक निर्भर रहने लगा है। तथा अनाज आदि के लिए आस्ट्रेलिया, कनाडा, अर्जेनटाइना ब्रह्मा, थाइलैंड, और पाकिस्तान पर।

यहां हम कुछ प्रमुख देशों से होने वाले व्यापार का विश्लेषण करेंगे:—

(१) भारत-संयुक्त राष्ट्र व्यापार (Indo British Trade)—

भारत के विदेशी व्यापार के आंकड़ों का अध्ययन करने से यह भली भांति ज्ञात होजाता है कि भारत के आयात व निर्यात व्यापार दोनों ही दृष्टि से संयुक्त राष्ट्र का बड़ा महत्व रहा है। १९१४ में भारत के आयात में इंग्लैंड का भाग जहां ६३% था वहां वह द्वितीय महायुद्ध काल में २५% और युद्धोत्तर काल में केवल

३०% ही रह गया। इसका मुख्य कारण यह है कि भारत अब साहूकारी देश होगया है जिसका पौंड-पावना इंग्लैंड में काफी जमा हो चुका है और इसका उपभोग वह अपनी आवश्यक वस्तुओं को खरीदने में कर लेता है। भारत इंगलैंड को चाय, जूट, खालें, गोंद, तिलहन, ऊन, रुई, कच्ची धातु आदि निर्यात करता है। इंग्लैंड भारत से जितना माल खरीदता है उसका लगभग ½ भाग कीमत तो चाय की ही होजाती है। उक्त माल के बदले में भारत संयुक्त राष्ट्र से मशीनरी, मोटर साइकिलें, रसायनिक पदार्थ, दवाइयां, रंग, औजार, रबड़ तथा कांच का सामान और कागज की वस्तुएं लेता है। इनमें से जितनी कीमत का आयात भारत में इंगलैंड से होता है उसका ⅓ भाग तो मशीनों ही की कीमत होजाती है। १९४८-४९ में इंगलैंड ने भारत को १५२ करोड़ रुपये का माल बेचा और १९९ करोड़ रुपये का सामान भारत से खरीदा। नीचे की तालिका में हमारे आयात निर्यात व्यापार में इंगलैंड का भाग प्रतिशत में बताया गया है:—

वर्ष	आयात	निर्यात
१९०९-१० से १३-१४	६२·८%	२५·१%
११३८-३९	३०·५	३४·३
१९४५-४६	२५·३	२८·२
१९४९-५०	२६·६	२५·७
१९५०-५१	२१·७	२२·०

इंग्लैंड से हमारा व्यापार अब अनुकूल रहने लगा है। १९५० में हमारे व्यापार की बाकी केवल १ करोड़ रुपये की थी वहां १९५१ में यह बढ़ कर ५२ करोड़ की होगई।

(२) भारत आस्ट्रेलिया व्यापार (India-Australia Trade)—

१९३९ के पूर्व आस्ट्रेलिया एक कच्चे सामान उत्पन्न करने वाला देश मात्र था। उस समय वहां से हमारे यहां गेहूं, ऊन, फल, सोना, तथा दूध आदि वस्तुएं आती थीं। किन्तु द्वितीय महायुद्ध काल में इसकी औद्योगिक प्रगति बहुत हुई। अब तो यह एक औद्योगिक देश होगया है। इसके पास टैकनिकल सहयोग, पूंजीगत मशीनें तथा कच्चा माल बहुत बड़ी मात्रा में है। यहां से भारत को कागज, प्लैस्टिक प्लाईवुड, और चमड़े का सामान बनाने तथा ऊनी वस्त्र तैयार करने की मशीनें और अनाज, फल,/ घोड़े और ऊन निर्यात किया जा सकता है। इसके बदले में भारत से यहां लाख, तिलहन, मसाले, जूट का तैयार माल, बकरी की खालें और सूती वस्त्र आयात किए जा सकते हैं। नीचे की तालिका में आस्ट्रेलिया और भारत के बीच होने वाले व्यापार के आंकड़े प्रस्तुत किए गए हैं:—

वर्ष	आयात	निर्यात (करोड़ रुपयों में)	जोड़	व्यापार की बाकी
१६३८	२	३	५	+१
१६४६	२३·७	२४·५	४८	+१
१६५०	४१	२८	६६	−१३

न्यूजीलैंड से हमारे यहां ऊन, मक्खन, डिब्बे में जमा मांस, फल, दूध आदि आता है और उसके बदले में जूट का तैयार माल, चटाइयां, मसाले और सूती वस्त्र जाते हैं।

(३) ब्रह्मा से भारत का व्यापार (Indo-Burmese Trade)

भारत के विदेशी व्यापार में ब्रह्मा का बड़ा भाग रहता है। ब्रह्मा भारत के आयात का ५% माल भेजता है और भारत को कच्चा माल देने की दृष्टि से उसका स्थान दूसरा है। भारत बदले में अपने निर्यात का २% माल ब्रह्मा को भेजता है। इस प्रकार ब्रह्मा का व्यापार भारत के प्रतिकूल रहता है। ब्रह्मा भारत को चावल, पैट्रोल, लकड़ी भेजता है। ये तीनों सामान उसके आयात के ८५% होते हैं। भारत से जितना माल ब्रह्मा के लिए निर्यात किया जाता है उसका ४०% रुई और जूट का तैयार माल होता है। निर्यात में अन्य सामान लोहे की मशीन, चाय, शक्कर, तिलहन, कोयला आदि मुख्य हैं। १६५०–५१ में भारत में १८·७८ लाख रुपये का सामान, ब्रह्मा से आयात किया गया और २२·३५ लाख रुपये का माल भारत से निर्यात किया गया।

(४) भारत-जापान व्यापार (Indo-Japanese Trade)

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व जापान से हम अत्यधिक मात्रा में सूती, रेशमी कपड़ा, नकली रेशम, ऊनी कपड़ा, कांच और कागज का सामान, मशीनें, चीनी व मिट्टी के बर्तन, खिलौने, रबड़ और गटापार्चा का सामान, कच्चा रेशम, बिजली की मशीनें रंग और अन्य पदार्थ मंगाते थे और उसके बदले में कच्ची रुई, धातु, मैंगनीज, कच्चा लोहा, तिलहन और लाख आदि निर्यात करते थे। किन्तु युद्धोत्तर काल में जापान की आर्थिक स्थिति और व्यापार का नियंत्रण मित्र राष्ट्रों के सुप्रीम कमान्डर के हाथ में आ जाने से अब आयात निर्यात दोनों पर ही नियंत्रण लग गया। जापान और कामनवैल्थ के देशों के बीच एक व्यापारिक समझौता भी हुआ जिसमें भारत भी सम्मिलित था। इस समझौते के अनुसार भारत ने जापान से २६५ करोड़ पौंड की मशीनें, बिजली का सामान, सूती, ऊनी कपड़े, फैरो-एलाय, साइकिलें, सीने की मशीनें, आदि लेने का निश्चय किया। नीचे की तालिका में पिछले कुछ वर्षों का व्यापार बताया गया है:—

(करोड़ रुपयों में)

वर्ष	आयात	निर्यात	व्यापार की बाकी
१९३८–३९	१५	१५	—
१९३९–४०	१९	१४	—५
१९४०–४१	२२	९	—१३
१९४१–४२	१२	५	—७
१९४२–४३	३	—	—३
१९४९–५०	२५	—	—
१९५०–५१	७	—	—

(५) भारत और कनाडा का व्यापार India's Trade with Canada)

भारत और कनाडा दोनों ही कृषि-प्रधान देश हैं जिनकी औद्योगिक उन्नति क्रमशः हो रही है। इन दोनों देशों के बीच व्यापार उन्नति पर है। भारत से कनाडा को चाय, जूट का माल, खालें, सुपारी, वनस्पतिक तेल, मसूर, दालें, मसालें, नमदा, दरियां और पीतल का सामान निर्यात किया जाता है। अब तो सूती कपड़ा भी भेजा जाने लगा है। कनाडा से उपरोक्त माल के बदले गेहूं, मक्खन बनाने की मशीनें, लकड़ी तथा धातु का काम करने वाली मशीनें, खेती का सामान और मशीनें,बिजलीका सामान, गेहूं तथा आदि आता है। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व कनाडा से हमारे व्यापार का संतुलन हमारे पक्ष में रहता था कि युद्ध-काल में यह हमारे प्रतिकूल हो गया। यही वृति युद्धोत्तर काल में रही क्योंकि कनाडा दुलर्भ-मुद्रा का देश घोषित कर दिया गया। किन्तु रुपये के अवमूल्यन और नियंत्रण आदि के कारण अब कनाडा से हमारा व्यापार पुनः अनुकूल हो गया है जैसा कि नीचे की तालिका से ज्ञात होगा :—

(करोड़ रुपयों में)

वर्ष	आयात	निर्यात	जोड़	व्यापार की बाकी
१९३८	·७	२	३	+ १
१९४९	१४·०	९	२३	— ५
१९५०	१०·६	१२·८	२३·४	+ २

(६) संयुक्त राज्य अमेरिका का भारत से व्यापार (India–U. S. A. Trade)

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व हमारे व्यापार में संयुक्त राज्य अमेरिका का भाग बहुत थोड़ा होता था। १९३८–३९ में हमारे आयात का केवल ६% भाग अमेरिका से आया, और युद्ध काल में हमारे निर्यात का केवल १०% भाग अमेरिका को

जाता था किंतु युद्धोत्तर काल से ही अमेरिका के व्यापार में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। भारत का संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ व्यापार सदा ही अनुकूल रहा है। भारत अमेरिका के लिए कच्चा जूट और जूट का तैयार माल, बकरी तथा मेमने की खालें, लाख, सुपारी, चंदन की लकड़ी, नारियल के रस्से, सूत और चटाइयां, इल्मैनाइट धातु, चाय, तिलहन, और मसाले, सुपारी और गलीचों का ऊन निर्यात करता है। इस प्रकार का सामान जो अमेरिका को निर्यात किया गया वह १९४७ में ८४ करोड़ रुपये का था जब कि १९५० में यह मात्रा ११२ करोड़ रुपये हो गयी।

भारत अमेरिका से बदले में अपने देश के लिए मशीनें, टाइपराइटर, गेहूं और अन्य खाद्य पदार्थ, रसायनिक पदार्थ, तम्बाकू, धातु, मिट्टी का तेल, सूती कपड़ा और लम्बे रेशे वाली रुई, ट्रैक्टर, तेल निकालने की मशीनें, गैस-एंजिन, मोटर कारें, तथा उनका फुटकर सामान, दवाइयां और फैशन की वस्तुऐं, शराब और सूखा दूध आदि वस्तुएं मंगवाता है। भारत का व्यापार अमेरिका से सदैव ही अनुकूल रहा है किन्तु द्वितीय युद्ध के बाद यह प्रतिकूल हो गया। १९४८ में यह व्यापार ३५ करोड़ रुपये का प्रतिकूल रहा, १९४९ में ३१ करोड़ और १९५० में केवल २ करोड़ रुपये ही रहा। इस रकम को चुकाने के लिए १९४८ में भारत ने अन्तराष्ट्रीय मुद्रा कोष से ९२० करोड़ पौंड कर्ज लिया और १९४९ में रुपये का अवमूल्यन भी किया। अब हमारा व्यापार अमेरिका से अनुकूल रह रहा है। नीचे की तालिका में पिछले कुछ वर्षों का भारत-अमेरिका व्यापार बताया गया है :—

(करोड़ रुपयों में)

वर्ष	*आयात*	*निर्यात*	*व्यापार की बाकी*
१९३८–३९	१०	१४	+ ४
१९३९–४०	१५	२७	+ १२
१९४१–४२	३५	४६	+ ११
१९४२–४३	१९	२८	+ ९
१९४९–५०	८८	८१·५	— ६·५
१९५०–५१	११६	११२	— ४

नीचे की तालिका में व्यापार की मुख्य मदें बताई गई हैं :—

आयात	*कीमत* (करोड़ रुपयों में)	*निर्यात*	*कीमत* (करोड़ रुपयों में)
रुई	४०·६	चाय	८
धातुएं	६·५	मसालें	१४·४
मशीनें	१४·७	सुपारी	७
मोटरें	७·७	अभ्रक	७

रासायनिक पदार्थ	६·४	मैंगनीज	३·४
खनिज तेल	५·३	लाख	४·८
खाद	४·१	कच्चा चमड़ा	८·२
तम्बाकू	२·४	जूट का सामान	३०·०
अन्य पदार्थ	२८·१	अन्य माल	३०·६
योग	११५·८		११३·४

(५) भारत-पाकिस्तान व्यापार (Indo-Pakistan Trade)

देश के विभाजन के पश्चात पाकिस्तान के बन जाने के कारण हमारा व्यापार अब पाकिस्तान से भी होने लगा। पहले कुछ महीनों में जन संख्या के स्थानान्तर और साम्प्रदायिक दंगों के कारण व्यापार अच्छी तरह न चल सका, किंतु मई १६४८ में भारत और पाकिस्तान सरकार के बीच एक व्यापारिक समझौता हुआ जिसमें दोनों देशों ने निश्चित मात्रा में विभिन्न वस्तुऐं देने का वचन दिया। इस काल में भारत-पाकिस्तान व्यापार इस प्रकार रहा :—

(करोड़ रुपयों में)

निर्यात (प्राप्ति)		*आयात (भुगतान)*	
सूती वस्त्र और सूत	१७·५	कच्चा जूट	८०·२
जूट का सामान	६·८	कच्चा कपास	१७·३
कोयला	६·५	चमड़ा, बिनौले, सुपारी,	
सरसों का तेल	६·८	सिमेंट, नमक, फल, आदि	१६·६
तम्बाकू	४·६	सर्विसेज	·३
नकली रेशम	४·८		
अन्य (रासायनिक पदार्थ, दवाइयां लोहा)	३५·८		
जल, जलविद्युत	·५		
योग	८३·६		
हानि	३३·८		
	११७·४		११७·४

इस वर्ष भारत को ३४ करोड़ रुपये की हानि हुई। उपरोक्त समझौते के बावजूद भी पाकिस्तान ने निश्चित मात्रा में कोयला और सरसों के तेल के अलावा और कोई वस्तुऐं भारत से नहीं मंगवाई। इसके अतिरिक्त भारत को जाने वाले माल

पर भी अधिक ऊंची दरें लगादीं जिससे भारत को भी अपने निर्यात माल पर दरें लगानी पड़ी। भारत ने भी कुछ पाकिस्तान को न भेज कर दुर्लभ मुद्रा क्षेत्रों को निर्यात करना अधिक लाभदायक समझा। जून १९४९ में भारत और पाकिस्तान के बीच का व्यापारिक समझौता पुनः नये रूप में स्वीकृत किया गया। किन्तु इस समय भी कई कठिनाईयों के कारण समझौते की शर्तें पूरी नहीं की जा सकीं। इसी समय सितम्बर १९४९ में रुपये का अवमूल्यन किया गया जबकि पाकिस्तान ने अपनी मुद्रा को वैसे ही रक्खा। फल यह हुआ कि भारत के १४४ रु० का माल पाकिस्तान के केवल १०० रु० के बराबर ही होने लगा, इससे भारतीय माल पाकिस्तान को सस्ता मिलने लगा। अस्तु, भारत ने अपना माल पाकिस्तान को भेजने में रुकावट डाल दी और न ही पाकिस्तान से अधिक माल लिया जाने लगा। इस वर्ष भी भारत में ३५·४ करोड़ रुपये का माल पाकिस्तान से आयात हुआ किन्तु केवल २६·२ करोड़ रुपये का माल ही भारत से निर्यात किया गया। इस प्रकार व्यापार की बाकी भारत के विपक्ष में ९·२ करोड़ रुपये की रही। १९५० के अप्रेल महीने में एक व्यापारिक समझौता पुनः दोनों देशों के बीच में हुआ जिसके अन्तर्गत पाकिस्तान से ८ लाख जूट की गांठे भारत को देना निश्चित किया गया और इसके बदले में भारत से २०,००० टन जूट का तैयार माल, ४५,००० गांठे सूती कपड़े की और ७००० टन सरसों का तेल खरीदना निश्चित किया गया किन्तु यह समझौता भी सफलता पूर्वक नहीं चल सका। यह समझौता भी सितम्बर १९५० में समाप्त हो गया। एक समझौता पुनः १९५१ में स्वीकृत हुआ। नीचे की तालिका में दोनों देशों के बीच का व्यापार बताया गया है:—

	आयात (करोड़ रुपयों में)			निर्यात (करोड़ रुपयों में)				
	कच्चा जूट	कच्ची रुई	योग	सूती कपड़े	तेल	कोयला	तम्बाकू	योग
अप्रेल १९४८ से मार्च १९४९ तक	७१	·२	८५	५	३·४	·८	४	३०
अप्रेल १९४९ से दिसम्बर १९५० तक	१९	·९	२९	२·७	४·६	३·४	५	२७
जनवरी से दिसम्बर	१८	·३	३३	७·४	२·८	·०५	६	३१

(८) भारत और मध्यपूर्व के देशों के बीच का व्यापार (India–Middle East Trade)

शताब्दियों से भारत का व्यापारिक सम्बन्ध मध्यपूर्व के देशों से रहा है किन्तु इसका अधिक महत्व प्रथम महायुद्ध के पश्चात ही बढ़ा है जिस समय युद्ध में व्यस्त रहने के कारण यूरोपिय देश इनको माल नहीं भेज सकते थे अतः भारत के निर्यात

से इसकी पूर्ति की गई। मध्य-पूर्व के देश अधिकांश कृषि-प्रधान देश हैं जिनमें पशु-पालन, भेड़ें और घोड़े चराना तथा खेती करना ही मुख्य व्यवसाय है। इनमें कुछ देशों में खनिज तेल मिल जाने से इनका महत्व और भी अधिक बढ़ गया है। इन देशों से भारत कच्ची रुई, मिट्टी का तेल तथा छुहारे और गलीचे आदि मंगवाता है तथा बदले में सूती और जूट का तैयार माल, लोहा, चाय,मसाले आदि भेजता है।

भारतीय जूट के सामान के मुख्य खरीदार मिश्र, टर्की, और सूडान हैं। सूती कपड़े तो मध्यपूर्व के सभी देशों को जाते हैं। मिश्र, सूडान तथा केनिया से हमारा आयात व्यापार निर्यात व्यापार की अपेक्षा अधिक होता है। १६४६ में हमने इन देशों से ७१ करोड़ रुपये का माल खरीदा किन्तु केवल ३२ करोड़ रुपये का ही माल भारत से निर्यात किया गया। नीचे की तालिका में मध्य-पूर्व के देशों से होनेवाले व्यापार के आंकड़े प्रस्तुत किए गए हैं:— (करोड़ रुपयों में)

देश	१६३८ से ३६			१६४६ से ५०			१६५० से ५१		
	निर्यात	आयात	बाकी	निर्यात	आयात	बाकी	निर्यात	आयात	बाकी
मिश्र	१२६	२२१	—६५	७६४	३६४३	—३१४६	५८५	३२८	—२७०२
ईरान	८५	३५७	—२७२	४८२	३२४८	—२७६६	५६८	३६८१	—३०८३
केनिया	६०	५४०	—४०	६००	१५१२	—६१२	२७६	१३६२	—१११६

(६) भारत और जर्मनी के बीच का व्यापार (Indo-German Trade)

साधारण समय में भारत, जर्मनी से जो वस्तुऐं आयात करता है उसमें लोहे का सामान, मशीनें, कांच, तांबा, पीतल आदि का सामान, कागज, रंग, ऊनी वस्त्र, दवाइयां, नमक, और रासायनिक द्रव्य हैं। बदले में भारत जर्मनी के लिए कच्चा जूट, अनाज, दालें, रुई, तिलहन, चमड़ा, लाख, हड्डियें और सन निर्यात करता है। द्वितीय महायुद्धमें जर्मनीके साथ होने वाला भारतका व्यापार प्रायः बन्द सा था। अब भी यह व्यापार युद्ध के पहले की स्थिति तक नहीं पहुंच पाया है। इसका प्रधान कारण जर्मनी की वर्तमान आर्थिक और राजनैतिक परिस्थिति ही है। जर्मनी का उद्योग वर्तमान समय में युद्ध के पहले के ३६% स्तर पर हैं। १६४८ में भारत सरकार ने जर्मनी के व्यापारविकास के आसारों का अध्ययन करने के लिए एकप्रतिनिधि मंडल भेजा था। इसके फलस्वरूप १६४६ की जुलाई में भारत और जर्मनी के बीच एक व्यापारिक समझौता हुआ जिसके अनुसार भारत से मूंगफली, मसाले, तिलहन, चमड़ा रंगने और कमाने का सामान, मैंगनीज, अभ्रक, चंदन का तेल, गोंद, बनस्पतिकतेल, इलैमैनाइट, लाख, जूट, अंडी के बीज, नारियल का सूत, ऊन आदि वस्तुऐं जर्मनी को भेजीं जाती हैं। इनके बदले में जर्मनी भारत के लिए रासायनिक पदार्थ—दवाइयां, रंग, कांच का सामान, मशीनें और धातु का सामान, बिजली की मोटरें, ट्रैक्टर, सीने की मशीनें, बिजली का सामान, लोहे का सामान और औजार आदि निर्यात करता है।

नीचे की तालिका में भारत के व्यापार की दिशा बताई गई है:—

भारत का सामुद्रिक व्यापार (लाख रुपयों में)

देश	१९३८ आयात	१९३८ निर्यात	१९३८ व्या० की बाकी	१९४९ आयात	१९४९ निर्यात	१९४९ व्या० की बाकी	१९५० आयात	१९५० निर्यात	१९५० व्यापार की बाकी
कामनवेल्थ के देश									
योग	६५,१६	७४,६४	+६,४८	२८४,५२	२३०,७६	—५३,७६	२,३२	२,७३	+४१
इंग्लैंड	४२,१८	५५,२०	+७०,८	१७३,२८	१११,६६	—६१,६२	१,०७	११६	+ ८
आस्ट्रेलिया	२,०४	३,००	+ ९६	२२,२०	२४,९८	+२,२८	४०	२८	—१२
पाकिस्तान	—	—	—	२३,०४	१९,९२	— ३,१२	४	१४	+१०
कनाडा	७२	२,०४	+१,३२	१३,८०	९,१२	+४,६६	११	१३	+२
अन्य विदेश									
योग	८८,३२	८७,००	— २३२	३३७०८	१९४,४०	—१४२,६२	२६१	२५०	—१९
संयुक्त राज्य अमेरिका	३१,४०	३३,४४	+२,०४	६६,८४	६८,५२	— ३१,३२	१,००	९९	— १
मिश्र	२,६४	१,६९	—९५	४३,९२	६,३०	— ३७,६२	२७	७	—२०
ईरान	३,३६	७२	—२,६४	३०,६०	५,०४	— २५,५६	३७	५	—३२
ब्रह्मा	२२,६८	१०,०८	—१२,६०	१६,२०	९,३६	— ६,८४	१२	२३	+११
सम्पूर्ण योग	१५२,४८	१६१,६४	+८१६	६२,१६०	४२५,१६	—१९६,४४	५,०१	५२३	+२२

अध्याय ७

विदेशी व्यापार का विश्लेषण

ANALYSIS OF EXPORTS & IMPORTS

(क) निर्यात (Exports —

यहां हम भारत के निर्यात और आयात व्यापार का विश्लेषण करेंगे। भारत के प्रमुख निर्यात ये हैं*:—

निर्यात (करोड़ रुपयों में)

नाम पदार्थ	*१९४९–५०*		*१९५०–५१*	
प्रथम श्रेणी				
मछली	१·९१		२·४५	
फल और तरकारी	७·२४		१०·४५	
अनाज, दाल, आटा	०·०४		—	
मसाला	१८·५७		२४·५५	
चाय	७२·२४		७८·०७	
तम्बाकू	९·२५	११२·९०	१२·९०	१३०·८९
द्वितीय श्रेणी				
अधातु खान से निकलने वाले पदार्थ	७·३१		१०·२८	
गोंद, बिरोजा, लाख	८·९९		१३·५६	
कच्चा चमड़ा	६·९६		९·५६	
धातु	६·९५		६·९३	
तैल (वनस्पति व खनिज) पशु	८·८०		२४·६७	
बीज	१४·७९		१७·२४	
कपास	१९·२४		१७·३१	
कच्चा जूट	१५·७६		६	
ऊन	३·७१		७·४७	
अन्य रेशेदार पौधे	१·६५		१·२९	
अन्य वस्तुएं	३·८६	१०३·४६	११·६५	१२८·४५

* देखिये, Report on Currency and finance (1950-51)

तृतीय श्रेणी

कपास का सूत और तैयार माल	७०·५६		१२१·५१	
जूट का सूत और तैयार माल	१२४·७५		१११·२५	
ऊनी वस्त्र	३·६४		६०·०	
अन्य वस्तुएं	१०·६४	२४०·१६	३१·६३	३०६·०५
सम्पूर्ण योग		४५१·५१		५५६·८६

(१) कपास (Raw and waste Cotton)

भारत में दो प्रकार की कपास पैदा की जाती है। अस्तु कपास उत्पन्न करने वाले क्षेत्र दो भागों में बांटे जा सकते हैं। एक वे जो लम्बे रेशे वाली (long-staple Cotton) उत्पन्न करते हैं। ऐसे भाग गुजरात, काठियावाड़ के कुछ भाग, दक्षिणी बम्बई, और मद्रास के कुछ भाग हैं; छोटे रेशे वाली देशी कपास के मुख्य उत्पादक उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बरार, मध्य भारत और राजस्थान हैं। सम्पूर्ण भारत में १७% छोटे रेशेवाली (६/८" से भी कम), ५०% मध्यम रेशेवाली (७/८" से १ १/८" तक) और २३% लंबे रेशेवाली (१" से भी अधिक) पैदा की जाती है। प्रमुख प्रकार की कपास ये हैं—भडौंच, धौलेरा, ऊमरा, कम्पटा, कम्बोडिया, धारवाड, बंगाल, अमेरिकन, काम्मिला आदि। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व भारत से २४ करोड़ रुपये की कपास जापान, ब्रिटेन, जर्मनी, इटली और बेलजियम आदि देशों को निर्यात की जाती थी। किंतु युद्ध काल से निर्यात की जाने वाली मात्रा में बहुत कमी हो गई है इसका मुख्य कारण देश में ही सूती वस्त्रों के कारखानों की वृद्धि हो जाने से कपास की खपत उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। थोड़ी बहुत मोटे रेशेवाली कपास का निर्यात इंग्लैंड, अमेरिका, इटली और जापान को होता है। १९४७ में पाकिस्तान के निर्माण के बाद लंबी रेशेवाली कपास के प्रमुख क्षेत्र (जो सिंध और पंजाब में होती थी) हमारे हाथ से निकल गए अस्तु उत्तम श्रेणी की कपास भी हमें विशेषतः मिश्र; सूडान, केनिया और पाकिस्तान से लेनी पड़ती है। नीचे की तालिका में भारत से निर्यात की गई कपास का ब्यौरा दिया गया है:—

वर्ष	*मात्रा (००० टनों में)*	*मूल्य (करोड़ रुपयों में)*
१९३८–३९	४८३	२३·८६
१९३९–४०	५२६	३०·११
१९४०–४१	३८७	२३·५६
१९४१–४२	२५७	१९·९५
१९४२–४३	—	५·५८

१६४६–५०	४८	४६.०
१६५०–५१	३६	११७.०

(२) सूती वस्त्र (Cotton manufactures)

भारत में सूती कपड़ों के कारखाने विशेषत: बम्बई, मद्रास, उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बंगाल, मध्य प्रदेश तथा मध्य भारत में हैं। बम्बई प्रान्त, बम्बई और अहमदाबाद नगरों की मिलों में समस्त देश के उत्पादन का आधा सूत और ३/४ वस्त्र उत्पन्न करते हैं। भारतीय मिलें जो सूत तैयार करती हैं वह बहुत मोटा होता है। अधिकांश सूत ३० नम्बर से कम का होता है। ४० नम्बर से ऊपर का सूत तो बहुत ही कम बनाया जाता है। इसका मुख्य कारण यह कि भारत में अच्छी और लंबी रेशेवाली कपास का उपयोग कम किया जाता है। भारत में कई प्रकार का मोटा और बारीक उम्दा कपड़ा—धोतियां, मलमल, वायल, चद्दर, लट्ठा, शर्टिंग, कोटिंग; ड्रिल, खाकी, छींटें, जीन, आदि-तैयार किया जाता है। यद्यपि अच्छे कपड़े के लिए भारत अब भी विदेशों पर निर्भर है किंतु फिर भी देश में तैयार किया गया कपड़ा हिंद महासागर के किनारे वाले देशों—ईरान, ईराक, अरब, पूर्वी अफ्रीका, दक्षिणी अफ्रीका, मिश्र, सूडान, टर्की, चीन, स्ट्रेट्स सैटलमैंट, हिंद-एशिया, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, लंका आदि देशों-को निर्यात किया जाता है। द्वितीय महायुद्ध काल में जब जापान, इंग्लैंड और संयुक्त राज्य अमेरिका से इन देशों को सूती कपड़ा मिलना असंभव हो गया था तभी से भारत ने इन देशों की पूर्ति आरंभ की। १६३६–४० में भारत से २,००० लाख गज कपड़ा निर्यात किया गया। १६४२–४३ में ८,१६० लाख, १६४३-४४ में ७,८०० लाख, १६४५–४६ में ४,६०० लाख गज, १६४६–४७ में ३,८०० लाख, १६४७–४८ में १,६२० लाख, १६४८–४६ में ३,४१० लाख और १६४६–५० में ६,६०० लाख तथा १६५०–५१ में ११,१६० लाख गज कपड़ा विदेशों को निर्यात किया गया। इस प्रकार १६३८–३६ में जहां २४ करोड़ रुपये की लागत का सूती माल विदेशों को निर्यात किया गया वहां १६४६–५० में १८ करोड़ और १६५०–५१ में भी १८ करोड़ रुपये का कपड़ा निर्यात हुआ।

(३) कच्चा जूट (Raw Jute)

संसार का ६७% जूट भारत में पैदा होता था किन्तु विभाजन के फलस्वरूप अब भारत में सम्पूर्ण अविभाजित भारत की पैदावार का केवल २३% ही जूट पैदा होता है। अधिकांश जूट गंगा और ब्रह्मपुत्र की घाटी और डेल्टों में पैदा किया जाता है किन्तु जूट की मिलों को जूट की बड़ी कमी हो गई है क्योंकि जूट के समस्त मिल भारत में और जूट पैदा करने वाला प्रमुख क्षेत्र पाकिस्तान में है। अब मिलों की

बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिये कई प्रान्तों में जूट की उपज बढ़ाई जा रही है। भारतीय जूट के प्रमुख खरीदार ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका, फ्रांस, ब्राजील, अर्जेनटाइना, ईटली, बेलजियम और स्पेन हैं। ब्रिटेन ६ करोड़ रुपये, संयुक्त राज्य अमेरिका ४ करोड़ रुपये का जूट भारत से खरीदता है। नीचे की तालिका में जूट का निर्यात बताया गया है :—

१६३८-३६	६६० हजार टन	१३·४ करोड़ रुपये
१६३६-४०	५७० ,,	१६·८ ,,
१६४०-४१	२४३ ,,	७·८५ ,,
१६४१-४२	३१७ ,,	१०·४७ ,,
१६४२-४३	—	६·०१ ,,
१६४६-५०	—	१५·७६ ,,
१६५०-५१	—	६·०० ,,

(४) जूट का सामान (Manufactured Jute)

भारत में ११२ जूट के मिल हैं जिनमें से ६७% कलकत्ता और शेष मद्रास, उत्तर प्रदेश आदि में हैं। इन मिलों में जूट के बोरे (Gunny bags), टाट (hessians), मोटे कालीन और फर्शपोश, गलीचे तथा रस्से (Cordage) और तिरपाल (Turpulire) आदि बनाये जाते हैं। भारतीय जूट के सामान के मुख्य खरीदार संयुक्त राज्य अमेरिका (४६%), इङ्गलैंड (१८%), अर्जनटाइना (१८%) तथा आस्ट्रेलिया (१८%) है। भारत से टाट और बोरे मिश्र, लिवेंट, दक्षिणी अमेरिका (ब्राजील और अर्जेनटाइना), दक्षिण और पश्चिम अफ्रीका, जावा, कनाडा, क्यूबा, आस्ट्रेलिया, फ्रांसीसी इंडोचीन, तथा जापान को जाते हैं। नीचे की तालिका में जूट के सामान (बोरे टाट आदि) का निर्यात बताया गया है:—

	जूट के बोरे	टाट	योग
		(मूल्य ००० रु० में)	
१६३८—३६	१२·४५	१३·५८	२६·०३
१६३६—४०	२५·४५	२२·७५	४८·२०
१६४०—४१	२०·३१	२३·३७	४३·६८
१६४१—४२	—	—	५३·७२
१६४२—४३	—	—	३६·३८
१६४६—५०	—	—	१४६·३१
१६५०—५१	—	—	११३·८६

वर्तमान समय में जूट के निर्यात माल पर कई बातों का प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। कई देशों में नये प्रकार के रेशों का प्रचार बढ़ रहा है। उदाहरणार्थ,

न्यूजीलैंड में टिनैक्स (Tenax) नामक रेशे के बोरों में ऊन भरा जाता है। रूस और अर्जेनटाइना में अलसी के रेशे बोरे बनाने में व्यवहृत किये जाते हैं। कनाडा, सयुक्त राज्य अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका और आस्ट्रेलिया में कागज और कपड़े के बोरे ही काम में लिए जाने लगे हैं। पूर्वी अफ्रीका में सिसल (Sisal), मैक्सिको में हैरेक्वीन (Herequin), कोलंबिया में फिक (Fique), ब्राजील में कैरोआ (Caroa), स्पेन में एस्पार्टो घास (Esparto grass), इटलीमें जूलीटल (Julital) और जावा में रोसेला (Rosella) नामक विभिन्न प्रकार के रेशों से बोरे बनाये जाने लगे हैं। किन्तु अभी तक भारत के जूट के बने बोरों से किसी भी अन्य प्रकार के बोरे लाभदायक सिद्ध नहीं हुए हैं। कई देशों में तो जूट ही उत्पन्न किया जाने लगा है। किन्तु फिर भी विश्व के प्रमुख कृषि-उत्पादक देशों में भारतीय जूट के बोरों की मांग ही अधिक है। इन विभिन्न रेशे वाले पौधों की उत्पत्ति के साथ २ कनाडा व संयुक्त राज्य अमेरिका में फसलों को इकट्ठा करने के यांत्रिक तरीके (Elevators) काम में लाये जा रहे हैं, तथा यातायात और बन्दरगाहों पर ढेरों के रूप में माल इकट्ठा किया जाने लगा है, जिनमें बोरों की आवश्यकता नहीं पड़ती। अस्तु जूट और जूट के सामानों के नए प्रयोग निकाले गए हैं जिनसे जूट के व्यापार में और भी वृद्धि होने की संभावना है। जूट के कुछ नए प्रयोग ये हैं—मकान बनाने में, प्लास्टिक की वस्तुऐं, गलीचे, कम्बल, दीवारों के पर्दे, मोटरों के गद्दे, वाटर-प्रूफ सामान, तिरपाल, कैनवास, रस्से, बिजली के तारों में प्रयोग, रुई और ऊन के साथ मिश्रित कर कपड़े आदि बनाने में किया जाता है। नीचे की तालिका में जूट के तैयार माल का निर्यात बताया गया है:—

जूट के तैयार माल का निर्यात १९५०–५१ में (लाख रुपयों में)

देश	बोरे	टाट	योग
इङ्गलैंड	१,५६	४,४१	५,९७
आस्ट्रेलिया	११,७०	१,८१	१३,५१
ब्रह्मा	२,२१	—	२,२१
पूर्वी अफ्रीका	१,५३	—	१,५३
मिश्र	२,७९	७०	३,४९
अर्जेनटाइना	—	९,०१	९,०१
संयुक्त राज्य अमेरिका	१५	३०,०९	३०,२५
योग	५२,९२	५२,२५	१०५,१७

(५) चाय (Tea)

चीन को छोड़ कर भारत दुनिया में सभी देशों की तुलना में अधिक चाय उत्पन्न करता है। यहां चाय की उत्पत्ति का ५५%, आसाम, २३% पश्चिमी बंगाल

१७% दक्षिणी भारत, और ३% उत्तर प्रदेश, बिहार और पूर्वी पँजाब में होता है। यह चाय काली होती है किन्तु पूर्वी पंजाब की चाय प्रायः हरे रंग की होती है। भारत में चाय की खपत कम है अतः भारतीय चाय की कुल उपज का लगभग ७५% विदेशों को निर्यात कर दिया जाता है। भारत से चाय का निर्यात ७०% इङ्गलैंड को, १२% संयुक्त राज्य अमेरिका को, ७% कनाडा, ५% आस्ट्रेलिया और ४% मध्य पूर्व के देशों को होता है। ७५% चाय कलकत्ता और २५% चाय मद्रास के बन्दरगाह से निर्यात की जाती है। नीचे की तालिका में चाय का निर्यात बताया गया है:—

वर्ष	*मात्रा* (००० पौंड में)	*मूल्य* (करोड़ रुपयों में)
१९३८–३९	३,४८,०५०	२३.३९
१९३९–४०	३,५६,३९४	२६.३१
१९४०–४१	३,४८,८६२	२७.७५
१९४१–४२	३,८२,७९७	३९.३२
१९४२–४३	——	३१.६१
१९४९–५०	४९२,०००	७९.००
१९५०–५१	३७६,०००	७०.००

(६) तिलहन (Oilseeds)

तेल बीज उत्पन्न करने वाले देशों में भारत का स्थान प्रमुख है, जैसा कि नीचे की तालिका से ज्ञात होगा। यहां केवल सोयाफली, जैतून और ताड़ को छोड़ कर सभी प्रकार के तेल बीज पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न किए जाते हैं:—

तेल बीज	*भारत का भाग प्रतिशत में*
महुआ	१००
बिनौले	१
तिल	३
रेंडी	९८
सरसों	३६
मूंगफली	२९
अलसी	१३
पोश्त	७५
जीरा	१००

भारत में तिलहन की उत्पत्ति के प्रमुख क्षेत्र मध्य प्रदेश (अलसी), मद्रास, बम्बई और हैदराबाद (मूंगफली), उत्तर प्रदेश और पूर्वी पंजाब राई, तथा तिल राजस्थान और समस्त दक्षिणी भारत में होते हैं। पहले तेल-बीजों का निर्यात अधिक

मात्रा में किया जाता था किन्तु अब देश में ही तेल निकालने के कारण केवल खली ही अधिक मात्रा में निर्यात की जाने लगी है। नीचे की तालिका में तेल-बीज और तेलों का निर्यात बताया गया है:—

	१९३८	१९४९	१९५०
तिलहन	१५ करोड़ रुपये	६ करोड़ रुपये	१८ करोड़ रुपये
तेल	१ ,,	८ ,,	१३ ,,

भारत से मूंगफली का निर्यात फ्रांस, बेलजियम, आस्ट्रीया, हंगरी, जर्मनी, इटली और इङ्गलैंड को होता है। अलसी इटली, फ्रांस, हौलैंड, बेलजियम और इंग्लैंड को भेजी जाती है। भारत से तिल का तेल इंग्लैंड, मारीशस, अरब, लंका, फ्रांस, मिश्र, जर्मनी, बेलजियम और इटली को भेजा जाता है। रेंडी और रेंडी का तेल, फ्रांस, संयुक्त राज्य अमेरिका, इटली, जर्मनी, स्पेन, कनाडा, और बेलजियम को निर्यात किया जाता है।

(७) तम्बाकू (Tobacco)

विश्व में तम्बाकू उत्पन्न करने वाले देशों में भारत का स्थान दूसरा है। भारत में यह दो क्षेत्रों में उत्पन्न की जाती है। पूर्वी क्षेत्र में बिहार, उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बंगाल तथा दक्षिणी क्षेत्र में मद्रास, मैसूर और बम्बई के राज्य सम्मिलित हैं। तम्बाकू की पैदावार का भारत में ५०% बीड़ी, सूंघनी, सिगरेट तथा चुरुट के रूप में खप जाता है अतः थोड़ी ही तम्बाकू कलकत्ता, मद्रास तथा बम्बई के बन्दरगाहों से इंग्लैंड, अदन, जापान, बेलजियम और नीदरलैंड को निर्यात की जाती है। भारत से १९३८-३९ में २·७ करोड़ रुपये की लागत की तम्बाकू विदेशों को निर्यात की गई। १९३९-४० में ३·६ करोड़ रुपये; १९४१-४२ में २·६ करोड़ रुपये १९४१-४२ में २·२० करोड़; १९४२-४३ में १·४६ करोड़ और १९४९-५० में १० करोड़ तथा १९५०-५१ में १६ करोड़ रुपये की तम्बाकू निर्यात की गई।

(८) चमड़ा कच्चा और कमाया हुआ (Hides & Skins-Raw & Tanned)

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व भारत से काफी बड़े परिमाण में कच्चा चमड़ा विदेशों को निर्यात किया जाता था किन्तु युद्ध काल में जहाज आदि न मिलने की कठिनाई के कारण यह मात्रा क्रमशः कम हो गई। इसके अतिरिक्त भारत में ही चमड़ा कमाने के कारखानों की स्थापना हो चुकी है, अस्तु अब कमाया हुआ चमड़ा ही अधिक मात्रा में निर्यात किया जाने लगा है। भारत के चमड़े की अधिक मांग इंग्लैंड, अमेरिका, जर्मनी और फ्रांस में है। नीचे की तालिका में चमड़े का निर्यात बताया गया है।

(करोड़ रुपयों में)

वर्ष	कच्चा चमड़ा	कमाया हुआ चमड़ा
१९३८-३९	३·६६	४·४४
१९३९-४०	३·९६	६·३६
१९४०-४१	३·०४	४·८४
१९४१-४२	४·६३	५·६३
१९४२-४३	३·३२	४·८२
१९४९-५०	६·३०	१५·०
१९५०-५१	९·००	२३·०

(ख) आयात (Import)

भारत में, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, विदेशों से अब बहुधा पूंजीगत वस्तुएं ((Capital goods) ही आयात होते हैं। थोड़ा बहुत वस्त्र आदि भी विदेशों से हमारे यहां आता है। पिछले कुछ वर्षों से भारत में अनाज की कमी पड़ जाने से हम अधिकाधिक मात्रा में संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, अर्जेनटाइना, आस्ट्रेलिया, ब्रह्मा, पाकिस्तान, टर्की, रूस, ईटली आदि देशों से अनाज मंगाने लगे हैं। यही कारण है कि हमारे आयात व्यापार का मूल्य बढ़ रहा है। नीचे की तालिका में मुख्य २ आयात के आंकड़े प्रस्तुत किए गए हैं—

आयात (करोड़ रुपयों में)

नाम वस्तु	१९४९-५०		१९५०-५१	
प्रथम-श्रेणी:				
फल और तरकारी	५·६९		९·४५	
अनाज और आटा	९९·५५		७८·१५	
प्रोविजन्स	७·६९		५·८०	
तम्बाकू	२·२३	१२२·३६	२·७६	१०४·१४
द्वितीय-श्रेणी:				
अधातु खान से निकलने वाले पदार्थ	२·७१		२·९६	
सब प्रकार के तेल	५१·१९		५९·२४	
कपास	५६·८४		१००·४९	
कच्चा ऊन	३·०४		५·५५	
अन्य	७·०२	१३८·८८	२८·२४	१९६·४८

तृतीय-श्रेणी:

रासायनिक पदार्थ-दवाइयां आदि	१६·१३		१६·२६	
चाकू, छुरी	१५·४२		१४·३४	
रंग	११·११		१०·६०	
बिजली का सामान	१३·०२		१०·६८	
मशीनें	१०५·५२		८४·३७	
धातु, लोहा-स्पात	१६·७०		१७·५६	
अन्य धातु	१८·१६		२७·७५	
कागज और स्टेशनरी	६·७१		१०·४०	
मोटर	२३·२६		२३·६३	
सूती और सूती वस्त्र	१८·४१		२·३६	
ऊनी और सूती कपड़े	५·६८		१·६५	
अन्य वस्त्र	१६·०५		१५·७१	
अन्य वस्तुएँ	१५·५७	७८८·५८	——	२५८·०३
सम्पूर्ण योग		५४७·५७		५६०·८३

भारत के मुख्य २ आयात ये हैं:—

(१) सूती वस्त्र और कपास

सूती कपड़े ब्रिटेन, जापान, चीन, स्वीटजरलैंड, हौलेंड, फ्रांस, इटली और जर्मनी से आते हैं किन्तु हमारे मुख्य विक्रेता ब्रिटेन और जापान हैं।

कपास विशेषतः मिश्र, केनिया, सूडान, पाकिस्तान और संयुक्त राज्य अमेरिका से मंगवाया जाता है।

(२) लोहा और स्पात का सामान और मशीनें

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात से ही हमारा मशीनों का आयात बढ़ रहा है यह इस बात का संकेत है कि भारत में उद्योग-धन्धों की उन्नति हो रही है। हमारे यहां लोहे का सामान और मशीनें मुख्यतः ब्रिटेन, अमेरिका, जर्मनी, वेलजियम, फ्रांस और जापान से आती है। १६५०-५१ में १४४० करोड़ रुपये का लोहे का सामान विदेशों से आया।

(३) मोटर-कार आदि

ये दोनों भारत में मुख्यतः ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, इटली और जर्मनी से आती हैं। १६५०-५१ में २३·६२ करोड़ रुपये की मोटरें आई।

(४) कागज

भारत में कागज ब्रिटेन, नार्वे, स्वीडेन, संयुक्त राज्य अमेरिका और जर्मनी से आता है। १९५०-५१ में १०·४० करोड़ रुपये का कागज विदेशों से आयात किया गया।

(५) रेशमी कपड़े

जापान, चीन, फ्रांस, इटली आदि देशों से आते हैं।

(६) रासायनिक पदार्थ

ये ब्रिटेन, जर्मनी, जापान, संयुक्त राज्य अमेरिका से आते हैं। सन् १९५०–५१ में भारत ने १९·३० करोड़ रुपये के रासायनिक पदार्थ विदेशों से मंगवाये।

(७) मिट्टी का तेल

भारत में मिट्टी का तेल ब्रह्मा, ईरान, चीन, बोर्नियो, सुमात्रा और संयुक्त राज्य अमेरिका से आता है।

अध्याय ८

भारत के व्यापारिक समझौते

INDIA'S TRADE AGREEMENTS

शाही-महत्ता-अथवा-प्रधानता—शाही प्रधानता से तात्पर्य यह है कि जहां तक सम्भव हो संरक्षण की दीवालों को तोड़कर साम्राज्य के व्यापार को विस्तृत करने का प्रयत्न करना। यह विचार इस क्षेत्र में काफी समय से कार्य कर रहा है। यह अपने पुराने ढंग से १७ वीं १८ वीं सदी में हालैंड में प्रयोग में लाया जा रहा था। नवीन पद्धति में सरकार किन्हीं भागों को संरक्षण की स्वतंत्रता देती है और साम्राज्य के पदार्थों के लिये स्वाभाविक सुविधा की मांग करती है। अतः इस प्रचार का यह कहना था कि यह प्रधानता न संरक्षण का रूप धारण करती है और न अन्य किसी प्रकार का।

सन् १६०३ में भारत में शाही प्रधानता की बात सरकारी तौर से पहली बार घोषित की गई। इस प्रकार की स्थिति को देखते हुए सरकार ने यह निर्णय किया कि संरक्षण स्थापन साम्राज्य के व्यापार व्यवसाय में बाधा उपस्थित करेगा। भारत ऋणी था, इस रूप में कुछ रकम इंगलैंड के लिये सुरक्षित रख ली जाती थी। वह निर्यात की मात्रा आयात से अधिक रख कर प्राप्त की जाती थी। इस बात का भी खतरा था कि यह विदशी सरकारों द्वारा नष्ट हो सकता था। लार्ड कर्जन ने कहा था 'भारत में कुछ वस्तुएं हैं पर बहुत ज्यादा नहीं जो साम्राज्य को दी जा सकती है। उसे पाने में कम हैं। अतः वह खोता है अपेक्षाकृत प्राप्त करने के। बाद में भी समय समय पर सरकार ने लगातार साधारण उत्तमता का विरोध किया।

भारतीय आर्थिक आयोग ने सन् १६२६ में इस प्रश्न के संबंध में विचार किया। उसने इस बात का संकेत किया कि यह शाही प्रधानता की नीति आयात के लिये अधिक लाभकर है बनिस्बत निर्यात के। उनका यह विचार था कि 'भारत पर एक संरक्षण भार रखा जा रहा है जिसमें भारतीय स्वार्थ न हो कर विदेशी स्वार्थ है। सन् १६१४–१८ में साम्राज्य शक्ति को केन्द्रित करने की विचारधारा ने इतना जोर पकड़ा कि जिसके कारण आर्थिक-आयोग ने यद्यपि अपने तर्कों के विपरीत भी, जिसमें इन्होंने यह सिद्ध किया था कि शाही प्रधानता भारत के लिये हानिकारक है और उपभोक्ताओं पर बुरा असर पड़ता है, कुछ पदार्थों में फिर भी शाही प्रधानता

का समर्थन किया जिसका लाभ इंगलैंड को होने जा रहा था। जो पदार्थ संरक्षण आयोग व विधान मंडल की स्वीकृति से निर्धारित (स्वीकार) किये जाँय। उन्होंने यह कहा कि हम इस स्थिति में नहीं है कि भारत पर नैतिकता का अधिक प्रदर्शन किया जाय। भारत कितनी भी छोटी वस्तु यदि भेंट करता है तो वह मित्रता के लिये एक बढ़ावा है और वह यह सिद्ध करता है कि वह साम्राज्य का एक सदस्य है।"

यद्यपि सरकारी प्रतिनिधियों ने इस बात का समर्थन किया कि किसी प्रकार की प्रधानता भारत के लिये ठीक नहीं इतने पर भी भारत सरकार ने सन् १९२७ में ब्रिटिश फौलाद के आयात और सन् १९३० में सूती वस्त्र को सुविधा व महत्ता प्रदान की। अतः भारत ने भी उसी मार्ग का अनुसरण किया जो साम्राज्य के अन्य अंगों ने १९२० से पूर्व किया था।

सन् १९३८ का ओटावा समझौता—सन् १९३२ में भारतीय आर्थिक नीति ब्रिटिश आर्थिक नीति में परिवर्तन के परिणाम स्वरूप परिवर्तित हो गई। इंगलैंड ने ओटावा में स्वतंत्र व्यापार व प्रधानता की नीति को छोड़ने का निश्चय किया। यदि भारत इंग्लैंड का अनुसरण नहीं करता है तो उसे नुकसान है। "ओटावा समझौते ने इंगलैंड और भारत के मध्य एक बीमे का कार्य किया कि जिससे बाजारों में नुक्सान न हो।" भारत को संभवतः हानि उठानी पड़ती यदि इसका अनुसरण न करता। भारत का निर्यात माल ब्रिटिश माल की प्रतिस्पर्द्धा में खड़ा होता और ब्रिटिश संरक्षण आयोग यदि भारत ओटावा समझौते को न मानता तो उसे टिकने न देते वा मार्ग में बाधाएं उपस्थित कर देते।

इस प्रस्ताव को भारतीय विधान मंडल ने सन् १९३२ में तीन साल के लिये मान्यता दे दी। इसके परिणाम स्वरूप भारत को मोटर आदि के समान पर ७½% और अन्य सामान पर १०% प्रधानता देनी पड़ी। इस प्रकार साम्राज्य के अलावा देशों के माल स्प्रिट, इत्र, बल्ब, आदि का कर जहां ५०%, वहां इंगलैंड के का ४०% होता था। ब्रिटिश मोटरों को ३०% वहां अन्य को ३७½%। इसके अलावा बचे हुए को २०% प्रधानता दी गई। वहां इंगलैंड ने भारत को १०% छूट और कुछ पदार्थ स्वतन्त्र (बिना कर) कर दिये, इस नियम व समझौते को विधान मंडल ने सन् १९३६ में समाप्त कर दिया परन्तु उसी साल वह नया हो गया। इसके पश्चात वह १९३९ तक जारी रहा जब कि भारत ब्रिटिश-व्यापार समझौते ने इसका अन्य रूप धारण कर के स्थान ले लिया।

ओटावा-समझौते के भारत पर प्रभाव—यह एक विवादास्पद वस्तुस्थिति थी कि ओटावा-समझौते से भारत को लाभ हुआ या हानि। जहां सरकारी विचार धारा का प्रश्न है, वह इस समझौते को भारत के लिये अत्यधिक कल्याणकारी समझती थी, वहां राष्ट्रीय विचार वाले व्यक्ति बिल्कुल इसके विरुद्ध थे।

भारतीय निर्यात और विदेशी (इंगलैंड) आयात स्वभावत: बढ़े। परन्तु यह एक अतिशयोक्ति पूर्ण विचार है। अत: हमारे लिये यह सरल कार्य नहीं है कि यदि यह समझौता न हुआ होता तो भारत की क्या स्थिति होती? इसके साथ ही जिस समय समझौता हुआ वह जारी रहा वह समय साधारण समय नहीं था। उस समय सारे विश्व की आर्थिक हालत असन्तुलित थी। उस समय एक विश्व व्यापी आर्थिक (गिरावट) संकट आया। हर एक यूरोप के राष्ट्र में आर्थिक राष्ट्रीय भावनाएं बलवती हुईं। सिक्के अधिक निकाले गये। अत: ऐसे समय में जब कि विश्व की स्थिति इस प्रकार शोचनीय थी, यह सोचना कि भारत पर इस समझौते का क्या प्रभाव पड़ा असम्भव है।

डा० मदन का विचार जो अंकों से सिद्ध है कि समझौता 'भारत के लिये बीमे के सदृश था, सरकारी राय यह है कि भारत ने जितना दिया उससे अधिक पाया। यह लाभ अत्यधिक था। जिन वस्तुओं में भारत ने अधिक लगाया था वह चाय, चावल, तम्बाकू और जूट का सामान था। बाकी के अन्य पदार्थों में अधिक लाभ नहीं हुआ। उसके विरुद्ध ब्रिटिश वस्तुएं जिन्हें यहां पर प्रधानता दी गई थी उनकी संख्या १६२ थी और उन्होंने भारतीय उद्योगों के खर्चे पर ही लाभ कमाया। भारतीय माल जो इंगलैंड भेजा जाता वह वहां के बने किसी माल से प्रतिस्पर्धा नही कर सकता था वहां दूसरी ओर वे ब्रिटिश उद्योगों को सहायता देते थे।

इसके साथ ही यह भी बात याद रखने योग्य है कि जो भी प्रधानता चावल की हुई जिसके कारण लाभ हुआ। यह ब्रह्मा का चावल था और चाय, जूट पर जो लाभ हुआ वह विदेशी (ब्रिटिश) उत्पादकों को जो आसाम के चाय बाग व कलकत्ते के उद्योगों के स्वामी थे। हम यह कह सकते हैं कि ओटावा समझौते से हमारी स्थिति ऐसी हो गई कि हमें दोनों ओर से नुकसान ही रहा। वह समझौता इच्छा रहित मन से व विधान मंडल द्वारा वाइसराय के नेतृत्व में पास किया गया। हमें साम्राज्य के अन्य देशों से व्यापार करने को विवश किया गया। अत: उसका परिणाम यह हुआ कि हमारे हाथ से अमेरिका, जापान आदि का बाजार धीरे २ जाने लगा। हां संभवतया यह व्यापारिक समझौता तब अधिक सफल समझा जाता यदि हमारा व्यापार अन्य देशों से चालू रहता।

ओटावा समझौता औद्योगिक सहकारिता का संकेत देता है। यह सहयोग जो कि साम्राज्य की प्रधान योजना का आधार है कि जिसके कारण इंगलैंड भारत का औद्योगिक विकास में सहायक हो कारण कि भारत अपना औद्योगिक विकास कर रहा है और इंगलैंड को उन चीजों की—मशीनों के पुर्जे व अन्य सामान जो यहां पैदा नहीं होता है—भारत में भेजना चाहिये कि जिनकी भारत को अपने औद्योगिक विकास के लिये आवश्यकता है। जब भारत इन वस्तुओं का

निर्माण करने लगे इंग्लैंड को अपनी पूर्ति को परिवर्तन करना चाहिये। भारतीय बाजार बहुत बड़ा है। भारतीय आर्थिक जीवन में सुधार होने के साथ ही यहां पर अच्छे पदार्थों की आवश्यकता बढ़ेगी और इस प्रकार परिवर्तनशील पदार्थों की पूर्ति इंगलैंड द्वारा की जा सकती है। इंगलैंड का स्वेच्छा से चला जाना और भारतीय गणतंत्र का ब्रिटिश कामनवेल्थ में रहने का निर्णय दोनों के व्यापारिक सम्बन्धों को अच्छा बना सकता है। औद्योगिक सहयोग समान उत्तरदायित्व व सुविधाओं के आधार पर ही स्थापित हो सकता है।

मोदी लीज समझौता (बम्बई-लंकाशायर समझौता) १६३३—एक सूती ब्रिटिश (मिशन) शिष्ट मण्डल सर विलियम क्लेअर लीज के नेतृत्व में भारत आया। वह सितम्बर १६३३ में बम्बई में पहुंचा। इसने सर एच० पी० मोदी जो कि बम्बई मिल मालिकों की सभा के अध्यक्ष थे एक समझौता किया। इस समझौते से (संरक्षण के अन्तर्गत प्रधानता) इंग्लैंड को विभिन्न प्रकार के लाभ हुए और यह भी व्यवस्था की गई कि भारतीय माल साम्राज्य व अन्य सूदूर पूर्व देशों में तथा देश में विस्तार पाये। इसके साथ ही यह भी प्रतिज्ञा की गई कि भारतीय कपास का लङ्काशायर मिलों व कारखानों में उपयोग हो। यह समझौता पुनः सन् १६३५ में भारत-ब्रिटिश व्यापार समझौते के अन्तर्गत मिला लिया गया।

उपभारत-ब्रिटिश व्यापारिक समझौता १६३५—जनवरी १६३५ में एक सहायक समझौता भारत और इंगलैंड के बीच सम्पन्न हुआ। वह सन् १६३२ का नवीन संशोधित रुप था जिससे कि ब्रिटिश उद्योग को भारत में और भी सुविधाएं प्रदान की गईं। उनकी मुख्य धाराएं इस प्रकार हैं।

(अ) किसी भी उद्योग को दिया गया संरक्षण इतना अधिक न होगा कि उस का मूल्य किसी आयात माल के मूल्य से बढ़ कर हो। जहां तक संभव हो ब्रिटिश-माल पर कम से कम कर लगाया जाय।

(आ) पदार्थ रूप में संरक्षण किसी भी भारतीय उद्योग को प्रदान किया जा सकता है। ब्रिटिश उद्योगों को अपनी बात संरक्षण आयोग के सामने रखने की पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिये।

(इ) संरक्षण दिये गये समय के अन्तर्गत भी ब्रिटिश सरकार की प्रार्थना पर पुनः संरक्षण वाले उद्योग की स्थिति पर विचार किया जा सकता है और संरक्षणात्मक कर संशोधित रूप से प्रस्तुत किये जा सकते हैं यदि इस बात की आवश्यकता हो।

(ई) ब्रिटिश सरकार भारतीय कपास का इंगलैंड की मिलों में अधिक प्रचार करे और यहां के कच्चे माल को बिना कर के तब तक आयात करती रहे, जब तक कि ब्रिटिश फौलाद प्रधान रूप से उसी रूप से यहां आता रहे।

यद्यपि यह प्रस्ताव भारतीय विधान मण्डल द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया परन्तु फिर भी वाइसराय की आज्ञा से १९३९ तक कार्य में आता रहा, जबकि उसमें कुछ नई धाराएं जोड़ कर नवीन संशोधित रूप में पुनः स्वीकृति की मोहर लगा दी गई।

भारत–ब्रिटेन व्यापारिक समझौता १९३९—इससे पूर्व कि प्रस्ताव पुनः विधान मण्डल में प्रस्तुत हो तीन साल तक इस सम्बन्ध में कार्यवाही होती रही। वह पुनः रूपेण भारतीय विधान मण्डल द्वारा अस्वीकार कर दिया गया परन्तु गवर्नर जनरल की स्वीकृति से पुनः कार्य में आने लगा। अस्वीकृति का प्रधान कारण भारत को जो आर्थिक स्वतंत्रता दी गई थी वह नाम मात्र की थी। इसकी मुख्य धाराएं इस प्रकार थीं :—

(१) भारत में ७½ से १०% प्रधानता उन २० वस्तुओं पर दी गई जिन्हें वह इंग्लैंड से आयात करता है। उदाहरण के लिये १०% रसायनिक द्रव्य, रंग, सीने की मशीने आदि और ७½% मोटर-कारों और साइकिलों पर।

(२) भारत के कपास का निर्यात ब्रिटेन के सूती वस्त्र के अनुपात के साथ जोड़ दिया गया।

(३) सबसे अधिक प्रधानता व्यवहार को अन्य साम्राज्य के अंगों की भांति भारत ने भी स्वीकार किया।

जहां इंग्लैंड कुछ पदार्थों को १०% या २०% प्रधानता देता वहां बहुत से पदार्थों का बिना कर आयात करता था वहां वे ही पदार्थ अन्य साम्राज्य में (देश में) कर लगा कर भेजे जाते। सन् १९४१ तक कच्चा लोहा बिना कर इंग्लैंड जाता था जब कि भारत ने ब्रिटिश फौलाद पर कर लगाया वहां भी कर वा महसूल लगा दिया।

संशोधित समझौता—सिर्फ गवर्नर जनरल की स्वीकृति से ही समझौता चालू है इस बात ने एक विरोध खड़ा कर दिया और इसके साथ ही भारतीय व्यापारिक स्वार्थों के भी यह अनुकूल न था। इसके साथ ही गैर सरकारी सलाहकार द्वारा जहाजरानी, बैंकिंग आदि को संरक्षण प्रदान करने की सिफारिश की। यह विश्वास किया जाता है कि जहां इंग्लैंड वस्तुओं में लाभ कमा रहा था, वहां भारत को नाम मात्र का लाभ दिया गया था।

भारतीय कपास का निर्यात व ब्रिटिश सूती वस्त्रों की आयात अव्यवस्था सिर्फ एक ऐसी व्यवस्था थी कि 'सर मैंने जीता और पीठ तुम हारे।' यह ब्रिटिश पक्ष का कार्य था। भारतीय माल बिना कर के इंग्लैंड में प्रवेश पाता था—जूट का सामान लाख, अब्रक जिन पर भारत का एकाधिकार था और इंग्लैंड के लिये यह आवश्यक था। अतः इस प्रकार प्रत्येक माल जिसको इंग्लैंड में प्रधानता दी गई

वहां उन्हें साम्राज्य के अन्य भागों में कड़ी प्रतिस्पर्धा का मुकाबला करना पड़ा। वहां इंग्लैंड पूरा लाभ व प्रधानता प्राप्त करता था।

यह समझौता ओटावा समझौते से विभिन्न प्रकार का था जो सन् १९३२ में हुआ था। वास्तव में कुछ प्रधानता व विनिमय आदि की शर्तें बदलने से यह बिलकुल नवीन सा प्रतीत हुआ कपास का कार्य बिलकुल विपरीत था। वास्तव में जो व्यवस्था की गई उसमें इंग्लैंड का पलड़ा भारी था। उसी समय हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि प्रधानता के क्षेत्र के अलावा अन्य क्षेत्रों में उसके निर्यात पर भारी कर लगाया जाता था और इस प्रकार एक नवीन आपत्तिजनक वार्ता थी। क्या ही अच्छा होता कि यदि भारतवर्ष की सहानुभूति इंग्लैंड को प्राप्त करनी थी तो वह उसकी आपत्तियों का निराकरण करता।

सन् १९५० के आर्थिक आयोग ने भारत-ब्रिटिश व्यापारिक समझौता जो सन् १९३९ में हुआ था इस बात का निर्णय कर सका कि किसे कितना लाभ हुआ कारण यह थे कि (अ) सिर्फ समझौते के ६ महीने में जो माल का आदान प्रदान हुआ उसका विवरण अवश्य ज्ञात है जबकि युद्ध शुरू हुआ (आ) युद्ध और युद्ध के पश्चात् समय में प्रधानता का असर आयात निर्यात रुकावटों व स्वीकृतियों के आधार पर जो बदलती रही मालूम किया जाय।

हमें यह विचार करना है कि हमारी नीति का आधार भारतीय सरकार है जिससे इस सम्बन्ध में कि क्या प्रधानता का रूप हो पत्र व्यवहार चल रहा है। इसके साथ ही संरक्षणजनक जो सुविधायें प्राप्त हुई हैं उनका विवरण भी प्रस्तुत है। यह विकास क्रम आपसी सहयोग के आधार पर व आर्थिक दशा को ध्यान में रखकर चालू रखा जायगा।

युद्ध पूर्व भारतीय अर्थ नीति की विभीषिका

उपर्युक्त इंग्लैंड के साथ जो अनुचित सम्बन्ध थे उनकी चर्चा हो चुकी है अब हम इसके साथ ही साथ उन तीन समझौतों का वर्णन भी करेंगे जिनमें दो जापान के साथ और एक ब्रह्मा के साथ सम्पन्न हुआ।

(१) भारत जापान समझौता १९३४—जापान ने अपनी मुद्रा का मूल्य काफी गिरा दिया उसका सूत वस्त्र उद्योग एक भयानक स्थिति में भारत को रख सका, कारण कि वहाँ के निर्यात माल से भारतीय उद्योग चौपट हो गये। ५०% एडवेलोरम ड्यूटी जो कि अन्य देशों के माल के लिये लगाई गई वह भी इस स्थिति (१९३२) का सामना न कर सकी। अतः भारत सरकार ने जापान को इस सम्बन्ध में ६ मास की एक सूचना प्रेषित की जिसमें स्थिति के ठीक न होने पर १९०४ से अब तक के अच्छे सम्बन्धों की समाप्ति समझी जायगी। भारत जापान में इस प्रकार के

पत्रव्यवहार स्वरूप जापानमें भारतीय कपास का बहिष्कार और भारत सरकार ने जापानी माल पर ७५% एडवेलोरम ड्यूटी लगा दी।

अतः अक्टूबर १९३३ में एक शिष्टमंडल जापान से भारत आया इन दोनों देशों के बीच एक नवीन समझौता सन् १९३४ में सम्पन्न हुआ। इसमें कन्वेंशन और प्रोटोकोल सम्मिलित थे। कन्वेंशन के अनुसार दोनों देशों के अच्छे सम्बन्ध को बनाये रखने का प्रयत्न किया गया और इसके साथ ही दोनों को यह अधिकार प्राप्त हो गया कि वे आर्थिक प्रभावों की समानता व औचित्य के लिए कस्टम ड्यूटी लगा सकते हैं यह अधिकार जनवरी १९३४ से ही प्राप्त हो गया। प्रोटोकोल के अनुसार भारतीय कपास के निर्यात के अनुपात में जापानी वस्त्र आयात को तय कर सका। इसी समय जापानी माल पर ७५% से ५०% एडवेलोरम ड्यूटी कर दी गई।

इस संधि के परिणाम स्वरूप कटुता का अंत हुआ और यह विश्वास किया जाने लगा कि इससे दोनो देशों को लाभ हुआ। परन्तु ज्यों २ समय बीतता गया त्यों २ भारतीय मिल मालिकों की ओर से यह शिकायत आई कि जापान संधि की शर्तों से भी अधिक अपना कपड़ा भेजता है परन्तु कस्टम ड्यूटी कम देता है। इसके अलावा कपड़े और कृत्रिम रेशम का आयात भी जापान द्वारा बढ़ाया गया जो कि सूची में शामिल नहीं थे। इसके अलावा ज्यादा चौड़ाई का कपड़ा भी भारत में आने लगा था जिसका समझौते में उल्लेख नहीं था। अतः हर प्रकार की चीजें की गई कि जिससे निर्धारित शर्तों से भी अधिक वस्त्र यहां पर बेचा जाय। इसके अलावा विविध सामान के अन्तर्गत साइकिलें, खिलौने, छाते भारत में आने लगे जिनसे भारतीय अविकसित उद्योग को बहुत नुकसान पहुंचा।

(२) *नवीन भारत जापान समझौता १९३७*—उपर्युक्त बताये गये सभी कारणों को ध्यान में रखने का सफल प्रयत्न किया गया जबकि समझौता १९३६ में समाप्त होता था। कारण कि उपर्युक्त आलोचना के केन्द्रस्थल थे। उसी समय नवीन समझौता हुआ। गैर सरकारी सलाहकारों द्वारा फैन्टस कृत्रिम रेशम, सूत के बने कपड़े (कोटे) में सूची में ले लेने पर जोर दिया गया यद्यपि इस बारे में पत्र व्यवहार हुये परन्तु पुराना प्रोटोकोल उसी रूप में चालू ही रहा।

खास कोटा कम कर दिया गया परन्तु उसका कारण ब्रह्मा का भारत से अलग हो जाना था। इस सम्बन्ध में ब्रह्मा का भाग पुराने से कम ही नियुक्त किया गया। वास्तव में इस उलझन से भारतीय कपास उत्पादक को कुछ लाभ पहुंचे भारतीय सरकार जापानी मांग पर रोक वा पाबन्दी न लगा सकी। इसके अलावा विविध माल वाली सूची की पूर्णता में भी वे असफल हुये। इसके साथ ही माल भेजने के सम्बन्ध में जो अनेक छिद्र थे उनका पूर्ण रूपेण निराकरण न कर सके।

इस नवीन समझौते के अनुसार सूती और असूती वस्त्रों और सामानों को

इस देश में असीमित रूप में भेजने लगा और भारतीय कपास को वह निश्चित रूप से ही लेता था। इस समझौते को पुनः १९४० में नया किया गया परन्तु इसी बीच पत्र व्यवहार बन्द हो गये और कोई अन्तिम परिणाम न निकल सका।

(३) *भारत-ब्रह्मा समझौता १९४१*—सन् १९३७ में ब्रह्मा और भारत के अलग हो जाने से १९४१ तक कोई समझौता न हो सका जिससे कि प्रत्येक राष्ट्र की स्थिति का ठीक आधार मालूम किया जा सके। इस नवीन समझौते के अनुसार ब्रह्मा को १०% प्रधानता साम्राज्य माल पर व १५% अन्य माल पर सुविधा भारत के विरुद्ध दी गई। ब्रह्मा के कृषकों और खान करने वाले को इससे अत्यधिक लाभ हुआ जैसे चावल, चने, लकड़ी और जो कि भारत में करयुक्त आती थी। भारतीय शक्कर व सूती उत्पादकों को भी लाभ हुआ जो सुविधायें ब्रह्मा बाजार में प्राप्त हुई थीं। इसके साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिए कि भारतीय आयात ब्रह्मा से उस मूल्य में बढ़ गया कि जिस रूप में यहां से निर्यात होता था अतः ब्रह्मा को ज्यादा लाभ प्राप्त हो रहा था। परन्तु भारत को ब्रह्मा के चावल व अन्य कच्चे माल की अत्यधिक आवश्यकता थी।

महायुद्ध के पश्चात-विकास

(अ) *संरक्षण आयोग सन् १९४७*—भारतीय इतिहास में प्रथम बार संरक्षण आयोग जो नवम्बर १९४७ में स्थापित हुआ (विभाजन के बाद) उसे कुछ ड्यूटी लगाने व अन्य कार्य का उत्तरदायित्व सौंपा गया इसके अलावा जो उसका गवेषणा कार्य था वह तो उसी रूप में चालू रहा। अतः आज का संरक्षण-(बोर्ड) आयोग अपनी स्थिति अमेरिका और आस्ट्रेलिया के संरक्षण आयोगों के समान रखे हुए हैं। उसके अतिरिक्त कार्य इस प्रकार हैं—

(१) जब भारत सरकार को इस बात की आवश्यकता अनुभव हो किसी उद्योग के उत्पादन को आयात की तुलना में किस प्रकार बढ़ाया जा सकता है तो तत्सम्बन्धी सूचना दे।

(२) सरकार को जब भी आवश्यकता हो देश की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए उत्पादन के बढ़ाने के उपायों की सलाह दे।

(३) जब भी सरकार को आवश्यकता हो किसी वस्तु का कुल मूल्य मालूम करे और उससे उसकी अलग कीमतें निश्चित करे।

(४) आर्थिक संकट से भारतीय उद्योगों को कब संरक्षण प्रदान किया जावे इस बारे में राय दे।

(५) एडवेलोरेम व विशेष ड्यूटी और अन्य विशेष कर व सुविधाओं का अध्ययन करे, जैसे संरक्षण पर क्या प्रभाव पड़ता है इस प्रकार पूरा २ हाल मालूम करे।

(६) सरकार को जब भी आवश्यकता हो ट्रस्ट, एकाधिकार, समुदाय और अन्य प्रकार के रोक लगाने के जिससे सरकार को संरक्षण आदि से सहायता हो सुझाव प्रस्तुत करे। जिससे मूल्य निर्धारण व बढ़ती हुई कीमतों को रोकने में सहायता मिले।

(७) संरक्षित उद्योगों की हमेशा जांच करके ध्यान रखे कि उनको संरक्षण व सुविधाओं के परिणाम स्वरूप विकसित होने का अवसर मिल रहा है। अतः तत्संबंधी विचार विनिमय सरकार से करके आवश्यक कार्य का सम्पादन करे। जिसके कारण संरक्षित उद्योग सफलता पूर्वक कार्य करने लगे।

संरक्षण आयोग को कई उद्योगों की गवेषणा के लिए कहा गया। जिसमें प्लास्टिक-उद्योग, स्लेट, मेगनीज, क्लोराइड, कृत्रिम रेशम, सोना, चांदी, तार आदि सम्मिलित थे। इसके अलावा इसने सूती, लौह-फौलाद, कागज, आदि उद्योगों की कीमतें मालूम करने का कार्य भी किया। इस संबंध में बहुत सी विज्ञप्तियां सरकार को दी जा चुकी हैं और उनके विरुद्ध कार्य किया जा सका है।

नवीन कार्यों के कारण स्वरूप यह स्पष्ट है कि जो सरकार ने संरक्षण आयोग को कार्य आदि दिया गया है उससे स्पष्ट है कि सरकार उपभोक्ता के स्वार्थ के संरक्षण के लिये दृढ़ प्रतिज्ञ है। बोर्ड ने बाइसिकल (माल स्थिति) कास्टिक सोडा, ब्लीचिङ्ग पाउडर (संरक्षित) और कैलशियम क्लोराइड (पुनः संरक्षित) की स्थिति को देखा भाला। इसके अलावा अन्य उद्योगों के भी बारे में जांच की गई। संरक्षण आयोग के कार्यों के परिणाम स्वरूप शक्कर उद्योग का एक साल का और भी संरक्षण प्रदान किया गया। सन् १६५० में पुनः उसकी स्थिति जांच की गई और संरक्षण अप्रेल से ही उठा ली गई।

भारत में नवीन संरक्षणात्मक नीति दिन व दिन अधिक विकास करती चली जा रही है। नवीन व्यापारिक नियमों की प्रतिष्ठा की जा रही है। बोर्ड के अन्तर्गत एक विशेषज्ञ समिति की स्थापना हुई है और वह सरकार को इस बात की सलाह दे कि जिसके कारण जांच व परीक्षा का कार्य करे।

(आ) संरक्षण अधिकारिणी समिति का रूप व कार्य (१६५०) भारतीय आर्थिक-आयोग ने भविष्य के संरक्षण विभाग के लिये निम्नलिखित शर्तें निर्धारित कीं—

(१) *संरक्षण आयोग की दशा*—भविष्य आयोग के लिये स्थिति का निर्धारण किया जाय जिससे कि वह एक स्थायी आयोग का रूप धारण कर सके। इसको वैधानिक आधार पर प्रतिष्ठित किया गया।

(२) *बनावट*—इसमें ५ सदस्य हैं जिसमे अध्यक्ष भी है। परन्तु इस बात का अधिकार है कि वे सात तक सदस्य बढ़ा सकते हैं। इसके अलावा सहायक सलाह-

कारों को आवश्यकतानुसार नियुक्त किया जाता है। आर्थिक आयोग ने इस बात के लिये यह कहा कि किसी भाग विशेष का प्रतिनिधित्व नहीं होना चाहिये।

(३) *कार्य*—आयोग के जो कार्य सुझाये गये वे इस प्रकार हैं—

(अ) संरक्षण व आय संबंधी जांच की जावे।

(१) संरक्षण जांच—आवेदन पत्रों की जांच।

(२) आर्थिक-अभाव की जांच।

(३) संरक्षण व आयकर की जांच।

(४) संरक्षण सुविधा व्यापारिक समझौते के अन्तर्गत।

जांच में (१) और (४) सरकार द्वारा आरंभ किया गया। इन दो सम्बन्ध में सरकार की गति विधि का अध्ययन करे।

(आ) *संरक्षित उद्योग के कार्य का अवलोकन*—इसके अन्तर्गत संरक्षित पदार्थों के मूल्य, उत्पादन, और विकसित अवस्था का अवलोकन व जांच करना शामिल किया गया और विशेष उद्योगों के संबंध में अधिक जांच आदि की जाय। इसके साथ ही इस बात का सुझाव दिया गया कि ३ साल के बाद सामयिक निरीक्षण आवश्यक है जिन उद्योगों को संरक्षण प्रदान किया गया है।

(४) *शक्ति*—आयोग का कार्य सफलता-पूर्वक संपादित कर सके अतः इस बारे में विशेष अधिकार दिये गये कि गवाही आदि के कार्य करे।

(५) *मण्डल-बदल*—इसके अलावा पूरा कर्मचारी मंडल होना आवश्यक है जो कि टेकनीकल व अन्य का विशेषज्ञ हो। सैक्रेटरी इसका केंद्र बिन्दु होगा इसके साथ ही यह भी सुझाव दिया गया कि आयोग की जांच खुले तौर पर हो।

परिणाम

इसके साथ ही इस बात का प्रस्ताव भी रखा गया कि आयोग अपनी सूचना जांच की समाप्ति के साथ ही सरकार को सौंप दें। और सरकार को भी उन सिफारिशों पर ध्यान देकर दो माह के समय में अपने निर्णय पर आ जाना चाहिये। अतः निर्णय शीघ्र हो व इस बात का पालन किया जा सके। संरक्षण के अलावा अन्य प्रकार की आर्थिक सहायता भी भारतीय उद्योगों को प्रदान करवाने का सुझाव रखा गया। इसके साथ ही संबंधित अधिकारी तत्सम्बन्धी वार्षिक-रिपोर्ट संरक्षण आयोग को पहुंचावे।

भविष्य की आर्थिक नीति

संरक्षण का नवीन विचार—इस बारे में कभी भी दो राय नहीं हो सकतीं कि राष्ट्र के उद्योगों को विकसित करने के लिये संरक्षण की आवश्यकता होती है। १९४९-५० के आर्थिक-आयोग ने इस बारे में कुछ सिद्धान्तों का संकेत किया है। कि जिससे

संरक्षण प्रदान करने में सहायता मिले। ये सिद्धान्त सन् १९२१ के संरक्षण प्रदान करने के नियमों से अलग है। व इनका आधार भारत का नवीन संविधान है जिसका उद्देश्य है कि भारत में बेकारी न रहे और देश के प्राकृतिक साधनों का यथासम्भव विकास हो जिससे उत्पादन में सहायता मिले। कृषि, उद्योग व गृह उद्योगों के लिये विशेष प्रकार की नीति का अवलम्बन किया जा रहा है। छोटे उद्योगों को सहकारिता के ढंग पर संगठित करने का प्रयत्न किया जा रहा है। इस प्रकार के आर्थिक कार्य क्रम से एक विस्तृत क्षेत्र व पैमाने पर औद्योगिक विकास की संभावना है। इसके अनुसार भारतीय आर्थिक आयोग की सिफारिशें निम्नांकित हैं।

(१) सुरक्षा व अन्य आपत्ति जनक उद्योग को संरक्षण दिया जाय चाहे उन पर कितना ही मूल्य क्यों न उठाना पड़े।

(२) आधार भूत उद्योग के बारे में संरक्षण आयोग यह तय करें कि किस हद तक संरक्षण दिया जाय और उनकी जाँच आदि समय समय पर की जा सके।

(३) जिनको संरक्षण दिया जाय वे उद्योग इस प्रकार हैं—

"उस उद्योग के द्वारा जो आर्थिक श्रम उठाये जा रहे हैं और जिनका संभव तया उनके संरक्षण पर भी प्रभाव पड़ता है। अतः उसे बिना संरक्षण के ही अपने आपको विकसित करना चाहिये और साथ ही उन उद्योगों का जिनसे राष्ट्रीय जीवन मान पर असर पड़ता है संरक्षण दिया जाय और प्रत्यक्ष और व अप्रत्यक्ष लाभ आदि पहुंचाये जांय परन्तु उसका भार वस्तु पर अधिक न पड़े।

इसके आगे आर्थिक आयोग की सिफारिशें इस प्रकार है—

(अ) पास में मिलने वाला कच्चा माल इस संबंध में संरक्षण का तर्क उपस्थित नहीं करता यदि उद्योग को अन्य आर्थिक लाभ—आन्तरिक बाजार, श्रम—प्राप्त है।

(आ) साधारणतया एक उद्योग जिसे संरक्षण दिया जाय उससे यह आशा नहीं की जा सकती कि वह घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति करे।

(इ) उद्योग के संरक्षण के लिये निर्यात का शक्तिशाली बाजार देखना आवश्यक है।

(ई) वे उद्योग जो संरक्षित उद्योगों के पदार्थ कार्य में लेते हैं, मुआवजा चाहेगें। यह उस कच्चे माल की किस्म पर निर्भर करेगा जो कि उपयोग में लाया जाता है व साथ ही उपभोक्ता पर भी उसका असर आदि देखा जा सकता है।

(उ) नवीन उद्योगों के लिये संरक्षण उसी दशा में उचित है, जब कि उसे काफी पूञ्जी व विशेषज्ञों की आवश्यकता हो।

(आ) देश के लाभ को ध्यान में रखते हुए कृषि को संरक्षण दिया जाय परन्तु उसमें वस्तुओं की संख्या कम से कम हो और संरक्षण थोड़े समय तक दिया

जाना चाहिए। वह समय ज्यादा से ज्यादा ५ साल का हो सकता है। इसके साथ ही सुधार कार्य चलता रहना चाहिए और तत्संबंधी वार्षिक रिपोर्ट सरकार के पास पहुंचना चाहिए कि संरक्षित उद्योग ने कितनी उन्नति की।

(ए) बड़े आधार पर एक्साइज ड्यूटी का संरक्षित उद्योग पर लगना ठीक नहीं और इससे जब तक बचा जा सकता है जब तक कि इस प्रकार की स्थिति न आ जाय।

इसके अलावा भी उद्योगों को सहायता देने के अन्य कई तरीके हैं। संरक्षण के अलावा भी आर्थिक आयोग द्वारा यह सुझाया गया है कि एक विकास कोष स्थापित किया जाय जो आय संरक्षण द्वारा एकत्रित किया जाय। इसके अलावा अन्य प्रकार की सहायता प्रदान की जा सकती है। उन संबंधों में जहां अतिरिक्त सहायता दी जाय ये निम्न शर्तें हैं—

(१) जब कि घरेलू उत्पादन घरेलू आवश्यकताओं को पूरा न करे।

(२) जहां कि वस्तुओं के कच्चे माल को आवश्यक समझा गया।

(३) जहां कि कुछ उत्पादक वस्तुओं के लिए संरक्षण दिया जाय। परन्तु उसके भाव व किस्म के बारे में अधिक निर्वाचन रूप में तय करना चाहिये।

इसके अलावा आयोग ने अनेक प्रकार की संख्यात्मक रोक लगा रखी हैं। सिर्फ अत्यधिक आयात के लिये कुछ पाबन्दियां लगा दी गई हैं। इसके साथ ही यह तय करना मुश्किल है कि जो स्तर विकसित होता है वह संरक्षण के कोटे के अनुकूल हैं। कुछ मामलों में कोटा निर्णय किया जा सकता है क्योंकि उसके कारण उपभोक्ताओं पर अधिक भार न पड़े। संरक्षण के बारे में यह सुझाया गया कि वह संरक्षण अधिकारियों द्वारा कुछ नियमों के आधार पर निर्मित हो। साधारणतया यह नियम हैं कि उद्योग को उचित लम्बे समय के लिए संरक्षण प्रदान किया जाय कि जिससे पूंजी भी आवे और सुधार का कोई व्यवस्थित कार्यक्रम शुरू किया जाय। आयोग ने यह भी सुझाव दिया है कि सरकार गोदाम बिक्री नीति का निर्धारित करे कि जिसके परिणाम स्वरूप सरकार को लाभ के साथ विदेशी वस्तुओं के ऊपर संरक्षित उद्योगों को भी लाभ पहुंचे।

उपभोक्ताओं के स्वार्थ को ध्यान में रखते हुए अवश्य ही आयोग कुछ आधारभूत शर्तें संरक्षित उद्योगों पर रखता है। ये शर्तें मूल्य नीति, उत्पादन नीति किस्म, वैज्ञानिक सुधार, गवेषणा व अन्वेषण कार्य, ट्रेनिंग, असामाजिक हटाने सम्बन्धी हैं। वह यह विश्वास करता है कि ये संरक्षण को शासित करने के प्रत्यक्ष सिद्धान्त है जिससे संरक्षण को ध्यान में रखना चाहिए जब कि वे किसी उद्योग की गवेषणा करे।

अंत में उनका यह सुझाव है कि समय समय पर सरकार को इस बात का सुझाव दे कि सरकार किन शर्तों को ध्यान में रखकर संरक्षण का कार्य संपादन करे कि जिसके कारण संरक्षित उद्योग भी अपना कार्य सुचारू रूप से संचालित कर सके।

भारत-पाकिस्तान व्यापार समझौते (Indo-Pakistan Trade Agreements)

स्वतन्त्र होने के साथ-साथ भारत को अपना एक बड़ा भाग पाकिस्तान के रूप में पृथक करना पड़ा। पाकिस्तान का एक टुकड़ा पश्चिमी पंजाब, सीमांत प्रदेश, बलोचिस्तान और सिन्ध का प्रांत हुआ और दूसरा टुकड़ा पूर्वी बंगाल। देश का शेष भाग 'भारत' कहलाया। इस विभाजन के फलस्वरूप देश के कुछ भागों में भीषण सांम्प्रदायिक कटुता फैली। रक्तपात के साथ लाखों हिन्दुओं को पाकिस्तान से घरबार छोड़ कर भारत आना पड़ा तथा मुसलमानों को यहां से पाकिस्तान जाना पड़ा। इस अशान्त वातावरण के कारण कई महीनों तक देशी व्यापार की हालत बहुत डांवाडोल रही तथा विदेशी व्यापार भी बहुत कुछ प्रभावित हो गया।

१५ अगस्त, १९४७ से २६ फरवरी १९४८ तक भारत और पाकिस्तान में एक देश से दूसरे में यातायात-माल पर किसी प्रकार की चुंगी नहीं थी। १ मार्च १९४९ को यह बात समाप्त हुई और पाकिस्तान आयात-निर्यात कर की दृष्टि से विदेश घोषित कर दिया गया। अब पाकिस्तान के लिये आयात-निर्यात नियंत्रण कानून लागू कर दिया गया। इसी तारीख से पूर्वी पंजाब और पश्चिमी बंगाल में ३९ चुंगीघर खोले गये, जिन पर एक देश से दूसरे में आने जाने वाली व्यापारिक वस्तुओं पर आवश्यक महसूल लिया जाने लगा। दोनों देशों के बीच अच्छे व्यापारिक संबंध स्थापित करने के हेतु एक दूसरे के यहा व्यापार कमिश्नरों की नियुक्ति का भी निश्चय हुआ। कुछ व्यापारियों तथा विशेषज्ञों ने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये यह भी राय दी कि इन दोनों देशों के बीच अवधि व्यापार चले और उनके पारस्परिक आयात निर्यात पर किसी प्रकार का कर न लिया जाय। इन लोगों का कथन है कि व्यापारिक करों से सरकारों को थोड़ा लाभ अवश्य हो जाता है पर उसके कारण इन दोनों देशों की जनता को व्यापारिक यातायात में बहुत कष्ट उठाना पड़ता है। अभी दोनों सरकारें इस सुझाव को कार्यान्वित करने का कोई विचार नहीं कर रही हैं।

पाकिस्तान की प्रमुख वस्तुओं की उत्पादन-शक्ति तथा उसकी आवश्यकताएं लगभग इस प्रकार है :—

वस्तु	वार्षिक उत्पादन-शक्ति	वार्षिक आवश्यकता
मिल का सूत	६,००० गाँठे (प्रत्येक ४०० पौंड की)	१०,४०,००० गांठे (प्रत्येक ४०० पौंड की)
मिल का कपड़ा	५१,१२० गांठे (प्रत्येक १,५०० गज की)	७०,१०,००० गांठे (प्रत्येक १५०० गज की)
कोयला	२,८८,०० टन	३५,००,००० टन
इस्पात, लोहा और लोहे की चद्दरें	२५,००० टन	३,१६,००० टन
सीमेंट	५,८५,००० टन	३,११,००० टन
शक्कर	२५,००० टन	२,४५,००० टन
किरोसिन तेल	५,००० गैलन	२८,००,००० गैलन
पैट्रोल	१५,००,००० गैलन	१६,००,००० गैलन

ऊपर के आंकड़ों से पता चलेगा कि सूत, कपड़ा, कोयला, लोहा, शक्कर तथा किरोसिन तेल की आवश्यकताओं को देखते हुए पाकिस्तान की उत्पादन शक्ति बहुत कम है। पेट्रोल का उत्पादन जरुरत से कुछ ही कम है। पाकिस्तान सीमेंट की उत्पत्ति में धनी है और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर शेष सीमेंट का निर्यात आसानी के साथ कर सकता है।

पाकिस्तान के पृथक हो जाने से भारत का आंतरिक तथा विदेशी व्यापार बहुत प्रभावित होगया है। पाकिस्तान को भी अनेक आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। प्रारम्भ में ये कठिनाइयां काफी जटिल थीं, जो अब धीरे २ सुलझाई जा रही हैं। २ अप्रेल १६४८ को पाकिस्तान ने अपनी आर्थिक नीति की घोषणा की। इस घोषणा में विदेशी पूंजी का स्वागत किया गया है वशर्ते कि वह पूंजी केवल आर्थिक एवं औद्योगिक उद्देश्यों से देश में खपाई जाय और उसमें कोई विशेष वैयक्तिक रियायतों की शर्ते न हों। इस पूंजी के लगाने वाले विदेशियों को पाकिस्तान के निवासियों को विभिन्न उद्योगों के सम्बन्ध में वैज्ञानिक शिक्षा देनी होगी। पाकिस्तान की सरकार ने यह भी घोषित किया है कि पाकिस्तानियों को प्रमुख उद्योगों तथा अन्य कुछ धन्धों में ५१ प्रतिशत पूंजी लगाने और छोटे उद्योगों में कम से कम ३० प्रतिशत पूंजी लगाने का अधिकार होगा। सरकार की औद्योगिक नीति यह बताई गई कि जूट, रुई, चमड़ा आदि कच्चे माल से आवश्यक वस्तुएं तैयार करने के लिये पाकिस्तान के विभिन्न स्थानों में कारखानों की स्थापना की जायगी। शस्त्रास्त्र, गोला-बारुद, रेल के डिब्बे, टेलीफोन, तार और बेतार यन्त्रों का निर्माण सरकार स्वयं अपने हाथ में लेगी।

२६ मई १६४६ को भारत और पाकिस्तान की सरकारों के बीच एक अस्थायी व्यापारिक समझौता हुआ। इसमें यह तय हुआ कि दोनों देश एक दूसरे को जीवनोपयोगी आवश्यकताओं की पूर्ति में सहयोग देंगे। पाकिस्तान को भारत से सूत, कपड़ा, शक्कर, मशीनें, स्पात, लोहा, कोयला, टायर, ट्यूब, जूते, कागज, लकड़ी, जूट की बनी वस्तुएं, मसाले, दवाएं, सरसों और मूंगफली का तेल, नारियल का तेल, आलू के बीज, शृंगार-सामग्री, तम्बाकू, चाय, रंग, रोगन और वार्निश की दरकार होगी और भारत पाकिस्तान से कच्ची जूट, कपास, चावल, गेहूं, खड़िया मिट्टी, राल, चमड़ा लाहौरी नमक, सोडा, पोटाश और पशु चाहेगा। यह तय हुआ कि भारत पाकिस्तान को प्रतिमास १,८३,००० टन कोयला, जिसमें ५,००० टन कड़ा कोक रहेगा, देगा। इसके अतिरिक्त वह पाकिस्तान को कपड़े और सूत की ४,००,००० गांठ, ७,००,००० पौंड तम्बाकू, २,००,००० चाय की पेटियां और ३६,०३ लाख रुपये का रेल का सामान देगा। पाकिस्तान की ओर से भारत को ५०,००,००० गांठ. कच्चा जूट, ६५०००० गाँठ कच्ची रुई, १,०५,००० टन अनाज तथा २०,००,००० मन लाहौरी नमक देना तय हुआ।

सितम्बर, १६४६ में आंग्ल-मुद्रा (स्टर्लिंग) के अवमूल्यन के फलस्वरुप भारत ने भी उसके अनुसार अपने रुपये का मूल्य घटा दिया परन्तु पाकिस्तात ने विनिमय साधन अपनी मुद्रा का अवमूल्यन नहीं किया। इससे व्यापारिक लेन-देन में बड़ी कठिनाई आ पड़ी और भारत तथा पाकिस्तान के बीच व्यापारिक लेन-देन समाप्त प्राय होगया।

२१ अप्रैल, १६५० को इन दोनों देशों के बीच एक अल्पकालीन दूसरा समझौता हुआ। इसमें निम्नलिखित मुख्य बातें तय हुई :—

(१) दोनों देशों के बीच आयात-निर्यात व्यवस्थित रूप में होगा।

(२) व्यापार भारतीय सिक्के में होगा। पाकिस्तान का स्टेट बैंक इसके लिये अलग हिसाब खोलेगा।

(३) पाकिस्तान ४० लाख मन जूट तथा डेढ़ लाख मन गेहूं भारत को देगा।

(४) भारत से बीस हजार टन तैयार जूट का माल पाकिस्तान भेजा जायगा। इसके अतिरिक्त भारत से सूती-ऊनी कपड़े, सरसों का तेल, तम्बाकू, लोहे का बना सामान और इमारती लकड़ी पाकिस्तान जायगी।

(५) फल, तरकारियां, मेवे, मछली, अण्डे, दूध, पान, सोडा, हड्डियां, खालें सुपारी, चमड़ा, साबुन आदि वस्तुओं पर आयात निर्यात के लाइसेंस का कोई प्रतिबन्ध न रहेगा और वे एक दूसरे देश की आवश्यकतानुसार भेजी जायगी।

(६) माल का ठीक प्रकार से यातायात हो, इसके लिए दोनों देश उचित व्यवस्था करेंगे।

इस समझौते के आधार पर ६ सितम्बर १६५० तक पाकिस्तान ने ७,०२,१०८ रुपये का जूट भारत को दिया और भारत ने उसे ६,४८,२२७ रुपये का जूट का तैयार माल दिया। उपयुक्त पांचवीं शर्त के अन्तर्गत ६ करोड़ ७५ लाख रुपये के मूल्य की वस्तुऐं पाकिस्तान से भारत आईं और यहां से ५ करोड़ २५ लाख रुपये की पाकिस्तान गईं।

२५ फरवरी, १६५१ को दोनों देशों के प्रतिनिधियों ने एक नये व्यापारिक समझौते पर हस्ताक्षर किये हैं। यह समझौता कई दृष्टियों से महत्व का है। अभी तक विनिमय सम्बन्धी अड़चनों के कारण दोनों देशों के बीच व्यापार में जो दिक्कत आ गई थी वह अब दूर हो गई है। भारत और पाकिस्तान के रुपये का आनुपातिक मूल्य तय कर दिया गया है। इसके अनुसार खरीद के लिये भारत के १०० रुपये की दर पाकिस्तानी ६६॥)। और फरोख्त के लिये ६६।≈)॥ निश्चित हुई है।

इस समझौते के आधार पर पाकिस्तान भारत को ३० जून १६५१ तक १० लाख गाँठ कच्चा जूट देगा तथा अगले वर्ष (१ जुलाई १६५१ से ३० जून १६५२ तक) २५ लाख गांठें। इसके अतिरिक्त वह भारत को इस वर्ष ढाई लाख टन अन्न (अधिकांश में चावल) तथा अगले वर्ष डेढ़ लाख टन चावल और पौने तीन लाख टन गेहूं देगा। कच्ची रूई के सम्बन्ध में यह तय हुआ है कि इस वर्ष भारतीय मिलें अपनी आवश्यकतानुसार रूई खरीदेगीं, जो संभवत: एक लाख गांठ से अधिक नहीं बैठेगी, परन्तु अगले वर्ष पाकिस्तान ४ लाख गांठें भारत के लिए सुरक्षित रखेगा। इन वस्तुओं के अलावा पाकिस्तान हड्डियां, खालें, खली आदि वस्तुऐं भारत को देगा। इनके बदले में भारत उसे ६ लाख टन कोयला इस वर्ष तथा १५ लाख टन कोयला अगले वर्ष देगा। इसके अतिरिक्त लोहा, लकड़ी, कपड़ा (मिल और कर्घे का), सूत आदि वस्तुऐं भी भारत से पाकिस्तान को भेजी जायगी।

साधारण वस्तुओं के आयात निर्यात के सम्बन्ध में तय हुआ है कि उनके लिये किसी विशेष अनुमति पत्र (लाइसेंस) की आवश्यकता न होगी। ये वस्तुऐं मछली, फल मेवे, तरकारी, किताबें, स्टेशनरी, साबुन, रंग, सोडा, जलाने की लकड़ी, दियासलाई आदि होंगी। ये चीजें मुख्यत: सीमावर्ती व्यापार के अन्तर्गत आती है। विशेष वस्तुओं के आयात निर्यात के सम्बन्ध विस्तृत नियम बनाये गये हैं और यह तय हुआ है कि दोनों देश इन नियमों का पालन करेंगे। वह समझौता अब कार्य रूप में परिणत हो रहा है और अधिक आवश्यक वस्तुऐं एक देश से दूसरे में पहुंचाई जा रही है।

उक्त समझौता २६ फर्वरी १६५१ से ३० जून १६५२ तक के लिये हुआ है, आशा है कि भविष्य में भी दोनों देशों के बीच इस प्रकार का आर्थिक समझौता बना रहेगा और दोनों एक-दूसरे की आवश्यकताओं की पूर्ति में स्थायी रूप से क्रियात्मक सहायता पहुंचाते रहेंगे। भारत और पाकिस्तान एक-दूसरे के इतना निकट है और आपस में आर्थिक एवं साँस्कृतिक सम्बन्धों से इतने अधिक समय से जुड़े हुए हैं कि बिना पारस्परिक सहयोग की भावना के काम चलाना कठिन है। आंतरिक, तटीय एवं वाह्य-इन सभी व्यापारिक दृष्टियों से एक देश को दूसरे पर बहुत कुछ निर्भर रहना पड़ेगा। आशा है कि आपसी सद्भावना की वृद्धि के फल स्वरूप इन दोनों देशों के सम्बन्ध भविष्य में घनिष्ट बने रहेंगे और दोनों एक-दूसरे के सहयोग से अपनी आर्थिक स्थिति को दृढ़ बनाने में सफल होंगे।

हवाना चार्टर और भारत (Havan Charter & India)

द्वितीय महायुद्ध जब चल रहा था उसी समय यह अनुभव किया जा रहा था कि विश्व-शांति के लिये यह आवश्यक है कि विभिन्न देशों का राजनैतिक आधार पर ही नहीं बल्कि आर्थिक आधार पर भी आपस में सहयोग हो। इसी विचार धारा का यह नतीजा था कि जिस प्रकार राजनैतिक क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र-संघ (यू० एन० ओ०) की स्थापना की गई उसी प्रकार आर्थिक क्षेत्र में भी कई अन्तर्राष्ट्रीय संगठन कायम करने का प्रयत्न किया गया। विश्व बैंक (World Bank) और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (International Monetary Fund) तथा खाद्य और कृषि संबंधी अन्तर्राष्ट्रीय संघ (Food and Agricultural Organisation) की इसी आधार पर स्थापना की गई; इसी प्रकार एक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संघ (International Trade Organisation) स्थापित करने का विचार भी चला। सबसे पहले हवाना (क्यूबा, में(२१ नवम्बर १६४७ और २४ मार्च १६४८ के बीच में संसार के ५७ राष्ट्रों का एक सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में 'प्रिपेरेटरी कमेटी' ने जो अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का एक मसविदा तैयार किया था उस पर विचार हुआ। इस प्रिपेरेटरी कमेटी' की स्थापना १६४६ में उस समय हुई थी जब इस विषय में अमरीका ने कुछ प्रस्ताव प्रकाशित किये थे और उनके बारे में अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेंस में विचार करने के पहले एक छोटी कमेटी द्वारा विचार करना उचित समझा गया था। इस कमेटी में १८ राष्ट्र थे और भारत भी उनमें से एक था रूस ने इसमें शामिल होने से इन्कार कर दिया था। हवाना सम्मेलन में ५४ राष्ट्रों ने जो मसविदा विचार विनिमय के बाद तय किया था उस पर हस्ताक्षर कर दिये गए हस्ताक्षर करने वालों में भारत भी था। विभिन्न राष्ट्रों की सरकारों की स्वीकृति मिलने पर ही यह चार्टर अमल में आने वाला था। फरवरी १६५१ में अमेरिका ने हवाना

चार्टर को स्वीकार नहीं करने का अपना विचार प्रकट किया है और इस पर से ब्रिटिश सरकार ने यह घोषणा कर दी है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संघ के कायम होने की आशा नहीं है।

हवाना में जो चार्टर स्वीकार किया गया था उसका उद्देश्य का ध्यान रक्खा जायगा कि संयुक्त राष्ट्र संघ की राजनीति में इसका हस्तक्षेप न हो। चार्टर की उक्त धाराओं की कई कारणों से आलोचना भी हुई। आलोचना का एक बड़ा आधार यह रहा है कि पिछड़े हुए देशों के आर्थिक विकास का चार्टर में प्रर्याप्त ध्यान नहीं रखा गया है। विदेशी व्यापार की मात्रा बढ़े, इसी पर अधिक महत्व दिया गया है। इस समय तो इस संगठन का भविष्य अन्धकार में मालूम पड़ता है।

अब हम 'जरनल एग्रीमेंट ओन टेरिफस और ट्रेड' के विषय में कुछ लिखेंगे। यह हम ऊपर लिख चुके है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन के चार्टर में एक धारा यह भी थी कि इस संगठन के सदस्य आपसी समझौते के आधार पर आयात-निर्यात-कर और विदेशी व्यापार पर लगे प्रतिबन्धों में कमी करे। इसी उद्देश्य को सामने रखकर विभिन्न देशों में जेनेवा में अप्रेल १०,१९४७ से अक्टूबर ३०,१९४७ तक समझौते की चर्चा चली और जो निर्णय हुए उनका समावेश उक्त एग्रीमेंट में कर लिया गया। अस्थायी आधार पर यह एग्रीमेंट १ जनवरी १९४८ की अमल में आया। भारत भी इसमें शामिल था। इस एग्रीमेंट में प्रिपेरेटरी कमेटी के १८ सदस्यों के अलावा पाकिस्तान, सीरिया, बर्मा, लंका और दक्षिणी रोडेशिया भी शामिल थे। १२३ द्विपक्षीय समझौते इन देशों के बीच में हुए। इसके पश्चात अप्रेल ८,१९४९ से अगस्त २७,१९४९ को रानेकी (फ्रांस) में फिर कानफ्रेंस हुई जिसमें डेनमार्क, फिनलैंड, यूनान, हैटी, इटली, स्वीडन, डोमिनिकन, रिपब्लिक, लाइबेरिया, निकारागुआ और डरुगुये ये दस नये देश और शामिल हुए। ३० नवम्बर १९४९ तक इन नये सदस्यों की उक्त एग्रीमेंट में शामिल करने के लिये एक 'प्रोटोकोल' पर हस्ताक्षर किये गये और २० मई १९५० से यह लागू किया गया। भारत ने इन दोनों ही सम्मेलनों में भाग लिया और विभिन्न देशों के साथ समझौते किये। इन समझौतों के अनुसार भारत ने रियायतें दी और उसे रियायतें मिली भी। इसके बाद टोर के (इङ्गलैंड) में तीसरी बार कान्फ्रेंस हुई जो २१ अप्रेल १९५१ को सात महीने के बाद समाप्त हुई। इस कान्फ्रेंस में विभिन्न देशों में ४०० के लगभग समझौते करने का प्रयत्न हो रहा था, पर भाग होने वाले ३८ देशों में केवल १४७ समझौते ही हो सके। भारत भी इसमें शामिल था। इस कान्फ्रेंस की सफलता मर्यादित ही रही। छः नये देश इस एग्रीमेंट में इस सम्मेलन में शरीक किये गये। पुराने समझौते की (जेनेवा तथा रानेकी) मियाद दिसम्बर १९५३ तक करदी गई। पुराने समझौते

में कुछ देशों ने संशोधन और परिवर्तन कराया और इनके अनुसार दी गई कुछ रियायतें वापस ली गईं। कुछ नई रियायतों के बारे में भी समझौते हुए। जी. ए. टी. टी के सिद्धान्त के अनुसार ३ साल के बाद इस प्रकार का संशोधन परिवर्द्धन हो सकता है। इसीलिये १६४८ के बाद अब यह कान्फ्रेंस हुई थी। 'रानेकी' की कांफ्रेंस इस प्रकार की नहीं थी। जिन ३८ देशों ने इस सम्मेलन में भाग लिया वे दुनिया के सम्पूर्ण विदेशी व्यापार के ८०% भाग के लिये जिम्मेदार है।

अध्याय ९

भारतीय व्यापार का भविष्य

FUTURE OF INDIA'S TRADE

लगभग दो शताब्दियों तक पूर्ण रूप से विदेशी परतंत्रता में रहने के कारण भारत के व्यापार का जो ह्रास हुआ है उसकी पूर्ति में कुछ समय अवश्य लगेगा। जैसा हम पीछे कह चुके हैं, संसार के व्यापारिक क्षेत्र में इस समय भारत को नाम-मात्र का भाग प्राप्त है। अपना उचित भाग पाने के लिये इस देश को निस्सन्देह कठिन–प्रयत्न करना होगा। आर्थिक उन्नति के मार्ग में जो अनेक बाधाएं खड़ी हैं उन्हें एक एक कर पार करना होगा। भारत ने पुनरुत्थान की सीढ़ी पर अभी चढ़ना आरम्भ ही किया है, जब कि संसार के कितने ही देश उससे आगे बढ़ चुके हैं। इस समय देश में शासन और जनता के बीच पारस्परिक सहयोग की बड़ी भारी आवश्यकता है। देश के पुनर्निर्माण के लिये अन्य योजनाओं के साथ व्यापार-सम्बन्धी अनेक योजनाओं का निर्माण किया जा चुका है। भारतीय व्यापार के पुनरुत्थान के सम्बन्ध में हम यहां कतिपय मुख्य सुझावों की ओर संकेत कर देना आवश्यक समझते हैं। उद्योगों की व्यवस्था तथा उत्पादन में वृद्धि, उद्योग व्यापार की जड़ है। बिना औद्योगिक मजबूती के किसी भी देश का व्यापार पल्लोवत नहीं हो सकता। भारत के प्राचीन व्यापार के उन्नत होने का प्रधान कारण उसके विभिन्न उद्योगों का विकसित होना था। हम देख चुके है कि मुगल काल तक भारत में अनेक उद्योग-धन्धे जारी रहे। फल-स्वरूप यहाँ का देशी एवं विदेशो व्यापार भी उन्नत रहा। बृटिश काल में हमारे कितने ही बड़े-छोटे उद्योग-धन्धे समाप्त प्रायः हो गये। हमें अब उनकी ओर फिर से ध्यान देना है। महात्मा गांधी ग्रामीण या घरेलू उद्योगों की उन्नति के विशेष पक्ष में थे। उनको खादी योजना एक महत्वपूर्ण आर्थिक योजना हैं, जिसे उचित रूप में कार्यान्वित करना भारत के लिये श्रेयस्कर होगा। अन्य छोटे गृह-उद्योगों-जैसे कताई-बुनाई, टोकरी-चटाई आदि बनाना, कसीदा, लकड़ी और चमड़े की दस्तकारी, कागज, लाख, साबुन, छाता, मुर्गी-पालन, मिट्टी और धातु के बर्तन आदि का भी ठीक तरह से विकास होना चाहिये। इनमें से अधिकांश धन्धे सहकारिता के आधार पर चालू किये जा सकते हैं। हमारी विभिन्न प्रान्तीय सरकारें इनकी उन्नति में बहुत कुछ योग दे रही हैं।

घरेलू उद्योग धन्धों के साथ बड़े उद्योगों का विकास भी आवश्यक है। आज के वैज्ञानिक एवं प्रतियोगिता पूर्ण युग में मशीनजन्य बड़े उद्योगों की ओर से उदासीन होना देश के हित में ठीक न होगा। इस समय भारत में अधिक उत्पादन की ओर ध्यान देना बहुत आवश्यक है, जिससे भारत घरेलू जरूरतें पूरी कर बचा हुआ तैयार और कच्चा माल विदेशों को भेज सके। विभिन्न पदार्थों के उत्पादन को अब अधिक व्यवस्थित रूप देना चाहिये। हमारा कृषि का उत्पादन पिछले कुछ वर्षों से संतोषजनक नहीं रहा है। हर साल हमारी एक बड़ी रकम अन्न के लिये विदेशों को भेजी जाती है। अब वैज्ञानिक साधनों के द्वारा अन्न की उपज बढ़ाने की सबसे अधिक आवश्यकता है, जिससे हमें कुछ समय बाद बाहर से अनाज बिलकुल न मंगाना पड़े। अन्न, वस्त्र, लोहा, कोयला, शक्कर, जूट आदि का अधिक से अधिक उत्पादन अब बहुत जरूरी है।

औद्योगिक उन्नति के लिये बैंकों का भी संगठन बहुत आवश्यक है। इस समय भारत में सब प्रकार के बैंकों की संख्या मिलाकर ४५० से भी कम है। १६४८ के वर्ष में आर्थिक कारणों से ५७ बैंक बन्द हो गये। बाद के वर्षों में भी अनेक बैंकों को बन्द कर देना पड़ा। मिश्रित पूंजी वाले भारतीय बैंकों को अब यथेष्ठ प्रोत्साहन देना आवश्यक है। इस समय भी भारत में विदेशी बैंकों की स्थिति देशी बैंकों की अपेक्षा कहीं अच्छी है। आशा है सरकार इनके उत्थान के संबंध में आवश्यक ध्यान देगी। बैंकों के अतिरिक्त मुद्रा, विनिमय, बीमा आदि की समस्याएं भी व्यापारिक पुनरुत्थान के लिये बहुत आवश्यक हैं और उन्हें शीघ्र अधिक व्यवस्थित रूप देना चाहिये।

आन्तरिक व्यापार—यद्यपि स्वतन्त्र भारत का आन्तरिक व्यापार सुधरने लगा है तो भी अपेक्षित उन्नति के लिए कई बातें जरूरी हैं। यातायात के साधनों को अधिक उपयोगी बनाना अब बहुत आवश्यक है। अब भी भारत के अनेक भागों में रेलवे लाईनें नहीं हैं और न मोटर जाने के योग्य सड़कें ही हैं। इन स्थानों में यातायात में बड़ी असुविधा होती है। पहाड़ी, जंगली, तथा रेतीले भागों को छोड़कर बहुत से ऐसे प्रदेश हैं जहां सुविधा से सड़कों और रेलों का निर्माण किया जा सकता है। आन्तरिक यातायात में नदियों तथा नहरों से भी बहुत काम लिया जा सकता है। मुगल काल तक व्यापारिक प्रयोजन के लिये नदियों से बहुत काम लिया जाता था। मल्लाहों के एक बड़े वर्ग की जीविका नदियों में नाव-संचालन द्वारा चलती थी। ये लोग व्यापारियों के माल को एक स्थान से दूसरे में पहुंचाया करते थे। ब्रिटिश शासन में इस ओर बड़ी उपेक्षा दिखाई गई। आशा है कि बड़ी नदियों तथा उनसे निकलने वाली नहरों से अब यह काम उपयुक्त रूप में शीघ्र लिया जा सकेगा। सुविधा-नुसार ऐसी नई नहरें निकाली जा सकती हैं जिनमें नावें चल सकें। इस प्रकार रेलों

तथा सड़कों के भार को कम करने में आंतरिक जल-मार्ग बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं और उनके किनारे पर स्थित नगरों और गांवों की उन्नति हो सकती है।

उपर्युक्त साधनों के अतिरिक्त तार, डाक, टेलीफोन, रेडियो तथा वायुयान भी इस युग में यातायात के आवश्यक साधन हो गये हैं। व्यापारिक उन्नति के लिये इनका अधिक से अधिक किस प्रकार उपयोग किया जा सकता है, यह विचारणीय है।

विदेशी व्यापार—विदेशी व्यापार की समस्या सबसे अधिक महत्व की है। भारत सरकार को इस समय आयात निर्यात कर के रूप में १४० करोड़ रुपये से ऊपर की आय होती है। आयात-निर्यात को अधिक व्यवस्थित करने के लिये सरकार की विभिन्न योजनाओं की संक्षिप्त चर्चा पीछे की जा चुकी है। अब इस सम्बन्ध में एक दृढ़ नीति के निर्धारण एवं उसे समुचित रूप से संचालन की बड़ी आवश्यकता है। अच्छा हो यदि भारत का संख्या एवं परिगणना (स्टैटिस्टिकल) विभाग पहले से आगामी वर्ष की आयात निर्यात विषयक सूचियां तैयार कर लिया करे तथा उनके आधार पर सरकार आवश्यक कार्यवाही किया करे। इसके लिये उद्योग तथा व्यापार विभागों में अधिक से अधिक सामंजस्य की आवश्यकता है। सौभाग्य से अब ये दोनों महत्वपूर्ण विभाग एक ही मंत्री के अधीन कर दिये गये हैं। साथ ही जहाजरानी (शिपिंग) को यातायात विभाग के अन्तर्गत कर दिया गया है।

आयात निर्यात के स... में भारतीय व्यापार और उद्योग संघ ने २९ मार्च १९४८ को एक उपयोगी प्रस्ताव पास किया था, जिसमें कहा गया था कि "भारत की वर्तमान परिस्थिति को देखते हुये आयात निर्यात की एक नई नीति बनाई जाय। देश की आयात नीति ऐसी हो कि उसके लिये भारत के विदेशी विनिमय के साधन सुरक्षित रह सकें। विलास की वस्तुओं का आयात कम किया जाय और बाहर से अत्यन्त आवश्यक वस्तुऐं ही आने दी जायं। निर्यात को बहुत अधिक बढ़ाया जाय और इसके लिये व्यापारिक संघों को सब प्रकार की सुविधा प्रदान की जाय। निर्यात पर अधिक से अधिक कीमत प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाय तथा दुर्लभ मुद्रा वाले देशों को अधिक माल भेजने की व्यवस्था हो।" हर्ष की बात है कि सरकार ने इस उपयोगी प्रस्ताव को कार्यरूप में परिणित कर दिया है।

हाल में भारत सरकार के व्यापार विभाग की परक आगणन समिति (Estimates Committee) ने ५ मार्च, १९५१ को भारतीय संसद में अपनी रिपोर्ट पेश की है। इसके कुछ महत्वपूर्ण सुझाव इस प्रकार हैं :—

(१) यूरोपीय देशों के साथ सीधा व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित किया जाय। अभी तक निर्यात व्यापार का एक बड़ा भाग ब्रिटेन के माध्यम से होता रहा है। इसका भारत के निजी निर्यात पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, जिसे अब रोकना चाहिये।

(२) जूट बाजार में जो सट्टा चलता है उसे बन्द किया जाय। जूट कन्ट्रोल अफसर किसी अनुभवी स्वतन्त्र व्यक्ति को बनाया जाय।

(३) नये व्यवसायियों को प्रोत्साहन दिया जाय। उनके आयात लाइसेंस का कोटा बढ़ा दिया जाय। सहकारी संस्थाओं को इस सम्बन्ध में अधिक सहूलियतें प्रदान की जायें।

(४) आयात लाइसेंस साल में केवल एक बार वितरित किये जायें। आवेदन पत्रों की प्राप्ति के लिये वर्ष में केवल एक अंतिम तिथि निश्चित कर ली जाया करे।

(५) आयात व्यापार नियन्त्रण के खिलाफ शिकायतों की जांच के लिए एक कमेटी शीघ्र बनाई जाय।

(६) मशीनें, कच्चा माल तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं के अतिरिक्त आयात पर कठोर नियन्त्रण लगाया जाय।

(७) निर्यात के कोटे दुर्लभ मुद्रा वाले देशों के लिये उसी प्रकार से निर्धारित किये जांय जैसा कि सुलभ-मुद्रा वाले देशों के लिये होते हैं जिन वस्तुओं के निर्यात पर प्रतिबन्ध लगा है उसे किसी प्रकार ढीला न किया जाय।

(८) भारत के विदेशी व्यापार को यूरोप में ही केन्द्रित न करके एशिया के देशों से व्यापार बढाने का प्रयत्न किया जाय।

(९) आयात-निर्यात दोनों का नियंत्रण एक ही अध्यक्ष के अधीन किया जाय।

(१०) इण्डियन एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस के समकक्ष व्यापार सम्बन्धी एक नई सर्विस का प्रारम्भ किया जाय, जिसमें ट्रेड कमिश्नर आदि के उच्च पदों के लिये उपयुक्त शिक्षण की व्यवस्था की जाय।

उपर्युक्त सुझावों के अतिरिक्त इस समिति ने खर्च में कमी करने के लिये प्रबन्ध, नियुक्ति, कार्य-व्यवस्था आदि के सम्बन्ध में कई सिफारिशें की हैं, जिन्हें कार्य-रूप में परिणत करने पर २३,७९,००० रु० सालाना बचत की आशा प्रकट की गई है।

आयात-निर्यात के सम्बन्ध में समिति के उक्त सुझाव सरकार द्वारा विचारणीय हैं। आशा है कि इन सुझावों को यथाशीघ्र कार्यान्वित करने के प्रश्न पर ध्यान दिया जायगा। जूट के मसले पर तत्काल ध्यान देना जरूरी है। जब तक भारत का विभाजन नहीं हुआ था तब तक यहां प्रतिवर्ष ८० से ९० लाख गांठ तक जूट का उत्पादन होता था। इसमें ५० से ६० लाख गाँठ तक पाकिस्तान के अन्तर्गत प्रदेश पैदा करते थे और शेष का उत्पादन वर्तमान भारत में होता था। देश के बंटवारे के फलस्वरूप अब कठिनाई उपस्थित होगई है। भारत की मिलों के लिये कम से कम ५४ लाख गांठ जूट की आवश्यकता है। यद्यपि हाल में पाकिस्तान के

साथ हुए व्यापारिक समझौते से सपस्या कुछ हद तक हल होगई है तो भी जूट के उत्पादन एवं ठीक वितरण की ओर सरकार को सतर्क रहना बहुत जरूरी है।

समिति का उक्त आठवां सुझाव भी महत्व का है। अब समय आगया है जब कि हमें एशिया के देशों की ओर अधिक ध्यान देना चाहिये भारतीय माल की खपत के लिये एशिया के देशों में नये बाजारों का खोजना बहुत आवश्यक है। एशियायी देशों में भारतीय वस्तुओं की प्रदर्शनियां इस कार्य के लिये बड़ी उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। ऐसी एक प्रदर्शनी १९४८ के आरम्भ में सिंगापुर में हुई थी। मलाया पत्रों में इस प्रदर्शनी की बड़ी चर्चा हुई। उन्होंने लिखा कि एशियायी देशों के बीच आर्थिक सहयोग स्थापित करने का यह प्रथम प्रयास है। ऊटकमंड में जून, ४८ में एशिया के देशों का जो आर्थिक सम्मेलन हुआ था उसमें भी इस महाद्वीप के विभिन्न देशों के बीच अधिक आर्थिक सम्पर्क एवं व्यापारिक यातायात बढ़ाने पर जोर दिया गया था।

अन्तर राष्ट्रीय ट्रेड लाइनों में हाल में भारत को कुछ भाग प्राप्त अवश्य हुआ है, पर वह नाम मात्र को ही है। भारत को इतने से ही सन्तोष नहीं कर लेना है अपना उचित भाग प्राप्त करने के लिये उसे निरन्तर उद्योग जारी रखना है। विभिन्न देशों के साथ होने वाले व्यापारिक समझौतों की ओर भी हमें सचेष्ट रहना चाहिये। भारत तथा अन्य पिछड़े हुए देशों की आर्थिक उन्नति के लिये कोलम्बो—योजना, मार्शल—योजना, 'प्वाइन्ट फोर प्रोग्राम' आदि कई योजनाएं बनी हैं पर इनके द्वारा निकट भविष्य में कोई संतोषजनक लाभ होता नहीं दिखाई देता। भारत को मुख्यत: अपने ही पैरों खड़ा होना है। उत्पादन में वृद्धि एवं सुदृढ़ व्यापारिक नीति द्वारा उसे स्वयं अपना आर्थिक पुनरुद्धार करना होगा।

व्यापारिक सङ्गठनों की व्यवस्था

इस समय भारत में अनेक व्यापारिक संगठन है जो अपने अपने क्षेत्र में बहुत-कुछ उपयोगी कार्य कर रहे हैं। इनमें से अधिकांश सङ्गठनों की कार्य-प्रणाली में ठीक व्यवस्था की जरूरत है। व्यापारिक सङ्गठनों में वृद्धि होनी चाहिये और यदि संभव हो तो एक केन्द्रीय अखिल भारतीय व्यापार-मण्डल का उन पर क्रियात्मक नियन्त्रण होना चाहिये, जो विभिन्न सङ्गठनों का ध्यान व्यापारिक हितों की ओर आकृष्ट करता रहे और उनमें आने वाले दोषों को इङ्गित करता रहे। अब व्यक्तिगत लाभ की ओर ही ध्यान न देकर राष्ट्र की उन्नति की ओर भी ध्यान देना आवश्यक है। किसी भी देश को समृद्ध या कंगाल बनाने में व्यापारियों का बड़ा हाथ रहता है। आशा है कि हमारे व्यापारी अपने नवोदित गणराज्य का ध्यान कर इसकी सर्वांगीण उन्नति में सहायक होंगे। अब व्यापारिक क्षेत्र से भ्रष्टाचारी, दलाली,

सट्टेबाजी आदि दूर हो जानी चाहिये। झूठे, अश्लील एवं अतिशयोक्तिपूर्ण विज्ञापनों द्वारा प्रचार करना अथवा खराब माल को अच्छा कहकर बेचना आदि बातों को भी बन्द कर देना आवश्यक है। वस्तुत: इनके द्वारा अपने देश की ही हानि होती है। भारतीय व्यापारियों को अब अपना दृष्टिकोण विशाल बनाना चाहिये। उन्हें अपने देश की बाबत तो सम्यक जानकारी रखनी ही है, साथ ही समीपस्थ तथा दूर के देशों की परिस्थितियों से भी अवगत होना जरूरी है। अब वर्तमान युग में अनेक वैज्ञानिक साधनों के कारण विभिन्न देशों का यातायात सहज गम्य हो गया है। विदेशों की सामाजिक एवं आर्थिक दशा का अध्ययन करने से उन-उन देशों की आवश्यकताओं का पता लग सकता है और तदनुकूल भारतीय व्यापारी अपने आयात-निर्यात की व्यवस्था कर सकते हैं व्यापारिक लाभ के विनियोग का प्रश्न भी महत्वपूर्ण है। यदि अपने लाभाधिक्य का कुछ भाग भारतीय व्यापारी देश के रचनात्मक कार्यों में या व्यापारिक उत्थान के साधनों में लगावें तो वह अधिक उपयोगी हो सकता है। इस दृष्टि से बिरला, ताता, डालमिया आदि के प्रयत्न उल्लेखनीय हैं और दूसरों को भी यथासंभव उनका अनुकरण करना चाहिये।

व्यापारिक संग्रहालयों की स्थापना—यूरोप और अमेरिका में व्यवस्थित व्यापारिक संग्रहालयों की संख्या बहुत अधिक है पर हमारे देश में इनकी संख्या नहीं के बराबर है। अब इस ओर सरकार तथा व्यापारिक संगठनों को ध्यान देना चाहिये। आरंभ में कुछ चुने हुए बड़े व्यवसायिक नगरों में ऐसे संग्रहालय खोले जांय। इनमें देश या प्रान्तविशेष की उपज तथा विभिन्न व्यवसायों से संबंधित वस्तुओं का अच्छे ढंग से प्रदर्शन हो। देश के नौ-उद्योग के विकास तथा व्यापारिक अवस्था का भी दिग्दर्शन इन संग्रहालयों में होना चाहिये। साथ ही उनमें उन्नतिशील देशों की औद्योगिक एवं व्यापारिक दशा का भी प्रदर्शन आवश्यक है। विविध चित्रों, नकशों और चार्टों के द्वारा ऐसा किया जा सकता है। यदि ये संग्रहालय ऊपर कहे हुए शिक्षण-केन्द्रों में हों तो और अच्छा है। विभिन्न शिक्षण-केन्द्रों के विद्यार्थियों को इन संग्रहालयों में लाकर उनके व्यावहारिक ज्ञान की वृद्धि की जा सकती है। इन संग्रहालयों में एक पुस्तकालय-विभाग भी होना चाहिये। इसमें शिल्प एवं व्यापार सम्बन्धी प्राचीन एवं नवीन प्रकाशन पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएं संग्रहीत हों, जिनके द्वारा देश-विदेश की व्यापारिक समस्याओं, तथा विविध अन्वेषणों आदि की जानकारी प्राप्त हो सके। इस प्रकार के व्यवस्थित संग्रहालय देश की आर्थिक स्थिति को सुधारने में निस्संदेह सहायक सिद्ध होंगे।

भारतीय व्यापार का भविष्य उज्वल है। इस देश ने संसार के विभिन्न देशों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने तथा व्यापारिक क्षेत्र में अपना उचित भाग प्राप्त करने का निश्चय कर लिया है। हमें विश्वास है कि भारत अपनी 'बहुजनहिताय' नीति का

दृढ़ता के साथ पालन कर अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में अपना गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त करेगा। हम भारत सरकार के मंत्री माननीय श्री गाडगिल के शब्दों में आशा करते हैं कि "हमारे जहाज सारे विश्व में जाते-आते रहेंगे। वे सातों समुद्रों में भारत के झंडे को फहराते हुए दिखाई देंगे तथा हमारा व्यापार संसार के प्रत्येक देश के साथ होगा।"

भारत के विदेशी व्यापार का भविष्य में क्या रुख रहेगा इसका बहुत कुछ निर्णय देश की औद्योगिक उन्नति पर निर्भर करेगा। अस्तु, हमारे विदेशी व्यापार की भावी दिशा के बारे में अल्पकालीन और दीर्घकालीन दोनों आधारों पर विचार करना आवश्यक है। जैसा कि पिछले अध्याय में बताया गया है पिछले वर्षों में हमारे विदेशी व्यापार की सबसे बड़ी समस्या विपक्षीय व्यापारिक संतुलन की रही है जिसके कारण विदेशी विनिमय, (विशेषतौर से दुर्लभ मुद्रा की) हमें कठिनाई पड़ रही है। हमारी अल्पकालीन (Short term policy) विदेशी व्यापार सम्बन्धी नीति यह होनी चाहिये कि हमें विदेशी विनिमय की तत्कालिक आवश्यकता पूरी करने में कठिनाई न पड़े। यह तत्कालीन आवश्यकता मौजूदा उद्योग को चालू रखने, उनमें मशीनरी आदि का आवश्यक परिवर्तन करने और आवश्यक उपभोग की वस्तुओं को प्राप्त करने से सम्बन्ध रखती है। इन बातों की कमी को पूरा करने के लिए हमें अपने व्यापारिक संतुलन को ठीक करना पड़ेगा। इसके मुख्य उपाय ये हैं—(१) देश में माल की कीमतों को कम करना। (२) मुद्रा का अवमूल्यन करना (३) उत्पादन के स्वरूप में परिवर्तन करना और (४) द्विपक्षीय व्यापारिक समझौते करना। भारत भी इसी दशा में प्रयत्नशील रहा है। इससे हमारा व्यापारिक संतुलन सुधरा भी है।

हमारी दीर्घकालीन विदेशी व्यापार की नीति (long-term policy) ऐसी होनी चाहिये जिससे हमें अपने आर्थिक विकास में सहायता मिले। इस दृष्टि से आवश्यक माल हम विदेश से मंगा सकें, जो माल हम बाहर भेज सकें उसके उत्पादन में विशेषता प्राप्त करें और अनुकूल बाजारों में उस माल को बेचने की व्यवस्था करें—यह हमारे विदेशी व्यापार का लक्ष्य होगा इस दृष्टि से आर्थिक विकास की प्रथम अवस्था में पूंजीमाल हमें बाहर से मंगाना पड़ेगा और इसलिये हमारा आयात बढ़ेगा और कच्चे माल का निर्यात घटेगा। देश में यातायात सम्बन्धी और आधारभूत उद्योगों और उपभोक्ता वस्तुओं के कारखानों की वृद्धि करनी होगी। दूसरी अवस्था में जब देश में आधारभूत उद्योगों का उत्पादन बढ़ेगा और राष्ट्रीय आय भी बढ़ेगी तो पूंजी माल का आयात कम होगा और उपभोग की वस्तुओं के आयात की प्रवृत्ति बढ़ेगी, अगर उसे रोकने का प्रयत्न न किया गया। अन्तिम अवस्था में उपभोग की वस्तुओं का उत्पादन भी बढ़ेगा। इससे इन चीजों का आयात कम होगा पर पर्याप्त

उत्पादन होने पर निर्यात बढ़ सकता है। इस काल में विशेष प्रकार की और कीमती उपभोग की वस्तुएं बाहर से मंगवाई जा सकती हैं।

जहां तक इस व्यापार में विभिन्न देशों के स्थान का प्रश्न है उसके बारे में यह कहा जा सकता है कि पूंजीगत माल यूरोप और अमेरिका से तथा कच्चा माल पड़ौसी एशिया के राष्ट्रों से मंगवाना पड़ेगा। हमारा निर्यात व्यापार भी इन देशों और एशिया तथा अफ्रीका के पिछड़े हुए देशों में बंट जायगा।

यातायात
TRANSPORT

खण्ड—२

अध्याय १०

यातायात के साधन

MEANS OF TRANSPORT

भारत में यातायात के साधन तथा उनसे लाभ

यदि कृषि और उद्योग धन्धे किसी देश के आर्थिक जीवन का शरीर और हड्डियां मानी जांय तो यातायात को उस आर्थिक ढांचे की स्नायु-प्रणाली मानना चाहिए। आजकल का समाज यातायात के साधनों पर बहुत निर्भर है। हमारा आर्थिक जीवन ऐसा बन गया है कि यातायात के साधनों के अभाव में हमेशा आर्थिक संकट पड़ने की सम्भावना रहती है। व्यापार, कृषि और औद्योगिक उन्नति इसी की सहायता से हो सकी है। बड़े बड़े दूर के स्थान, अब थोड़े समय में ही पार किये जा सकते हैं। वस्तुओं का बाजार विस्तृत हो जाने से उत्पत्ति का पैमाना बहुत बड़ा हो गया है। शासन-व्यवस्था, देश रक्षा और समाज लाभ की दृष्टि से भी यातायात का एक बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक लगभग प्रत्येक देश में यातायात के अच्छे साधन नहीं थे। इसी लिये मानव-समाज बहुत पिछड़ा हुआ था। मानवीय-सभ्यता इन्हीं साधनों की उन्नति पर निर्भर है। इन साधनों की उन्नति के परिणामस्वरूप सारा संसार एक बाजार के रूप में परिणत हो गया है। अब एक छोटे से छोटे स्थान की बनी वस्तुएं संसार के किसी भी भाग में ले जाकर बेची जा सकती हैं। यातायात के साधनों का प्रभाव (१) देश की औद्योगिक उन्नति तथा (२) कृषि पर बहुत पड़ा है।

(१) *देश की औद्योगिक उन्नति* (Industrial Development of the Country)—यातायात के साधनों का देश के उद्योग-धन्धों पर बहुत प्रभाव पड़ता है। कुछ मनुष्यों का यह मत है कि प्राचीन भारत में यातायात के साधनों की काफी उन्नति हो चुकी थी और राजा लोग इस ओर काफी ध्यान दिया करते थे। इन साधनों की उन्नति में व्यय करना वे अपना धर्म और पुण्य का काम समझते थे। समय की प्रगति के साथ ही साथ इन साधनों में अधिक वृद्धि नहीं हुई। इसलिये इन साधनों के पिछड़े होने पर देश को आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा।

भारतवर्ष एक कृषि–प्रधान देश है। जब यहां कृषि में ही उन्नति नहीं हो सकी, तब उद्योग–धन्धों में उन्नति होने की क्या सम्भावना थी? ब्रिटिश शासन–सत्ता ने इस ओर काफी ध्यान दिया। सरकार ने सड़कें ही नहीं बनवाईं बल्कि रेलों का जाल बिछाने का श्रेय भी उन्हीं को प्राप्त है। राष्ट्रीय सरकार ने भी इन साधनों में आवश्यकता–नुसार वृद्धि करने की योजनाएं बनाई है।

(अ) *उद्योग-धन्धे*—यातायात के साधनों से देश के उद्योग–धन्धों को काफी सहायता मिली है। कच्चा माल उत्पन्न होने के स्थान से कल-कारखानों के दरवाजों तक तथा इनमें बना हुआ पक्का माल देश के कोने कोने में और विदेशों के बाजारों को भेजने में इन्हीं ने सहायता दी है। सस्ते, जल्द, और क्षमतावान यातायात के साधनों की सहायता से ही देश में इतने उद्योग-धन्धे खुल सके हैं। जिस स्थान पर यातायात के अच्छे साधन नहीं होते, वहां उद्योग धन्धों का केन्द्रीकरण हो जाता है और इस स्थानीयकरण से देश, समाज तथा उद्योग–धन्धों को हानि पहुंचती है। यह सच है कि वस्तुओं की बड़ी पैमाने पर उत्पत्ति होने से (यह यातायात के साधनों में उन्नति होने से ही सम्भव है) छोटे पैमाने की उत्पत्ति को तथा घरेलू उद्योग–धन्धों को बड़ी हानि हुई है। इनमें से कुछ धन्धे तो देश में सदा के लिये ही समाप्त हो गये हैं। इस गला–काट प्रतिस्पर्धा के युग में घरेलू उद्योग–धन्धों का कोई स्थान नहीं है।

(आ) *व्यापार*–किसी देश का व्यापार वहां के यातायात के साधनों पर निर्भर है। भारतवर्ष में भी यातायात के साधनों में उन्नति होने के कारण व्यापार में बड़ी वृद्धि हुई है। व्यापार और यातायात के साधनों का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह कहना अधिक नहीं होगा कि दोनों की ही उन्नति एक दूसरे पर निर्भर है।

(२) *कृषि पर प्रभाव* (Effect on Agriculture)–भारत में कृषि मुख्य व्यवसाय है। कृषि और यातायातके साधनों का भी बहुत घनिष्ठ संबंध है इन साधनों का प्रभाव कृषक की आर्थिक स्थिति, रहन–सहन का स्तर, सांसारिक अनुभव तथा शिक्षा आदि पर पड़ा है :—

(अ) *कृषकों की शिक्षा*–यातायात के साधनों में उन्नति होने से किसान व तमाम ग्रामीण जनता एक स्थान से दूसरे स्थान को आसानी से आने जाने लगी है। उन्हें कृषि-सम्बन्धी नुमायश, मेले आदि देखने का अवसर मिलने लगा है। यद्यपि भारतीय कृषक अशिक्षित है पर कृषि करने के तरीकों में समय समय पर जो परिवर्तन हुए हैं, उन्हें वह समझने लगा है। प्रान्तीयता, रूढ़िवाद, जाति-पांति के भेद, तथा अन्य सामाजिक कुरीतियां उनमें से अब धीरे २ दूर होती जा रही हैं। (आ) *ग्रामीण श्रमिक गतिशील होता जा रहा है*–सांसारिक अनुभव होने के कारण ग्रामीण पुरुष शहरों तथा अन्य स्थानों को जाने में बिलकुल नहीं हिचकिचाते हैं। धीरे २ उस पर

शहरी जीवन का असर पड़ने से उसका रहन सहन का स्तर ऊंचा हो गया है और अब वह अपनी आर्थिक स्थिति पहले की अपेक्षा अच्छी करने के विचार से नए-नए उद्योग-धंधों में अच्छे वेतन पर नौकरी करने लगा है। जीवन की लगभग सब ही आवश्यक वस्तुएँ उसे गांवों में ही प्राप्त होने के कारण, उनके रहने के तरीके में पहले से बहुत परिवर्तन हो गया है। (इ) *कृषि व्यापारिक होती जा रही है*—यातायात के साधनों का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव कृषि पर पड़ा है। इन साधनों से पहले कृषक अपने परिवार अथवा अपने गांव तथा देश की मांग की पूर्ति करने के लिये ही भोज्य-सामग्री का उत्पादन करता था, पर इन साधनों की सहायता से अब वह अपनी उत्पत्ति संसार के किसी बाजार में भेज कर बेच सकता है और अधिक लाभ उठा सकता है। इन साधनों ने उसे व्यापारिक-कृषि करने के लिये प्रोत्साहन दिया है। (ई) *कृषि वस्तुओं का बाजार विस्तृत हो गया है*—व्यापारिक-कृषि (Commercial Agriculture) होने से खाद्य-पदार्थों की उत्पत्ति बहुत बड़े पैमाने पर होने लगी है। यदि किसी स्थान पर बाढ़, अत्यधिक या कम वर्षा या भूकम्प या युद्ध के कारण दुर्भिक्ष पड़ने की सम्भावना हो गई है, तब अधिक उत्पत्ति वाले देश या स्थान से खाद्य-पदार्थ कुछ ही दिनोंमें इन स्थानोंको भेज कर मानवीय–कष्ट दूर किया जा सकता है। वस्तु के मूल्य का सन्तुलन (Balancing) भी होता रहता है परन्तु प्राचीन काल में यातायात के साधनों की कमी होने से जगह २ पर दुर्भिक्ष पड़ना एक साधारण बात थी। उस समय यदि किसी स्थान पर खाद्य–पदार्थों की अधिक उत्पत्ति हो जाती थी, तो कृषक को वस्तुओं का कम मूल्य प्राप्त होता था। बाजार में वस्तुओं के मूल्य में मन्दी आ जाने के कारण कृषक को हानि हो जाती थी और यदि किसी स्थान पर कम उत्पत्ति होती थी, तब मनुष्य भूखे मरने लगते थे। परन्तु ऐसी बातें आजकल देखने में आती हैं। यातायात के साधनों से बाजार में खाद्य पदार्थों की पूर्ति बहुत कुछ निश्चित हो गई है। (उ) *भूमि पर नष्ट होने वाली वस्तुओं की उत्पत्ति होने लगी है*—शहरों में शाक, अण्डे, दूध तथा घी का अधिक उपभोग होता है। शहर में इन वस्तुओं की उत्पत्ति करने में बहुत व्यय होता है। गाँव के कृषक इन वस्तुओं को बहुत कम मूल्य पर पैदा कर लेते हैं और शहरों में ऊंचे मूल्य पर बेच कर अपनी आर्थिक स्थिति को अच्छी कर लेते हैं। शहर निवासियों को भी यह लाभ हो गया है कि वे इन वस्तुओं को शुद्ध, ताजी तथा कम कीमत पर प्राप्त कर लेते हैं। अतः एक ग्रामीण के जीवन पर शहर की प्रवृत्तियों का बहुत प्रभाव पड़ता है। साथ ही साथ वह भी दूसरे देशों की आर्थिक स्थिति पर प्रभाव डाले बिना नहीं रहता है। परन्तु यह सब कुछ यातायात के साधनों में उन्नति करने से ही सम्भव हुआ है।

यातायात के साधन

यातायात के साधनों की प्रत्येक समय और प्रत्येक देश में आवश्यकता पड़ती है। बिना यातायात के साधनों के व्यापार हो ही नहीं सकता। यदि यातायात के साधन सुलभ न हों तो प्रत्येक छोटा २ प्रदेश एक पृथक क्षेत्र बन जावे और उसका अन्य प्रदेशों से कोई संबंध ही न रहे। मानव सभ्यता के विकास में यातायात के साधनों का सदैव से ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है। आज भी चाहे अफ्रीका के पिछड़े महाद्वीप के निवासियों के व्यापार को लें या उन्नतिशील यूरोप को लें यातायात के साधनों की आवश्यकता सभी जगह प्रतीत होती है। माल लाने और ले जाने का व्यापार साधनों के बिना हो ही नहीं सकता और यातायात के लिए व्यापारिक मार्ग चाहिए।

अत्यन्त प्राचीन काल में एक स्थान से दूसरे स्थान तक माल ले जाने के लिए मनुष्य का उपयोग होता था। उस समय केवल पगडंडिया ही व्यापार का मार्ग थीं। बड़े और चौड़े मार्गों की आवश्यकता ही न थी। क्योंकि वह जिधर चाहता उधर ही सुविधानुसार जा सकता था। शनैः २ कार्य के अधिक होने पर मनुष्य ने पशुओं को वस्तु वाहन के लिए प्रयोग किया तो पगडंडियों के स्थान पर चौड़े मार्गों की आवश्यकता हुई क्योंकि पगडंडियों पर माल लादे हुए पशु नहीं चल सकते थे। किंतु उस समय भी कोई विधिवत मार्ग बनाया जाता था। व्यापारी माल से लदे हुए पशुओं के कारवां ऐसे रास्ते से ले जाते थे जो सुविधाजनक थे। ये मार्ग पशुओं के लगातार चलने से चौड़े बन जाते थे। तदुपरांत पहियों वाली गाड़ियों का चलन आरंभ हुआ जिनमें पशुओं को जोतकर कई गुना अधिक माल ले जाया जाने लगा। पहियेदार गाड़ी के उपयोग से अच्छे और मजबूत मार्गों की आवश्यकता पड़ी और इसके लिए सड़कों का निर्माण किया गया। तदुपरांत आर्थिक संगठन की पेचीदगियों के साथ और भी तीव्र तथा सस्ते यातायात की आवश्यकता का अनुभव किया गया। फलस्वरूप यांत्रिक यातायात का श्री गणेश हुआ। मोटर बसों के लिए बढ़िया और मजबूत सड़कों की आवश्यकता हुई। रेलों के लिए तो और भी अधिक मजबूत रेल मार्गों की आवश्यकता पड़ती है। चाल तथा सामर्थ्य की दृष्टि से यांत्रिक यातायात मानव तथा पशु यातायात से कहीं श्रेष्ठ है किंतु इसके लिए निर्दिष्ट तथा व्यवस्थित मार्गों की आवश्यकता पड़ती है। समुद्री तथा वायुयान के लिए यद्यपि सड़कों अथवा पटरियों की तो आवश्यकता नहीं होती किंतु जलयानों और वायुयान के लिए मार्ग निर्दिष्ट करने होते हैं। यह मार्ग जलवायु की अनुकूलता तथा ईंधन की सुविधा इत्यादि के आधार पर नियत किये जाते हैं। यांत्रिक यातायात का प्रचार आजकल बहुत बढ़ गया है। इनकी व्यवस्था में बहुत धन व्यय करना

पड़ता है किंतु इनकी उपयोगिता भी बहुत अधिक है। यही आजकल के व्यवसाय का मेरूदंड है।

यातायात के प्रकार

यातायात के मार्गों को तीन प्रकार से विभाजित किया जा सकता है:—

१. स्थल यातायात

२. जल यातायात

३. वायु यातायात

यातायात की किस्में

(क) स्थल यातायात	(ख) जल यातायात	(ग) वायु यातायात
१. मनुष्य	१. नदियां	वायुयान
२. पशु	२. नहरें	
३. सड़के	३. झीलें	
४. रेलें	४. समुद्र	

(क) स्थल यातायात (Land Transport)

स्थल यातायात के अन्तर्गत बैलगाड़ी, भैंसा या घोड़ा गाड़ी, ऊंट गाड़ी, साइकिल, ट्रामगाड़ी, मोटर या रेलगाड़ी शामिल है। ग्रामीण क्षेत्रों में कच्ची सड़कों पर बैलगाड़ी आदि का ही उपयोग होता है। कच्ची सड़कों पर इनके प्रयोग में बड़ी असुविधायें रहती हैं। वर्षा ऋतु में कीचड़ और शुष्क ऋतु में धूल के कारण बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ता है किंतु विवश होकर मनुष्य जैसे तैसे अपना काम चलाता ही है।

स्थल मार्गों का निर्माण करते समय प्राकृतिक दशा पर विशेष ध्यान देना पड़ता है क्योंकि मैदानी भागों में ही सड़कें या रेलें सुगमता से बनाई जा सकती हैं। पहाड़ी प्रदेशों में जो सड़कें बनाई जाती हैं वे घाटियों में ही बनाई जाती हैं। पहाड़ी प्रदेश में सड़कें, बनाते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि बहुत अधिक चढ़ाई और दर्रों को बचाया जाय अन्यथा खर्च बहुत होता है। मैदानों में भी सड़कों को केवल इसलिये घुमाकर बनाया जाता है कि उससे नदी के ऊपर पुल बनाने के लिए उचित स्थान मिलने की सुविधा हो। सड़क बनाने के लिए कंकड़, पत्थर आदि का उपयोग होता है वह भी वहां आसानी से मिल जाते हैं। रेलें भी अधिकतर मैदानों में ही बनाई जाती हैं। पहाड़ों में रेलें बनाने में बहुत कठिनाई और व्यय

पड़ता है। अधिकांश पहाड़ी रेलें नदियों की घाटियों में ही बनाई जाती हैं। मार्ग में पड़ने वाली ऊंची पहाड़ियों को सुरंग बनाकर पार किया जाता है और नदियों पर पुल बनाकर मार्ग निकाला जाता है।

जलवायु का भी व्यापारिक मार्गों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। जिन देशों में वर्षा अधिक होती है वहां नदियों में बाढ़ आते रहने के कारण स्थल मार्ग बनाने और उनकी रक्षा करने में बहुत व्यय होता है क्योंकि प्रायः प्रत्येक वर्षा में मार्ग नष्ट हो जाते हैं। पुलों के निर्माण में भी अधिक व्यय होता है। इसी प्रकार ठंडे प्रदेशों में जहां शीतकाल में बर्फ जम जाती है स्थल मार्गों का बनाना और उनको कार्यशील रखना कठिन और व्यय साध्य होता है। जिन दिनों किसी देश में कुहरा अधिक पड़ता है उन दिनों स्थल मार्गों की कार्यशीलता नष्ट हो जाती है क्योंकि मार्ग स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ता।

जिन क्षेत्रों में अधिक मुसाफिर तथा सामान मिलता है उन्हीं में होकर स्थल मार्ग बनाये जाते हैं जिससे अधिक से अधिक आय हो सके। अस्तु सघन जनसंख्या वाले और औद्योगिक क्षेत्रों में स्थल मार्गों का जाल सा बिछ जाता है।

स्थल मार्गों पर निम्न साधन माल लाने ले जाने में व्यवहृत किए जाते हैं।

(१) मनुष्य (Human Porter)

विश्व की जनसंख्या अपने स्थानीय यातायात के लिए मुख्य साधन के रूप में मानव का उपयोग करती रही है। पदार्थों को एक जगह से दूसरी जगह पहुंचाने का काम मनुष्य स्वयं करते हैं। इसके राजनैतिक, सामाजिक, औद्योगिक प्रगति, आर्थिक दशा, जनसंख्या का घनत्व, भूमि की प्राकृतिक बनावट और जलवायु आदि कई कारण हैं। यद्यपि मनुष्य का उपयोग बोझा ढोने में बहुत कम हो गया है किंतु आज भी कुछ पहाड़ी प्रदेशों में अथवा वृतीय जंगलों में सड़कें बनाना कठिन ही नहीं असंभव भी है। दक्षिणी पूर्वी एशिया के कुछ भागों में मानव श्रम सबसे सस्ता साधन है। इसका कारण केवल पशुओं की कमी ही नहीं किंतु इन प्रदेशों में एक एक इंच भूमि बहुमूल्य है इसलिये यहां सड़कें इतनी ही चौड़ी बनाई जाती हैं जिससे आना जाना हो सके। घोड़ा गाड़ी या बैलगाड़ी के लिए वहां गुजाइंश नहीं। मनुष्य द्वारा ढोये जाने वाले सामान का पता हमें इस बात से लग जाता है कि दक्षिणी पश्चिमी चीन और तिब्बत में लोग साधारणतः २०० पौंड उठाकर १२० मील की दूरी ७,००० फोट की औसत ऊंचाई पर २० दिन में पहुंच जाते हैं। इसके विपरीत एक औसत एशियाई और अफ्रीकी कुली ५५ से ६६ पौंड के बीच बोझा उठाने की क्षमता रखता है और यदि वह हाथ की गाड़ी (Wheel Barrow) का सहारा लेता है तो साधारतः २५० पौंड बोझा ढोता है मनुष्य का

उपयोग बोझा ले जाने के लिए केवल उन्हीं भागों में होता है जहां अन्य साधन उपलब्ध नहीं है।

(२) पशु यातायात (Animal Transport)

यद्यपि बोझा ढोने तथा सवारी के साधन के रूप में पशुओं का स्थान बहुत निम्न है किन्तु जहां लद्दू जानवरों की बाहुल्यता है और प्राकृतिक परिस्थितियां सड़कों, मोटरों अथवा रेल बनाने के अनुकूल नहीं हैं, वहां पशुओं का उपयोग किया जाता है। ऐसे ही स्थानों में पशुओं ने मानवको श्रम से बचानेके लिए काफी सहायता पहुंचाई है।

आवागमन के साधनों के रूप में पशुओं का उपयोग किसी देश के अप्रगतिशील तथा पिछड़ेपन का संकेत करता है किन्तु यह जानकर आश्चर्य होगा कि पश्चिमी दुनिया के औद्योगिक सभ्यता वाले देशों में अभी भी पशुओं का महत्व बहुत अधिक है। कुछ समय से ही सभ्य जगत के बहुत से भौतिक साधन उनके श्रेय को कम करने की बराबर चेष्टा कर रहे हैं किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वह शीघ्र ही उनके स्थान को ग्रहण कर लेंगे। शीतोष्ण प्रदेशों में घोड़ा आवागमन का एक सामान्य साधन है किन्तु इसके विपरीत उष्ण कटिबन्ध तथा शीतोष्ण कटिबन्ध के गर्म भागों में बैल ही प्रमुख साधन है। पुरानी दुनिया में गर्म मरुस्थलों में ऊंट सवारी तथा बोझा ढोने का कार्य करते हैं। इसे चारे तथा पानी की कम आवश्यकता होती है। एक दिन में यह ४५० पौंड वजन उठाकर ३० मील का सफर तय कर सकता है। अपने गद्देदार पांवों के कारण यह बालू मिट्टी में आसानी से लम्बी यात्रायें कर सकता है। इसीलिए इसे 'रेगिस्तान का जहाज, कहते हैं।

भूमध्यसागर के निकटवर्ती यूरोपीय देशों में घास की कमी है तथा भूमि पथरीली और पहाड़ी है इस कारण यहां गधे और खच्चर का ही अधिक उपयोग किया जाता है। यह ऊबड़ खाबड़ भूमि में भी सरलता से चला जाता है। सधे हुए पांव और सहनशीलता ही इसका मुख्य गुण है। यह ३०० पौंड तक वजन खींच सकता है।

दक्षिणी पूर्वी एशिया के पहाड़ी, नम तथा घने जंगली प्रदेशों में हाथी ही आवागमन का मुख्य साधन है। भारत, बर्मा, लंका, थाईलैंड, मलाया, सुमात्रा बोर्नियों आदि में इसका अधिक उपयोग होता है। अफ्रीका में अब इसका महत्व कम होता जा रहा है। जिन घने जंगलों में गहरे वृक्षों, लताओं अथवा भूमि पर दलदल होने के कारण और कोई साधन प्रयुक्त नहीं किया जा सकता वहां हाथी ही यातायात के लिए उपयुक्त माना गया है। अपने भारी डील डौल तथा शक्ति के कारण यह १००० पौंड वजन तक खींच सकता है किन्तु धीमी मस्त चाल से चलने वाला हाथी बहुत उपयोगी नहीं होता।

ऊंची पर्वतमालाओं, कन्दराओं तथा दर्रों को पार करने के लिये तिब्बत में याक, हिमालय में भेड़ें, एंडीज पर्वत में लामा और राकी पर्वत में विकूना पशु और टर्की में बकरों का उपयोग किया जाता है। निचले पहाड़ी प्रदेशों में भेड़ और बकरे ही बोझा ढोते हैं किन्तु वे २५-३० पौंड से अधिक वजन नहीं ढो सकते। उत्तर के अधिक ठंडे और बर्फीले प्रदेशों में वहीं की परिस्थिति में पला हुआ रेंडियर आवागमन का मुख्य साधन है। यह साधारण बैल से कुछ ही कम बोझा ढोता है। जहां इनकी कमी है वहां कुत्तों का प्रयोग किया जाता है। यूरोप के अधिक देशों में हालैंड, डेनमार्क, पौलैंड, रूस आदि देशों में—घोड़ा और कुत्ते भी बोझा ढोने के काम आते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट होगा कि वर्तमान काल के उत्तमोत्तम यांत्रिक साधनों के होते हुए भी विश्व के कई भागों में पशुओं का महत्व अब भी अधिक है। पशु द्वारा होने वाले यातायात के मुख्य लाभ यह हैं :—

(१) जिन भूभागों पर (पर्वतीय प्रदेशों अथवा विस्तीर्ण उजाड़ मरुस्थलों) यातायात के अन्य साधन नहीं पहुंच सकते वहां भी पशुओं द्वारा सुगमता पूर्वक यात्री और माल ढोना होता है। यही कारण है कि घने जंगलों में हाथी, मरुस्थलों में ऊंट और पहाड़ी देशों में विकूना, याक, लामा आदि पशुओं का ही महत्व अधिक है।

(२) पशुओं के चलने के लिये किसी विशेष प्रकार के मार्गों के निर्माण की आवश्यकता नहीं होती। वे अपने सधे हुये पांवों और फुर्ती के कारण किसी भी तरफ जा सकते हैं और जहां भी हो वहां से माल और यात्री ला और ले जा सकते हैं। ये प्रायः पगडंडियों का अनुसरण करते हैं जिनके बनाने में मानव का धन खर्च नहीं होता और जो प्रकृति द्वारा स्वतः ही बनाया जाता है।

(३) पशुओं द्वारा यातायात न केवल सुगम ही प्रत्युत सस्ता भी बहुत होता है क्योंकि मार्ग में उगने वाले वृक्षों की पत्तियां अथवा टहनियां खाकर ही ये अपना निर्वाह कर सकते हैं। पशुओं के टूट-फूट और घिसावट का भी प्रश्न उपस्थित नहीं होता। उन्हें दिन भर में थोड़े विश्राम की आवश्यकता होती है जिसे पा जाने पर वे पुनः यात्रा आरम्भ कर देते हैं। कुछ पशु तो दोतरफा लाभदायक होते हैं वे न केवल बोझा ही ढोते है बल्कि कृषि कार्य में भी सहायक होते हैं।

(४) पशुओं द्वारा राष्ट्रीय आय में भी वृद्धि होती है। राष्ट्रीय योजना आयोग के अनुसार प्रतिवर्ष सामान आदि ढोने में पशुओं द्वारा १००० करोड़ रुपयों की प्राप्ति होती है। इसमें से यदि उनके रखने आदि का खर्च निकाल दिया जाय तो भी देश को प्रतिवर्ष १०० करोड़ रुपये का लाभ होता है।

इन गुणों के अतिरिक्त पशु द्वारा होने वाले यातायात में कुछ दोष भी हैं। वे बहुत धीमे चलते हैं तथा बोझ ढोने की उनकी शक्ति भिन्न २ होती है। इसके अलावा सबसे बड़ा दोष तो यह है कि एक बार अशक्त हो जाने के पश्चात् वे मालिक के लिए पूंजीगत हानि हो जाते हैं अधिक दूरी वाले स्थानों के लिये पशुओं का यातायात अधिक व्ययसाध्य हो जाता है। आज कल जहां २ रेलों और मोटरों का प्रसार बढ़ता जा रहा है वहां तो अब यह साधन बहुत कम प्रयोग में लाये जाते हैं किन्तु जिन भागों में अभी इन साधनों का प्रचार नहीं हुआ है वहां अब तक भी पशुओं द्वारा ही व्यापार किया जाता है। पृथ्वी पर पालतू पशुओं की संख्या इस प्रकार आँकी गई है :—

भेड़	७० करोड़	खच्चर	करोड ६० लाख
बकरी	११ ,,	ऊंट	६० ,,
घोड़े	६ ,, ६० लाख	रेंडियर	२० ,,
भैंसे	७ ,, ३० ,,	लामा और अल्पाका	२० ,,
गधे	३ ,, ३० ,,		

भारत में भी माल ढोने के लिए पशु ही अधिक काम में लाये जाते हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि सम्पूर्ण भारत में १७ लाख घोड़े, १७ हजार खच्चर १५ लाख गधे, और ५ लाख ऊंट तथा १० लाख बैल यातायात के साधनों के रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं। हाथियों को संख्या अधिक नहीं है। बैल तो भारतीय कृषि के एक मात्र साधन है। वे न केवल कृषि कर्म में ही सहायता देते हैं। बल्कि खेती की पैदावार को मंडी तक लाने में भी बड़ी सहायता देते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में गधे, खच्चर, तथा घोड़ों का भी उपयोग होता है। ये खेती की पैदावारों को शहरों में लाते हैं और उनके बदले अन्य सामान गांवों को ले जाते हैं। पूर्वी बंगाल अथवा दक्षिणी भारत के सघन बनों में हाथियों का महत्व अधिक है क्योंकि ये न केवल यातायात का साधन ही प्रस्तुत करते हैं बल्कि इनकी मृत्यु के पश्चात् इनसे हाथी दांत, चमड़ा तथा हड्डियां आदि भी प्राप्त होती हैं जो व्यापार में काम आती हैं। हाथियों की रक्षा और बचाव के लिये राष्ट्रीय योजना आयोग ने कहा है, "यदि अविवेकपूर्ण शिकार अथवा मनोरंजन के साधन में प्रयुक्त कर हाथी जैसे यातायात के प्रमुख साधन को नष्ट होने से न रोका गया तो देश को काफी राष्ट्रीय क्षति होगी।" इसी सुझाव को स्वीकार कर आसाम और मैसूर की सरकारों ने कड़े कानून बना दिये हैं।

यह वास्तव में बड़ी ही हास्यास्पद बात है कि जहां रेलों, सड़कों तथा वायु मार्गों के विकास में राष्ट्रीय सरकार ने पर्याप्त व्यय किया है वहां पशु यातायात के सम्बन्ध में कोई निश्चित कदम नहीं उठाया गया है। जो कुछ भी पशुओं की नस्लों

में सुधार किया गया है वह केवल उनसे प्राप्त होने वाले दूध आदि वस्तुओं की दृष्टि ही से। अतएव इस बात की आवश्यकता है कि देश में पशु यातायात के विकास का समुचित प्रबन्ध किया जाय।

(३) बैलगाड़ियां (Bullock Carts)

सड़कों पर न केवल बैलगाड़ियों और मोटरों द्वारा ही आना जाना होता है बल्कि भारत जैसे विशाल देश में बैलगाड़ियों का महत्व बहुत अधिक है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि भारत के आन्तरिक व्यापार का लगभग ७०% सामान बैलगाड़ियों द्वारा ही ढोया जाता है। सम्पूर्ण देश में ६० लाख से भी अधिक बैलगाड़ियां हैं। डा० पन्त के मतानुसार प्रति ४१ व्यक्तियों के पीछे देश में १ बैलगाड़ी और प्रति १४००० व्यक्तियों पीछे १ मोटर है। इसमें कोई संदेह नहीं कि पिछले कुछ वर्षों से देश में यातायात के साधनों का समुचित विकास होरहा है जिसके फलस्वरूप यांत्रिक साधन में हम उत्तरोत्तर वृद्धि करते जा रहे हैं किन्तु ग्रामीण भारत में आज भी बैलगाड़ियों का ही साम्राज्य है। देश के दूरस्थ स्थानों में उत्पादित कृषि उपज बड़े २ नगरों को इन्हीं बैलगाड़ियों द्वारा लाई जाती है। बैलगाड़ियों का महत्व गांवों में अधिक है इसका एक कारण यह भी है कि नगरों और गांवों के बीच उत्तम सड़कों का अभाव है अस्तु मोटरें आदि इन पर नहीं चलायी जा सकती।

भारतीय ग्रामीण यातायात में बैलगाड़ियों का आर्थिक महत्व अधिक होने के कई कारण हैं:—

(१) बैलगाड़ियां गांवों में ही जंगलों द्वारा प्राप्त हुई लकड़ियों से गांव के कारीगरों द्वारा अपने फुरसत के समय बनाली जाती हैं। इनके बनाने में विशेष खर्च भी नहीं होता क्योंकि यदि गाड़ी का कोई भाग भी टूट जाता है तो वह आसानी से ही पुनः तैयार किया जा सकता है। गाड़ी बनाने में आरम्भ में अधिक पूंजी की आवश्यकता नहीं पड़ती है क्योंकि किसान अपने व्यर्थ के समय में देशी सामान से घरेलू धन्धे के बतौर इन्हें बनाया करते हैं और इस कार्य में इन्हें अपने परिवार के सदस्यों का भी सहयोग मिल जाता है।

(२) गाड़ी रखने में किसान या मालिकों को अधिक खर्चा नहीं करना पड़ता क्योंकि वह स्वयं ही गाड़ी चलाता है तथा उसके .। के लिये चारा आदि भी उसे अपने खेतों से मिल जाता है।

(३) गाड़ियों द्वारा प्रतिवर्ष १००० लाख टन से भी अधिक का सामान ढोया जाता है। गाड़ियों द्वारा यात्री भी असंख्य संख्या में लाये—लेजाये जाते हैं। गाड़ियों आदि में लगभग ३०० करोड़ रुपये की पूंजी लगी हुई मानी गई है जिसमें से २०० करोड़ रुपयों की प्राप्ति तो प्रति वर्ष माल—ढोकर लेजाने से ही हो जाती है। लगभग

१ करोड़ व्यक्तियों और २ करोड़ पशुओं को काम मिलता है। इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि गाड़ियों द्वारा देश को उतना ही आर्थिक लाभ होता है जितना रेलों द्वारा। राष्ट्रीय योजना आयोग का अनुमान है कि यदि प्रतिवर्ष एक गाड़ी पीछे १ टन सामान ले जाया जाय और एक गाड़ी वर्ष में १०० चक्कर लगावे तो भी कम से कम प्रति वर्ष ५० करोड़ टन से भी अधिक की पैदावार इन पुराने ढंग की गाड़ियों द्वारा ढोयी जाती होगी। यद्यपि वर्षा के दिनों में जब ग्रामीण सड़कों पर कीचड़ आदि होजाता है तो भी गाड़ियों द्वारा थोड़ा बहुत आवागमन तो होता रहता है और इस प्रकार प्रति गाड़ी प्रति वर्ष २००० मील चल चुकती है तथा उससे ५०० करोड़ रुपयों की आय होती है। यह बात हास्यास्पद प्रतीत होगी किंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि बैलगाड़ियों द्वारा देश को उतना ही लाभ पहुंचता है जितना रेलों द्वारा। इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाल लेना चाहिए कि बैलगाड़ियाँ रेलों से प्रतिस्पर्धा करती हैं। दोनों साधनों के क्षेत्र अलग २ हैं। बैलगाड़ियाँ बहुधा गांवों में १० मील तक की दूरी के लिए लाभदायक होती है जब कि अधिक भारी बोझा ढोने और लम्बी यात्रा करने के लिए रेलों का ही आश्रय लेना पड़ता है। वास्तव में बैलगाड़ियां रेलो के पूरक साधन का काम करती हैं क्योकि गावों की उपज लाकर ये ही रेलों की आय को बढ़ाती हैं।

(४) बैलगाड़ियों की बनावट इतनी सरल और सीधी सादी होती है कि उसकी तुलना किसी भी यांत्रिक साधन से नहीं की जा सकती। टूटी सड़कों पर गाड़ियां ही जा सकती हैं। अस्तु भविष्य में भी गाड़ियों का चलन देश में जारी रहेगा इसमें कोई संशय नहीं किया जा सकता।

इन गुणों के साथ २ गाड़ियों के कुछ अपने दोष भी हैं। जिन सड़कों पर गाड़ियां चलती हैं उन पर खड्डे तथा गडार सी पड़ जाती है इससे सड़कों की हालत बिगड़ जाती है। क्योंकि ये फिर मोटरें आदि चलाने के योग्य नहीं रहती अस्तु यह आवश्यक प्रतीत होता है कि गाड़ियों का महत्व अक्षुण बना रहे तथा सड़कों की हालत भी न बिगड़े. इसके लिए गाड़ियों के पहियों में सुधार किया जाय। लोहे के पहियों की जगह गाड़ियों पर रबर के टायर प्रयुक्त किए जांय जिससे सड़कों पर गडार पड़ना रुक जायगा किन्तु किसान की वर्तमान आर्थिक अवस्था का ध्यान रखते हुए ये रबर-टायर काम में नहीं लाये जा सकते क्योंकि वे बहुत महंगे होते हैं और फिर इनकी दुरुस्ती भी गांवों में संभव नहीं। इसके अतिरिक्त जब तक शहरों और गांवों में कच्ची सड़कों की प्रधानता रहती है तब तक इनका उपयोग वांछनीय नहीं कहा जा सकता। रबर टायर वाली गाड़ियां तभी सफलता पूर्वक चलायी जा सकती है जब देश की सड़कें पक्की बनाई जांय। बैलगाड़ियों के अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों में ऊंट गाड़ियों

का भी प्रयोग किया जाता है विशेषत: पंजाब, पश्चिमी तथा पूर्वी राजस्थान और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में। किन्तु इनके द्वारा ५०, ७० मील की दूरी तक ही सामान सस्ता भेजा जा सकता है। प्राय : ये गाड़ियां एक स्थान से रात को ही रवाना होती हैं और सुबह अपने गनतव्य स्थान को पहुंच जाती है। कुछ समय से इनमें और मोटरों में भी प्रतिस्पर्धा होने लगी है।

शहरों में घोड़ों द्वारा खींचे जाने वाले इक्कों और तांगों का प्रयोग दिन प्रति दिन बढ़ता जा रहा है। इनका सबसे बड़ा लाभ तो यह है कि ये गाड़ियां जहां चाहे वहां ठहर कर सामान और यात्री चढ़ा सकते हैं तथा जहां २ सड़कें बनी हैं वहां जा सकते हैं। यही कारण है कि शहरों की तंग गलियों में भी जहां मोटरें नहीं पहुंच सकतीं—ये सुगमता पुर्वक जा सकते हैं। इनकी बनावट भी सीधी सादी और कम खर्चीली होती है तथा देशी सामान से ही बनायी जाती है। घोड़े आदि को भी रखना इतना व्ययसाध्य नहीं होता। अस्तु तांगे, बग्घियां कम किराये में ही सामान और यात्रियों को स्टेशनों से शहरों तथा निकटवर्ती स्थानों में ले जा सकती हैं। शहरों में तो एक स्थान से दूसरे स्थान तक के किराये निश्चित ही होते हैं। बाहर के स्थानों के लिये प्रति घंटा या प्रति मील के हिसाब से किराया वसूल किया जाता है। घोड़ा—गाड़ियों का मुख्य दोष यही है कि उनके सामान ले जाने की शक्ति सीमित होती है तथा ये धीमी गति से चलती हैं। किन्तु अधिक भीड़ वाले स्थानों में धीमो चाल भी एक बडा लाभ है इससे राहगीर खतरों से बच जाते हैं। अब बस और मोटर सर्विसों के अधिक प्रचार के कारण इनका महत्व घटता जा रहा है। राष्ट्रीय योंजना आयोग ने घोड़ा—गाड़ियों के यातायात सम्बन्धी प्रश्न पर पूर्ण विचार करने के उपरान्त ये विचार व्यक्त किए हैं, "औसत रूप में एक घोड़ा—गाड़ी यदि वर्ष में ५० टन माल ढोती है तो सम्पूर्ण देश में वे प्रति वर्ष १००० लाख टन सामान ढोने के लिए लगभग ४००० मील की यात्रा करती हैं। यदि एक टन सामान को एक मील लेजाने में हम ६ आने का अनुमान लगावें तो प्रतिवर्ष इनसे होने वाली आय—खर्चे इत्यादि निकाल कर—१००० करोड़ रुपया अवश्य होगी।" इस वर्णन से देश में घोड़ा गाड़ियों का अधिक महत्व सरलता से ही जाना जा सकता है।

तांगों आदि के अतिरिक्त अब तो प्रत्येक शहर और नगर में साइकिलों की भी भरमार होगई है। सस्तेपन के कारण सभी साइकिल खरीदते है। इसका मुख्य उपयोग तो गांवों से दूध आदि लाने के लिए किया जाता है। मोटर और साइकिल रिक्शों का भी प्रयोग उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। इनसे जल्दी ही एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुंचा जा सकता है।

(४) सड़कें (Roads)

व्यापार के दृष्टिकोण से सड़कें पक्की और चौड़ी होना आवश्यक है ताकि ट्रैफिक अधिक होने पर भी भीड़ इकट्ठी न हो सके और वे आसानी से टूटे भी नहीं। आधुनिक काल में मोटर बसों के चलने से सड़कों का महत्व बहुत बढ़ गया है। रेल और हवाई जहाज जैसे यातायात के साधनों के होते हुए भी सड़कों से कुछ ऐसे लाभ हैं जो सदा रहेंगे यथा—

(१) सड़कों के यातायातमें एक बड़ी सुविधा यह है कि बस या ट्रक प्रत्येक स्थान से सवारी अथवा माल भर सकती है और जहां भी चाहे जा सकती है। रेलों का पथ निश्चित होता है, अतएव वे इस प्रकार के कार्य को नही कर सकती।

(२) थोड़ी दूर वाले स्थानों के लिए सड़कों द्वारा सामान जल्दी और आसानी के साथ पहुंच सकता है क्योंकि बीच में सामान के उतारने और चढ़ाने का सवाल ही नहीं उठता।

(३) सड़कों के द्वारा सामान ढोने के लिए समय की कोई पाबन्दी नहीं होती, आवश्यकतानुसार सामान को एक जगह से दूसरी जगह ले जाया जा सकता है।

(४) सड़कों के द्वारा यात्रा करने में आराम भी अधिक मिलता है और सामान के टूट फूट जाने का भी डर नहीं रहता क्योंकि मार्ग में सामान के उठाने धरने की आवश्यकता नहीं होती।

(५) प्रत्येक गांव में रेलों का विस्तार नहीं हो सकता क्योंकि वहां दूरी बहुत कम होती है तथा इतना ट्रैफिक नहीं होता कि रेलवे लाइनें बनाई जा सकें। अस्तु गांवों के लिये सड़के ही उपयुक्त साधन हैं। अतएव यदि रेलों को गांवों से सड़कों द्वारा जोड़ दिया जाय जो गांवों का माल शहरों में आ सकता है और वहां से दूसरे स्थानों को जा सकता है।

दुनिया में सड़कों की कुल लम्बाई ६,०००,००० मील है जिनमें से लगभग एक तिहाई संयुक्त राज्य अमेरिका में हैं। इसके बाद रूस, जापान, कनाडा, आस्ट्रेलिया फ्रांस, ब्रिटेन और जर्मनी का स्थान है। नीचे की तालिका में प्रमुख देशों की सड़कों की लम्बाई और मोटरों की संख्या दी गई है* :—

देश	सड़कें (००० मील)	मोटरें (०००)
संयुक्त राज्य अमेरिका	३,०४५.४	३७,३६१
जापान	५६७.५	१०६
कनाडा	५५३.४	१,८१०
आस्ट्रेलिया	५००.५	६२६

*भारत सरकार द्वारा प्रकाशित 'India in World Economy' के आधार पर

इटली	१७०'५	३७२
इंग्लैंड	१८३'६	२,७२३
भारत	२४६'०	२००

(५) रेलें (Railways)

भाप से चलने वाले एंजिनों का आविष्कार हो जाने के बाद से ही रेलों का प्रचार बढ़ा है और आज कल तो सभी देशों में व्यापार और यात्रा रेलों द्वारा ही की जाती है। रेल का निर्माण और विस्तार कई बातों पर निर्भर रहता है यथा—(१) रेलें प्रायः लागत और खतरे को कम करने के लिये अधिक उतार चढ़ाव को कम पसंद करती हैं इस लिये वह अधिकतर दर्रों, घाटियों और मैदानों में बनाई जाती हैं। (२) अत्यन्त बर्फीले तथा अत्यन्त वर्षा वाले प्रदेशों से यह दूर रहती हैं। (३) रेलवे लाइनों को सीधे जाने की अपेक्षा बहुत से औद्योगिक नगरों को मिलाते हुए तिरछे जाने में ही लाभ होता है।

रेलें यातायात का सबसे महत्वपूर्ण साधन हैं। औद्योगिक विकास में बढ़े हुए देशों की तो रेलें जीवन ही हैं क्योंकि (१) पहाड़ी प्रदेशों से लेकर मैदानी भागों तक लगभग सभी जगह रेलवे लाइनें बनाई जा सकती हैं। (२) मोटर में बराबर टूट-फूट होते रहने के कारण रेलवे मोटर यातायात से सस्ती पड़ती है। (३) तेज गति होने से कम भाड़े में माल तथा मुसाफिर लम्बे सफर के लिए रेलवे, मोटर अथवा नदी के साधनों से अधिक लाभप्रद रहती है। (४) देश के विभिन्न भागों में रेलों का विस्तार हो जाने से ट्रेफिक बढ़ जाता है इससे रेलवे को आर्थिक लाभ ही होता है। (५) रेलों का सबसे बड़ा लाभ इसकी रफ्तार, माल ढोने की अटूट शक्ति और समय की पाबंदी काफी विश्वसनीय है। (६) युद्धकाल में फौजों और अकाल के दिनों में भोजन सामग्री को उचित समय और काफी मात्रा में पहुंचाने का काम रेलों द्वारा ही संभव है। (७) रेलों के खुल जाने से बहुत से वीरान देश आबाद हो गए। कनाडा और साइबेरिया में रेलों के खुल जाने से आशातीत उन्नति हुई। यदि आस्ट्रेलिया में सब रियासतों को रेलों द्वारा न जोड़ दिया जाता तो केन्द्रीय सरकार का संगठन होना बहुत ही कठिन था। भारत तथा चीन जैसे राष्ट्रों में एक सूत्र में बाँधने का कार्य रेलों ने ही किया है। (८) जो देश मनुष्यों के निवास योग्य नहीं है किंतु जहां बहु-मूल्य खनिज पदार्थ भरे पड़े हैं वहां रेलों का बनना बहुत बड़ी देन है। (९) देश में उत्पादित कच्चा माल रेलों द्वारा ही कारखानों या बन्दरगाहों को भेजा जा सकता है।

किन्तु रेलों का उपयोग अभी तक देश के भीतरी व्यापार के लिए ही हो सका है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में उनका महत्व कम है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के

लिए वे केवल सहायक मार्गों का काम देते हैं। इसके दो मुख्य कारण हैं—प्रथम, रेलों द्वारा माल ले जाने में जहाजों की अपेक्षा व्यय अधिक होता है। दूसरे, भिन्न २ देशों में रेलों की पटरियों के बीच की दूरी में भी भिन्नता होती है। जिससे माल को उतारने चढ़ाने में कठिनाई पड़ती है। इस प्रकार यूरोप में ही रूस की पटरियों की चौड़ाई ५ फुट है, स्पेन और पुर्तगाल की ५ फुट ५$\frac{3}{4}$ इंच तथा अन्य यूरोपीय देशों में ४ फुट ८$\frac{1}{2}$ इंच की चौड़ाई है यद्यपि कई फ्रेंच लाइनों की चौड़ाई ४ फुट ६ इंच है। कुछ समय पूर्व से ही यूरोपीय लाइनों की चौड़ाई एक सी कर दी गई है जिससे अब पेरिस से मास्को तथा अन्य बड़े २ नगरों तक रेल बिना बदले ही यात्रा संभव हो गई है। भारत में भी सभी जगह रेल की पटरियों के बीच की दूरी समान नहीं हैं। आंधी आदि के डर से बचने के लिए यहाँ की रेलें अंग्रेजी रेलों से अधिक चौड़ी बनाई गई हैं। इनके बीच की पटरियों की दूरी ५ फीट ६ इंच है इसे बड़ी लाइन (Broad Gauge कहते हैं। इसके अतिरिक्त मीटर गोज (Meter Gauge) में पटरियों की दूरी ३ फुट ३$\frac{3}{8}$ इंच है। अधिक चढ़ाई के स्थानों और बहुत ही कम व्यापार वाले स्थानों में तंग गोज वाली रेलवे लाइन खोली गई हैं जिनमें पटरियों के बीच की दूरी २ या २$\frac{1}{2}$ फुट ही रखी गई है।

रेलें प्रथमतः कुछ भागों में युद्ध-सम्बन्धी कारणों से ही बनाई गई थीं। व्यापार का विकास तो उनके द्वारा बाद को हुआ। यूरोप को रेल इसी प्रकार की हैं। ऐसी रेलों की मुख्य विशेषता यह है कि वे केन्द्रीय (radial) होती हैं अर्थात् वे देश की राजधानी से चारों ओर सीमा तक जाती हैं। इस प्रबन्ध से सरकार को देश की रक्षा के लिए सैनिक सामान की पूर्ति करने तथा सेनायें भेजने में सहायता मिलती है। परन्तु इसी व्यवस्था के कारण राजधानी में व्यापार का प्रभाव भी होने लगता है और अन्त में व्यापार मार्गों की एक बहुत बड़ी संख्या बन जाती है। इस प्रकार व्यापार बढ़ने से इन रेलों को युद्ध उपयोगी विशेषता छिप जाती है और वे अन्य व्यापारिक रेलों की भांति देश की सेवा करने लगती हैं।

उत्तरी अमेरिका में रेलें आवश्यकीय रूप से व्यापारिक (Commercial) हैं। अतएव वे आयताकार हैं। यह आयताकार नमूना बड़ी झीलों के प्रतिनिवेश में एक केन्द्री होजाता है। झीलों पर बहुत अधिक मात्रा में सामान लाया लेजाया जाता है। इस सामान को लेने के लिए रेलें झील के बन्दरगाहों को जाती हैं। उत्तरी अमेरिका में अटलांटिक तट से प्रशांत महासागर के तट तक या यूरोप में मास्को से प्रशान्त महासागर के तट पर ब्लाडीवास्टक तक जाने वाली रेल महाद्वीपी-रेल (Trans Continental) कहलाती है। प्रायः सभी महाद्वीपों में महाद्वीपी रेलें पाई जाती हैं—यथा उत्तरी अमेरिका में (१) कैनेडियन पैसिफिक रेलवे, (२) कैनेडियन नेशनल

रेलवे; एशिया में 'ट्रांस साईबेरियन रेलवे' अफ्रीका में 'कैप-कैरो रेलवे' तथा दक्षिणी अमेरिका में 'चिली-अर्जेनटाइना रेलवे' प्रमुख है।

दुनिया में कुल रेलों की लम्बाई लगभग ७५०,००० मील है जिसका विवरण इस प्रकार हैं:—

संयुक्त राज्य अमेरिका	३००,००० मील	फ्रांस	२६,००० मील
रूस	६०,००० ,,	ब्राज़ील	२४,००० ,,
कनाडा	५७,००० ,,	ब्रिटेन	२३,००० ,,
जर्मनी	४२,००० ,,	अर्जनटाइना	२०,००० ,,
भारत	४१,००० ,,	जापान	१४,००० ,,
आस्ट्रेलिया	२७,००० ,,	इटली	१४,००० ,,
		दक्षिण अफ्रीका	१३,००० ,,
		पोलैंड	१२,००० ,,

(ख) जल यातायात (Water ways)

प्रकृतिदत्त जलमार्गों का, मनुष्य इतिहास के आरम्भ से ही—चाहे किसी भी रूप में क्यों न हो उपयोग करता आरहा है किन्तु यातायात के साधनों में जलमार्गों की जो उन्नति पिछली एक शताब्दी में हुई है वह इतिहास की आश्चर्यजनक वस्तु है। जल यातायात को क्षेत्र की दृष्टि से दो भागों में बांटा जा सकता है—(१) भीतरी जलमार्ग और (२) सामुद्रिक जलमार्ग।

(१) भीतरी जलमार्ग (Inland waterways)

(अ) आन्तरिक यातायातमें नाव तथा छोटे स्टीमर शामिल हैं जो नदियों, झीलों और नहरों इत्यादि पर चलाये जाते हैं। आदिम युग में लकड़ी के लट्ठों को बांध कर बेड़े बना लिये जाते थे, तदुपरांत पेड़ों को खोखला करके नावें बनाई जाने लगी। अब तो बहुत बडी २ नावों तथा स्टीमरों द्वारा नदियों और नहरों पर सामान ढोया जाता है। स्टीमरों में यन्त्रों का उपयोग किया जाता है। आधुनिक जहाज भी नदियों में चलने वाली नावों के उन्नत रूप हैं। यद्यपि रेलों और मोटरों के कारण आज नदियों का महत्व कम होगया है किन्तु फिर भी उनका उपयोग बिल्कुल नष्ट नहीं होगया है। योरुप में जर्मनी, फ्रांस, हालैंड, वेलजियम आदि देशों में नदियों का महत्व आज भी बहुत अधिक है। राइन, एल्ब, वेजर और ओडर तथा डैन्यूब नदियां आवागमन का बहुत अच्छा साधन उपस्थित करती हैं। फ्रांस की सभी नदियां अपने ऊपरी भागों के सिवाय सब जगह नाव्य हैं। रोन, लायर, सीन, ड्रान, गैरोन, तथा मेऑन नदियां जलमार्ग की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। रुस की डोनेज, कामा तथा मोस्कवा नदियों का महत्व वहां की औद्योगिक उन्नति में बहुत है। उत्तरी अमेरिका

में संयुक्त राज्य अमेरिका के भीतरी जलमार्ग कमीशन ने गणना करके यह बताया है कि देश में लगभग २६५ नाव्य नदियां हैं जो ६,००० मील लम्बा जलमार्ग बनाती हैं। अगर बनावटी नहरों की लम्बाई भी इनके साथ जोड़ दी जाय तो यहां ३२,६२३ मील लम्बा जलमार्ग बन जाता है। मिसीसिपी और मिस्सौरी १६००० मील लम्बा जलमार्ग प्रस्तुत करती हैं। सैंट लारेंस नदी भी समुद्र से २३०० मील दूर पोर्ट आर्थर तक खेई जाती है। दक्षिणी अमेरिका में अमेजन नदी अपनी सहायक नदियों सहित ५०००० मील लम्बा जलमार्ग बनाती है जो वर्षा के मौसम में ही उपयुक्त होता है। सूखे मौसम में केवल २०,००० मील ही जहाजरानी के अनुकूल रहती है। ओरिनिको, पराना, पैरेग्वे आदि भी उत्तम जलमार्ग प्रस्तुत करती हैं। अफरीका के भीतरी भागों में जहां रेल का विस्तार नहीं हुआ है नदियां ही प्रमुख मार्ग हैं। नील नदी केवल डेल्टा में ही खेई जाती है किन्तु जैम्बेसी २५० मील तक पश्चिमी अफरीका में, नाईजर ५०० मील और गैम्बिया २०० मील तक तथा कांगो और उसकी सहायक नदियां सबसे महत्वपूर्ण जलमार्ग बनाती हैं। आस्ट्रेलिया में मुरे १४०० मील और डार्लिङ्ग १२०० मील की लम्बाई तक उत्तम जलमार्ग प्रस्तुत करती है। भारत के जलमार्ग तो प्राचीन समय से ही उन्नत अवस्था में रहे हैं। उत्तरी भारत की तीन बड़ी नदियां—गंगा, यमुना और ब्रह्मपुत्रा २०,००० मील लम्बा जलमार्ग प्रस्तुत करती हैं किन्तु दक्षिणी भारत की नदियां ऊबड़ खाबड़ धरातल पर बहने के कारण जलमार्गों के उपयुक्त नहीं हैं। चीन में तो नदियां ही यातायात के मुख्य साधन हैं। यांग्टसीक्यांग नदी में ६८० मील भीतर तक समुद्री जहाज चलाये जा सकते हैं किन्तु नदी में चलने वाले स्टीमर १००० मील तक जा सकते हैं। सीक्यांग और पीहो नदियां भी खेई जाती हैं किन्तु हांङ्गो नाव चलने के लिए सर्वथा अनुपयुक्त हैं।

उपरोक्त वर्णन से ज्ञात होगा कि विश्व के कई औद्योगिक और व्यापारिक देशों में नदियां अब भी यातायात का प्रमुख साधन है क्योंकि नदियों के मार्गों में कितने ही लाभ हैं:—

(१ नदी मार्ग धीमे होते हुए भी भूमि मार्ग से सस्ते हैं क्योंकि नाव चलाने के लिए सड़क या रेल की पटरी की आवश्यकता नहीं होती। दुर्घटनायें कम होती हैं तथा रेल और मोटर से इनमें कम शक्ति की आवश्यकता होती है और कम दामों में ही नाव तैयार हो जाती है।

(२) पिछड़े हुये देशों में जहां रेलों और सड़कों का सर्वथा अभाव है नदियां आसानी से उसकी पूर्ति करती है जैसे—चीन, मध्य अफ्रीका, द० अमेरिका आदि देशों में।

(३) यह यातायात का बहुत सस्ता तथा मन्थर साधन है इसलिए भारी, कम कीमती और शीघ्र खराब न होने वाली वस्तुऐं—कच्ची धातुऐं, कोयला, लड़े, नमक आदि इनके द्वारा ढोये जाते हैं।

(४) बहुत नदियां तथा नहरें अन्य यातायात के साधनों की पूरक का काम करती क्योंकि ये ऐसे प्रदेशों—सघन बनों, खानों आदि से जहां रेल अथवा मोटर नहीं पहुंच पाती नावें सामान ढोकर लाती हैं।

फिर भी जिन देशों में रेलों का विकास हो गया है, नदियों का महत्व घट गया है क्योंकि नदियों द्वारा माल अधिक देर में पहुंचता है। रेलवे साइडिंग पर माल रखने और जब आवश्यकता हो तब भरने की सुविधा होती है जो नदियों और नहरों से माल ले जाने में नहीं होती। अधिक मूल्यवान वस्तुएें या जो बिगड़ जाने वाले पदार्थ होते हैं अथवा जब समय के बचत की आवश्यकता होती है तो नदियों का महत्व अधिक नहीं रह जाता क्योंकि वे धीमे बहने वाली होती हैं। इसके अतिरिक्त सभी नदियां व्यापारिक जलमार्ग के उपयुक्त नहीं होतीं। अस्तु उनका उपयोग तभी हो सकता है जब वे नौमार्ग के उपयुक्त हों। नदियों के लिये उत्तम जलमार्ग प्रदान करने के लिये यह आवश्यक है कि उनमें जल की गहराई सर्वत्र समान हो तथा जल की मात्रा भी समान रहे। शुष्क हो जाने अथवा बाढ़ आ जाने से यातायात में बाधायें पड़ जाती हैं और यातायात बन्द हो जाता है। (२) नदियां बर्फ के प्रभाव से सर्वथा मुक्त होनी चाहिये अन्यथा पानी जम जाने से आना जाना रुक जाने की संभावना हो जाती है। अस्तु यह आवश्यक है कि वह बर्फ रहित समुद्रों में गिरती हों। (३) कई नदियां मार्ग में रपट और झरने होने से तथा कई दलदल में बहने के कारण और कई अपने अपने असमान तल के कारण साल भर अच्छे यातायात का साधन उपस्थित नहीं करती। अतः यह आवश्यक है कि नदियों के मार्ग में रपट, झरने, अथवा चट्टानें न होनी चाहिये। (४) नदियों का मार्ग तंग और गहरी घाटियों में न होकर मैदानी भाग में सघन जनसंख्या वाले प्रदेशों या औद्योगिक क्षेत्रों में ही होना चाहिये जिससे माल और यात्री मिलने की सुविधा हो सके।

(च) झीलें (Lakes)

दुनिया भर में उत्तरी अमेरिका की झीलों को छोड़कर—अधिकतर झीलें व्यापार के काम की नहीं हैं। उत्तरी अमेरिका में पांच बड़ी २ झीलें हैं—सुपीरियर, मिशीगन, ह्यूरन, ईरी और ओंटेरियो। इन झीलों में जहां भी झरने पहले बाधा पहुंचाते थे नहरें बना दी गई हैं जैसे सू नहर (Soo Canal) सुपीरियर और ह्यूरन के बीच में (जो सोल्ट सैंट मैरी के झरनों को दूर करती है); वेलैण्ड नहर (Walland Canal) ईरी और ओंटेरियो के बीच में (न्यागरा को दूर करती है) सैंट लौरेंस नहर (St. Lawrence Canal) जो ओंटेरियो और सेंट लौरेंस नदी के बीच के झरनों को दूर करती है। इन नहरों के बन जाने से सेंट लौरेंस

नदी के मुहाने से लेकर २००० मील दूर तक काफी बड़े स्टीमर आ जा सकते हैं। यह स्टीमर विशेष रूप से इन्ही नहरों के लिए बनाये गये हैं।

इन झीलों का वार्षिक व्यापार विश्व की दो बड़ी नहरों—स्वेज और पनामा के कुल ट्रैफिक से अधिक है। इन झीलों के इस व्यापारिक महत्व के कई कारण हैं। (१) ये झीलें काफी गहरी हैं जिससे बड़े २ स्टीमर जिनमें काफी सामान ढोया जाता है—आसानी से आ जा सकते हैं (२) इनका विस्तार पूर्व पश्चिम है जिधर संयुक्त राज्य के सामान के आने जाने का प्रधान सुख है, (३) अमेरिका के गेहूं, लोहा, कोयला, लकड़ी आदि पर्याप्त मात्रा में पास ही पैदा होने के कारण इन झीलों की भौगोलिक स्थिति अत्यन्त सुन्दर है। (४) आवश्यकता के अनुसार गहरी होने के कारण इन झीलों के द्वारा सामान ढोने में दाम रेल से कम लगते हैं। दुर्भाग्य से ये झीलें जाड़े के दिनों में जम जाने के कारण व्यापार के लिए बेकार हो जाती हैं फिर भी विश्व का यह प्रसिद्ध और उपयोगी भीतरी जलमार्ग अमेरिका की रेलों, उद्योगों, व्यापारिक केन्द्रों और घनी आबादी को आकर्षित किए बिना नहीं रहता।

अफ्रीका की विक्टोरिया, टैंगेनिका, न्यासा और यूरेशिया में कैस्पियन, सागर तथा बेकाल बड़ी २ झीलें हैं किन्तु यह सब व्यापार की केवल स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं। विश्व व्यापार के दृष्टिकोण से उनका कोई विशेष महत्व नहीं है। अन्यत्र झीलें बहुत छोटी हैं और व्यापार के लिये उपयोगी नहीं हैं।

(स) नहरें (Canals)

नहरें पानी के वे जलमार्ग हैं जो जहाज चलाने के हेतु बनाई जाती हैं। नहरों का व्यापार में अपना अलग महत्व होता है। नहरें व्यापार के लिए किसी न किसी उद्देश्य को लेकर बनाई जाती हैं। उनका उद्देश्य या तो (१) दो नदियों, खाड़ियों अथवा समुद्रों की दूरी और समय को कम करने के लिए, या (२) किसी नहर या झील के व्यापार में बाधा डालने वाले झरनों और प्रपातों को दूर करने के लिए, अथवा (३) उन प्रदेशों के व्यापार को उन्नत करने के लिए होता है जहां अन्य साधन सरलता पूर्वक प्राप्त नहीं हो सकते। जहाजी नहरों की लम्बाई चौड़ाई काफी होती है जिनसे होकर बड़े २ जहाज निकल सकते हैं। चूंकि यह भूमि को काट कर बनाई जाती हैं इसलिये कई देशों के बीच की समुद्री दूरी बहुत कम हो जाती है। सड़कों, रेलों, और नदियों के साथ २ यह भी देशों के भीतर व्यापार में अपना हाथ बंटाती है। कई नहरों का महत्व तो केवल स्थानीय ही होता है किंतु कइयों का महत्व अन्तर्राष्ट्रीय भी होता है। विश्व में सबसे अधिक नहरें यूरोप में हैं। फ्रांस एवम् जर्मनी में तो नहरों का जाल बिछा है। यहां सरकारी नीति के कारण नहरों का

प्रयोग अधिक होता है। ये राज्य नहरों को निरंतर जीवित रखते हैं। इन देशों की बहुसंख्यक नहरें औद्योगिक प्रदेशों में हैं जहां कोयला ही सबसे महत्वपूर्ण वस्तु है जिसे नहरें ढाती हैं। जहाजी नहरों के बन जाने से कुछ जलमार्गों का महत्व बढ़ गया है क्योंकि इनमें या तो दूरियां कम हो गई हैं (जैसे पनामा और स्वेज द्वारा) या कुछ भागों पर व्यापार केन्द्रीभूत हो गया है (जैसे सैंट सू नहर पर)। संसार की कुछ महत्वपूर्ण नहरें ये हैं :— (१) स्वेज नहर, (२) पनामा नहर, (३) सू सैंट मेरी नहर, (४) मैनचेस्टर जहाजी नहर, (५) झील नहर, (६) उत्तरी सागर की नहर, (७) न्यू वाटर वे (राटर्डम तथा उत्तरी सागर के मध्य में) और (८) स्टैलीन नहर।

नहर और रेल की तुलना

आधुनिक समय में सामान को ले जाने के लिये नहरों का प्रयोग उतना महत्वपूर्ण नहीं रहा है जितना पहले था। इसका विशेष कारण रेलों का संघर्ष है। रेलों को नहरों की अपेक्षा कतिपय लाभ प्राप्त हैं। सबसे महत्वपूर्ण लाभ जाति का है। इसके अतिरिक्त रेलें किसी भी स्थान तक बिना सामान को तोड़े या कम किए हुए जा सकती हैं परन्तु नहरें ऐसा नहीं कर सकतीं। रेलवे स्टेशनों पर सामान को संग्रहित रखने के लिए सुविधायें रहती हैं। जब तक आवश्यकता पड़े तब तक सामान वहां रखा जा सकता है। उन्हें तत्काल हटाने की आवश्यकता नहीं होती। रेल की लाइन पर डिब्बों में माल भरा जा सकता है। इस लाभ ने इंगलैंड की रेलों को इस योग्य बना दिया है कि अब नहरों से ढोया जाने वाला कोयला रेलों से जाने लगा है। कोयला पहले मोटर ठेलों में भर दिया जाता है ये ठेले रेल पर छोड़ दिए जाते हैं और फिर किसी एंजिन से जोड़ दिए जाते हैं। ज्योंहीं कहीं मांग हुई एंजिन इन ठेलों को खींचकर वहां ले जाता है।

(२) सामुद्रिक जलमार्ग (Ocean Transport)

आज से ५०० वर्ष पूर्व पृथ्वी के भिन्न २ भू-भागों के बीच में समुद्र एक बड़ी रुकावट के रूप में था। जब तक कि समुद्र में चलने योग्य जहाज नहीं बन गए तथा जहाज खेने की कला में इतनी उन्नति नहीं हो गई कि नाविक अपने निर्धारित मार्ग पर जहाजों को ले जा सकें तब तक समुद्र का व्यापार के लिए उपयोग न हो सका। किंतु आज तो समुद्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का मुख्य साधन बन गया है और एक देश दूसरे देश के बहुत समीप आ गया है। एक देश से दूसरे देश तक बराबर जहाज चलते रहने से बिना खर्चे के निश्चित समुद्री मार्ग स्थापित हो गये हैं जिनके कारण अब थोड़े दामों में मनुष्य और सामान इच्छा के अनुसार आ जा सकते हैं।

जिस प्रकार भूमि के साधनों में थोड़ी दूर वाले स्थानों तक सामान ले जाने में सड़कों की सुविधा होती है और दूर के लिए रेलों का प्रयोग उपयोगी होता है, उसी

प्रकार समुद्री साधनों में विशेष प्रकार के जहाजों को विशेष प्रकार के सामान ले जाने में ही सुविधा रहती है। इस विशेषता को ध्यान में रखकर ही अब जहाजों का निर्माण होता है। इसलिये यात्रियों को ले जाने वाला जहाज केवल यात्रियों को, डाक और कीमती हलकी वस्तुओं वाला इन चीजों को ही ले जाता है। भारी और सस्ते सामान को ढोने के लिए अलग जहाज होते हैं।

१६ वीं शताब्दी के आरंभ तक (१८२४) पालों से चलने वाले जहाजों का प्रधान्य था किंतु पिछले १०० वर्षों में भाप की शक्ति से चलने वाले आधुनिक जहाजों का इतना अधिक उपयोग होने लगा है कि हवा से चलने वाले जहाज (Sailing Ships) महत्वहीन हो गये हैं। आज भी अधिकांश हवा से चलने वाले जहाज तटीय व्यापार और कम दूरी की यात्रा करते हैं तथा भारी सामान को जो जल्दी नष्ट होने वाला नहीं होता, ले जाते हैं। परन्तु थोड़े से हवा द्वारा चलने वाले जहाज दूर की यात्रा भी करते हैं। वाष्प की शक्ति से यंत्रों द्वारा चलने वाले जहाज हवा से चलने वाले जहाजों की अपेक्षा अधिक सामान ढो सकते हैं उनकी चाल तेज होती है तथा वायु का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अस्तु, हवा से चलने वाले जहाजों का उपयोग अब क्रमशः कम होता जा रहा है। किंतु भाप से चलने वाले जहाजों के लिए कोयला अथवा तेल की आवश्यकता होती है। इस कारण तेल तथा कोयला मिलने वाले केंद्रों को स्थापित करने की आवश्यकता पड़ी।

जैसे २ जहाजों का आकार बढ़ाया जाने लगा और उनकी चाल को तेज किया गया त्यों त्यों अधिकाधिक कोयले की आवश्यकता पड़ने लगी। कोयला जहाज में बहुत सा स्थल घेरने लगा इसका परिणाम यह हुआ कि जहाजों में माल भरने के लिए कम स्थान रहने लगा। अस्तु इस कठिनाई को दूर करने के लिए कई प्रयत्न किये गये। एंजिनों में सुधार किया गया जिससे जहाजों में कोयला कम खर्च हो। १६२० के उपरांत तो ऐसे जहाज भी बनाये जाने लगे जिनमें कोयले के स्थान पर तेल का ही अधिक उपयोग किया जाने लगा।

जहाज दो प्रकार के होते हैं—ट्रैम्प (Tramp) और लाइनर (Liner)। लाइनर (Liner) जहाज एक निर्धारित मार्ग से होकर जाते हैं। जिन बन्दरगाहों पर उनका जाना निश्चित है उन पर वे अवश्य ही जायेंगे। लाइनर तैयार माल, जल्दी खराब हो जाने वाले माल तथा कीमती सामान को ही ले जाते हैं। किसी निर्धारित मार्ग पर कितने लाइनर चलेंगे यह उस मार्ग पर उपलब्ध व्यापार पर निर्भर करता है। लाइनर वस्तुतः बड़े, तेज चलने वाले और अधिक महंगे होते हैं। एक प्रकार के लाइनर केवल यात्रियों तथा अधिक मूल्यवान सामान तथा डाक को ही ले जाते हैं। इनमें अन्य सामान ले जाने के लिए कम स्थान होता है। दूसरे प्रकार के

लाइनर निर्धारित स्थानों के बीच निश्चित समय पर ही सामान आदि ले जाते हैं। तीसरे प्रकार के लाइनर यात्री और सामान दोनों ही ले जाते हैं।

ट्रैम्प (Tramp) जहाजों का न तो कोई निश्चित मार्ग ही होता है और न उनका समय ही निश्चित होता है। ये काफी बड़े जहाज होते हैं जो कई बन्दरगाहों को व्यापार लेने के लिए जाते हैं। जहां इनको माल मिल जाता है वहीं ट्रैम्प चले जाते हैं। ट्रैम्प जहाजों के द्वारा खाद्य पदार्थ तथा कच्चा माल बहुत अधिक राशि में एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजा जाता है। संसार का आधे से अधिक व्यापार इन ट्रैम्प जहाजों के द्वारा ही होता है किंतु ट्रैम्प जहाज केवल उन्हीं व्यापारियों के काम के होते हैं जो पूरे जहाज के लायक माल भेजते हैं। जिन व्यापारियों के पास पूरे जहाज के लायक माल भेजने को नहीं होता वे लाइनर से ही अपना माल भेजते है। जब ट्रैम्प एक स्थान पर अपना माल उतार देते हैं तब बेतार के तार से उन्हें सूचित कर दिया जाता है कि कहां कहां जाकर माल लादना चाहिए। इस प्रकार ट्रैम्प जहाजों को माल मिलने में कठिनाई नहीं पड़ती। ट्रैम्प जहाज एक बड़ी आवश्यकता को पूरा करते हैं, कारण यह है कि किन्हीं स्थानों पर जब फसल का समय होता है तब तो माल लादने को रहता है अन्यथा वर्ष के शेष समय में वहां से माल नहीं भेजा जा सकता ऐसे भारकस (traffic) के लिए ट्रैम्प ही उपयुक्त होते हैं।

समुद्री जलमार्ग द्वारा माल बहुत सस्ते भाड़े में एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाया जा सकता है। उदाहरण के लिये, जहाज द्वारा मांट्रियल से लिवरपूल तक गेहूं ले जाने में प्रति टन मील '०६ पें० खर्च पड़ता है किन्तु इंगलैंड में रेल से गेहूं ले जाने में प्रति टन मील २०'३ पें० खर्च पड़ता है। यद्यपि जहाज द्वारा माल ले जाने में खर्च बहुत कम होता है किन्तु जहाज रेल की अपेक्षा धीरे चलता है। यही नहीं जहाज साधारणतः ८,००० से १०,००० टन बोझा ले जा सकता है जब कि रेलें ६०० टन बोझा ही ले जा सकती हैं। जहाज द्वारा कम खर्च से माल ले जाया जा सकता है क्योंकि समुद्र ने एक प्रकृतिदत्त जहाज मार्ग उपस्थित कर दिया है जिसको बनाने में कुछ व्यय नहीं होता। यही समुद्री मार्ग सब दिशाओं में होते हैं अतएव जहाज आवश्यकतानुसार कहीं भी जा सकते हैं। इसके विपरीत रेलवे लाइनें बनाने में पचास हजार से लेकर एक लाख रुपया प्रति मील तक व्यय हो जाता है फिर भी सब स्थानों को रेलें नहीं पहुंच सकतीं। समुद्र सब देशों के लिए खुला रहता है अतएव प्रत्येक देश के जहाज समुद्र का स्वतंत्रापूर्वक उपयोग कर सकते हैं। अस्तु, जहाजी कम्पनियों को व्यापार का एकाधिकार नहीं होता। जहाजों को अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पड़ता है इस कारण जहाजों के चलाने की कला में

उन्नति करने, मुसाफिरों तथा व्यापारियों को सुविधा देने और कम किराया लेने की ओर जहाजी कम्पनियों का विशेष ध्यान रहता है।

समुद्री मार्ग व्यापार पर निर्भर रहते हैं। जहां माल लादने को अधिक मिलता है जहाज वहीं जाते हैं फिर चाहे उनको चक्कर लगाकर ही जाना पड़े। यद्यपि माल मिलने की सुविधा मुख्यतः जहाजों के मार्ग को निर्धारित करती है, किन्तु अन्य बातें भी समुद्री मार्गों को निर्धारित करती हैं यथा—

(१) यदि मार्ग में कोयला मिलने के स्थान (Port of Call) अधिक हैं तो जहाजों को थोड़ा कोयला ही भरना पड़ता है और माल लादने के लिए अधिक जगह मिल जाती है। यही कारण है कि बहुत से ऐसे स्थानों पर भी जहाज नियमित रूप से जाते हैं जहां माल लादने को नहीं मिलता किन्तु कोयला सस्ता मिल जाता है।

(२) समुद्री मार्ग यथा संभव महावृत्तीय मार्ग (Great Circle Route) का अनुसरण करते हैं क्योंकि वही दो स्थानों के बीच में न्यूनतम मार्ग होता है। किन्हीं दो स्थानों में सबसे कम अन्तर सीधा मार्ग नहीं होता वरन् महावृत्तीय मार्ग होता है। यही कारण है कि समुद्री मार्ग उत्तर में उत्तरी ध्रुव की ओर तथा दक्षिण में दक्षिणी ध्रुव की ओर जाते हैं जिससे जहाजों को कम से कम दूरी पार करना पड़े। किन्तु कभी २ माल मिलने की संभावना, जलवायु तथा कोयला मिलने की सुविधा के कारण जहाजों को महावृत्तीय मार्ग भी छोड़ना पड़ता है।

(३) कहीं २ नदियां तथा बन्दरगाह जाड़ों में जम जाते हैं तब जहाजों को सुविधाजनक मार्ग ग्रहण करना पड़ता है। यही कारण है कि जब शीतकाल में सैंट लौरेंस नदी जम जाती है तब जहाज दक्षिण बन्दरगाहों की ओर जाते हैं। यही कारण है कि हडसन की खाड़ी का मार्ग इंग्लैंड के लिए सबसे निकट है किन्तु उसके अधिकतर जमे रहने के कारण जहाज उसका उपयोग नहीं करते।

(४) यद्यपि आधुनिक जहाज हवा से अधिक प्रभावित नहीं होते किन्तु फिर भी हवा का थोड़ा बहुत प्रभाव तो पड़ता ही है यही कारण है कि लिवरपूल से आस्ट्रेलिया जाने वाले जहाज आशा अन्तरीप के मार्ग से जाते हैं क्योंकि पछुआ हवाएं उनके अनुकूल पड़ती हैं। किन्तु आस्ट्रेलिया से लौटते समय उस मार्ग से न आकर स्वेज नहर के मार्ग से आते हैं जिससे उन्हें पश्चिमी हवाओं का सामना न करना पड़े। यदि वे उसी मार्ग से आवें तो उन्हें कोयला भी अधिक जलाना पड़े और उनकी चाल भी धीमी हो जाय।

यह बड़ी महत्वपूर्ण बात है कि विश्व के सभी प्रमुख व्यापारिक मार्ग पश्चिमी यूरोप पर आकर समाप्त होते हैं इसका मुख्य कारण यह है कि पश्चिमी यूरोप जगत का सबसे महत्वपूर्ण औद्योगिक भाग है। विश्व में सबसे अधिक कच्चे माल का उपभोग यहां होता है और यहां से सबसे अधिक तैयार माल निर्यात किया जाता है

अतएव यह स्वाभाविक ही है कि व्यापारिक मार्ग पश्चिमी यूरोप पर ही केन्द्रित हों। पश्चिमी यूरोप में कोयले की बहुतायत होने के कारण ही वह उद्योग प्रधान है। यही नहीं कोयले के मिलने की सुविधा के कारण भी जहाज इस ओर आकर्षित होते हैं। अस्तु कोयला ही प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सामुद्रिक मार्गों का पश्चिमी यूरोप में केन्द्रित होने का मुख्य कारण है।

विश्व के प्रमुख व्यापारिक मार्ग ये हैं* :—

(१) *उत्तरी अटलांटिक मार्ग*—उत्तरी अमेरिका के पूर्वी तट और पश्चिमी यूरोप के मध्य में है।

(२) *स्वेज मार्ग*—यूरोप से भूमध्यसागर होता हुआ स्वेज नहर द्वारा भारत सुदूर पूर्व तथा आस्ट्रेलिया को जाता है।

(३) *दक्षिणी अफ्रीका*—यह मार्ग जो उत्तम आशा अन्तरीप होता हुआ अफ्रीका के पूर्वी तट तथा आस्ट्रेलिया को जाता है।

(४) *दक्षिणी अमेरिका*—यह मार्ग प्लेट नदी की घाटी तक पश्चिमी यूरोप के मध्य में है।

(५) *प्रशान्त महासागर*—मार्ग पैनामा नहर द्वारा पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी भागों तथा पूर्वी एशिया को जाता है।

नीचे की तालिका में विश्व की व्यापारिक शक्ति के आंकड़े प्रस्तुत किये गए हैं :—

देश	*१६४८ में ग्रास टनेज (००० टनों में)*
संयुक्त राज्य अमेरिका	२६,१६५
इंग्लैंड	१८,०२५
नार्वे	४,२६१
फ्रांस	२,७८६
हॉलैंड	२,७३७
इटली	२,१००
स्वीडन	१,६३७
यूनान	१,२८६
स्पेन	१,१२३
डैनमार्क	१,०२४
जापान	४२८

*विस्तृत विवरण के लिए देखिये C. B. Mamoria का विश्व का भूगोल पृ० ३२६-३४२

जर्मनी	३२७
भारत	८३

(ग) वायुमार्ग (Air Transport)

व्यापारिक हवाई यातायात अब भी प्रयोगात्मक अवस्था में है। यातायात के साधनों में हवाई यातायात आधुनिक युग को देन है। यद्यपि गुब्बारों द्वारा उड़ने का प्रयास १७०८ से ही किया जा रहा था किन्तु सही रुप से हवाई जहाजों का प्रयोग २० वीं शताब्दी के प्रथम चरण से ही आरम्भ हुआ है। वायुयान मुख्यत: दो प्रकार के होते हैं। (१) हवा में तैरने वाले (Aeroplanes) और (२) हवा में उड़ने वाले (Air ships)। हवा में तैरने वाले वायुयान हवा से हल्के और हवा में उड़ने वाले वायुयान हवा से भारी होते हैं किन्तु आधुनिक काल में साधारण तौर पर कई प्रकार के वायुयान बनाये जाने लगे हैं।

हवाई जहाजों से धरातलीय यातायात की अपेक्षा एक बड़ा लाभ यह है कि इसका प्रयोग स्थल और जल दोनों के ऊपर से होकर सम्भव है। जल पर, स्थल का विवरण हवाई यातायात के लिए प्रथम महत्व रखता है क्योंकि प्रायद्वीप और द्वीप समूह वाणिज्य–जन्मदाता महाद्वीपों की केवल बाहर की सीमा पर ही नहीं होते बल्कि ठहरने के लिए सुविधाजनक स्थान भी होते हैं। इनके होने से हवाई जहाज को जल पर बिना रुके हुए बहुत दूर तक नहीं उड़ना पड़ता, वह थोड़ी २ दूर पर ठहरता चलता है।

महासागरीय यातायात की भांति वायुयानों के लिए कोई 'मार्ग' बनाने अथवा स्थिर रखने के लिए किसी धन की आवश्यकता नहीं होती। केवल वायुयानों के रुकने के स्थान बनाने के लिए धन चाहिए। अत: हवाई यातायात के अन्तर्गत यातायात का व्यय रेल के यातायात की अपेक्षा कम ही होता है परन्तु रेलों द्वारा बहुत अधिक व्यापार होता है जिससे सामान का भाड़ा हवाई जहाज की अपेक्षा रेल से कम पड़ता है। इसीलिए अनन्त:, हवाई यातायात रेलवे यातायाय से अधिक व्ययसाध्य बैठता है। इसके अतिरिक्त हवाई जहाजों की मरम्मत, कल–पुर्जों के लिए भी खर्च अधिक ही बैठता है। इनमें प्रयुक्त होने के लिए तेल आदि भी काफी महंगा पड़ता है। हवाई जहाजों के ठहरने का शुल्क भी कुछ अधिक ही होता है। इसके अतिरिक्त रेलों की अपेक्षा हवाई जहाज के चालकों, कमानों तथा अन्य कर्मचारियों का वेतन भी अधिक होता है। हवाई जहाजों के मार्गों का—जो साधारणत: ५० मील चौड़े होते हैं-निर्धारण सरकारी विभाग द्वारा किया जाता है। हवाई जहाजों के ठहरने आदि के स्टेशन बनाने तथा अन्य धरातलीय व्यवस्था उपलब्ध करने के लिए—हवाई अड्डे, वायुयान उतरने के स्थान, हवाई जहाज रुकने के भवन, दुरुस्ती के कार्यालय, आंतरिक्ष विभाग

द्वारा व्यवस्थित बेतार के स्टेशनों, प्रकाश घरों, वायु रुख सूचक यंत्रों तथा प्रकाश आदि—में भी धन की आवश्यकता पड़ती है। यह व्यवस्था यद्यपि बड़ी व्ययसाध्य होती है किन्तु हवाई यातायात की सुरक्षा, नियमितता तथा विश्वसनीयता और यात्रियों की सुख सुविधा के लिए नितान्त आवश्यक समझी जाती है। संयुक्त राज्य अमेरिका के अलावा अन्य सभी देशों में यह व्यय सरकार ही वहन करती है। इन व्यवस्थाओं का उपभोग कोई भी निजी वायुयान—निश्चित शुल्क देकर कर सकते हैं।

हवाई जहाज खरीदने और नियमित रूप से हवाई सर्विस चलाने में भी काफी खर्च पड़ता है। परन्तु युद्ध की दृष्टि से हवाई उड़ान की शिक्षा और वायुयानों की संख्या बनाये रखने तथा व्यापारिक कार्यों में लाभ पहुंचाने के लिए सभी राष्ट्र वायु-मार्ग संचालन में अपने देश की कम्पनियों को आर्थिक सहायता देते हैं। यह सहायता या तो हवाई अड्डों तथा धरातलीय व्यवस्था की उपलब्धता प्रस्तुत कर अप्रत्यक्ष रूप से दी जाती है अथवा प्रत्यक्ष रूप से विभिन्न वायुयान कम्पनियों को धन देकर की जाती है। देश की डाक आदि लेजाने के बदले में भी सरकार द्वारा निश्चित रकम आर्थिक सहायता के रूप में दी जा सकती है। इससे सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि वायुयान आदि चलाने का पूरा खर्च यात्रियों पर ही नहीं पड़ता। पहले थोड़ा किराया लिया जाता है फिर ज्यों २ व्यापार बढ़ता जाता है त्यों त्यों खर्चा भी बढ़ता जाता है।

यद्यपि यह सही है कि यातायात के साधनों में वायुयान सबसे गतिशील है किन्तु व्यापारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं है। सस्ता तथा भारी बोझा ढोने के माने में यह रेलों अथवा जहाजों से प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त ये छोटी यात्राओं के लिए भी अनुपयुक्त हैं। इनका अच्छा उपयोग अन्तर्देशीय उड़ानों के लिए ही लाभप्रद हो सकता है। किन्तु यह मानना पड़ता है कि जहां तक जरूरी डाक और कीमती सामान तथा यात्रियों के शीघ्र भेजे जाने का प्रश्न है, वायुयान ही अधिक लाभप्रद हो सकते हैं। आजकल सब देश लम्बी सफर, डाक व बहुमूल्य वस्तुएं भेजने में समय बचाने की दृष्टि से वायुयानों का ही उपयोग करते हैं। संसार के प्रमुख औद्योगिक तथा व्यापारिक भागों में इनका अधिकतर उपयोग डाक तथा यात्रियों और शीघ्र नष्ट होजाने वाली वस्तुओं को लेजाने के लिए ही होता है। हवाई यातायात का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसमें यात्रा की गति अत्यधिक रहती है। इससे आज के युग के औद्योगिक कार्यों में व्यस्त मानव का समय बचता है और ऐसे मनुष्य के लिए समय ही धन होता है। किन्तु यह बात सर्वमान्य है कि भारी सामान लेजाने में किसी दूसरे यातायात के साधनों से हवाई यातायात होड़ नहीं कर सकता क्योंकि यह साधन बड़ा खर्चीला पड़ता है।

यद्यपि वायुमार्ग, रेल तथा जलमार्गों की तरह निश्चित और बंधे हुए नहीं होते किन्तु अपने हित की दृष्टि से सदा ही वह भूमि को बनावट और प्रकाश-स्तंभ तथा महाद्वीपीय मार्ग का अनुसरण करते हैं। जलवायु और भूमि की बनावट का भी हवाई यातायात पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। अर्द्ध उष्ण मार्गों में उच्च भार की पेटियाँ इसके लिए सबसे अधिक अनुकूल पड़ती हैं और कुछ स्थानो में तो हवाई उड़ान के लिए ये आदर्श हैं। उष्ण कटिबन्ध के अन्दर जलवायु सम्बन्धी दशाओं में प्रादेशिक तथा मौसमी अन्तर होता रहता है किन्तु साधारण रूप से हवाई उड़ान के लिए वे अच्छी समझी जाती हैं। शीतोष्ण भागों में वायु को दशा में बहुत अधिक परिवर्तन होता है अतः हवाई उड़ान के लिए वायु की दशा बहुत ही प्रतिकूल होती है। तेज हवा, घनी वर्षा और बर्फीले तूफानों का हवाई मार्गों पर अधिक प्रभाव पड़ता है। इससे वायुयान का उड़ना कठिन ही नहीं असंभव भी हो जाता है। दुर्घटनायें होने का अधिक अंदेशा रहता है। स्वच्छ नीला आकाश और सूखी हवा ही इसके अनुकूल होती है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि सूखी हवा की उपस्थिति के बावजूद भी रेगिस्तानों में तापक्रम में परिवर्तन शीघ्रता से होता है अतः यह वायु-मार्गों के लिए उपयुक्त नहीं होता। रेगिस्तानों की भाँति घने जंगलों को भी वायुमार्गों से बचाया जाता है। वैज्ञानिक उन्नति ने प्रत्येक ऋतु सम्बन्धी तत्वों पर विजय प्राप्ति सरल कर दी है। रेडियो द्वारा संचालन होने से वायुयानों को धुंध, कोहरा अथवा अंधेरे का डर भी नहीं रहता। प्रत्येक हवाई अड्डे पर उन क्षेत्रों की वायु धाराओं और कुहरे आदि का नकशा होता है जिन पर से वायुयान उड़कर जाने वाले होते हैं। अस्तु, समय २ पर रेडियो द्वारा वायुयानों को उनके मार्ग में पड़ने वाली वायु सम्बन्धी बाधाओं से सूचित किया जाता रहता है और इस पर किसी भी बाधा से बचाव किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त हवाई अड्डों पर विभिन्न रोशनियां जलाकर प्रकाशित रखने से वायुयान कोहरे और अंधकार में भी उतर सकते हैं। मार्ग में जहां तहां रेडियो को मीनारों के बन जाने से तथा स्वयं—चलित नाविक यंत्र की सहायता से अब हवाई जहाज बिना भूमि देखे ही अपने मार्ग पर चले जाने में समर्थ होते हैं।

यद्यपि वायुयान रचना से स्वतन्त्र होते हैं फिर भी भूमि की बनावट का हवाई यातायात पर प्रभाव पड़ता है। हवाई स्टेशन पर हवाई जहाज के उड़ने के लिए एक ऐसा अच्छा मैदान होना चाहिए जिसका धरातल सुदृढ़ तथा समतल हो तथा जो प्रत्येक दिशा में कम से कम आधा मील फैला हुआ हो। वायुयान एक निश्चित ऊंचाई के ऊपर नहीं उड़ सकते हैं। अब तो ऊंचे से ऊंचे पर्वत को भी वायु मार्ग द्वारा प्रत्येक मौसम में पार किया जा सकता है। समुद्र तल पर के स्थान सीधी उड़ान द्वारा सहस्त्रों फीट ऊंचाई पर स्थित अन्य स्थानों से मिला दिए गए हैं।

व्यापारिक उड़ान के आर्थिक आधार अन्य प्रकार के यातायातों के समान ही है। सामान व यात्रियों की चढ़ाई उतराई वहीं पर होगी जहां वायुयान की सेवा की पर्याप्त मांग हो तथा जहां यात्रियों, डाक और सामान की पूर्ति होती हो।

प्रत्येक देश अपनी राष्ट्रीय भूमि के ऊपर के वायुमंडल पर अधिकार रखता है। इसलिए मुद्रा, पार-पत्र, प्रवास तथा सफाई आदि के नियम जैसी कतिपय समस्यायें, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक हवाई यातायात में बहुत सी असुविधायें उपस्थित करती हैं।

हवाई यातायात का सबसे अधिक विकास संयुक्त राज्य अमेरिका में हुआ है। यह एक लम्बा चौड़ा देश है जहां वायुयानों को एक ओर से दूसरी ओर जाने में कोई राजनैतिक सीमा नहीं पार करनी पड़ती, यद्यपि कह देने की रीति का पालन अवश्य करना पड़ता है। संयुक्त राज्य के महत्वपूर्ण वायु मार्ग डाक तथा यात्रियों के ले जाते हैं। संयुक्त राज्य के अटलांटिक और पैसिफिक तट इस देश के सबसे अधिक उन्नत भागों में से हैं और इन क्षेत्रों को परस्पर मिलाने का सबसे शीघ्रता का मार्ग हवाई मार्गों द्वारा ही है। इस देश में दूरस्थ स्थानों के बीच सम्बन्ध स्थापित करने वाले इस शीघ्रगामी मार्ग का प्रयोग करने की इच्छा रखने वाले लोगों की संख्या बहुत अधिक है। अतः हवाई यातायात का व्यय बहुत अधिक नहीं है। इसीलिए संयुक्त राज्य अमेरिका में हवाई यातायात यूरोप अथवा संसार के किसी भी अन्य भाग की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय है।

नीचे की तालिका में विश्व के प्रमुख देशों के वायुमार्गों की लम्बाई बताई गई है :—

देश	वायुमार्ग (मीलों में)—१९४८ में		
भारत	१३,२८४	जापान	५,२८५
आस्ट्रेलिया	३६,८०२	इंगलैंड	४४,०५३
कनाडा	२५,१३७	संयुक्त राज्य अमेरिका	४३६,२६६
इटली	२०,५३५		

अध्याय ११

भारत में रेल-निर्माण का इतिहास-१

HISTORY OF RAILWAYS IN INDIA. I.

यदि यह कहा जाय कि भारतीय कृषि और उद्योग धंधों की उन्नति देश में यातायात के साधनों—विशेष कर रेल मार्गों के बनने के फलस्वरूप ही हुई है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। रेल मार्ग बनाने का सबसे पहला विचार १८३१-३२ के समय उदय हुआ। इस समय यह तय किया गया कि रेल का एक टुकड़ा १५० मील लम्बा कावेरी नदी के बांध के साथ २ कावेरीपट्टम से करूर तक बनाया जाय। सन् १८३२ में एक रेल मार्ग मद्रास से बंगलौर तक बनाये जाने का भी विचार किया गया। अन्य कई छोटी २ योजनायें भी प्रस्तावित की गई। श्री होरेस बैल के शब्दों में, "यद्यपि कई योजनायें प्रस्तावित की गई थीं किन्तु निश्चित रूप से किसी को भी कार्यान्वित नहीं किया गया। वास्तव में इस काल को रेल-मार्ग बनाने के विचारों का काल मात्र ही कह सकते हैं।"* रेल निर्माण काल को निम्न भागों में विभक्त किया जा सकता है :—

उन्नीसवीं शताब्दी में रेल निर्माण

(१) पुरानी गारंटी प्रणाली का काल (Period of Guaranteed Cos.) [१८४४ से १८६६]

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध (१८४१) में जब सर मैकडोनैल्ड स्टिफैन्स के दिमाग में भारत में कलकत्ते से उत्तर पश्चिम की ओर रेल मार्ग बनाने का विचार आया और जब १८४४ में उन्होंने बंगाल सरकार के सामने अपना सुझाव पेश किया तो इस विषय पर बहुत वाद विवाद चला। इसी समय उत्तर से दक्षिण जाने वाली रेलवे लाइन खोलने का प्रस्ताव भी प्रस्तुत किया गया। अंत में १८४५ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के संचालकों ने भारत में रेल मार्ग खोलने की स्वीकृति दे दी। अस्तु १८४४-४५ में दो कम्पनियां—क्रमशः *ईस्ट इंडियन* (East Indian) और *ग्रेट इंडियन पेनिनशुला* (G. I. P.) रेलवे कम्पनी, जो निजी कम्पनियां थीं, खुलीं। इन कम्पनियों ने कलकत्ते से उत्तर-पश्चिम तथा पूर्व को और बम्बई से पूर्व

*देखिये Horace Bell Railway Policy in India, पृ० १.

तथा उत्तर को रेल मार्ग बनाने की निश्चित योजनायें सामने रखीं। सरकार का यह विचार था कि अंग्रेज पूंजीपति सुगमता से ही इन रेलों के लिए पर्याप्त पूंजी दे देंगे किन्तु ये दोनों कम्पनियां अपनी पूंजी के लिए सरकारी गारंटी चाहती थी क्योंकि सरकार द्वारा दी गई मुफ्त जमीन ही विदेशी पूंजी को आकर्षित नहीं कर सकी थी। देशकी आर्थिक, व्यापारिक तथा राजनैतिक उन्नति के लिये रेल मार्गोंका विस्तार बहुत ही आवश्यक समझा गया तथा उधर अंग्रेज व्यापारी भी सरकार को इस बारे में काफी जोर दे रहे थे कि रेल मार्गों की शीघ्र ही उन्नति की जाय, ताकि देश के विभिन्न भागों से ब्रिटेन के कारखानों के लिए कच्चा माल सुगमतापूर्वक बन्दरगाहों तक लाया जा सके। अस्तु चार साल के लिखा पढ़ी के पश्चात् सन् १८४६ में ईस्ट इंडिया कम्पनी और उपरोक्त दोनों निजी रेलवे कम्पनियों के बीच एक समझौता हो गया। इस समझौते के अनुसार ईस्ट इंडिया रेलवे कम्पनी ने दो रेल मार्ग—एक कलकत्ता से बर्दवान तथा दूसरा इलाहाबाद से देहली तक—बनाने का वचन दिया तथा जी० आई० पी० रेलवे कम्पनी को बम्बई से कल्यान तक रेल मार्ग बनाने का काम सौंपा गया। उपरोक्त समझौते की शर्तें ये थीं :—

(१) यह समझौता ६६ वर्ष तक के लिए वैद्य होगा और रेल मार्ग बनाने में कम्पनियों को जो पूंजी व्यय करनी होगी उस पर सरकार राज्य के खजाने में कम्पनियों का रुपया जमा हो तभी से ४½ से ५% प्रतिशत तक ब्याज की गारंटी देगी।

(२) रेल मार्ग तथा उससे सम्बन्धित भवनों आदि के बनाने के लिए भूमि सरकार द्वारा बिना मूल्य के ही दी जायगी।

(३) विनियोग की कठिनाइयों से मुक्ति पाने के लिए रुपये का सारा लेन देन १ शि० १० पैं० की दर से होगा।

(४) गारंटी के रूप में दिया गया रुपया रेलवे के मुनाफे में से सरकार को वापस किया जायगा।

(५) ६६ वर्ष पश्चात् रेल मार्ग और वह भूमि जिस पर मार्ग व अन्य मकानात वगैरह बनाये गये हैं सभी सरकार की सम्पत्ति हो जायगी। रालिंग स्टॉक आदि के मूल्य का भुगतान सरकार द्वारा उचित रूप से किया जायगा। २० या ३० वर्ष बाद सरकार को लन्दन के बाजार में पिछले तीन साल के हिस्सों के औसत दर पर रेलवे लाइन खरीद लेने का अधिकार सरकार ने अपने हाथ में रखा है, किन्तु साथ ही साथ यह शर्त भी रखी गई कि रेलवे कम्पनियां किसी भी समय सरकार को रेलवे सौंप दे सकतीं है और उसके बदले में अपनी लागत, पूंजी सरकार से वसूल करने का अधिकार रखेंगी।

(६) रास्ता, रेल-गेज तथा बनावट आदि के संचालन पर सरकार का पूरा नियन्त्रण होगा और इन कार्यों के लिए सरकार से स्वीकृति ली जायगी।

रेल निर्माण की यह व्यवस्था सर्वथा असफल रही। कम्पनियों को चूंकि ब्याज के बारे में सरकार से गारंटी प्राप्त थी अतः किफायत से काम लेने की उन्होंने कोई जरुरत नहीं समझी। नतीजा यह हुआ कि गारंटी का रुपया देने में देश को लाखों रुपये को हानि सहनी पड़ी। रेल मार्ग बनाने में काफी रुपया खर्च होगया। इस समय में सरकार को रेल मार्गों से १२ करोड़ रुपयों की प्राप्ति हुई किन्तु ब्याज आदि चुकाने में उसे २५½ करोड़ रुपये देने पड़े*। वस्तुतः सरकार को इन १५ वर्षों में १३½ करोड़ रुपये की व्यर्थ की हानि उठानी पड़ी। ब्याज के अतिरिक्त सरकार को भूमि खरीदने तथा कार्य संचालन में भी काफी व्यय करना पड़ा। सब मिलाकर सरकार को इन १५ वर्षों की अवधि में १६·५४ करोड़ रुपयों की हानि हुई। ऐसा अनुमान लगाया गया था कि एकहरा और दुहरा रेल मार्गों पर प्रति मील पीछे ६०,००० और १·५ लाख रुपया खर्च होगा किन्तु केवल बड़ी २ लाइनों पर ही ३००० मील के टुकड़े पर २ लाख से अधिक खर्चा बैठ गया। ब्याज की दर भी ऊंची थी। कम्पनियों को जो भी सामान चाहिये था वह सब विदेशों से ही आयात किया जाता था—देश के उद्योग धन्धों को पनपाने का कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया गया। ब्याज के बारे में गारंटी मिलने के कारण प्रतिवर्ष करोड़ों रुपया इंग्लैंड से प्राप्त होता रहा। इसका परिणाम यह हुआ कि कार्य अधिक खर्चीला और बेमुनाफा होता गया। इसका ऋण भारतीयों पर इतना अधिक पड़ा कि वे इसको सहन करने में सर्वथा अशक्त थे। इतनी अधिक गारंटी देकर अकुशलता तथा अकार्यक्षमता प्राप्त करना किसी भी प्रकार न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता†। पूंजी लगाने वाले अपना हित केवल ब्याज प्राप्त करने में ही समझते थे। उन्हें इससे कोई मतलब नहीं था कि ब्याज पर लिया गया धन हुगली के जल में फेंका गया है या उससे चूना और ईंटों की दीवारें बनाई गई हैं। भारत में यह विचार प्रचलित किया गया कि ब्रिटिश पूंजी के बिना इस समय काम ही नहीं चल सकता और यह पूंजी बिना इन सुविधाओं के उपलब्ध ही नहीं हो सकती। परन्तु यह बात सही नहीं थी। उस समय ब्रिटिश पूंजी को विदेशों में लगाने की आवश्यकता थी। दक्षिणी अमेरिका तथा अन्य देशों में इस बात का प्रयत्न भी किया जा रहा था। भारत में भी ब्रिटिश पूंजी का लाना आवश्यक समझा गया††। अस्तु इन्हीं सब कारणों से रेल मार्गोंका बनना बड़ा ही खर्चीला सिद्ध हुआ। डा० तिवारी के शब्दों में "इस अत्यधिक खर्च के विशाल मरुस्थल में भविष्य में लाभांश प्राप्त होने की इच्छा ही एक मरुद्यान के समान थी

---

* देखिये रमेशचन्द्र दत्त कृत 'इण्डिया इन विक्टोरियन एज' पृ० ३५५-५६

† देखिये N. Sanyal : 'Development of Indian Railways' पृ० १७

†† देखिये दत्त : 'इन्डिया इन विक्टोरियन एज' पृ० २६०

किन्तु इस आशा ने कम्पनियों को किफायत से कार्य करने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया।"*

इस काल में इस बात पर भी बड़ा वाद-विवाद चला कि भारतीय रेलों के बीच की दूरी (gauge) कितनी रखी जाय। उस समय अंग्रेजी रेलों का गाज ४ फीट ८½ इंच था किन्तु तत्कालीन वाइसराय लार्ड डलहौजी ने इस बात पर जोर दिया कि भारतीय रेलें ५½ फीट के गाज पर ही बनाई जांय। किन्तु यह निश्चय भारतीय रेलों के इतिहास में बड़ा ही दुखद प्रयोग साबित हुआ। यह कहा गया कि भारतीय रेलों को आंधी, तूफान तथा तेज हवाओं के झोंके से बचाने के लिए चौड़ी पटरियों वाली रेलों की आवश्यकता है किन्तु यह प्रस्ताव बड़ा ही व्यय साध्य सिद्ध हुआ। अत: बाद में छोटे गाज वाली रेलों को प्रधानता दी गई। अस्तु, अब भारत में २ फीट से ५½ फीट तक के गाज की चार भिन्न २ प्रणालियां वर्तमान हैं।

उपरोक्त दो छोटी २ रेलों के बन जाने से ही लार्ड डलहौजी संतुष्ट नहीं हुआ। उसने ट्रंक-रेल मार्गों को बनाने का प्रस्ताव रखा। उसे यह भली भांति महसूस हो गया कि देश की राजनैतिक और बचाव सम्बन्धी व्यवस्था में उन्नति लाने के लिए देश में रेल-पथों के निर्माण में शीघ्र से शीघ्र उन्नति होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त देश की प्राकृतिक सम्पति का पूर्ण रूप से विकास करने के लिए भी रेल-पथों का निर्माण किया जाना आवश्यक था। इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर सन् १८५३ में उन्होंने ईस्ट इंडिया कम्पनी के संचालकों को एक पत्र लिखा कि, "रेल मार्गों के बन जाने से भारतीयों को जो व्यापारिक तथा आर्थिक लाभ होगा उसका अनुमान लगाना कठिन है। देश के कई भागों में उपज की बाहुल्यता होने पर भी दूसरे भाग यातायात के साधनों की न्यूनता के अभाव का अनुभव कर रहे हैं अत: यदि इन क्षेत्रों को रेल मार्गों द्वारा जोड़ा जा सके तो अतुलित लाभ होगा—जिसका अप्रत्यक्ष रूप से यही फल होगा कि देश के भीतरी भागों में अंग्रेजी माल की मांग में आशातीत वृद्धि होगी।" इस प्रकार लार्ड डलहौजी देश के भीतरी भागों को प्रमुख बन्दरगाहों से रेलों द्वारा जोड़ने के पक्ष में थे जिससे भारत का कच्चा माल इंगलैंड और यूरोप को तथा वहां का पक्का माल देश के विभिन्न भागों में सुगमतापूर्वक वितरित किया जा सके। लार्ड डलहौजी की राय थी कि रेल निर्माण का कार्य निजी कम्पनियों (Private Cos.) द्वारा ही कराया जाय, सरकार का उन पर केवल नियन्त्रण मात्र रहे। वास्तव में वे भारत में बृटिश पूंजी को प्रोत्साहन देना चाहते थे।

अगस्त सन् १८५३ में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने लार्ड डलहौजी के प्रस्ताव में दी गई बातों पर विचार करके उसे स्वीकार कर लिया। अस्तु १८५४ से १८६० के

* देखिये R. D. Tewari: 'Railways in Modern India पृ० ५२

बीच में भारत के विभिन्न भागों में रेल-निर्माण करने के हेतु ८ समझौते हुए यथा (१) ईस्ट इंडियां रेलवे कम्पनी से दिल्ली तक की लाइन के लिए; (२) ग्रेट इंडियन पेनिनशुला रेलवे से उत्तरी भारत तक की पूरी लाइन और दक्षिणी में रायचूर तक के लिये; (३) मद्रास रेलवे कम्पनी से भारत ट्रंक लाइन्स के लिए जिससे पश्चिमी तट और उत्तर पश्चिम में बम्बई से आने वाली लाइन से रेल-संबंध स्थापित किया जा सके, (४) बम्बई, बड़ौदा और सैंट्रल इंडिया रेलवे से; (५) पूर्वी बंगाल रेलवे कम्पनी से; (६) साउथ ईस्टर्न रेलवे कम्पनी से; (७) सिन्ध रेलवे कम्पनी से और (८) दक्षिण भारत रेलवे कम्पनी से। इन समझौते की मुख्य २ बातें वही थीं जो ऊपर दी गई दो कम्पनीयों के साथ की गई थी। इन रेल-मार्गों पर सरकार का पूरा नियंत्रण था तथा कम्पनियों के लिए यह आवश्यक था कि वे सरकार से किराया स्वीकृत करावें और १०% अधिक लाभ होने पर किराया कम करने का अधिकार सरकार के हाथ में रखा गया।

जैसा कि ऊपर कहा गया है रेल निर्माण की इस गारंटी प्रथा के फलस्वरूप देश को अत्यधिक आर्थिक हानि उठानी पड़ी। सन् १८५४ में प्रति मील पीछे प्रति सप्ताह में कम्पनियों को ६३) का लाभ होता था किन्तु १८६९ में यह लाभ २७७) तक पहुंच गया। रेल द्वारा ले जाने वाली मुसाफिरों की संख्या में भी ५ लाख से १६० लाख की वृद्धि हुई। और इस अवधि में प्रतिवर्ष में २६५ मील लंबा रेल मार्ग बनाने का औसत रहा। नीचे की तालिका में रेल मार्गों की आर्थिक दशा बताई गई है*:—

(हजार रुपयों में)

मद	१८५४	१८५९	१८६४	१८६९
रेल मार्ग (मीलों में)	७१	६२५	२,९५८	४,२५५
सम्पूर्ण पूंजी की लागत	४०,०००	२,२५,०००	५,८०,०००	८,९०,०००
कुल लाभ	३३१	५,७२४	२८,५९०	६१,३१०
वास्तविक लाभ	८९	२,९५०	११,५०४	२७ १३६
वास्तविक लाभ का लागत पूंजी से प्रतिशत	०·२२	१·३१	१·९८	३·०५

(१ पौंड = १० रु० के माना गया है)

२. राज्य द्वारा रेलमार्ग निर्माण और संचालन की व्यवस्था का काल (Period of Direct State Construction and Management of Rlys) [१८६९–१८८१]

जब गारंटी प्रथा के उपर्युक्त दोष भारत सरकार को स्पष्ट हो गये तो वह

* देखिये डा० सन्याल: 'Development of Indian Railways.' पृ० ४७

दूसरी व्यवस्था के लिए प्रयत्न करने लगी। लार्ड लौरेंस ने तत्कालीन भारत मंत्री श्री स्टैफर्ड नार्थकाट को अपने एक प्रस्ताव में यह सुझाया कि रेल-निर्माण का कार्य सीधा सरकार के हाथ में लेलिया जाय किन्तु यह प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया। १८६२–६४ में सरकार ने यह प्रयत्न किया कि पहले के मुकाबले में अधिक अनुकूल शर्तों पर रेलों का निर्माण निजी कम्पनियों द्वारा ही कराया जाय किन्तु इसमें सरकार को अधिक सफलता नहीं मिली। सन् १८६४ में बिना गारंटी दिये केवल आर्थिक सहायता (Subsidy) के आधार पर रेल निर्माण करने का प्रयत्न किया गया। अवध रूहेल खंड रेलवे और मद्रास की ईस्ट इंडियन ट्राम वे कम्पनी ने इस आधार पर कार्य शुरु किया। इन कम्पनियों को सरकार ने रेल बनने से २० वर्षों तक के लिए प्रति मील रेल मार्ग पीछे १०० पौंड प्रति वर्ष और प्रति एक पुल के निर्माण पीछे १००० पौंड की आर्थिक सहायता प्रदान की। किन्तु कुछ समय बाद ही इन कम्पनियों को आर्थिक कठिनाइयों के कारण कार्य बन्द करना पड़ा। अस्तु फिर से पुरानी गारंटी व्यवस्था में कुछ संशोधन करने पड़े। जी. आई. पी. रेलवे, बी. बी. एंड सी. आई रेलवे आदि कम्पनीयों ने संशोधन मंजूर कर लिये और बदले में सरकार को २५ वर्ष बाद रेलवे खरीदने का अधिकार छोड़ना पड़ा। किन्तु ईस्ट इंडियन रेलवे ने संशोधन मंजूर नहीं किये क्योंकि संशोधन की शर्त यह थी कि गारंटीड ब्याज का जितना रुपया रेलवे कम्पनियों को सरकार से मिल चुका था और जो सरकार को लौटाना था वह सारा रुपया सरकार छोड़ दे और आगे से इस तरह के कर्ज का कोई हिसाब न रखा जाय बशर्ते कि सरकार को हमेशा के लिए लाभांश का आधा भाग मिलता रहे।

सन् १८६९ में जब लार्ड लारेंस के स्थान पर लार्ड मेयो भारत के वाइसराय बने तो उन्होंने भारत मन्त्री (ड्यूक आफ एरगिल) के सम्मुख पुनः सरकार द्वारा रेल मार्गों का निर्माण तथा संचालन करने का प्रस्ताव रखा जिसे भारत मन्त्री ने स्वीकार कर लिया। अस्तु, सरकार ने अपनी पूंजी और प्रबन्ध से १८६९ के बाद रेलवे निर्माण का नया प्रयोग आरम्भ किया। पर सरकार के सामने बड़ी २ योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए पूंजी का अभाव पैदा होगया। अतः रेल मार्गों के लिए सरकार को ऋण लेना पड़ा। रूस के आक्रमण का भय उत्पन्न होजाने से सामरिक महत्व की कई रेलों का निर्माण किया जाना भी आवश्यक था। इससे राज्य की रेलों पर अनुत्पादक व्यय (Unproductive) का भार बढ़ गया। इस समय बिठाई गई *सिलैक्ट कमेटी* की सिफारिशों को कार्यान्वित करने के हेतु भारत मन्त्री लार्ड सैलिसबरी ने १८७४ में तीन मुख्य सिद्धान्त रेल निर्माण के कार्य के लिए रखे:—(१) केवल उन्हीं रेल मार्गों का निर्माण आरम्भ किया जाय जिनके द्वारा ब्याज पर लिया गया ऋण उसके निर्माण काल में ही पुनः चुकाया जा सके और ये रेल मार्ग उत्पादक

सिद्ध हो सके। (२) अकाल आदि दूर करने के लिए जो प्रयत्न किए जावें उन पर खर्च होने वाली रकम उस साल की वित्त-आय में से प्राप्त की जाय और यदि यह रकम कार्य के लिए पर्याप्त न हो तो ऋण लिया जाय। (३) *भारत में ही ऋण सार्वजनिक कार्यों के लिए* उत्पन्न किया जाय। रेलों पर होने वाला व्यय २½ मिलियन पौंड प्रति वर्ष तक ही सीमित रखा जाय। यद्यपि यह व्यय उपरोक्त रकम तक ही निश्चित किया गया था किन्तु १८७६-८० काल में यह व्यय कभी भी ३½ मिलियन पौंड से कम नहीं हुआ बल्कि औसत वार्षिक व्यय तो ४० लाख पौंड से भी अधिक का होता रहा।*

सन् १८८१ में लार्ड हार्टिङ्गटन (भारत मन्त्री) ने कुछ नियम भारतीय रेल मार्गों के निर्माण कार्य में सहयोग देने के लिए बनाये। उत्पादक और अनुत्पादक कार्यों में विभिन्नता रखी गई। जो रेल मार्ग अपने बनने के ५ वर्षों के भीतर ही उस पर लगी पूंजी पर ४% व्याज को चुका सकने में समर्थ हो वह उत्पादक समझा गया। बचात्र हेतु जो योजनाएं बनाई गईं—जिनसे आर्थिक लाभ न होकर केवल मानव जीवन का संरक्षण आदि हो सकता था—उन्हें बचाव की योजनाएं (Protective) कहा गया। भारत मन्त्री ने यह भी आदेश दिया कि निजी पूंजी को आकर्षित करने के लिए गारंटी व्यवस्था का आसरा न लिया जाय। इसी बीच में भारतीय अकाल आयोग (Famine Commission) ने १८८० में भारत में ५,००० मील रेल मार्ग निर्माण करने के लिए भारत सरकार को सुझाव दिया किन्तु सरकार के पास रेल मार्गों तथा अन्य योजनाओं को कार्य रूप में परिणित करने के लायक पर्याप्त धन नहीं था अस्तु, विवश होकर सरकार को निजी कम्पनियों द्वारा रेलवे निर्माण करने का आदेश देना पड़ा। सन् १८६९-१८८१ में रेल मार्गों में जो विस्तार हुआ वह इस प्रकार था:—

वर्ष	१८६९	१८७०-७१	१८७५-७६	१८८०-८१	१८८१-८२
मील लम्बा रेल मार्ग	४२५५	४४७५	६५१९	६३२५	६८७५

इस अवधि में प्रति वर्ष में ४६८ मील लंबा रेल मार्ग बनाया जा सका जब कि १८५०-६८ में वार्षिक औसत केवल २६५ मील लम्बे टुकड़े का ही था। सम्पूर्ण रेल मार्गों की लम्बाई का ६१३२ मील ईस्ट इंडियन रेलवे और ३७४३ मील भारत सरकार के स्वामित्व में था। इस काल में कुछ बड़े २ पुल भी बनाये गये। १८८१ तक सब मिला कर १३४ करोड़ रुपये खर्च हो चुके थे, किन्तु सरकार-द्वारा निर्मित रेलों पर केवल ३५ करोड़ रुपये ही व्यय हुए थे। इस अवधि में सरकार

* सान्याल : 'Development of Indian Railways', पृ० ८४

को लगभग १५ करोड़ रुपये की आर्थिक हानि उठानी पड़ी। सरकार को रेलों द्वारा केवल ४४ करोड़ रुपयों की ही प्राप्ति हुई जब कि ब्याज तथा आर्थिक सहायता देने में इसे ५६ करोड़ रुपये खर्च करने पड़े।

पिछले काल में जो रेल मार्ग तंग-गेज पर बनाये गए थे वे काफी खर्चीले सिद्ध हुए अतः भारत सरकार ने रेल-गेजों को पुनः दो भागों में वर्गीकृत किया—मुख्य मुख्य रेल मार्ग ब्राड गेज और सहायक रेल मार्ग नैरो-गेज पर बनाए गए। किन्तु इन पर भी सरकार को अधिक खर्च करने से बचाने के लिए अधिकांश रेल मार्ग मीटर गाज पर ही निर्मित करने का आयोजन किया गया।

(३) नई गारंटी व्यवस्था का काल (Revival of Companies) [१८८१–१९०२]

राज्य द्वारा निर्माण और संचालन काल में सरकार को उत्पादक और अनुत्पादक दोनों ही प्रकार के रेल मार्गों को बनाने का अधिकार था किन्तु आर्थिक कठिनाइयों के कारण सरकार ने यह निश्चय किया कि सभी अनुत्पादक मार्ग बनाने का कार्य सरकार के हाथ में रहे और उत्पादक मार्ग केवल निजी कम्पनियों द्वारा ही बनाये जायं ताकि रेल मार्गों के विस्तार हेतु व्यक्तिगत पूंजी उपलब्ध हो सके। अस्तु, इस काल में पूंजी को हस्तगत करने के लिए सभी उत्पादक रेल मार्गों को निर्माण करने का कार्य निजी कम्पनियों को सौंपा गया और अनुत्पादक रेल मार्ग सरकार द्वारा बनाये जाने लगे।* किन्तु सरकार की यह नीति सही नहीं थी क्योंकि यदि सभी अनुत्पादक रेल मार्ग सरकार द्वारा निर्मित किए जाएं तो सरकार ऋण-ग्रस्त हो सकती थी, अतः परिस्थिति का ध्यान रखते हुए भारत सरकार ने भारत मंत्री के सम्मुख एक प्रस्ताव ४००० मील लंबे रेल मार्ग बनाने के हेतु—जिस पर अनुमानतः ३२० लाख पौंड व्यय होता था, रखा। इस प्रस्ताव में रेल मार्गों को दो भागों में बांटा गया—(अ) वे रेल मार्ग जिनका बनाया जाना सामरिक और सुरक्षा की दृष्टि से अत्यंत आवश्यक था तथा अन्य रेल मार्ग (ब) श्रेणी के अंतर्गत रखे गए। इस योजना को कार्यान्वित करने में ६ वर्षों का अनुमान लगाया गया। भारत मंत्री ने इस प्रस्ताव को बहुत खर्चीला समझा अतः इसकी जांच करने को पार्लामैंट सिलेक्ट कमेटी नियुक्त की गई। इस कमेटी ने १८८४ में अपनी सिफारिशों में कहा कि देश के विभिन्न भागों को अकाल से होने वाली हानि से बचाने और भीतरी तथा विदेशी व्यापार की वृद्धि हेतु रेल मार्गों का विस्तार किया जाना बहुत जरूरी है। इस कमेटी की राय में रेल निर्माण का कार्य निजी कंपनियों और सरकार दोनों ही द्वारा किया जाना उपयुक्त होगा। सरकार, यद्यपि उत्पादक और अनुत्पादक दोनों ही श्रेणी के रेल

* डा० तिवारी : "Railways in Modern India" पृ० ९८

मार्ग बनावे किन्तु अधिकांशतः सरकार अपने हाथ में वे ही रेल मार्ग लें जो आत्म निर्भर हो। इस कार्य के लिए कमेटी ने सिफारिश की कि सरकार वार्षिक ऋण ३० लाख पौंड तक ले सकती है किन्तु यह ऋण भारत में ही उत्पन्न किया जाय।

भारत मंत्री ने कमेटी की अधिकांश सिफारिशों का मान लिया। उत्पादक और अनुत्पादक कार्यों के लिए अकाल-कोष के अतिरिक्त ५ लाख पौंड और सरकार को दिया गया। सरकार द्वारा ऋण लेने की सीमा ३.५ लाख पौंड रखी गई। इस प्रकार इस काल में रेल-निर्माण के लिए पूंजी निजी कम्पनियों, प्रान्तीय तथा सरकारी वित्त, अकाल-कोष तथा ऋण आदि साधनों से इकट्ठी की गई। इसमें से अधिकांश पूंजी उन रेल मार्गों पर व्यय की गई जो सामरिक दृष्टि (उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रान्त) से महत्व की थी।

भारत सरकार ने इस काल में बंगाल-नागपुर, रूहेल खंड– कुमायूं, दक्षिणी-मरहठा और बंगाल तथा उत्तरी पश्चिमी रेलवे कम्पनियों से कई समझौते किए जिनकी विशेष शर्तें ये थीं—(१) रेलवे लाइनों पर राज्य का स्वामित्व माना गया और २५ वर्ष पश्चात् दस साल के किसी समयान्तर पर समझौते की समाप्ति की जा सकेगी यह भी स्वीकार कर लिया गया। समझौते की समाप्ति पर कम्पनी द्वारा लगाई पूंजी वापस करना भी तय हुआ (२)गारंटीड ब्याज की दर ३½ प्रतिशत मानी गई। (३)वास्तविक लाभ में राज्य का भाग ½ रखा गया। इन रेल-मार्गों की व्यवस्था कंपनियों के हाथ में ही रखी गई। पुरानी गारंटीड कंपनियोंका समझौता समाप्त करने का जब अवसर आया तो सरकार ने प्रायः समझौता तो समाप्त कर दिया पर व्यवस्था के बारे में सरकार ने एक सी नीति नहीं बरती। पूर्वी बंगाल, अवध-रूहेलखंड तथा द० पंजाब रेलवे की व्यवस्था तो सरकार ने अपने हाथ में लेली किन्तु ईस्ट इन्डियन रेलवे और जी० आई० पी० रेलवे की व्यवस्था कम्पनियों के पास ही रहने दी गई। जब नई गारंटीड कम्पनियों के समझौते समाप्त करने का अवसर आया तब भी यही किया गया। सरकार ने भी रेल-निर्माण का कार्य चालू रखा। इसका फल यह हुआ कि रेलवे निर्माण और प्रबन्ध के बारे में सरकार की कोई स्पष्ट नीति नहीं बन सकी। चिसने (Chisney) के शब्दों में "आज एक रेल-मार्ग बेच देना और कल ही दूसरा खरीद लेना तथा आज एक रेल मार्ग बनाना और कुछ समय पश्चात ही उसे गिरवी रख देना या भाड़े पर उठा देना और निजी कम्पनियों से दूसरा रेल मार्ग भाड़े पर ले लेना आदि बातें इसी ओर निर्देशन करती हैं कि भारत सरकार की रेलवे-निर्माण नीति बिल्कुल ही अस्पष्ट थी। इसका नतीजा यही था कि रेल संचालन आदि से जिस व्यवस्था की आवश्यकता थी उसका नितान्त अभाव था।"*

* डा० सन्याल : 'Development of Indian Railways'. पृ० १४६

निजी कम्पनियों के बनने के साथ एक बार पुनः रेलवे गॉज का प्रश्न खड़ा हुआ। सन् १८८४ की पार्लियामैंट सिलैक्ट कमेटी ने अपना निर्णय दिया कि "देश के सभी प्रमुख रेल मार्ग—उनके सहायक मार्गों सहित—ब्राड गॉज पर ही निर्मित किये जांय, अन्य सभी स्थानीय मार्ग—जहां रेल निर्माण सस्ता हो—मीटर गॉज पर ही बनाये जांय।" १९०२ के अन्त तक १४००० मील लंबा टुकड़ा ब्राड गॉज और ११००० मील लंबा टुकड़ा मीटर गांज के अन्तर्गत था। इसी काल में कुछ रेलों के बीच की दूरी २ फीट और २½ फीट भी रखी गई। २½ फीट गॉज की लाइन पहाड़ी भागों में और दो फीट वाला गांज बड़े शहरों के निकटवर्ती रेल मार्गों पर रखा गया। इस प्रकार के गांज वाली रेलवे की लम्बाई ९६८ मील थी। ये रेलवे 'Light Railways' के नाम से जानी जाती थी। नीचे की तालिका में १८८२–१९०२ की अवधि में रेल मार्गों की उन्नति बताई गई है:—

	१८८२	१८८७	१८९२	१८९७	१९०२
मार्ग की लंबाई (मीलों में)	१०,०९९	१४,०९८	१७,७९९	२१,११५	२५,८९८
पूंजी (लाख रुपयों में)	१४,३२४	१८,२८८	२२,७३०	२८,२१२	३४,९७७
वास्तविक आय (लाख रु० में)	७९८	९३६	१,२३३	१,३१२	१,७२२
पूंजी और वास्तविक आय का प्रतिशत	५·३६	५·१२	५·४२	४·६५	४·९२

इस तालिका से स्पष्ट ज्ञात होता है कि इस अवधि में रेल मार्गों का विस्तार आशाजनक रूप से अधिक हुआ। वार्षिक औसत ७३३ मील लंबा टुकड़ा इस काल में बनाया गया। इस समय सब मिलाकर ९८ रेल मार्ग चालू थे जो ३३ विभिन्न रेलवे कम्पनियों के नियंत्रण में थे। केवल बी. बी. एंड. सी. आई और मद्रास रेलवे को छोड़कर प्रायः सभी पुरानी गारंटीड रेलें राज्य के अधिकार में आ गई किन्तु इनकी व्यवस्था नई गारंटीड कम्पनियों के हाथ में ही रखी गई।

अध्याय १२

भारत में रेल निर्माण का इतिहास-२

HISTORY OF RAILWAYS IN INDIA II

बीसवीं शताब्दी में रेल-निर्माण कार्य

प्रथम महायुद्ध के पूर्व रेलों की वृद्धि एवं विकास का काल (१६००-१६१४)

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में रेल-निर्माण कार्य में बड़ी उन्नति हुई। पिछले वर्षों की अपेक्षा रेलों द्वारा अधिक यात्रियों को लेजाया जाना तथा व्यापार और उद्योग-धन्धों में भी अधिक उन्नति हुई। सन् १६०० से ही रेलों से आर्थिक लाभ होने लगा अस्तु जनता यह अनुभव करने लगी कि पूंजी को यदि रेल-निर्माण कार्य में लगाया जायगा तो काफी लाभ होगा अतः पर्याप्त मात्रा में पूंजी उपलब्ध होने लगी। सन् १६०१ में श्री थामस राबर्टसन को भारतीय रेलों की व्यवस्था और कार्य प्रणाली का अध्ययन करने के हेतु नियुक्त किया गया। उन्होंने कई महत्वपूर्ण सुझाव पेश किए। पुरानी रेलों की प्रगति तथा नई रेलों के निर्माण कार्य के लिए एक रेलवे कोष स्थापित करने की सिफारिश की गई। रेलों की कार्य-क्षमता बढ़ाने के लिए भी कई सुझाव दिए गए। रेलें राज्य द्वारा निर्मित और संचालित की जांय या निजी कम्पनियों द्वारा, इस प्रश्न पर भी *श्री राबर्टसन* का ध्यान गया। उन्होंने कहा कि वर्तमान अव्यवस्था और अनुत्पादक खर्चों की अधिकता का एक मात्र कारण यही है कि कुछ मार्ग निजी कम्पनियों के नियन्त्रण में है और कुछ राज्य के। अस्तु उन्होंने इस दोष को दूर करने के लिए यह सिफारिश की कि समस्त रेलवे लाइनें कम्पनियों को ही भाड़े पर देदी जांय और नई रेलों के लिए सरकार कम्पनियों को व्याज की गारंटी दे तथा एक रेलवे बोर्ड भी स्थापित किया जाय। किन्तु भारतीय स्वदेशी आंदोलन के फलस्वरूप भारतीय जनता इस बात के सर्वथा खिलाफ थी कि रेलों का स्वामित्व और व्यवस्था अंग्रेज कम्पनियों के अधिकार में हो। साथ ही सरकार भी इस बात के लिए तैयार नहीं थी कि व्यवस्था के लिए रेलें कम्पनियों को भाड़े पर देदी जांय। अस्तु इस सम्बन्ध में भारत सरकार ने कोई नई नीति नहीं बरती। १६०५ में एक रेलवे बोर्ड (Railway Board) स्थापित किया गया किन्तु रेलवे कोष निर्माण नहीं किया गया।

इतना सब होने पर भी रेलवे सुविधाएं अपर्याप्त ही रहीं। सन् १६०७ में सर मैके (Sir Qames Mackay) के सभापतित्व में रेलवे अर्थ और शासन व्यवस्था की जांच करने के लिए एक कमेटी बिठाई गई। इस कमेटी ने निर्णय दिया कि देश में वर्तमान यातायात के साधनों का पूर्ण अभाव है और इसके लिए कमसे कम १०,००० मील लम्बे रेल मार्ग का होना आवश्यक समझा गया। इसने प्रति वर्ष १८·७५ करोड़ रुपये (१ करोड़ २५ लाख पौंड) रेलवे विभाग में खर्च करने की सिफारिश की। कमेटी ने यह भी सुझाव दिया कि बड़ी २ रेलवे लाइनें अपने खर्च से ही ब्रांच लाइनें बनावें। कुछ राज्य नियंत्रित रेलों को कम्पनियों के अधिकार में दे दिया जाय और रेलवे बोर्ड को अधिक अधिकार दिए जांय। यद्यपि इस आधार पर तो रेलवे का विस्तार नहीं हो सका किन्तु १६०८ में रेलवे बोर्ड पुनः स्थापित किया गया तथा इसके अधिकार विस्तृत किए गए। १६०८–१३ के बीच में ६२ करोड़ रुपया इस काम में खर्च हुआ। कुल १०००० मील से अधिक की ब्रांच रेलवे लाइनें इन ६ वर्षों में बनीं। १६१४ तक रेल मार्गों की लम्बाई ३५,२८५ मील होगई अर्थात् प्रति वर्ष रेल निर्माण का औसत ७७४ मील पड़ा।

प्रथम महायुद्ध के समय (१६१४–१६२०)

प्रथम महायुद्ध के आरम्भ होने के साथ साथ भारतीय रेलों की स्थिति बहुत बिगड़ गई क्योंकि विदेशों से डिब्बे, इंजिन तथा अन्य आवश्यक सामान आयात नहीं किया जा सका। १६१७–१८ में तो कई ब्रांच लाइनें उखाड़ डाली गईं और उनकी रेलें, रोलिंग स्टाक तथा कर्मचारी मध्य-पूर्व के युद्ध-स्थलों—पूर्वी अफ्रीका, मैसोपोटामिया, फिलीस्तीन आदि देशों—को भेज दिया गया था। देश के भीतर भी रेलों द्वारा अत्यधिक संख्या में फौजें एक स्थान से दूसरे स्थान को लेजाई जाती थीं। अस्तु रेलों पर कार्य भार बहुत बढ़ गया जिसके फलस्वरूप व्यापारियों और उद्योगपतियों को काफी आर्थिक हानि उठानी पड़ी क्योंकि डिब्बों की कमी के कारण उनका माल कहीं भेजा नहीं जा सकता था। रेल मार्गों की मरम्मत आदि का कार्य भी कुछ समय तक के लिए स्थगित करना पड़ा। एकवर्थ कमेटी के शब्दों में, "कई मील लम्बे रेलमार्ग, सैंकड़ों इंजिन तथा हजारों डिब्बे आदि मरम्मत के लिए बहुत लम्बे समय से इन्तजार कर रहे थे किन्तु अभी तक यह कार्य पूरा नहीं हो सका था।" माल के टूट-फूट के लिए भी कोई अलग कोष नहीं बनाया गया जिससे युद्धोत्तर काल में कुछ आर्थिक सहायता मिल सके। रेलवे द्वारा होने वाली आय का नाम भी सामान्य अर्थ विभाग में डाल दिया गया।

इस काल में रेल निर्माण कार्य में जो प्रगति हुई वह इस प्रकार है:—

	१९०५	१९१०	१९१४-१५	१९१९-२०
रेल मार्ग (लंबाई मीलों में)	२८,२९५	३२,०९९	३५,२८५	३६,७३५
पूंजीगतखर्च (करोड़ रु०)	३३६·९४	४३९·०५	५१९·२२	५६६·३८
कुल आय (,,)	४१·६८	५१·१४	६०·४२	८९·१५
खर्च (,,)	१९·९४	२७·१६	३२·७४	५०·६६
वास्तविक लाभ और पूंजीगत खर्च का प्रतिशत	५·९२	५·४६	५·३३	६·८०

प्रथम महायुद्ध के पश्चात (१९२०-१९३०)

पिछले ४० वर्षों में (१८८२-१९२०) सरकार की रेलवे सम्बन्धी नीति कुछ इस प्रकार से रही थी—

(क) जिन कम्पनियों को सरकार ने ब्याज की गारंटी दी थी उनका स्वामित्व राज्य ने अपने अधिकार में ले लिया किन्तु ब्रांच लाइनों का स्वामित्व—जो विशेष शर्तों पर बनाई गई थीं—निजी कम्पनियों के हाथ में ही छोड़ दिया गया।

(ख) अधिकांश रेलों की व्यवस्था पुरानी गारन्टीड कम्पनियों अथवा नई कम्पनियों को नई शर्तों पर देदी गई।

(ग) निश्चित तारीखों के बाद सभी समझौते भारत मन्त्री द्वारा समाप्त किए जा सकते थे।

किन्तु इन सब बातों से भारतीय जनता को कोई लाभ नहीं हुआ। अब भी तीसरे दर्जे के यात्रियों के साथ दुर्व्यवहार बढ़ता जा रहा था और रेल की दरों में इतनी बेइमानियां हो रही थीं कि साधारण व्यक्ति इस बोझ को उठाने में असमर्थ था। भारतीय व्यापार और उद्योग को बढ़ाने में— अधिक किराये की नीति के कारण रेलों ने कोई सहायता नहीं पहुंचाई। १९००में एक जहाजी सर्विस बम्बई और मद्रासके बीच में खुली जिसके फलस्वरुप रेलों का अधिकतर व्यापार सामुद्रिक मार्गों की तरफ चला गया। अस्तु इस प्रकार होने वाली आर्थिक हानि को रोकने के लिए बी. बी. एण्ड सी० आई० रेलवे को अधिक ऊंची किराये की दर लगाने की आज्ञा दी गई और इस प्रकार जहाजी कम्पनी को ठेस पहुंचाई गई। जनता को यह विश्वास था कि राज्य द्वारा संचालित रेलों में किफायत होगी, अधिक भारतीयों को रेलवे दफ्तरों में कार्य मिल सकेगा तथा भारतीय व्यापार और उद्योग को अधिक लाभ की सम्भावना होगी अस्तु लोगों ने कम्पनियों द्वारा संचालित रेलों को राज्य द्वारा संचालित किए जाने की मांग उठाई।

एकवर्थ कमेटी (Acworth Committee 1920)

इस सारी स्थिति की जाँच करने के लिए १६२० के नवम्बर मास में सर *विलियम एकवर्थ* के सभापतित्व में एक रेलवे कमेटी की स्थापना की गई। इस कमेटी को निम्न बातों पर विचार करके अपना मत देना था —(१) जो रेलें राज्य के स्वामित्व में हैं (क) यदि उनकी राज्य द्वारा सीधी व्यवस्था हो अथवा (ख) इंगलैंड स्थित अंग्रेज कम्पनियों द्वारा व्यवस्था हो अथवा (ग) भारत में स्थित उन कम्पनियों द्वारा व्यवस्था हो अथवा (घ) संघ रूप में उनकी व्यवस्था हो तो उनके सापेक्षिक शासन सम्बन्धी और आर्थिक लाभ क्या होंगे तथा इस बात पर निश्चित मत देना कि जब कम्पनियों और राज्य के बीच हुए समझौते समाप्त होंगे तो राज्य की नीति रेल निर्माण व्यवस्था और संचालन में क्या होगी ?

(२) रेलवे बोर्ड के विधान, उसके कार्य और स्थिति की जांच करना और भारत सरकार द्वारा रेलों पर नियंत्रित किये जाने वाले अधिकार की व्याख्या करना और भविष्य में रेलवे का कार्य सुचारू रूप से चलाने के लिए उचित सुझाव देना।

(३) भारतीय रेलों की अर्थ व्यवस्था की जांच करना और इस बात का पता लगाना कि निजी कम्पनियों द्वारा नई रेलवे लाइनें बनाया जाना कहां तक हितकर होगा ?

कमेटी के सब सदस्य इस बात पर सहमत थे कि निश्चित समय के पश्चात् जब पुराने समझौते समाप्त हो जावें तो वे पुनः जीवित न किये जावें और भारतीय रेलों की व्यवस्था इंग्लैंड में स्थापित कम्पनियों द्वारा न होकर भारत में ही स्थापित हुई कम्पनियों द्वारा की जाय। प्रबन्ध राज्य द्वारा हो या निजी कम्पनियों द्वारा इस प्रश्न पर मतभेद रहा। कुछ सदस्यों का कहना था कि रेलों का सीधा प्रबन्ध राज्य द्वारा ही हो और कुछ का मत था कि रेलों का प्रबन्ध निजी कम्पनियों द्वारा हो। किन्तु श्री एकवर्थ ने सभापति की हैसियत से अपना मत यही दिया कि रेलों का सीधा प्रबन्ध राज्य द्वारा ही किया जाना चाहिए। पिछले समय में अंग्रेजी कम्पनियों के प्रबन्ध से चाहे कितना ही लाभ हुआ हो किन्तु अब वर्तमान अवस्था को देखते हुए यह आवश्यक प्रतीत होता है कि ऐसा नहीं होना चाहिए क्योंकि इस पद्धति का कार्य संतोषजनक नहीं रहा है। इस बारे में सरकार की नीति चाहे कितनी ही बुद्धिमत्तापूर्ण क्यों न हो निजी कम्पनियों के डाइरेक्टरों की अदूरदर्शिता के कारण रेल प्रबन्ध में होने वाले दोषों का रोका जाना असम्भव ही था। इसके अतिरिक्त इस कमेटी ने रेलवे शासन सम्बन्धी व्यवस्था, अर्थ व्यवस्था तथा रेलवे बोर्ड के विधान और कार्य आदि के बारे में बड़े महत्वपूर्ण सुझाव दिये। एकवर्थ कमेटी ने इस बात पर विशेष जोर दिया कि रेल की वित्त व्यवस्था भारत सरकार की सामान्य वित्त

व्यवस्था से अलग हो। रेल भाड़ा नीति के विचार के लिए एक *रेलवे भाड़ा निर्णायक कमेटी* (Railway Rates Tribunal) की स्थापना भी की जाय तथा प्रांतीय और केन्द्रीय सलाहकार समितियों में जनता की आवाज का प्रतिनिधित्व किया जाय। इस समिति ने यह भी सिफारिश की कि वर्कशाप की उन्नति की जाय, दफ्तरों में और विभिन्न रेल विभागों में भारतीयों को अधिक स्थान दिया जाय और मुख्य रेलवे लाइनों द्वारा ही अपने क्षेत्र में ब्रांच लाइनों का निर्माण किया जाय। रोलिंग स्टाक की टूट फूट की व्यवस्था के लिए एक संचित कोष और घिसावट कोष भी खोला जाय।

भारत सरकार ने मोटे रूप से उपरोक्त बातों को स्वीकार कर लिया। रेलवे बोर्ड की पुनः व्यवस्था की गई। केन्द्रीय और स्थानीय सलाहकार समितियाँ खोली गईं। रेल-वित्त व्यवस्था को भारत सरकार की सामान्य वित्त-व्यवस्था से अलग कर दिया गया तथा भाड़ा आदि तय करने के लिये *भाड़ा सलाहकार समिति* (Rates Advisory Committee) स्थापित कर दी गई।

एकवर्थ कमेटी की अन्य सिफारिशों की जांच करने के लिए भारत सरकार ने अन्य समितियां नियत कीं। सन् १९२६ में *सर आर्थर लौस डिकीनसन* के सभापतित्व में एक कमेटी रेलवे के हिसाब किताब की जाँच करने तथा उसमें सुधार करने के लिए सुझाव देने को नियत की। इसी वर्ष एक अन्य कमेटी देशी राज्यों की रेलों के मैकेनिकल डिपार्टमैंट की जांच करने के लिए श्री *विसैंट रोवेन* के नेतृत्व में बिठाई गई। इन दोनों कमेटियों ने कई महत्वपूर्ण सुझाव दिए जिन्हें भारत सरकार ने अधिकांशतः स्वीकार कर लिया।

सन् १९२५ में केंद्रीय सलाहकार समिति के आदेशानुसार ब्रांच लाइनों सम्बन्धी नई नीति निर्धारित की गई। भारत सरकार ने उन रेल मार्गों को बनाने का विचार किया जो उत्पादक थे। अनुत्पादक रेल मार्गों का निर्माण जिनका बनाया जाना स्थानीय राज्यों द्वारा होता था, तभी केन्द्रीय सरकार द्वारा हाथ में लिया जाता था जब प्रांतीय सरकारें अपने वित्त में से हानि पूरी करने की गारंटी देती थीं। इस प्रकार १ जनवरी १९२५ और १ जुलाई १९२५ को भारत सरकार ने क्रमशः ईस्ट इण्डिया रेलवे और जी० आई० पी० रेलवे का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया। १९२६ में सरकार ने नकद रुपया चुकाकर देहली अम्बाला कालका रेलवे भी खरीद लीं। इस प्रकार अब देश की अधिकांश रेलों का सीधा प्रबन्ध राज्य के हाथ में ही आ गया। राज्य द्वारा प्रबन्ध होने के कारण अधिक भारतीयों को काम पर लगाया गया और *भारतीय कोठार विभाग* (Indian Stores Deptt) द्वारा ही अधिकांश माल खरीदा जाने लगा। रेल के डिब्बों में भी यात्रियों की सुविधा के लिए अधिक आरामदायक सीटें, ऊंचे प्लेटफार्म तथा स्टेशनों पर विश्रामगृह बनाये गए।

कई नये स्टेशनों का निर्माण किया गया तथा अधिक व्यापार वाले नगरों के बीच में दुहरी लाइनें भी डाली गईं। नदियों पर बड़े और मजबूत पुलों आदि का निर्माण किया गया। मद्रास और बम्बई के निकटवर्ती स्थानों पर बिजली द्वारा रेलें जाने लगीं। इस प्रकार १६३० तक रेलों का जो विस्तार हुआ वह इस प्रकार है :—

	१६२४–२५	१६२६–३०
रेलमार्ग (लम्बाई मीलों में)	३८,२७०	४१,७२४
लागत पूंजी (करोड़ रु० में)	७३३·३७	८५६·७५
कुल आय	११४·७५	११६·०८
खर्च	६६·३७	७५·४६
वास्तविक आय का लागत पूंजी में प्रतिशत	६·१६	४·७४

विश्व मंदी काल से द्वितीय महायुद्ध के आरंभ तक (१६३०—३६)

१६२६ में जो विश्व व्यापी मंदी का युग आरंभ हुआ उसका प्रभाव भारत पर भी पड़ा। १८६८ से १६२६—३० तक के समय में रेलों को बराबर लाभ होता रहा अस्तु इस काल को रेलों की आर्थिक सफलता का समय कहा जा सकता है किन्तु इस विश्व व्यापी व्यापारिक मंदी के कारण रेलों को आर्थिक हानि उठानी पड़ी क्योंकि देश के आयात और निर्यात व्यापार में काफी कमी हो गई थी अस्तु रेलों द्वारा होने वाली आय में भी कमी हो गई। रेल और सड़कों के बीच में प्रतिस्पर्द्धा भी आरंभ हो चुकी थी अस्तु रेलों को बराबर आर्थिक हानि होती रही। १६३०—३१ में सब मिलाकर ६,२० लाख रुपये की हानि हो चुकी थी।

रेलों की बिगड़ती हुई आर्थिक स्थिति को रोकने के लिए भारत सरकार ने १६३१ में एक कटौती समिति (Retrenchment Committee) बिठाई जो इस बात पर विचार करे कि किस प्रकार रेलों के कार्य में किफायत की जा सकती है। इस समिति ने केवल शासन संबंधी किफायत पर ध्यान दिया और ये सुझाव रखे :—

१. रेलवे बोर्ड के उच्चतम तनख्वाह वाले अफसरों की संख्या में कमी की जाय।

२. रेलवे भाड़ा सलाहकार समिति को समाप्त कर उसकी जगह एडहाक (Adhoc Committee) की स्थापना की जाय।

३. केंद्रीय प्रकाशन कार्यालय (Publicity Beauru) को समाप्त कर दिया जाय और इस का कार्य रेलवे बोर्ड को सौंपा जाय।

४. भारतीय रेलों के लंदन स्थिति दफ्तर में कार्यकर्ताओं की संख्या में कमी की जाय।

५. धीरे २ कार्यकर्ताओं के वेतन में ३½ से २०% तक कटौती की जाय।

पोप कमेटी (Pope Committee)

सरकार ने यथाशक्ति इन सिफारिशों को माना और इसके फलस्वरूप ३ करोड़ रुपयों की बचत हुई। उपरोक्त कमेटी ने केवल रेलवे-शासन संबंधी खर्चों की किफायत के बारे में सुझाव दिए थे किन्तु इसने लाइनों पर प्रतिदिन के होने वाले खर्चों के बारे में कोई ध्यान नहीं दिया अस्तु भारत सरकार ने १६३२ में श्री. पोप के सभापतित्व में एक कमेटी रेलवे लाइनों पर होने वाले प्रतिदिन के खर्चों में किस प्रकार कमी की जा सकती है इस बात पर विचार करके उचित सुझाव पेश करने के लिए बिठाई। पोप कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में निम्नलिखित सुझाव पेश किए :—

(१) खास २ रेलवे में 'जोब एनेलिसिस' (Job Analysis) के लिए संगठन कायम किए जायें जिनका कार्य रेलवे के प्रत्येक कार्य की इस निगाह से जांच करना था कि वे यह बता सकें कि कार्य क्षमता में सुधार के लिए और किफायत करने के लिए क्या करना चाहिए ?

(२) रेलों द्वारा अधिक से अधिक माल ढोकर ले जाने के लिए यह आवश्यक है कि देश के आयात और व्यापार का पूर्ण रूप से अध्ययन किया जाय।

(३) जहां मोटर की प्रतिद्वन्दिता कड़ी है वहां सस्ते इकहरे और सप्ताह तक के लिए वापसी टिकट जारी किए जाय, माल का भाड़ा कम किया जाय तथा पार्सल लेने-देने के लिए शहरों में ही रेलवे के पार्सल दफ्तर खोले जांय। तीर्थ स्थानों के लिए विशिष्ट रेलें चलाई जांय।

(४) एंजिन, बैठने की गाड़ियां, मशीनरी और प्लांट का पूरा २ उपयोग करने, बेकार डिब्बों को हटा देने, विभिन्न रेलों के साधनों का एकीकरण करने तथा बिना टिकट की यात्रा पर रोक लगाने और आमदनी बढ़ाने के बारे में भी उपयोग सुझाव दिए गए।

इन सिफारिशों को भारतीय रेलों ने पूरी तरह अमल में नहीं लिया। घाटे के समय घिसावट कोष से रुपया निकाल सकने की आज्ञा होने के कारण कार्य में किफायत और कार्यक्षमता का विचार बिल्कुल ही निरर्थक हो गया। जो कुछ भी खर्चे में कमी हो सकी वह केवल रेलवे के रोलिंग स्टाक, रेलों आदि की मरम्मत, नई खरीद के न करने से ही हो सकी थी।

वैजवुड कमेटी (Wedgewood Committee)

भारत सरकार ने अक्टूबर, १६३६ में एक और कमेटी श्री वैजवुड के सभापतित्व में राज्य के स्वामित्व वाली रेलों की स्थिति की जांच करने के लिए बिठाई। इस कमेटी को यह कार्य सौंपा गया कि वह रेलों की आय बढ़ाने, उसकी आर्थिक स्थिति को मजबूत बनाने और रेल–सड़क प्रतिस्पर्द्धा को दूर करने के बारे में उचित सिफारिशें दे।

इस कमेटी ने पोप कमेटी द्वारा प्रेषित की गई सिफारिशों को अमल में लाने के लिए बड़ा जोर दिया और कहा कि रेलवे में शासन-संबंधी किफायत लाने के लिए एक *केंद्रीय किफायत, अनुसंधान समिति* (Central Economy Research Committee) की स्थापना की जाय। रेलवे पर होने वाले खर्च की पूरी तरह जाँच की जाय और प्रत्येक लाइन पर होंने वाले खर्च के अनुपात में कार्यकताओं की संख्या में कमी की जाय। २) एंजीनियरिंग कार्यकर्त्ताओं में अंग्रेज लोगों की संख्या बढ़ाई जाय ताकि वे रालिंग स्टाक से अधिक काम ले सकें। (३) रेलों को समाचार पत्रों तथा व्यापारी समुदाय से अधिक संपर्क रखना चाहिए। इस कार्य के लिए एक प्रकाशन कार्यालय की स्थापना भी होनी चाहिए। (४) भारत सरकार को जो वार्षिक रकम सामान्य वित्त विभाग के लिए रेलवे द्वारा दी जाती है उसका दिया जाना बंद कर दें और घिसावट तथा रेलवे संचित कोष में वृद्धि करनी चाहिए। ५) मोटर से होने वाली प्रतिस्पर्द्धा का बस सर्विस चालू करके और रेलों की गति बढ़ाकर तथा अन्य उपायों से मुकाबला करना चाहिए।

यूरोपियन कार्यकर्त्ताओं की संख्या बढ़ाने और भारत सरकार को दी जाने वाली रकम रोकने सम्बन्धी सिफारिशों का देश में बहुत विरोध हुआ। अस्तु सरकार ने इन सिफारिशों को अस्वीकार कर दिया और इस बात का प्रयत्न होता रहा कि अधिक से अधिक भारतीयों को रेल–विभाग में जगह दी जाय।

इस काल में (१६३०–३६) में नए रेल–पथ का निर्माण बहुत ही कम हुआ केवल १३०० मील नई रेल और बनाई गई किन्तु १६३७ में ब्रह्मा के भारत से अलग होजाने से लगभग २००० मील के रेल मार्ग की भारत में कमी हो गई। इस प्रकार १६३६–४० में भारत में सम्पूर्ण रेल मार्ग की लम्बाई ४११,५६ मील थी जिसमें ८५२·५६ करोड़ रुपयों की पूंजी लगी थी। १६३०–३१ से १६३५–३६ तक रेलों को आर्थिक हानि उठानी पड़ी क्योंकि व्यापारिक मन्दी के कारण व्यापार से कुछ शिथिलता आगई थी और मोटर–रेल स्पर्धा भी बढ़ गई थी। इस सम्बन्ध में वैजवुड कमेटी ने यह अनुमान लगाया कि इस प्रतिस्पर्धा के कारण रेलों को लगभग ४½ करोड़ रुपये की हानि हुई है—३¾ करोड़ रुपये यात्रियों और ३/४ करोड़ रुपये माल

ले जाने में । चूंकि वास्तव में आय ब्याज चुकाने के के लिए भी पर्याप्त नहीं होती थी, अतः यह कमी घिसावट कोष और संचित कोष से धन निकालकर पूरी की जाने लगी।

द्वितीय महायुद्ध का समय (१९३९–४७)

युद्ध काल में रेलों के विस्तार में कोई प्रगति नहीं हुई किन्तु साथ २ ही रोलिंग स्टाक, डिब्बों, रेलों और इंजिनों की भी मरम्मत का कार्य काफी अंश तक रुक गया। रेल–निर्माण काल में यह समय सबसे अधिक अंधेरे का था। व्यापारिक मन्दी के समय हुई आर्थिक हानि ने इस काल में रेल मार्गों तथा रोलिंग स्टाक को उचित अवस्था में रखने तथा मरम्मत आदि के लिए होने वाले खर्चें में भी रुकावटें डालीं। युद्ध के कारण विदेशों से मरम्मत के लिये आने वाले आवश्यक सामान में भी कमी पड़ गई। यही नहीं रेलों के लिए इंजिन और अन्य आवश्यक पुर्जों का आयात भी असम्भव होगया। ६ सौ मील लम्बा रेल मार्ग उखाड़ दिया गया तथा देश की रेलों, इंजिनों और अन्य सामानों का मध्य पूर्वी देशों को युद्ध में सहायता देने के लिए उपयोग किया गया। विदेशों को इस प्रकार ४००० मील लम्बे रेल मार्ग ४०,००,००० स्लीपर, तथा ८% मीटर गाज के इंजिन और १५% मीटर गाज के डिब्बे यु; सहायता के लिए दिए गए। देश में यात्रा करने में कठिनाइयां पड़ने लगी। पैट्रोल तथा कोयले की कमी और रेलों का अभाव होने से मोटरें आदि यातायात के अन्य साधन भी पूर्ण रूप से काम नहीं दे सके। क्योंकि जो कुछ भी माल या सवारी गाड़ियां और मोटरें थी वे फौजें तथा कोयला और युद्ध का सामान देश की सीमा तक पहुंचाने के लिए व्यवहृत की जा रही थी। रेलों पर इस काल में इतना अधिक भार पड़ा कि पूंजीगत साधनों की भी टूट–फूट और घिसावट पूरी हुई। इसके अतिरिक्त बड़े २ रेल–कारखानों में अब युद्ध का सामान बनाया जाने लगा और इस प्रकार देश में रेलों को न केवल यात्रा ही बल्कि सामान ढोने के लिए के भी अभाव होगया। जब जापान युद्ध में शामिल होगया तो समुद्रतटीय आवागमन बहुत कम हो गया और वह सारा बोझ खास तौर से कोयले को लाने लेजाने का रेलों पर आ पड़ा इससे साधारण जनता के लिऐ उपलब्ध डिब्बों की कमी आ गई।

यात्रा करना तो और भी दुष्कर होगया। १९३९–४० में जहां रेलों द्वारा ५३ करोड़ मुसाफिरों ने यात्रा की वहां १९४४–४५ में यह संख्या ९३ करोड़ तक पहुंच गई। रेलों ने भरसक इस बात का प्रयत्न किया कि कम से कम लोग यात्रा करें, इस हेतु यात्रा सम्बन्धी जो सुविधायें पोप कमेटी के आदेशानुसार दी गई थीं वे भी बन्द कर दी गईं। मेले तथा तीर्थ स्थानों को जाने वाली विशिष्ट रेलों को रोक दिया गया। रेलों की संख्या में भी कमी कर दी गई अस्तु यात्रा में बड़ी कठिनाइयां उपस्थित हो

गई। बैठने के लिए जगह मिलना भी दुष्कर होगया। अधिकांश व्यक्ति पाँवदानों और डिब्बों की कतों या खिड़कियों पर बैठकर यात्रा करने लगे अस्तु रेल दुर्घटनायें भी अधिक होने लगी। मालगाड़ियां भी देशवासियों के उपभोग के लिए आवश्यक माल ढोने में असमर्थ ही रहीं। कारखानों को कच्चा सामान समय पर न मिलने के कारण कई दिनों तक बन्द रहना पड़ा। नीचे की तालिका में रेल द्वारा होने वाले यातायात की स्थिति बताई गई है:—(दस लाख टन में)

	१९३९–४०	१९४४–४५
यात्रियों की संख्या	५२६	९२६
यात्रा (मीलों में)	१८,५२२	३५,५६०
सामान ढोया गया (टनों में)	९२	१०२

१९४२ में भारत सरकार ने यातायात के साधनों में समन्वय करने के लिए *युद्ध यातायात बोर्ड* (War Transport Board) की स्थापना की जिसमें रेल विभाग को भी सम्मिलित किया गया। इस बोर्ड के सामने तीन प्रमुख समस्यायें थीं—(१) रेल द्वारा किस प्रकार अधिक से अधिक फौजें और युद्ध का सामान भेजा जा सकता है? (२) यातायात के अन्य साधनों को सुविधायें उपलब्ध करना और (३) उपरोक्त दोनों कार्यों के लिए एक नई व्यवस्था कायम करना अस्तु एक केन्द्रीय यातायात बोर्ड और प्रान्तीय यातायात बोर्डों की स्थापना की गई।

भारतीय रेलों पर विभाजन का प्रभाव

१५ अगस्त, १९४७ में भारत स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही देश दो भागों में बंट गया—पाकिस्तान के निर्माण स्वरूप उन रेलों के जो पाकिस्तानी प्रांतों में थी, भी टुकड़े किये गए। इस प्रकार पाकिस्तान को उत्तरी पश्चिमी रेल और पूर्वी बंगाल रेल तथा जोधपुर हैदराबाद रेल का अधिकांश भाग मिला और भारत में बम्बई बड़ौदा मध्य भारत रेलवे; ग्रेट इण्डिया पेनिनशुला रेलवे, बंगाल नागपुर रेलवे; मद्रास और दक्षिणी मरहठा रेलवे, अवध तिरहुत रेलवे, दक्षिण भारत रेलवे, बीकानेर रेलवे तथा हैदराबाद राज्य की रेलवे मिली। भारत के हिस्सों में रेल में लगी पूंजी के ६६७·४२ करोड़ और पाकिस्तान में १३६ करोड़ रुपये आये। इंजिनों, डिब्बों तथा अन्य रोलिंग स्टॉक का भी बंटवारा हुआ। इस प्रकार पाकिस्तान के हिस्से में अविभाजित भारत की समस्त रेल मार्ग का १७% मिला किन्तु इसमें अधिकांश ऐसी रेलें थीं जिनका फौजी महत्व ही अधिक है व्यापारिक बहुत कम। नीचे की तालिका में भारतीय रेलों पर विभाजन से होने वाला परिणाम बताया गया है:—

रेल मार्ग	*ब्राडगेज*	*मीटर गेज*	*नैरोगेज*	*योग*
१. बंगाल आसाम रेलवे	८६३·७६	२,६२४·१६	३७·१५	३,५५५·०७
भारत	३५१·८८	१,५७२·६४	१७·४०	१,९४१·९२

पाकिस्तान	५४१·८८	१,०५१·५२	१६·७५	१,६१३·१५
२. उत्तरी पश्चिमी रेलवे	६,३०५·६६	—	५९७·६१	६,९०३·५७
भारत	१,७४९·६६	—	१२७·९२	१,८७६·५८
पाकिस्तान	४,५५६·३०	...	४३९·६९	५,०२५·९९
३. जोधपुर-हैदराबाद रेलवे	—	१,१२७·६९	—	११२७·६९
भारत	—	८०६·९५	—	८०६·९५
पाकिस्तान	—	३१८·७४	—	३·८·७४
४. भारतीय रेलें	१५,६३९·४८	१४,९५६·६३	३,५६३·२८	३४१५७·३९

साम्प्रदायिक झगड़ों और पाकिस्तान के बन जाने से भारत और पाकिस्तान के बीच रेल कर्मचारियों का बहुत बड़े पैमाने पर परिवर्तन हुआ इससे रेलों की कार्यक्षमता में बड़ी अव्यवस्था फैली। भारत में स्थित अधिकांश मुस्लिम रेल-कर्मचारी जो ड्राइवर, खलासी तथा अथवा काम करते थे-सब पाकिस्तान चले गए और पाकिस्तान से हिन्दू कर्मचारी जो अधिकांशत: क्लर्क थे भारत में आ गए इससे रेलों की संख्या में कुछ काल तक कमी करनी पड़ी। मालगाड़ियों के ड्राइवरों की कमी से कोयला खानों से कारखानों तक पहुंचाया जाना मुश्किल हो गया। किन्तु इन सभी कठिनाइयों का जैसे तैसे मुकाबिला कर लिया गया। विभाजन का सबसे बुरा प्रभाव रेलों की आर्थिक स्थिति पर पड़ा। रेलों की आय घट गई और खर्च बढ़ गया। पहले ७½ महीने में ही (१५ अगस्त से ३१ मार्च, १९४८) रेलों को २·७४ करोड़ रुपये का घाटा रहा।

अध्याय १३

भारत में रेल निर्माण का कार्य-३

HISTORY OF RAILWAYS IN INDIA III

विभाजन के पश्चात (१९४७-१९५१)

द्वितीय महायुद्ध के समाप्त हो जाने के पश्चात् रेलवे कर्मचारियों ने इस बात पर जोर दिया कि उनके वेतन में वृद्धि की जाय, महंगाई का भत्ता बढ़ाया जाय तथा काम करने के घंटे और सवेतन छुट्टियाँ मिलने के नियम लागू किए जायं। अस्तु केन्द्रीय सरकार ने एक *केन्द्रीय वेतन आयाग* (Central Pay Commission) नियुक्त किया किन्तु इसकी सिफारिशों से रेल कर्मचारियों का संघ असंतुष्ट ही रहा। अतएव १९४६ के नवम्बर महीने में *रेलवे जांच समिति* (Railway Enquiry Committee) बिठाई गई जिसका उद्देश्य यह था :—

(१) रेलवे के सभी विभागों में खर्च में किफायत करके किस प्रकार रेलवे की आमदनी में वृद्धि की जा सकती है इस पर विचार कर अपने सुझाव देना।

(२) रेलवे विभागों में जो अतिरिक्त कर्मचारी हैं उनकी संख्या निश्चित करना और यह बताना कि उनको रेलवे की नौकरी में कहां काम पर लगाया जा सकता है?

विभाजन के फलस्वरूप भारत और पाकिस्तान में इंजिनों, डिब्बों तथा अन्य रोलिंग स्टाक का वितरण इस प्रकार हुआ :—

	इंजिन	*सवारी के डिब्बे*	*मालगाडी के डिब्बे*	*रेल मार्ग* (मीलों में)
भारत	७,२४८	२०,१६६	२,१०,७९९	३०,०१७·१५
पाकिस्तान	१,३३९	४,२८०	४०,२२१	६,९५७·८८
योग	८,५८७	२४,४४६	२,५१,०२०	३६,९७५·०३

इस समिति की स्थापना के पश्चात् ही विभाजन के फलस्वरूप देश में दंगे फसाद तथा अव्यवस्था हो गई अस्तु कुछ समय तक समिति के कार्य को बाधा मिली। किंतु फिर १९४८ के मार्च से नवम्बर तक इस समिति ने पं० हृदयनाथ

कुंजरु की अध्यक्षता में कार्य किया और अपने सुझावों की एक विस्तृत रिपोर्ट १९४९ में पेश की।

कमेटी ने विभिन्न रेलों की व्यवस्था संबंधी और टैकनिकल समस्याओं का पूर्ण रूप से अध्ययन किया और यह कमेटी इस निर्णय पर पहुंची कि मजदूरों की कार्य-क्षमता में ३३–४०% की कमी हो गई है। इसका मुख्य कारण मजदूरों में नौकरी से निकाल दिये जाने का डर – का अभाव, अयोग्य अफसरों का होना था कमेटी ने कहा कि, "यदि यह कहा जाय कि मजदूर दिन भर में जितना वेतन पाते हैं उतना भी काम नहीं करते तो कोई अत्युक्ति न होगी।" कमेटी ने 'जोब एनेलिसिस' के लिए भी जोरदार सिफारिश की और अफसरों तथा मजदूरों की कार्य क्षमता बढ़ाने के लिए भी कई उपयोगी सुझाव रखे। इस कमेटी ने इस बात पर अधिक जोर दिया कि मजदूरों को उनके कार्य में शिक्षा दी जाय जिससे वे अधिक कुशल बन सकें। रेलों में बिजली का अधिक प्रयोग किया जाये तथा कलकत्ता के निकटवर्ती स्थानों को बिजली द्वारा ही रेलें चलाई जांय यह भी कमेटी ने सुझाया। बहुत सी रेलों का प्रबन्ध एक में मिलाने (Regrouping) का प्रस्ताव कमेटी ने ५ साल के लिए स्थगित कर दिया। कमेटी ने एक शिफारिश यह भी की कि महंगाई के कारण रेलवे-कर्मचारियों को ग्रेन शाप (Grain Shop) द्वारा जो सस्ता अनाज आदि दिया जाता है। वह बंद कर दिया जाय और जहाँ कहीं भी ग्रेन–शाप हों वे बंद कर दी जायं और इस प्रकार होने वाली हानि से कर्मचारियों को नकद रुपया देकर बचाया जाय।

भारत सरकार ने इनमें से कई सुझावों को स्वीकार कर लिया किंतु ग्रेन–शाप बंद कर देने और बहुत सी रेलों का प्रबन्ध एक में मिलाने के प्रस्तावों को ठुकरा दिया।

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि विश्वव्यापी मंदी काल में हुई आर्थिक हानि तथा द्वितीय महायुद्ध में रेलों पर युद्ध आदि का बोझा बढ़ जाने से रोलिंग स्टाक तथा इंजन व डिब्बों और रेल की पटरियों आदि की मरम्मत का कार्य स्थगित ही रहा क्योंकि रेलवे के पास पूंजी की कमी थी। इस समय ८३३७ के लगभग इंजिन हैं जिनमें से १८% को शीघ्र मरम्मत की आवश्यकता है प्रत्येक इंजिन की औसत आयु ३० वर्ष और उसकी साधारण आर्थिक आयु ४० वर्ष की मानी जाती है। सरकार की नई पुर्नसंस्थापन नीति के अनुसार रेलवे के प्रकारों में कमी करके प्रत्येक इंजिन का कार्य काल २० वर्ष करने का विचार है।

इसी प्रकार सम्पूर्ण डिब्बों की संख्या २३ लाख के लगभग है जिनकी आयु यदि ४० वर्ष मान ली जाय तो प्रति वर्ष ५६०० डिब्बे उनकी जगह नए बनाने की आवश्यकता होगी। इस नीति के अनुसार आगामी ४ वर्षों में प्रति वर्ष १२,००० से १३,०००

डिब्बे तक पुरानों की जगह नए बनाये जांयगे। अभी तक बड़ी लाइन की रेलों के पुनसंस्थापन पर ही ध्यान दिया जा रहा था किन्तु अब छोटी लाइन की रेलों में भी सुधार किया जा रहा है। इस कार्य में सरकार को पर्याप्त धन की आवश्यकता है। इस हेतु १६४६ के अगस्त माह में भारत सरकार ने ३४० लाख डालर का ऋण विश्व बैंक से १५ वर्ष के लिए ४% ब्याज पर लिया। इस ऋण द्वारा ६५० रेलवे इंजिन खरीदे जांयगे। इनमें से अब तक ५०० इंजिन संयुक्त राज्य अमेरिका, इंगलैण्ड तथा कनाडा से खरीदे जा चुके हैं। शेष भी शीघ्र ही विदेशों से आने वाले हैं।

विभाजन के बाद से ही रेलवे यातायात में कई दोष घुस गए हैं। रेल के यात्रियों की संख्या युद्ध के पहले की अपेक्षा २½ हो गई जिससे रेलें इतनी बड़ी संख्या को ढोने में असमर्थ ही रहीं। अस्तु रेल-यात्रा में स्थानाभाव के कारण यात्रियों की कठिनाइयां बढ़ गईं। इस कठिनाई को दूर करने के लिए कई नई रेलें तथा *जनता एक्स प्रेस* (Janta Express) चालू की गई हैं जिनमें मुख्यतः तीसरे दर्जे के यात्री सफर करते हैं। उपलब्ध इंजिनों और मालगाड़ी के डिब्बों से अधिक से अधिक कार्य लिया जा रहा है तथा रेलों से उनकी आयोजित मात्रा में सामान ढोया जाने लगा है। युद्ध के समय जो माल ले जाने-लाने के बारे में प्राथमिकता पद्धति (Priority System) जारी की गई थी उसके अनुसार आवश्यक पदार्थों—भोज्य पदार्थ, लोहा और स्पात, वस्त्र तथा सिमेंट आदि को ले जाया जाना आरंभ हुआ किन्तु यह पद्धति अब १ अप्रल १६५० से हटाली गई है केवल रेलवे बोर्ड को प्राथमिकता की स्वकृति देने का अधिकार है पर यह अधिकार बहुत कम काम में लाया जाता है। रेलवे गाड़ियों की संख्या बढ़ा कर, तथा तीसरे दर्जे के मुसाफिरों के लिए जनता एक्सप्रेस चालू करके भीड़ को कम करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

रेलवे इंजिन विदेशों से तो मंगवाये ही जा रहे हैं किंतु भारत में भी अब एक कारखाना पश्चिमी बंगाल में चितरंजन में एंजिन बनाने के लिए १६४८ में खोला जा चुका है जिसने १६५० मे कार्यारंभ कर दिया है। इंगलैंड से मंगाये गए पुर्जों को भारत में जोड़कर पहला एंजिन १ नवम्बर १६५० में तैयार किया गया। १६४६ में एक पंचवर्षीय समझौता चितरंजन में एंजिन तैयार करने के लिए भारत सरकार ने इंगलैंड की लोकोमोटिव निर्माण कम्पनी से किया। यह कंपनी एंजिन तैयार करने के लिए टैकनीकल सहायता तथा कुशल इंजिनीयरों का सहयोग देगी और भारतीयों को इंगलैंड में टैकनिकल शिक्षा भी देगी। इसके बदले में भारत सरकार इस कंपनी से कम से कम ४० वर्षों के भीतर २०० एंजिन लेगी। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि १६५६ के अंत तक चितरंजन के कारखाने में १२०

भाप से चलने वाले एंजिन और ५० बायलर प्रति वर्ष तैयार हो सकेंगे। यदि परिस्थितियां अनुकूल रहीं तो पहला भारतीय एंजिन १६५४ तक बनकर तैयार हो जायगा। जैसा कि निम्न तालिका से ज्ञात होगा :—

वर्ष	*एंजिन जो बनाये जायंगे*	*पुर्जों का निर्माण प्रतिशत में*
१६५०	३	—
१६५१	३३	३०
१६५२	४५	७०
१६५३	६६	८०
१६५४	६०	१००

एक रेलवे वर्कशाप आसन सोल के निकट ओडल में बनाया जा रहा है जहां सवारी गाड़ियों के डिब्बे बनाये जायंगे।

विभाजन के फलस्वरूप पश्चिमी बंगाल और आसाम के बीच यातायात संबंध नष्ट प्रायः हो चुका था। भारत संघ की सीमा और आसाम के बीच में केवल १२ मील का टुकड़ा है। इसी तंग भाग में होकर आसाम और शेष भारत को मिलाने वाली रेलवे लाइन बनाई गई है। यह रेल मार्ग १४२ मील लंबा है। इस काल में भारतीय रेलों के विस्तार में ७५६० मील की वृद्धि हुई क्योंकि देशी राज्यों के भारत संघ में मिल जाने के कारण उनके रेल मार्ग भी केंद्रिय शासन के अंतर्गत आ गए और अब देश की सभी रेलें यातायात मंत्रालय के अधिकार में है।

रेलों का प्रादेशिक संगठन (Regrouping of Railways)

बहुत समय से भारतीय रेलों की व्यवस्था अलग २ कम्पनियों के हाथ में रही है। अस्तु इस व्यवस्था की बजाय देश की समस्त रेलों को प्रादेशिक आधार पर बांटने का प्रस्ताव रखा गया। यह प्रस्ताव पहले ही से चला आ रहा था कि विभाजन के फलस्वरूप जब उत्तरी पश्चिमी रेल और आसाम-बंगाल रेल का विभाजन हुआ तो यह आवश्यकता और भी जोर दार रूप में अनुभव की जाने लगी कि रेलों का सामूहीकरण किया जाय। अस्तु, जून १६५० में एक उपसमिति इस प्रश्न पर विचार करने के लिए नियुक्त की गई। इस कमेटी की सिफारिशें स्वीकार करने के पहले प्रान्तीय सरकारों, मजदूर संघों, पूंजीपतियों तथा व्यापारिक संस्थाओं और उद्योगपतियों की राय भी जान ली गई। सबने कमेटी की सिफारिश का समर्थन किया। सामूहिकरण की नीति अपनाने में रेलवे (authorities) ने निम्न प्रश्नों पर विचार किया—

(१) जहां तक संभव हो प्रत्येक रेलवे एक संबद्ध क्षेत्र में होकर जावे।

(२) प्रत्येक जोन (Zone) इतना बड़ा हो कि इसमें रेलवे के हैडक्वार्टर्स स्थित किये जा सकें जिनमें उच्च और कुशाग्र बुद्धि अफसरों का जमाव हो ताकि रेलवे के संचालन और कार्यक्षमता, तथा मरम्मत के लिए उपयुक्त कारखाने और अनुसंधान की सुविधायें सरलता से मिल सकें।

(३) वर्तमान शासन पद्धति में नये सामूहीकरण के कारण कम से कम परिवर्तन हो जिससे रेलों की कार्य क्षमता पर हानिकर प्रभाव न पड़ सके।

जोन बनाते समय एक तो इस बात का ध्यान रखा जाय कि प्रत्येक जोन में आर्थिक एक रूपता हो और दूसरा यह कि ट्रेफिक की वास्तविक दशा क्या है?

सम्पूर्ण भारत के ३४,००० मील लम्बे रेलमार्गों को निम्न ६ प्रादेशिक भागों में बांटा जाने का प्रस्ताव किया गया—

(१) *उत्तरी रेलवे* (Northern Railway)—जिसकी लम्बाई ५,२५६ मील होगी—में पूर्वी पंजाब रेलवे, ई० आई० रेलवे के पश्चिम में लखनऊ से कानपुर और देहली से सहारनपुर तक के टुकड़े तथा बम्बई, बड़ौदा, मध्य भारत रेलवे की छोटी लाइन का आगरे से कानपुर तक का टुकड़ा और अवध तिरहुत रेलवे (छपरा के पश्चिम का भाग) का समावेश होगा।

(२) *पश्चिमी रेलवे* (Western Railway)—जिसकी लम्बाई ५५५२ मील होगी—के अन्तर्गत बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे (कानपुर आगरा के टुकड़े को छोड़कर) तथा सौराष्ट्र, राजस्थान, जयपुर और कच्छ की रेलें होंगी।

(३) *मध्यवर्ती रेलवे* (Central Railway)—जिसकी लम्बाई ५३१५ मील होगी—में बी० बी० एण्ड सी० आई० की बड़ी लाइन तथा जी० आई० पी० रेलवे का अधिकांश भाग और धौलपुर तथा सिंधिया रेलों का समावेश होगा।

(४) *दक्षिणी रेलवे* (Southern Railway)—की लम्बाई ५७२४ मील होगी इसके अन्तर्गत दक्षिणी भारत रेलवे, मैसूर रेलवे और मद्रास तथा दक्षिण मरहठा रेलवे का अधिकांश भाग होगा।

(५) *पूर्वी रेलवे*—(Eastern Railway)—में जी० आई० पी० मद्रास तथा दक्षिणी मरहठा रेलवे का शेष भाग तथा बंगाल नागपुर रेलों का समावेश होगा। इसकी लम्बाई ५०१६ मील होगी।

(६) *उत्तरी—पूर्वी रेलवे* (North—Eastern Railway)—की लम्बाई ६३३६ मील होगी जिसमें ई० आई० आर० अवध तिरहुत रेलवे का शेष भाग, तथा आसाम रेल-जोड़—का समावेश होगा।

रेलों के सामूहीकरण से होने वाले परिणाम के बारे में दो विभिन्न मत हैं। एक विचारधारा के अनुसार ऐसा विश्वास किया जाता है कि सामूहीकरण से देश को कोई लाभ नहीं होगा। सरकार ने जो योजना बनाई है वर्तमान अवस्था में पूर्ण

रूप से लागू नहीं की जा सकती और न उसका लागू किया जाना ही वांछनीय है। प्रत्येक जोन के अन्तर्गत ५५०० मील लम्बे रेल पथ का शासन करना न केवल कार्य क्षमता में ही कमी लायेगा बल्कि खर्चे में भी वृद्धि करने वाला होगा। अस्तु रेलों की वर्तमान आर्थिक अवस्था और व्यवस्था प्रणाली को ध्यान में रखकर यही उपयुक्त ज्ञान होता है कि रेलों का सामूहीकरण खंड रूप से ही किया जाए। छोटी २ रेलों को बड़ी रेलों में मिला दिया जाय किन्तु बड़ी रेलों का प्रबन्ध स्वतन्त्र रूप से ही किया जाय।

प्रत्येक जोन में नए दफ्तर (Headquarters), कारखाने (workshops), और कर्मचारियों के बंगले आदि तथा अनुसंधान और सांख्यिक संस्थाओं के निर्माण में काफी खर्चा होगा। पिछली दोनो संस्थाओं का कार्य तो बहुत ही खर्चीला हो जायगा तथा काम भी बंट जायगा। इसके अतिरिक्त जब रेलों का सामूहीकरण हो जायगा तो एक ही जोन के विभिन्न स्थानों को रेलवे कर्मचारियों का स्थानान्तर होने लगेगा जिन स्थानों व परिस्थितियों से वे सर्वथा अपरिचित होंगे अस्तु इनसे उनकी रहन-सहन सम्बन्धी असुविधायें बढ़ जायगीं। इसका प्रत्यक्ष प्रभाव उनकी कार्य क्षमता पर पड़ेगा। रेलवे सफलतापूर्वक तभी कार्य कर सकतीं हैं जब कर्मचारियों में अपने काम के प्रति रुचि और अपने विभाग के प्रति सहयोग की भावना हो। अस्तु सामूहीकरण इस विचार से लाभदायक सिद्ध न होगा, प्रबन्ध के मामले में स्थानीय स्वतन्त्रता कम हो जाने से भी कार्य क्षमता पर असर पड़ेगा।

इसके अतिरिक्त रेलवे स्टोर, रोलिंग स्टाक तथा अन्य आवश्यक सामान खरीदने में भी रेलवे को कोई विशेष किफायत नहीं होगी क्योंकि अभी भी सारा सामान यातायात मंत्रालय के मातहत में ही खरीदा जाता है।

कुंजरू कमेटी ने इस बात पर जोर दिया था कि सामूहीकरण करने से कार्य क्षमता में हानि होगी अस्तु जब तक देश की अवस्था पूर्णतः स्वस्थ्य नहीं हो जाती तथा रेलवे कर्मचारियों को नौकरी सम्बन्धी व्यवस्था एक सी नहीं की जाती और रेलों की वर्तमान कार्यपद्धति में क्षमता नहीं बढ़ाई जाती, तब तक सामूहीकरण की इस योजना को कार्यन्वित नहीं किया जाना ही अच्छा होगा। इससे इस योजना को ५ वर्षों के लिए स्थगित करने की सिफारिश की।

दूसरी विचारधारा के अनुसार यदि रेलों का सामूहीकरण किया गया तो देश को बहुत लाभ होने की संभावनाएं हैं। सामूहीकरण का मुख्य उद्देश्य रेलों की व्यवस्था सम्बन्धी अवस्थाओं में प्रगति करना, उनका आर्थिक नियन्त्रण रखना और कारखानों आदि का वैज्ञानीकरण करना है। अस्तु रेलों के सामूहीकरण से कार्य-क्षमता में वृद्धि, खर्चे में किफायत और शासन प्रबन्ध में सुधार होने की पूरी आशा है। चूंकि अधिकांश बड़ी रेलों को एक दूसरे में मिला दिया जायगा अस्तु उनके

दिन प्रति दिन होने वाले खर्चे में भी बहुत किफायत हो जायगी। दो या अधिक रेलों के एक ही जोन में हो जाने से ऊंचे दर्जे का शासन प्रबन्ध का एकीकरण हो जायगा। इससे खर्चा कम होगा। अलग २ रेलों के बीच में जो आज बहुत सा पत्र व्यवहार होता है और आपस में जो कई तरह की समस्याएं सुलझानी होती हैं वह सब कार्य कम होकर सुलभ हो जायगा। इस प्रणाली से काम भी जल्दी होगा, कर्मचारियों की कम आवश्यकता होगी और खर्चे में आशातीत कमी होगी। व्यापारी व्यवसायी वर्ग का भी अलग २ रेल कम्पनियों की अपेक्षा एक बड़े प्रदेश में एक बड़े अधिकारी वर्ग से ही काम पड़ेगा। इससे उनको सुविधा होगी और कार्य भी शीघ्र निबट जायगा। एंजिन, डिब्बों तथा अन्य रोलिंग स्टाक को बड़े प्रदेश में समूहीकरण होने से उनका अधिक उत्तम उपयोग हो सकेगा। इस प्रकार व्यवहार में आने के लिए कम पूंजीगत खर्चों की आवश्यकता होगी। कारखानों का वैशानीकरण हो जाने के फलस्वरूप कम खर्चे पर अधिक उत्पादन हो सकेगा। इसी प्रकार आवश्यक सामान के खरीदने में भी केन्द्रियकरण हो जाने से काफी किफायत होने की गुंजाइश है।

समूहीकरण से होने वाली हानियों की जो आपत्तियां ऊपर उठाई गई हैं वे ठोस आधार पर आधारित नहीं की गई मालूम होती है। यह याद रखने योग्य बात है कि ज़ोन बनाते समय चालू आन्तरिक अवस्था को ज्यों-की-त्यों रखनेका विचार है। इस समय अधिकांश रेलोंकी व्यवस्था विभागीय आधार (Departmental basis) पर है—केवल पूर्वी पंजाब रेलवे और पूर्वी भारत रेलवे को छोड़कर न कि प्रादेशिक आधार पर (divisional basis)। इस व्यवस्था को फिलहाल जैसी है वैसी ही रहने देना होगा। इससे कर्मचारीगणों का इधर से उधर परिवर्तन भी अधिक नहीं होगा और नई व्यवस्था का काम भी आसानी से शुरु हो जायगा।

नई ज़ोन पद्धति का आरम्भ (Introductoin of Zone System)

उपयुक्त सभी बातों पर उचित रूप से विचार करके अप्रेल १९५१ में *दक्षिण रेलवे जोन* (Southeren Railway Zone) निर्माण किया गया। नवम्बर १९५१ में *मध्य रेलवे* और *पश्चिमी रेलवे* जोन बनाये गए। इस प्रकार ये तीनों जोन उपरोक्त समूहीकरण की ५०% योजना को कार्यान्वित करते हैं।

(१) *दक्षिणी रेलवे जोन* में मद्रास और दक्षिणी मरहट्टा रेलवे, दक्षिणी भारत रेलवे और मैसूर राज्य रेलवे का समावेश किया गया है। यह रेलवे २००,००० वर्ग मील भूमि के काम आती है। इसके अन्तर्गत १७५५ मील चौड़ी लाइन (Broad Gauge) और ४२४४ मील छोटी तथा तंग लाइन है। इस प्रकार इस की संपूर्ण लम्बाई ५९९९ मील है। विभागीय आधार तो चालू रहेगा किन्तु केन्द्रिय करण

को कम करने के लिए सारे जोन को काम की दृष्टि से तीन सहायक प्रदेशों में बांटा गया है—इस विभाग में डिस्ट्रिक्ट (विभाग के आधार पर जो कम से कम क्षेत्र तय किया गया है) अफसर, सहायक प्रादेशिक अफसर, विभागीय अध्यक्ष और जनरल मैनेजर का क्रम रहेगा। इनके दफ्तर क्रमशः त्रिचनापली, मद्रास और मैसूर में रहेंगे।

(२) *मध्यवर्ती रेलवे जोन* (Central Railway Zone)—के अन्तर्गत जी० आई० पी० रेलवे, निजाम स्टेट रेलवे, सिंधिया स्टेट रेलवे और धौलपुर राज्य की रेलें हैं। इस रेलवे की सम्पूर्ण लम्बाई ५,४०५ मील है जिसमें ४,०९७ मील बड़ी लाइन और ७४८ मील छोटी लाइन और ५६४ मील तंग लाइनों की रेलें हैं। इसके द्वारा २१०,००० वर्गमील क्षेत्र को लाभ पहुंचा है। इस रेलवे ज़ोन में जी० आई० पी० रेलवे की व्यवस्था को ही मान्य किया गया है। छोटी २ रेलों को अर्द्ध-प्रादेशिक आधार पर इस प्रकार मिलाया गया है कि अधिक से अधिक लाभ हो सके।

(३) *पश्चिमी रेलवे जोन* (Western Railway Zone) में बम्बई, बड़ौदा और मध्य भारत रेलवे की छोटी और बड़ी लाइनें, राजस्थान रेलवे, जयपुर स्टेट रेलवे और सौराष्ट्र की रेलों को सम्मिलित किया गया है। इसकी संयुक्त लम्बाई ५,९७३ मील है जिसमें १२६६ मील टुकड़ा बड़ी लाइन का, ३९१४ मील छोटी लाइन और ७९३ मील तङ्ग लाइन का है। इसके द्वारा १५०,००० वर्गमील भूमि को लाभ पहुंचा है। इस ज़ोन के मुख्य बन्दरगाह बम्बई, कंडला तथा सौराष्ट्र के अन्य बन्दरगाह हैं। बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे और सौराष्ट्र रेलों की व्यवस्था विभागीय आधार पर ही रखी गई है। सम्पूर्ण जोन तीन भागों में बांटा गया है—बड़ी लाइन का दफ्तर बम्बई, छोटी लाइन का अजमेर और तंग लाइन का सौराष्ट्र में रखा गया है।

अन्य रेलवे जोन भी शीघ्र ही बनाये जाने वाले हैं।

रेलवे स्टोर्स जांच समिति (Railway Stores Enquiry Committee)

रेलवे को प्रतिवर्ष अपने पूंजीगत सामानों और दैनिक व्यवहार में आने वाली वस्तु को बहुत बड़े परिमाण में खरीदना पड़ता है। यह सामान रेलवे बोर्ड, व्यक्तिगत रेलों और सरकार के उद्योग तथा पूर्ति विभाग द्वारा खरीदा जाता है किन्तु इस पद्धति से न तो सामान समय पर ही उपलब्ध होता है और न किफायत हो सकती है। इसके अतिरिक्त सामान भी निम्न श्रेणी का होता है। अस्तु स्टोर्स खरीदने की वर्तमान व्यवस्था बड़ी असंतोषजनक रही है। इसमें आमूल परिवर्तन करना आवश्यक समझकर भारत सरकार ने एक कमेटी १९५० में श्री ए० डी० श्राफ के सभापतित्व में नियुक्त की। इस कमेटी को यह कार्य सौंपा गया कि वह वर्तमान व्यवस्था की जांच

करे और भविष्य में स्टोर्स आदि खरीदने के लिये किस पद्धति का पालन किया जाय, किस संस्था द्वारा माल खरीदा जाय, माल की आवश्यकता कैसे आंकी जाय और माल को लाने के लिए किन उपायों का अवलम्बन किया जाय, घिसे और व्यर्थ के अतिरिक्त सामान को किस प्रकार निकाला जाय, तथा देशी उत्पादन को किन उपायों द्वारा बढ़ाया जाय आदि समस्याओं पर अपनी राय पेश करें।

कमेटी ने सारी स्थिति पर विचार कर अप्रेल १९५१ में एक रिपोर्ट प्रस्तुत की। कमेटी अपनी रिपोर्ट में इस निर्णय पर पहुंची कि स्टोर्स खरीदने की वर्तमान व्यवस्था जिसमें रेलवे के अलावा भारत सरकार के दूसरे मन्त्रालय भी रेलवे स्टोर्स खरीदते हैं, असंतोष जनक है। स्टोर्स प्राप्त करने के तरीके भी बड़े ही असुविधा-जनक हैं जिसके कारण कुछ विशेष प्रकार के स्टोर्स शीघ्र ही बिगड़ और खराब हो जाते हैं जिससे उन्हें कम कीमत पर बेचना जरूरी होजाता है और रेलवे को अनावश्यक आर्थिक हानि उठानी पड़ती है। रेलवे व्यवस्था और कारखानों के अविचल रूप से उत्पादन बढ़ाने के लिये जिस सामान की अत्यन्त आवश्यकता अनुभव हो उसकी खरीद रेलवे पर ही छोड़ी जाय। अन्य आवश्यकता के सामान सरकार के अन्य विभाग खरीदें।

रेलवे स्टोर्स की उपयुक्त व्यवस्था करने के लिये रेलवे बोर्ड के आधीन एक *केन्द्रिय स्टोर्स सङ्गठन* (Central Stores Organisation) कायम करने और सामान के उच्च स्तर (standardisation) की ओर ध्यान देने की कमेटी ने सिफारिश की। वैज्ञानिक खोज की अधिक अच्छी सुविधा पर भी कमेटी ने जोर दिया। कमेटी की सिफारिशों को सरकार के रेलवे मन्त्रालय ने स्वीकार कर लिया है और उनके अनुसार कार्यवाही करने का प्रयत्न आरम्भ होगया है। मजदूरों के हितों की ओर अधिक ध्यान दिया जा रहा है यद्यपि मजदूरों की मांगे संतुष्ट नहीं हो सकीं हैं और जब-तब संघर्ष का वातावरण उत्पन्न होता रहता है। रेल दुर्घटनाओं को कम करने का भी प्रयत्न किया गया है। दो फ्रांसीसी विशेषज्ञों को भारत में ही इंजिन बनाने और रेल मार्गों में विस्तार करने के लिए आवश्यक जांच कर रिपोर्ट तैयार करने को आमन्त्रित किया गया है। उनकी रिपोर्ट सरकार के विचाराधीन है। तीसरे दर्जे के मुसाफिरों को अधिक सुविधा की व्यवस्था करने के लिए भी उपाय किये जा रहे हैं। तीसरे दर्जे के डिब्बों में बिजली के पंखों तथा स्टेशन पर ठंडे पानी, विश्रामालय, और प्लेटफार्म पर छाया करने के प्रयत्न किए गए हैं। डिब्बों में बैठने की अच्छी सुविधा, सफाई का अच्छा प्रबन्ध, टिकट बांटने की अच्छी सुविधा आदि बातों पर ध्यान दिया जाने लगा है। पर इस सम्बन्ध में रेलवे अधिकारियों को अधिक समझ बूझ से काम लेने की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए तीसरे दर्जे के मुसाफिरों को शीत भंडारों (Refrigerator) के ठन्डे पानी और मुसाफिर घरों में

बिजली आदि के पंखों की उतनी आवश्यकता नहीं जितनी कि डिब्बों में बैठने के लिए गुंजाइश बढ़ाने, बैठने की दृष्टि से उनको अधिक सुविधाजनक बनाने तथा डिब्बों में चलने फिरने के लिये पर्याप्त जगह होने और सामान रखने की अधिक अच्छी व्यवस्था की आवश्यकता हैं। तीसरे दर्जे के किराये में कमी करना भी अत्यन्त आवश्यक है।

पंच वर्षीय योजना और रेलें (Five year Plan and Railway)

भारत सरकार द्वारा नियुक्त योजना आयोग (Planning Commission) ने जो पांच वर्षीय योजना प्रकाशित की है उसमें आने वाले ५ सालों में रेल मार्ग के विस्तार का कोई प्रश्न विचारणीय नहीं है क्योंकि द्वितीय महायुद्ध और उसके बाद के समय में अधिक बोझा और यात्रियों को ढोने के कारण रोलिंग स्टाक, डिब्बों तथा एंजिन आदि में जो मरम्मत आदि की आवश्यकता महसूस की जा रही थी (और जो पूंजी के अभाव में अब तक स्थगित होती रही है) उसी को इस योजना ने प्राथमिकता दी है। इन पांचों वर्षों में रेलों की वर्तमान असंतोषजनक स्थिति को सुधारने तथा दीर्घकाल से बिना मरम्मत और टूट फूट सुधारने को रोलिंग स्टाक पड़ा था, उसे सुधारने का प्रस्ताव किया गया है ताकि जहां तक उनकी कार्यक्षमता का प्रश्न है वे युद्ध के पहले जैसी स्थिति में लाई जा सकें। इस आयोग ने इस बात पर राय प्रकट की है कि यदि सवारी गाड़ी के डिब्बों की वर्तमान संख्या दुगनी भी कर दी जाय तो भी मुसाफिरों को ले जाने की समस्या हल नहीं होगी। पहले पांच वर्षों में २०० करोड़ रुपया रेलो की मरम्मत, तथा अन्य आवश्यक खर्चों पर व्यय किया जायगा। योजना के द्वितीय भाग में कुछ आवश्यक रेल मार्गों के विस्तार के लिए १०० करोड़ रुपये का इन्तजाम किया गया है। इस प्रकार १६५५-५६ तक देश में रेलों के विस्तार की कोई गुंजाइश नहीं रही है।

१ अप्रेल, सन् १६५१ को भारतीय रेलों के विस्तार संबंधी कुछ आंकड़े इस प्रकार हैं :—

रेलें	*लम्बाई (मीलों में)*	*लागत पूंजी (करोड़ रुपयों में)*
भारतीय या राज्यकीय रेलें जिनका प्रबन्ध सीधा सरकार द्वारा होता है या जो विभागीय आधार पर प्रबंधित होती हैं	३२,८०६	७८१·८३
२. ब्रांच लाइनें जिनका प्रबन्ध कम्पनियों या मुख्य रेलों द्वारा किया जाता है	५६३	३·६६

३. ऐसी कम्पनी लाइनें जिनको किसी प्रकार की सहायता नहीं मिलती	३००	२·६७
४. डिस्ट्रिक्ट बोर्डों द्वारा दी गई आर्थिक सहायता पाने वाली रेलें	२५३	१·७६
५. अन्य रेलें	६७	२२·८६
योग	३४,०२२	८१२·८७

आय के अनुसार भारतीय रेलों को तीन भागों में बांटा गया है:—

(१) *प्रथम श्रेणी* (First Class) की रेलें वे हैं जिनकी वार्षिक कुल आय ५० लाख या उससे ऊपर रुपयों की होती है। ऐसी रेलों की लम्बाई ३०,५०० मील मानी गई है।

(२) *द्वितीय श्रेणी* (Class Second) के अन्तर्गत वे रेल मार्ग आते हैं जिनकी वार्षिक आय १० लाख से ५० लाख रुपये तक होती है। इनकी लंबाई २,५०० मील कूंती गई है।

(३) *तृतीय श्रेणी* (Third Class) की रेलें वे हैं जिनकी आय १० लाख रुपये सालाना से भी कम है। इनकी लम्बाई केवल १,१०० मील है।

उपरोक्त वर्णन से ज्ञात होगा कि भारत में केवल, ३४,०२२ मील लम्बा रेल-पथ है। समस्त देश के विस्तार, क्षेत्रफल और जनसंख्या को देखते हुए यह लम्बाई बिल्कुल ही अपर्याप्त है। अन्य देशों की तुलना में तो यह विस्तार नगण्य सा ही है जैसा कि नीचे दी गई तालिका से ज्ञात होगा :—

देश	*रेल मार्ग (मीलों में)*	*प्रति १०० वर्ग मीलों पीछे रेलों का विस्तार*	*प्रति १००,००० व्यक्तियों पीछे रेलों का विस्तार (मीलों में)*
सं० रा० अमेरिका	२,५०,०००	७·५	२२४
इंगलैंड	२३,७००	२०·०	४६
कनाडा	४२,२००	१·२	४६५
अर्जेनटाइना	२३,५००	२·१	१७५
फ्रांस	२६,८००	१२·३	६६
जर्मनी	३६,०००	२०	५६
रूस	४८,५००	१·५	२६
चीन		०·३	१·३

आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड	११,१००	१.५	
भारत संघ	३४,०२२	२.८	१.०७

रेलों से लाभ

(१) रेलवे लाइनों से एक बड़ा लाभ यह हुआ कि देश में पड़ने वाले दुर्भिक्षों की भयंकरता बहुत कम हो गई। भारत में जो दुर्भिक्षकाल में असंख्य मनुष्यों तथा पशुओं की मृत्यु हो जाती थी वह बन्द हो गई। अब रेलवे लाइनों के बन जाने से खाद्यान्न का अकाल नहीं रहता वरन् द्रव्य का अकाल भर होता है। रेलों द्वारा खाद्य पदार्थ एक स्थान से दूसर स्थान पर सरलतापूर्वक भेजे जा सकते हैं। १६४३ में जो बंगाल में दुर्भिक्ष पड़ा था वह एक अपवाद था।

(२) रेलों के खुल जाने से भारत के किसान का सम्बन्ध संसार के बाजार से हो गया है। भारत में रेलों का विस्तार हो जाने से खेती का स्वरूप ही बदल गया है आज भारत के गांवों में खेती का धन्धा गांव की ही आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नहीं किया जाता। जिन प्रदेशों में रेलों का विस्तार नहीं हुआ है वहाँ खेती स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अब भी की जाती है, वरन् व्यापारिक खेती बहुत बढ़ गई हैं। इसका मतलब यह है कि किसान अब स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नहीं वरन् सुदूर बाजारों के लिए खेती की पैदावार करता है। अब वह जूट, गन्ना, कपास तिलहन इत्यादि की खूब पैदावार करता है।

(३) भारत जैसे विशाल देश को एक बनाने में रेलों का बहुत हाथ रहा है। भिन्न-भिन्न प्रदेशों के रहने वालों के एक दूसरे से मिलन के कारण देश में राष्ट्रीयता की भावना का उदय हुआ है साथ ही शासन की दृष्टि से भी रेलों द्वारा देश में शान्ति बनाये रखने में सहायता मिली है। रेलों द्वारा आने जाने की सुविधा होने के कारण छूआ-छूत तथा सामाजिक रूढ़ियां भी कम हुई हैं। रेलों में यात्रा करने पर आदमियों का कट्टरपन नहीं चल सकता और क्रमशः वे उन रूढ़ियों को छोड़ते जाते हैं।

(४) यातायात के साधनों का विकास होने से मजदूरों की गतिशीलता बढ़ी है। जिन प्रदेशों में जनसंख्या बहुत कम थी वहां घने आबाद प्रदेशों से आकर लोग बस गए हैं और उनकी सहायता से वहां की पैदावार बढ़ गई। आसाम तथा पूर्वी पंजाब की नहर—उपनिवेश उसके मुख्य उदाहरण हैं। मुख्य औद्योगिक केन्द्रों में कई प्रदेशों से आये हुए मजदूर काम करते हुए पाये जाते हैं यह भी रेलवे के कारण ही सम्भव हो सका है।

(५) रेलों के कारण देश में बहुत से धन्धे आरम्भ हुए और आज भी उनके कारण ही वे पनप रहे हैं बड़े २ कारखाने तब तक स्थापित हो नहीं हो सकते थे जब तक अत्यधिक राशि में कच्चा माल, मशीने इत्यादि लाने और तैयार माल को दूर २ बाजारों में भेजने की सुविधा रेलो द्वारा प्राप्त न हो जावे। कोयले, लोहे, स्टील तथा अन्य खनिज धन्धे और लकड़ी का धन्धा बहुत कुछ रेलों की मांग पर ही निर्भर है। यही नहीं रेलवे एक बहुत बड़ा धन्धा है। रेलवे लाखो की संख्या में मजदूरों को काम देती है। रेलवे वर्कशापों में बहुत बड़ी संख्या में मजदूर काम करते हैं। यही नहीं भारत में रेलवे के कारण ईंटे बनाने, इंजिनियरिंग तथा मिस्त्रीगीरी का कारबार आरम्भ हुआ। तेजी से रेलों द्वारा वस्तुएं एक स्थान से दूसरे स्थान भेजी जा सकने के कारण देश के व्यापार में बहुत वृद्धि हुई। आज देश विदेशों की वस्तुएं कोने २ में पहुंचती हैं। दूध, घी, फल, सब्जी, अंडे, मछली जैसे नष्ट होने वाले पदार्थ भी आज बड़े २ नगरों में दूर २ से पहुंचते हैं जो पहले सम्भव नहीं था।

रेलों द्वारा होने वाली हानियां

रेलों से केवल लाभ ही नहीं हानियां भी हुई हैं। रेलों की सुविधा होने के कारण व्यापारी ऐसे पदार्थों को भी देश से बाहर भी भेज देते हैं जिनकी देश को बहुत आवश्यकता होती है। रेलो में विदेशी माल को देश के कोने २ में पहुंचाकर देश के कुटीर अथवा गृह-उद्योग धन्धों को नष्ट कर दिया। इसका फल यह हुआ कि जो असंख्य कारीगर (जुलाहे, लुहार, तेली इत्यादि) गृह-उद्योग-धन्धों में लगे हुए थे, बेकार हो गये और उन्हें खेती में लगना पड़ा। इसका एक बुरा परिणाम यह हुआ कि खेती पर जरूरत से ज्यादा लोग निर्भर हो गए।

(२) रेलों ने पुराने नगरों तथा औद्योगिक केन्द्रों को महत्वहीन कर दिया और नये केन्द्रों को उत्पन्न कर दिया। उससे एक हानि यह हुई कि देश का पुराना आर्थिक संगठन नष्ट हो गया किन्तु नया संतुलित आर्थिक संगठन अच्छे प्रकार से स्थापित नहीं हुआ। रेलों ने जिन व्यापारिक केन्द्रों का निर्माण किया वे विदेशी माल की बेचने की मण्डियां मात्र थीं।

(३) जिस समय रेलवे लाइनों को बनाया गया उस समय देश के प्राकृतिक बहाव की ओर ध्यान नहीं दिया, इसका परिणाम यह हुआ कि रेलवे लाइनो ने बहुत से स्थानों पर प्राकृतिक बहाव को रोक दिया जिससे देश में मलेरिया का प्रकोप बढ़ गया।

(४) रेलवे लाइनें आरम्भ में विदेशी कम्पनियों के हाथ में थीं, इस कारण उनकी सदैव यह नीति रहती थी कि देश में विदेशों से पक्का माल आ सके और कच्चा माल विदेशों को भेजा जा सके। देश के उद्योग धन्धों को उन्होंने कभी भी

प्रोत्साहन नहीं दिया। अधिकतर उनकी नीति देश के उद्योग धन्धों के हितों के विरुद्ध रही।

(५) रेलों से एक हानि यह हुई कि विदेशों से आने वाली बीमारियां भी देश के कोने २ में फैल गईं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रेलों से देश को हानियां भी बहुत हुई हैं किन्तु लाभों की ओर दृष्टि डालने से उनकी उपयोगिता स्पष्ट जान पड़ती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि रेलें देश की अत्यन्त अमूल्य सम्पत्ति हैं।

अध्याय १४

रेलवे वित्त व्यवस्था

. RAILWAY FINANCE

रेलों के विकास काल के आरंभ से ही रेलों की वित्त-व्यवस्था भारत सरकार की वित्त-व्यवस्था में ही सम्मिलित थी। १६२० में जो एकवर्थ (Ackworth) कमेटी नियुक्त की गई थी उसने रेलवे सुधार संबंधी कई सुझावों के साथ २ यह भी सिफारिश की थी, कि रेलवे का बजट भारत सरकार के साधारण बजट से पृथक कर दिया जाय। इसके लिए इस कमेटी का कहना था कि रेलवे एक व्यापारिक कारबार है, व्यापारिक दृष्टि से ही उसका आर्थिक प्रबन्ध होना उचित है। जिस वर्ष अधिक लाभ हो उस वर्ष रक्षित कोष बढ़ना चाहिए और जिन वर्षों में लाभ न हो उन वर्षों में रक्षित कोष का का उपयोग होना चाहिए। जब रेलवे बजट भारत सरकार के साधारण बजट में सम्मिलित था तो उस समय रेलवे का लाभ तो राज्य के अन्य कार्यों पर व्यय हो जाता था और जब सरकारी बजट में घाटा होता था तो रेलवे को भी आवश्यक कार्यों के लिए रुपया नहीं मिलता था, चाहे रेलवे में लाभ ही क्यों न हुआ हो। इसके अतिरिक्त एक कठिनाई और भी थी कि वर्ष के बजट में जो रुपया किसी कार्य के लिए रखा गया है उसको किसी न किसी तरह व्यय करना ही पड़ता था, अन्यथा वर्ष की समाप्ति पर वह रुपया भी समाप्त हो जाता था। इसका परिणाम यह होता था कि बहुत रुपया व्यर्थ ही व्यय होता था। एकवर्थ कमेटी ने राय दी कि रेलवे बजट साधारण बजट से पृथक् कर दिया जाय और रेलवे को एक व्यापारिक संस्था के रूप में चलाना चाहिए।

साधारण वित्त से रेलवे वित्त व्यवस्था का पृथीकरण

रेलवे द्वारा सरकार को आय अधिक होती थी। यदि किसी वर्ष रेलवे की आय अधिक हो गई तो साधारण बजट की स्थिति बहुत अच्छी हो जाती थी और जिस वर्ष रेलवे में आय कम हो गई तो साधारण बजट में भारी घाटा हो जाता था। रेलवे की आय वर्षा पर निर्भर थी। यदि वर्षा अच्छी होती तो माल और यात्री अधिक चलते और यदि वर्षा कम होती तो रेलवे की आय में कमी हो जाती। इसका परिणाम यह होता था कि साधारण बजट भी अनिश्चित हो जाता था, अतएव कमेटी

की यह राय थी कि दोनों बजटों को पृथक् कर दिया जाय, जिससे रेलवे अपने कारबार को व्यापारिक ढंग से सफलता पूर्वक चला सके। इस बात की जांच के लिए दोनो केंद्रीय व्यवस्थापिका सभाओं द्वारा एक उपसमिति नियुक्त की गई। इस समिति ने यह निर्णय दिया कि एकाएक रेल-बजट साधारण बजट से अलग करना कठिन है। हां, रेलों की उन्नति के लिए ५ वर्ष के भीतर १५० करोड़ रुपया का देना निश्चय हुआ। व्यवस्थापिका सभा ने उपसमिति की राय मान ली। इसके साथ रेलवे बजट के साधारण बजट से पृथक्करण का सिद्धान्त भी स्वीकार कर लिया गया। इस हेतु २० सितम्बर १९२४ को भारत-सरकार व भारतीय धारा सभा ने इस संबंध में एक प्रस्ताव पास किया जिसकी मुख्य धारायें यह थीं:—

(१) भारत सरकार की सामान्य वित्त व्यवस्था से रेलवे वित्त व्यवस्था अलग की जायगी और प्रति वर्ष रेलवे बजट से भारत सरकार को एक निश्चित रकम मिला करेगी।

(२) यह निश्चित रकम कम्पनियों अथवा देशी राज्यों द्वारा लगाई हुई पूंजी को छोड़ कर व्यापारिक रेलवे में लगी हुई बाकी सब पूंजी पर १ प्रतिशत और इसके अतिरिक्त भारत-सरकार को मिलने वाली उक्त निश्चित रकम काटने के बाद जो वास्तविक लाभ बचे उसका १।५ भाग के बराबर होगी। भारत सरकार को रेलवे से मिलने वाली यह निश्चित रकम रेलवे की वास्तविक रकम पर पहली देनदारी मानी गई थी। यदि किसी वर्ष रेलवे आय उपर्युक्त १% चुकाने के लिये काफी न हो तो अगले वर्षों की आय में से यह रकम सबसे पहले चुकाई जाय और उसके बाद ही लाभ का वितरण किया जाय। सामरिक महत्व की रेलों में लगी हुई पूंजी पर ब्याज और उनमें होने वाली हानि भारत सरकार को मिलने वाली निश्चित रकम में से कम करली जायगी और बाकी की रकम भारत सरकार को दी जायगी।

(३) भारत सरकार को दी जाने वाली निश्चित रकम चुकाने के बाद जो रकम बच जावे वह रेलवे के रक्षित कोष में जमा हो। यदि यह रकम किसी वर्ष ३ करोड़ रुपये से अधिक हो तो ३ करोड़ से ज्यादा रकम का २।३ रेलवे के रक्षित कोष को और शेष १।३ भारत सरकार को दी जाय।

(४) रेलवे के रक्षित कोष का उपयोग इन मदों पर किया जायगा (अ) भारत सरकार को दी जाने वाली वार्षिक रकम चुकाने के लिये, (ब) घिसावट की चढ़ी हुई रकम चुकाने के लिए, पूंजी को कम करने या बेबाक (writing off) करने में तथा (स) रेलों की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए, जिससे जनता को अधिकाधिक सुविधायें दी जासकें और किराये में कमी की जासके।

(४) रेलवे को भारत सरकार द्वारा निश्चित शर्तों के अनुसार किसी खर्च के लिए उस वर्ष की आमदनी में गुंजाइश न होने पर अस्थायी कर्ज लेने का अधि-

कार भी दिया गया। यह कर्ज पूंजी या रक्षित कोष से लिया जा सकता है और आगामी वर्षों की आय में से चुकाया जा सकता है।

घिसावट और रक्षित कोष (Reserves)

इस प्रस्ताव में केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों की रेलों के लिए 'स्टैंडिंग फाईनेंस कमेटी' (Standing Finance Committee) बनाने का निर्णय भी किया गया था। यह बात भी तय की गई कि साधारण बजट पेश होने के पूर्व ही रेलवे बजट व्यवस्थापिका सभा के सम्मुख विचार-विनिमय पेश किया जाय। इसके अतिरिक्त *घिसावट कोष* (Depreciation Fund) की स्थापना की गई जिसमें प्रति वर्ष रेलवे आय से कुछ रकम जमा की जाती थी। इस कोष का आयोग रेलों की हालत सुधारने तथा घिसावट आदि की व्यवस्था करने में होता था। इससे सबसे बड़ा लाभ तो यह हुआ कि किसी पूंजीगत सामान आदि को निश्चित वर्षों की अवधि के बाद (जब वह काम में आने लायक नहीं रहता था) सरलता से ही घिसावट कोष से रकम प्राप्त कर बदला जा सकता था। दूसरा लाभ यह हुआ कि अब रेलवे बिना वित्त विभाग के हस्तक्षेप के कई वर्षों के आधार पर अपनी योजना बना सकता है क्योंकि आर्थिक वर्ष के समाप्त होने पर रकम डूब जाने की आशंका नहीं रही। नीचे की तालिका में घिसावट कोष की प्रगति बतलाई गई है:—

(लाख रुपयों में)

वर्ष	*जमा की गई पूंजी*	*निकाली गई पूंजी*	*बचत*
१९२४–२५	१,०३५	७,२६	३,०६
१९२५–२६	१,०६७	७,६८	२,६६
१९२६–२७	१,०८६	८,०५	२,८४
१९२७–२८	१,१३८	१,०९६	४२
१९२८–२९	१,२००	९,६०	२,४०
१९२९–३०	१,२५६	११,७६	८५

घिसावट कोष के निर्माण से रेलवे को बड़ा लाभ हुआ। उनकी आर्थिक अवस्था सुधर गई तथा जिन वर्षों में आय अधिक होती उन वर्षों में घिसावट कोष में जमा रकम बढ़ जाती और घाटे के वर्षों में, इसका उपयोग घाटा पूरा करने के उपयोग में लेली जाती है। प्रो० तिवाड़ी के शब्दों में, "प्रथम महायुद्ध के पश्चात के काल में साधारण बजट से रेलवे बजट के पृथकीकरण होजाने से रेलवे के आर्थिक जीवन में नवीन युग का आरम्भ हुआ। इस परिवर्तन का मूल उद्देश्य रेलों की स्थिति सुदृढ़ बनाना था किन्तु इसका महत्व सरकार की इस शर्त से—कि प्रति वर्ष रेलवे को अपनी आय में से एक निश्चित रकम भारत सरकार के साधारण बजट को देनी

होगी—कुछ कम होगया ।" नीचे की तालिका में रेलवे के रक्षित कोष की प्रगति बतलाई गई है ।

रेलवे का रक्षित कोष

वर्ष	रेलों द्वारा भारत सरकार का देन	शेष रकम जो जमा की गई	कुल लाभ
		(लाख रुपयों में)	
१६२४–२५	६,७८	६,३८	१३,१६
१६२५–२६	५,४६	३,७६	६,२८
१६२६–२७	६,०१	१,४८	७,४६
१६२७–२८	६,२८	४,५७	१०,८५
१६२८–२६	५,२३	२,५८	७,८१
१६२६–३०	६,१२	२,०८	४,०४
योग	३५,६१	१६,७२	५२,६३

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व तक रेलों की आर्थिक स्थिति

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक भारतीय रेलें हानि का कारण ही रहीं । धीरे २ माल और मुसाफिरों का आना जाना बढ़ने लगा । पंजाब में नहरों के बनने से खेती की उन्नति हुई और उससे भी रेलवे की आय बढ़ी । सन् १६०० में पहली बार रेलवे से सरकार को थोड़ा सा लाभ हुआ ।१६०८-०६के साल को छोड़कर १६२०-२१ तक रेलों को बराबर लाभ होता रहा, किन्तु १६२१–२२ में फिर हानि उठानी पड़ी। १६१६–२० से १६२६–३० तक का समय कुल मिलाकर भारतीय रेलों के लिए आर्थिक सफलता का समय रहा । कुल आय १६१६–२० में ८६·१५ करोड़ रुपये से १६२६–३० में ११६·०८ करोड़ रुपये तक पहुंच गई । इसी प्रकार चालू खर्च भी ५०·६४ करोड़ रुपये से ७५·४६ करोड़ रुपया हो गया । असल बचत ३८·४६ करोड़ रुपया हो गई । 'ऑपरेटिंग रेशो' (Operating Ratio) ६३% के लगभग था किंतु घिसावट को निकाल देने पर वह ५२% ही आता था । लगी हुई पूंजी पर असल आय ५·३% प्रतिवर्ष हुई । १६२४ से १६३० के बीच में सरकार को औसतन ५·६८ करोड़ रुपया साल मिला और रक्षित कोष में २·७६ करोड़ रुपया साल जमा हुआ ।

१६२८–२६ में रेलवे के रक्षित कोष में १८·८ करोड़ रुपये की वृद्धि हुई । १६२६–३० में इस कोष से २·०८ करोड़ रुपये निकाले गए ताकि साधारण वित्त की कमी पूरी की जा सके । १६३०-३१ में इस कोष से१०·६३करोड़ रुपये और १६३१-३२

में ४·६५ करोड़ रुपये निकाले गए। इस प्रकार तीन वर्षों में इस कोष से कुल मिलाकर १७·६६ करोड़ रुपया निकाला गया। घिसावट कोष का उपयोग रेलों की दशा सुधारने में किया गया किंतु रिट्रैंचमैंट कमेटी की सिफारिशों के अनुसार रेलवे इस कोष का रुपया अपना घाटा पूरा करने में भी कर सकती थी।

१९२९–३० से ही रेलों की अवनति का युग आरंभ हुआ और कई कारणों से उसकी आर्थिक दशा बिगड़ती गई। एक ओर तो व्यापार की विश्वव्यापी मंदी इसी समय आरंभ हुई जो १९३३–३४ तक चलती रही, जिससे चीजों का भाव गिर गया। गेहूं का निर्यात घट गया। दूसरे विदेशी वस्त्र बहिष्कार आंदोलन के कारण वस्त्र का आयात घट गया। फिर देश में सविनय अवज्ञा आन्दोलन का प्रभाव भी रेलों पर पड़ा। व्यापार और उद्योग धंधे इसी काल में मन्दे रहे, अतएव रेलों की आय घट गई। इसी काल में कई बार नदियों में बाढ़ें आई और भीषण भूकम्प भी हुए। इन कारणों के अतिरिक्त एक कारण और भी है जिससे रेलों की आय घट गई। वह है सड़कों की प्रतियोगिता। अनुमान लगाया गया है कि प्रति वर्ष लगभग ४½ करोड़ रुपये की हानि सड़कों की प्रतियोगिता के कारण हुई। हमारे देश तथा अन्य देशों की कर नीति का भी हमारी रेलों की आय पर हानिकर प्रभाव पड़ा है। पहले ७ वर्षों में औसत आय घट कर ९५·०६ करोड़ रुपया वार्षिक हो गई। *ओपरेटिंग रेशियो* घिसावट सहित ७०% हो गया और पूंजी पर मिलने वाली असल आय ३·३% रह गई। १९३१–३२ से १९३६–३७ के बीच में रक्षित कोष में जो रुपया था वह ब्याज चुकाने और १९३०–३१ का, भारत सरकार की वार्षिक रकम चुकाने में खत्म हो गया और इसके अतिरिक्त घिसावट फंड से ३१ करोड़ रुपया ब्याज चुकाने के लिए उधार लिया गया तथा भारत सरकार को दी जाने वाली वार्षिक रकम का १९३१–३२ से चुकाना स्थगित कर दिया गया। यह चढ़ी हुई रकम १९३१–३२ से १९३६–३७ तक ३०·७४ और १९४० तक ३६·०३ करोड़ हो गई थी। जैसा कि नीचे दी गई तालिका से ज्ञात होगा:—

(लाख रुपयों में)

वर्ष	कुल रकम जो चुकानी थी	रकम जो चुकाई गई	चढ़ी हुई रकम
१९२९–३०	६,१२	६,१२	—
१९३०–३१	५,७४	५,७४	—
१९३१–३२	५,३६	×	५,३६
१९३२–३३	५,२३	×	५,२३
१९३३–३४	५,२२	×	५,२२

१६३४–३५	५,१५	×	५,१५
१६३५–३६	५,२१	×	५,२१
१६३६–३७	४,६१	×	४,६१
१६३७–३८	४,६८	२,७६	१,६२
१६३८–३६	४,२३	१,३७	२,८६
१६३६–४०	४,५०	४,३३	१७
		योग	३६,०३

रेलवे की इस बिगड़ती हुई आर्थिक स्थिति को धारना आवश्यक था। इन वर्षों में तीन कमेटियां नियुक्त की गईं—रेलवे कटौती उपसमिति (१६३१), पोप कमेटी (१६३४–३५) और वैजवुड कमेटी (१६३७)। इन कमेटियों ने भी खर्च कम करने संबंधी कई सिफारिशें की और जहां तक संभव हुआ उनको स्वीकार भी किया गया। अन्त में १६३६–३७ में आर्थिक स्थिति ने पलटा खाया और रेलवे को ब्याज आदि चुकाने के बाद १·२१ करोड़ रुपये का लाभ हुआ। आगामी तीन वर्षों में (१६३७–३८ से १६३६–४० तक) मिलाकर रेलों को ८·४६ करोड़ रुपये का लाभ हुआ। यह सारी रकम साधारण वित्त विभाग को चुकाई गई। १६४० में कुल आय ११११·५ करोड़ रुपया हो गई जब कि १६२६–३० में यह ११६·०३ करोड़ रुपये थी। घिसावट कोष से लिया हुआ ऋण, जो नियमानुसार रेलवे के लाभ में से सबसे पहले चुकाना चाहिए था, कुछ वर्षों (१६४३ तक) तक के लिए नहीं चुकाने का प्रस्ताव स्वीकृत किया गया।

द्वितीय महायुद्ध और उसके पश्चात (Second world war & After)

१६३६ में द्वितीय महायुद्ध आरम्भ होगया। इस काल में रेलों की आमदनी बढ़ने लगी। जहां १६३६–४० में रेलों की आय १११·५ करोड़ रुपया थी वहां १६४४–४५ में यह बढ़ कर २३२·६२ करोड़ रुपये तक पहुंच गई। असल आय भी १६३६–४० में ३२ करोड़ रुपये से १६४३–४४ में ७६ करोड़ होगई और इसी वर्ष में ५०·८४ करोड़ रुपये की बचत रही। १६४३ तक घिसावट कोष का ऋण और भारत सरकार का बकाया वार्षिक देनदारी का रुपया भी चुका दिया गया।

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात के वर्षों में रेलों की आर्थिक स्थिति फिर बिगड़ी। युद्ध का प्रभाव तो था ही पर देश के विभाजन से भी कई समस्यायें उठ खड़ी हुईं। शांति व्यवस्था के भंग होने से भी बहुत हानि हुई। इसका प्रभाव आर्थिक स्थिति पर पड़ना स्वाभाविक ही था। अस्तु रेलवे की आय कम होगई और खर्चा बढ़ गया। देश के विभाजन के बाद १५ अगस्त १६४७ से ३१ मार्च १६४८ तक रेलवे बजट

में २·७४ करोड़ रुपये का घाटा रहा जिसकी पूर्ति रक्षित कोष से करनी पड़ी। नीचे की तालिका में १९३८–३९ से १९४७–४८ तक की रेलवे की आर्थिक स्थिति बताई गई है:—

(करोड़ रुपयों में)

वर्ष	कुल आय	रेलों का खर्चा	असल आय	बचत या घाटा (ब्याज चुकाने पर)	साधारण वित्त विभाग को दिया गया
१९३८–३९	९९·८५	६९·१८	३०·६७	१·३७	१·३७
१९३९–४०	१०३·३७	६९·९३	३३·४४	४·३३	४·३३
१९४०–४१	११८·४३	७१·२९	४७·१४	१८·४६	१२·१६
१९४१–४२	१३६·०७	७९·५५	५३·५१	२८·०८	२०·१७
१९४२–४३	१५७·३३	८४·२६	७३·१०	४५·०७	२०·१३
१९४३–४४	११८·२१	१०८·८४	७९·३७	५०·८४	३७·६४
१९४४–४५	२१९·६२	१४२·२३	७७·३४	४९·८९	३२·००
१९४५–४६	२२९·८८	१६४·५०	६५·३८	३८·२०	३२·००
१९४६–४७	२०६·७४	१७१·७०	३५·०४	८·५२	५·४०
१९४७–४८	१०२·७७	९२·२३	१०·५४	–२·७४	——

निम्न श्रेणी के यात्रियों को अधिक सुविधायें देने के निमित्त १९४६–४७ में एक सुधारक कोष (Betterment Fund) १५ करोड़ रुपये की पूंजी से (१२ करोड़ रेलवे के रक्षित कोष और ३ करोड़ १९४५–४७ के वर्ष की बचत से) स्थापित किया गया।

रेलों के वित्त विभाग के पृथीकरण का नया प्रस्ताव (१९४९)

मार्च १९४३ में, रेलवे की आर्थिक स्थिति में परिवर्तन हो जाने से, उक्त वर्णित प्रस्ताव के उस हिस्से में जिसका सम्बन्ध भारत सरकार को दी जाने वाली वार्षिक रकम और रेलवे के लाभ में उसकेहिस्से से था यह संशोधन कर दिया गया कि संशोधन प्रस्ताव स्वीकार होने तक हर साल की स्थिति देखकर इस रकम का निश्चय किया जायगा। यह संशोधित प्रस्ताव (Convention) दिसम्बर, १९४९ में भारतीय संसद द्वारा स्वीकार कर लिया गया। इस प्रस्ताव की मुख्य धारायें यह थीं :—

(१) रेलवे वित्त-व्यवस्था भारत सरकार की सामान्य वित्त व्यवस्था से अलग बनी रहे। साधारण करदाता को भारतीय रेलों का एक मात्र हिस्सेदार माना जाये

और रेलवे में लगी पूंजी पर ४% लाभ (Dividend) मिलने की उसे गारंटी दी जाय।

(२) घिसावट कोष में प्रतिवर्ष कम से कम १५ करोड़ रुपया जमा किया जाय।

(३) रेलवे रक्षित कोष का नाम बदलकर *माल रक्षित कोष* (Revenue Reserve Fund) कर दिया जाय और इस फंड का उपयोग (क) भारत सरकार को निश्चित रकम चुकाने और (ख) रेलवे बजट के घाटे को पूरा करने में किया जाय।

(४) एक प्रगति कोष (Development Fund) इस उद्देश्य से खोला जाय कि (क) उससे मुसाफिरों को अधिक सुविधायें मिल सकें, (ख) रेलवे मजदूरों के हितकारी कार्य किये जा सकें और (ग) उन रेलों का निर्माण किया जा सके जिनको आवश्यकता हैं किन्तु जो निर्माण के समय लाभप्रद प्रतीत न हों। सुधारक फंड की जो रकम शेष हो वह इस नए कोष के साथ इस शर्त पर मिला दी जाय कि आगामी ५ वर्षों तक तीन करोड़ रुपये प्रतिवर्ष के हिसाब से मुसाफिरों की सुख-सुविधाओं पर खर्च किये जायेंगे।

(५) कौन सा खर्च पूंजी से हुआ (Capital Expenditure) और कौन सा चालू आय से हुआ (Revenue Expenditure) माना जाय इसके नियमों में भी परिवर्तन किए गए हैं। पुराने सामान की जगह नए सामान की भर्ती (replacement) सुधार सहित बढ़ी हुई कीमतों को मानकर पूरा खर्चा घिसावट कोष में से होना चाहिए। साधारण सुधार और नए काम २५,००० तक के खर्चे के मामूली आय में से होने चाहिए। लाभ नहीं देने वाली रेलों पर उनकी कार्यक्षमता बढ़ाने सम्बन्धी खर्च जो ३ लाख रुपये से अधिक के न हों साधारण आय से और ३ लाख से जितना अधिक व्यय हो वह रेलवे प्रगति कोष से होना चाहिए। जो नई लाइने बनाना आवश्यक हैं पर जो लाभदायक नहीं है उनके निर्माण का खर्च हो सके वहां तक रेलवे प्रगति कोष से ही किया जाना चाहिए सामरिक महत्व की रेलों पर (जिनसे लाभ नहीं मिलता) जो खर्च हो वह पूंजीगत खर्च माना जाना चाहिए पर इस पूंजी पर कोई लाभांश नहीं दिया जायगा।

(६) ऋण खाता (Loan A/c) और ब्लौक खाता (Block A/c) को अलग कर दिया जाय। ऋण खाता रेलवे में लगी पूंजी का रहे और ब्लौक खाता सम्पत्ति (Assets) हैं उनका रहे, चाहे वे रेलों की आय में से खरीदे जाय और चाहे ऋण से।

यह संशोधित प्रस्ताव ५ वर्षों तक प्रभाव में रहेगा जिस अवधि के पश्चात् संसद इस प्रश्न पर पुनः विचार करेगी।

इस समय भारत में रेलवे सम्बन्धी तीन कोष हैं (१) घिसावट कोष (Depreciation Fund), (२) माल रक्षित कोष (Revenue Reserve Fund) और प्रगति या सुधार कोष (Development Fund)। इन तीनों कोषों की आर्थिक स्थिति इस प्रकार है :—

कोष	१९४९-५०	१९५०-५१	१९५१-५२
१. घिसावट कोष			
प्रारंभिक बचत	१०१·५७	१०९·०१	११९·३७
वर्ष के अंत की बचत	१०९·०१	११९·३७	११४·५४
२. माल रक्षित कोष			
प्रारंभिक बचत	६·८१	६·८२	१२·७९
वर्ष के अंत की बचत	६·८२	१२·७९	२५·२३
३. सुधार कोष			
प्रारंभिक बचत	१३·३२	१३·८०	१८·७८
वर्ष के अंत की बचत	१३·८०	१३·७८	२१·११

१९५१-५२ के आरंभ में रेलवे के पास १५० करोड़ की बचत थी। इससे ज्ञात होता है कि रेलों की आर्थिक स्थिति १९४८-४९ से ही बराबर सुधरती रही है १९४८-४९ में रेलों को २० करोड़ रुपये की बचत हुई इसमें से ७·३४ करोड़ साधारण वित्त विभाग को, ८४ लाख रुपये सुधार कोष, तथा शेष घिसावट कोष को दिया गया। १९४९-५० में रेलों को २३६ करोड़ रुपयों की आय हुई जिसमें से १९५ करोड़ रुपया खर्च का निकालकर २३ करोड़ रुपया ब्याज चुकाने, ७ करोड़ सरकार को देने और ४ करोड़ घिसावट कोष में दिए जायेंगे। १९५०-५१ में रेलों को कुल आय २६३·४ करोड़ रुपयों की और कुल खर्च २१०·५ करोड़ रुपया हुआ। १९५१-५२ के बजट में रेलों द्वारा होने वाली आय का ५५·३ करोड़ रुपया बचत होने का अनुमान लगाया गया है जिसमें से ३३·४ करोड़ रुपया सरकार को, ११·९ करोड़ रुपया माल रक्षित कोष को और १०·० करोड़ सुधार कोष में जमा किया जायगा।

अगले पृष्ठ की तालिका में रेलों की आर्थिक स्थिति बताई गई है :—

रेलों के बजट (करोड़ रुपयों में)

मद	१६३०-३१	१६३८-३६	१६४५-४६	१६४८-४६	१६४६-५०	१६५०-५१ (संशोधित)	१६५१-५२ (बजट)
कुल आय	१००	६६·६	२२५·७	२१३	२३६	२६३	२८०
खर्चा	७२·५	६६·२	१६४·५	१७३	१६५	२१०	२१७
वास्तविक आय	२७·५	३०·६	६५·४	४२	३७	४७	—
ब्याज चुकाया गया	३२·७	२६·७	२७·२	२२	२३	—	—
सरकार को दिया	५·७	१·३	३२·०	७·३४	७	३३	३३
बचत	५·२	१·३	३८·२	२०	१५	१४	२२
माल रक्षित कोष	१०·६	—	६·२	—	—	४	१२
घिसावट कोष	—	—	—	११८०	८	—	—
सुधार कोष	—	—		·६	—	१०	१०

अध्याय १५

रेलों का शासन-प्रबन्ध

RAILWAY ADMINISTRATION

भारतीय रेलों के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह रहा है कि रेलों का स्वामित्व राज्य के पास रहे या व्यक्तिगत कम्पनियों के पास और उनका प्रबन्ध भी व्यक्तिगत कम्पनियों पर ही छोड़ा जाये या स्वयं राज्य अपने हाथ में लेले। इस सम्बन्ध में भारत सरकार की नीति स्पष्ट नहीं थी। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में यह प्रश्न फिर से उठा। जहां तक स्वामित्व का प्रश्न था उन्नीसवीं शताब्दी के अस्सी से ही यह तय हो चुका था कि रेलवे लाइनों का स्वामित्व राज्य के पास रहेगा। अब रेल मार्गों के निर्माण में अंग्रेज लोग पूंजी लगाने को तैयार नहीं थे। नई गारंटी व्यवस्था के अन्तर्गत जो रेलवे कम्पनियां बनी थीं उनके साथ यह शर्त थी कि कम्पनियों द्वारा निर्मित रेल मार्ग राज्य की सम्पत्ति मानी जायगी। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त होते २ ईस्ट इण्डियन, जी० आई० पी०, ईस्टर्न बंगाल रेलवे, अवध रुहेल खण्ड तथा सिन्ध पंजाब आदि सब रेलवे राज्य की सम्पत्ति बन गई थीं। पर जहां तक प्रबन्ध का प्रश्न था कोई निश्चित नीति तय नहीं की गई थी। १८७० में जब यह बहस उठी तो भारत मन्त्री ने यही निर्णय दिया कि सामान्य नीति कम्पनी द्वारा प्रबंध की होनी चाहिए और केवल उपवाद के रूप में जब कि व्यक्तिगत कम्पनी किसी रेलवे लाइन का प्रबन्ध करना लाभदायक न समझे तो राज्य प्रबन्ध करे। इसका परिणाम यह हुआ कि आर्थिक दृष्टि से जो रेलवे लाइनें सफल थीं—ई० आई० रेलवे, जी० आई० पी० उनका प्रबन्ध तो कम्पनियों के पास ही रहा किन्तु ई० बी० रेलवे, अवध रुहेलखण्ड, नार्थ–वेस्टर्न रेलवे आदि कुछ रेलों का प्रबन्ध राज्य के पास रहा।

सरकार और गारंटीड कम्पनियों के आपस के सम्बन्धों का आधार निम्न–लिखित था।

(१) रेल–मार्ग जिनका कम्पनियों के पास प्रबन्ध था राज्य की सम्पत्ति मानी जाती थी। अधिकांश पूंजी भारत सरकार की थी जो कि या तो आरम्भ में ही सरकार ने लगाई थी या पुराने ठेके समाप्त होने के समय उसने खरीद ली थी।

(२) जब नई पूंजी लगाने का सवाल आता तो सरकार को अधिकार था कि या तो वह उस पूंजी को लगावे या कम्पनी से कहे। सरकार और कम्पनी को

अपनी अपनी पूंजी पर निश्चित ब्याज मिलता था। जो कुछ लाभ होता था वह सरकार और कम्पनियों के बीच में ठेके में निश्चित अनुपात से बंट जाता था। प्रायः कम्पनी का हिस्सा थोड़ा होता था।

(३) निश्चित समय पर भारत मन्त्री को ठेके समाप्त कर देने का अधिकार था और ठेके समाप्त होने पर कम्पनी की पूंजी लौटाना आवश्यक था।

इसके अलावा प्रबन्ध करने वाली कम्पनियों पर भारत सरकार का पूरा नियंत्रण था। कम्पनी का यह देखने का कर्तव्य था कि भारत मन्त्री के निर्णय के अनुसार रेलवे का संतोषजनक संचालन हो और रोलिंग स्टाक तथा कर्मचारियों की कमी न रहे। जनता की सुरक्षा और लाइन के ठीक २ काम करने की दृष्टि से आवश्यक सुधार और परिवर्तन कराने का भी भारत सरकार को अधिकार था। किराये के बारे में भी भारत मन्त्री का नियंत्रण था। भारत मन्त्री की आज्ञानुसार कम्पनी को हिसाब रखना पड़ता था और भारत मन्त्री अपने द्वारा नियुक्त व्यक्तियों से हिसाब जाँच करवा सकता था। भारत मन्त्री को सामान्य नियंत्रण का अधिकार था। कम्पनी के बोर्ड पर एक सरकारी संचालक नियुक्त करने का अधिकार भी भारत मन्त्री को था। सरकारी संचालक को बोर्ड की समस्त कार्यवाहियों को 'विटो' करने का अधिकार था। कम्पनी के पास जो भी रुपया आता था वह भारत मन्त्री के पास जमा होना आवश्यक था। भारत मन्त्री से कम्पनी को खर्च की स्वीकृति भी लेनी होती थी।

यद्यपि भारत सरकार का कम्पनी द्वारा होने वाले प्रबन्ध पर काफी नियन्त्रण था फिर भी देश के जनमत की यही मांग था कि कम्पनी प्रबन्ध को समाप्त किया जाये और रेलों का प्रबन्ध राज्य अपने हाथ में लेले। इस मांग के तीन मुख्य कारण बताये जाते हैं:—(१) प्रबन्ध खर्च में किफायत, (२) ऊंची जगहों पर भारतीयों की अधिक संख्या में नियुक्ति और (३) उद्योग धन्धों के प्रति सहानुभूति पूर्ण नीति। जब प्रथम महायुद्ध समाप्त होने को आया तो कम्पनी द्वारा रेलवे प्रबन्ध के बारे में कई तरह की गंभीर शिकायतें पैदा होगई। भारतीय रेलवे प्रबन्ध की जांच करने के लिए एकवर्थ कमेटी की नियुक्ति की गई। इस कमेटी ने रेलवे प्रबन्ध के प्रश्न पर भी विचार किया। इस प्रश्न के बारे में पक्ष–विपक्ष में जो दलीलें दी जाती थीं वे निम्नलिखित थीं:—

कम्पनी प्रबन्ध के पक्ष में ये दलीलें दी जाती थी—

(१) कम्पनी द्वारा प्रबन्ध होने से रेलों की नीति में जो एक रूपता रहती है वह राज्य द्वारा संचालित रेलों में सम्भव नहीं हो सकती।

(२) कम्पनियों द्वारा प्रबन्धित रेलों का अधिक विकास होना सम्भव है।

(३) कम्पनियों के संचालक स्वयं रेलों के मालिक होने से प्रबन्ध में विशेष दिलचस्पी लेते हैं।

(४) राज्य के कामों में जो पक्षपात (Red-tappism) का दोष होता है वह यहां भी लागू होता है ।

(५) राज्य आवश्यक पूंजी की व्यवस्था नहीं कर सकता । इससे रेलवे विस्तार में रुकावट आना सम्भव है ।

(६) राज्य द्वारा प्रबन्धित रेलों में किफायत नहीं हो सकेगी ।

(७) कम्पनी द्वारा प्रबन्धित रेलों में नये और सुधार के काम आसानी से हो सकते हैं ।

(८) जिन मामलों में स्वयं सरकार एक पक्ष के रूप में हो उनका न्यायोचित निर्णय करना कठिन होता है ।

(९) राजनैतिक तथा दूसरे कारणों से राज्य द्वारा प्रबन्धित रेलों को हानि पहुंच सकती है ।

राज्य द्वारा रेलों के प्रबन्ध होने में निम्न दलीलें दी जाती थीं :—

(१) यह सत्य नहीं है कि कम्पनी का प्रबन्ध अधिक अच्छा होता है । एकवर्थ कमेटी ने भी यही राय दी थी ।

(२) कम्पनी का प्रबन्ध होने से रेलों का किराया नीति देश के औद्योगिक विकास के लिये हानिकर सिद्ध हुई है ।

(३) कम्पनियों का रेलवे कर्मचारियों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं रहा है ।

(४) कम्पनियों को पूंजी उसी हालत में मिली थी जब राज्य ने ब्याज की गारंटी दी थी । इसलिये राज्य को पूंजी का अभाव रहेगा, यह कहना असत्य है ।

(५) कम्पनी के प्रबन्ध में राष्ट्र के हित की अपेक्षा तत्काल के लाभ का अधिक ध्यान रहा है ।

(६) रेलों में लगी पूंजी का बहुत थोड़ा अंश कम्पनियों का है । उनका आर्थिक स्वार्थ कम होने से अच्छी व्यवस्था करने की उनकी विशेष चिन्ता नहीं हो सकती । राज्य को यथेष्ट मात्रा में नियंत्रण रखना ही पड़ता है । ऐसी हालत में सारा प्रबन्ध राज्य के हाथ में आ जाने से कोई बड़ी कठिनाई नहीं होने वाली है ।

एकवर्थ कमेटी ने इन सब बातों पर विचार करके राज्य द्वारा रेलों के प्रबन्ध किये जाने के पक्ष में अपनी राय दी। रेलवे वित्त समिति (Railway Finance Committee) और भारतीय कटौती समिति (Indian Retrenchment Committee) ने भी यही राय दी थी । सरकार ने इस सिफारिश को स्वीकार कर लिया, परिणाम स्वरूप १ जनवरी १९२५ को राज्य ने ई० आई० आर० और १ जुलाई १९२५ को जी० आई० पी० रेलों का प्रबंध अपने हाथ में लेलिया । इसके बाद भारत सरकार ने बराबर इस नीति का अनुसरण किया और आज भी

भारत की सब रेलें सरकार के हाथ में है। १ अप्रैल १९५० से देशी राज्यों के भारतीय संघ में शामिल हो जाने के कारण उनकी रेलवे भी भारत सरकार के प्रबन्ध में आ गई इस प्रकार ७५६० मील लम्बा रेल मार्ग भारत सरकार के प्रबन्ध में और आ गया और अब भारत की समस्त रेलें, रेलवे-मंत्रालय के नियंत्रण में हैं।

रेलों का शासन प्रबन्ध (Railway Administration)

आरंभ से ही रेलों के निर्माण का कार्य अंग्रेज पूंजी पतियों और व्यवस्था-पकों के हाथ में सौंपा गया था। लार्ड डलहौजी की राय थी कि चूंकि रेलें राष्ट्रीय सम्पत्ति है अस्तु उनके निर्माण, गॉज और कार्य आदि पर सरकार का नियंत्रण होना आवश्यक है। यह बात रेलवे कंपनियों के साथ किए गए समझौते में भी पूर्णत: खुलासा की गई। इसके अनुसार भारत मंत्री किराये आदि का भी नियंत्रण करता था और उसे सभी सरकारी कार्यवाहियों को 'विटो' करने का अधिकार भी प्राप्त था। कंपनियों द्वारा प्रबंधित रेलों का नियंत्रण करने के लिए एक इंजीनियर (Consulting Engineer) नियुक्त किया गया किन्तु जब यह आवश्यकता महसूस होने लगी कि कुछ ऐसे विशेषज्ञों की भी जरूरत है जो विभिन्न प्रदेशों के हाल चाल से वाकिफ हों तो प्रान्तीय सरकारों में भी एक २ कंसलटिंग इंजीनियर नियुक्त किये गये। इन सबके कार्यों को समन्वय करने का मुख्य काम भारत सरकार के प्रमुख इंजीनियर के हाथ में था। जब रेलों का विस्तार हुआ और एक रेलवे कई प्रान्तों को छूने लगी तो प्रत्येक रेलवे के लिये एक २ इंजीनियर नियुक्त किया गया। १८७० में जब राज्य द्वारा प्रबंधित किये जाने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ तो १८७४ में एक राज्य रेलवे संचालन विभाग (State Railway Directorate) बनाया गया। १८७७ में राज्य की रेलों को तीन भागों में बांटा गया और प्रत्येक को एक संचालक के अधिकार में रखा गया। इसी समय एक राज्य की रेलवे स्टोर के लिए एक संचालक की भी नियुक्ती हुई किन्तु १८७९ में दो सचालकों की जगह समाप्त कर दी गई और अब एक डायरेक्टर जनरल आफ रेलवे की नियुक्ती की गई। १८९७ में यह स्थान भी रिक्त कर दिया गया और उसकी जगह सार्वजनिक कार्य विभाग के अंतर्गत एक मंत्री रखा गया।

१९०१ में भारत मंत्री द्वारा राबर्टसन कमेटी भारतीय रेलों के प्रबन्ध और कार्य की जांच करने के लिए नियुक्त की गई जिसने तीन ऐसे कमिश्नरों का जिनको रेलवे के कार्यों का व्यवहारिक ज्ञान हो एक छोटा बोर्ड स्थापित करने की राय दी। इस कमेटी का सभापति वायसराय की कौन्सिल का एक सदस्य होना चाहिये। सरकार ने इस कमेटी के सुझाव को स्वीकार कर १९०५ में एक रेलवे बोर्ड

(Railway Board) की स्थापना की। इस बोर्ड में बोर्ड के अध्यक्ष के अतिरिक्त दो और सदस्य थे। यह बोर्ड भारत सरकार के व्यापार—उद्योग विभाग (Commerce & Industry Deptt) के आधीन रखा गया जिसका कार्य रेलों की व्यवस्था और नियंत्रण करना था. बोर्ड बनाते समय यह आशा की गई थी कि यह बोर्ड बिना किसी हस्तक्षेप के रेलों का प्रबन्ध भली भांति कर सकेगा। इस बारे में लार्ड कर्जन ने कहा "रेलवे बोर्ड का उद्देश्य यह था कि इसमें ऐसे सदस्यों की सदस्यता होनी चाहिए जिन्हें रेलवे आदि के व्यापारिक सिद्धान्तों पर व्यवस्था करने का अनुभव हो।" किंतु सरकार के व्यापार उद्योग विभाग के बारे में हस्तक्षेप के कारण यह बोर्ड अधिक सफलता पूर्वक कार्य न कर सका। वास्तव में यह बोर्ड एक धीमी गति से चलने वाली उस अमानव मशीन की तरह था जिसका ध्यान जनता के हितों की ओर बिलकुल न था। १६०७ में मैके कमेटी ने भी भारत सरकार के उद्योग विभाग द्वारा किए गए हस्तक्षेप की कड़ी आलोचना की। १६०८ में भारत सरकार के व्यापार—उद्योग विभाग के हस्तक्षेप को अपेक्षाकृत कम करने की दृष्टि से बोर्ड के अध्यक्ष के अधिकारों में थोड़ी वृद्धि कर दी गई। और बोर्ड अब रेलवे विभाग के नाम से एक स्वतंत्र विभाग बना दिया गया। १६०६ में इस रेलवे विभाग को वैज्ञानिक सलाह देने के लिए एक प्रमुख इंजीनियर को नियुक्त किया गया किंतु यह विभाग अब भी व्यापार सदस्य के आधीन ही रहा। यह सदस्य रेलवे की विभिन्न समस्याओं से सर्वथा अनभिज्ञ रहते थे। इनके पास अपने विभाग का ही इतना अधिक कार्य रहता था कि वह रेलवे विभाग के विकास की ओर ध्यान तक नहीं दे पाते थे। जब कभी संसद में रेलवे संबंधी कोई पेचीदा प्रश्न या समस्या उठ खड़ी होती तो वे बगलें झाकने लगते थे और प्रायः अपने अन्य संसदीय साथियों का ही साथ देते थे न कि रेलवे विभाग का। एक्वर्थ कमेटी का कहना था कि "इस विभाग के साथ एक सौतेले बच्चे की तरह का व्यवहार किया जाता रहा है जिसको पनपने देने के लिए कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं किया जाता।" *

इस कमेटी ने पूरी तौर से रेलवे बोर्ड की कार्य प्रणाली और उसके विधान की जाँच की और उन दोषों की ओर सरकार का ध्यान दिलाया जिनके कारण रेलवे विभाग और रेलों की प्रगति रुक रही थी। इस कमेटी ने रेलवे बोर्ड के सुधार हेतु निम्न सुझाव पेश किये :—

(१) संसद के एक सदस्य के अधीन एक नया विभाग—यातायात संवाद-वहन विभाग (Department of Communications) स्थापित किया जाय जिसका कार्य रेलों, बन्दरगाहों, भीतरी जलमार्ग तथा सड़कों और तार विभाग का विकास करना होगा।

(२) रेलवे आयोग, संवाद वहन विभाग के प्रमुख सदस्य के अन्तर्गत कार्य करेगा जिसमें प्रमुख आयोगकर्त्ता, वित्त आयोगकर्ता और पूर्वी, पश्चिमी तथा दक्षिणी विभागों के तीन आयोगकर्त्ता होंगे। प्रमुख आयोगकर्त्ता का कार्य रेलों की टेकनिकल समस्याओं को हल करना, और वित्त आयोगकर्त्ता का कार्य उन हलों को कार्यान्वित करने में आर्थिक सहायता देना तथा अन्य तीन आयोगकर्त्ताओं के जिम्मे देश की व्यापारिक संस्थाओं और रेलवे बोर्ड में अधिक निकटवर्ती सम्बन्ध स्थापित करने का काम सौंपा जाय।

(३) आयोग के आधीन टेकनीकल विशारदों की वृद्धि की जाय।

(४) अपनी व्यवस्था को सुचारू रूप से चला सकने में समर्थ होने के लिए कमेटी ने राय दी कि रेलवे बोर्ड स्वतन्त्र रूप से काम करे।

भारत सरकार ने इनमें से कुछ ही सिफारिशों को माना और इसके फलस्वरूप रेलवे बोर्ड के विधान में उपयुक्त परिवर्तन किए गए और रेलवे बोर्ड का १६२२ में पुनः संगठन किया गया। बोर्ड के अध्यक्ष की जगह चीफ कमिश्नर की नियुक्ति की गई। इसका काम रेलवे नीति का निर्धारण करना था। उसके निर्णय को बदलने की सामर्थ्य उसके अन्य दो साथियों में भी नहीं था अस्तु जो कुछ निर्णय दिया जाता वह स्वीकृत हो जाता था। चीफ कमिश्नर के अतिरिक्त दो और बोर्ड के सदस्य थे। इन तीनों के अतिरिक्त एक वित्त कमिश्नर भी बोर्ड का सदस्य था इस प्रकार रेलवे बोर्ड में चार सदस्य थे। सदस्यों के काम का बंटवारा विषय के आधार पर किया गया था न कि प्रादेशिक आधार पर जैसी कि एकवर्थ कमेटी ने राय दी थी। बोर्ड के सदस्यों को अनावश्यक कामों में अपना समय खर्च न करना पड़े और नीति सम्बन्धी मामलों पर वे अपना ध्यान केन्द्रित कर सकें तथा रेलों के विकास में सहयोग देने के लिए स्थानीय संस्थाओं, सार्वजनिक संस्थाओं आदि से सम्पर्क स्थापित कर सकें, इसलिए सिविल इंजीनियरिंग, मैकेनिकल इंजीनियरींग, ट्रैफिक और एस्टैब्लीशमैंटस तथा वित्त के संचालक और ११ उप-संचालक तथा २ सहायक संचालकों की नियुक्ति की गई। चूंकि धीरे २ मजदूरों सम्बन्धी समस्याओं को हल करने का महत्व बढ़ता जा रहा था इसलिए श्रम सम्बन्धी कार्यों में सहायता देने के लिए १६२६ में बोर्ड के तीसरे सदस्य की नियुक्ति की गई। विश्व मंदी (१६३१-३२) के समय सभी विभागों में किफायतशारी करने के लिए प्रयत्न किए जा रहे थे। अस्तु रेलवे विभाग में भी बचत की दृष्टि से कुछ ऊंची जगहों को खाली कर दिया गया और इस समय रेलवे बोर्ड में केवल तीन सदस्य रखे गये—एक चीफ कमिश्नर, एक वित्त-कमिश्नर और एक अन्य सदस्य। इनकी सहायता करने के लिए तीन संचालक, ६ उप-संचालक और एक मंत्री भी रखा गया किन्तु कई प्रकार की व्यवहारिक कठिनाइयों

के कारण उपरोक्त तोड़ी हुई ऊंची जगहों की फिर से पूर्ति की गई। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व रेलवे बोर्ड में एक चीफ कमिश्नर, एक वित्त कमिश्नर, दो सदस्य तथा ६ संचालक, ७ उप संचालक और एक मंत्री तथा एक सहायक संचालक थे। १९३८ में जब भारत सरकार ने संवाद-वाहन-विभाग की स्थापना की तो रेलवे बोर्डों को भी इसके आधीन कर दिया गया। तभी से रेलवे बोर्ड के कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि होती रही है। नीचे की तालिका में बोर्ड के दफ्तर में प्रथम श्रेणी के अफसरों की संख्या १९३९ और १९४९ में बताई गई है :—

	१९३९	१९४९
चीफ कमिश्नर और सदस्य	४	५
संचालक	६	७
ज्वाइंट संचालक	—	९
उप-संचालक	७	१४
सहायक संचालक	१	५
मंत्री	१	१
उप-मंत्री	—	१
सहायक मंत्री	१	१
योग	२०	४३

द्वितीय श्रेणी के अफसरों की संख्या १९३९ में १४३ थी यह बढ़कर १९४९ में ५८७ हो गई किन्तु विभाजन के फलस्वरूप यह अब ४७३ ही है। रेलवे बोर्ड के कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि होने के कई कारण हैं—यथा (१) राज्य द्वारा व्यवस्थित रेलों में वृद्धि होना (२) सरकार द्वारा उत्पादित व्यापार आदि में वृद्धि होना आदि है।

कुंजरू कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में सिफारिश की है कि वर्तमान रेलवे बोर्ड के स्थान पर यूनियन रेलवे आथोरिटी (Union Railway Authority) स्थापित की जावे और राष्ट्रीय यातायात संस्था (National Transport Authority) के अधीन में यातायात के सब साधनों का समन्वय किया जाय। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् से ही केंद्र में एक यातायात मंत्रालय की स्थापना हो चुकी है अस्तु अब रेलवे संबंधी सारा काम इसी मंत्रालय के द्वारा होता है। रेलवे मंत्री ने १ अप्रेल १९५१ से रेलवे बोर्ड के पुनर्गठन करने की जो योजना घोषित की थी उसके अनुसार उक्त तारीख से चीफ कमिश्नर रेलवे बोर्ड का पद हटा दिया गया है। अब बोर्ड में तीन सदस्य तो काम के आधार पर रहेंगे और एक वित्त कमिश्नर होगा। बोर्ड का

एक सदस्य अध्यक्ष होगा और वही यातायात मंत्रालय का मंत्री भी होगा। वित्त कमिश्नर वित्त के मामले में मंत्रालय का मंत्री रहेगा। इस बोर्ड का काम मंत्री को तमात बड़े नीति के मामलों पर सलाह देना और रेलवे के शासन के लिए आवश्यक आज्ञाएं जारी करना होगा।

रेलवे की सलाहकार समितियां (Advisory Committees)

रेलवे के शासन-प्रबन्ध से सम्बन्धित कई समितियां भी है यथा—*वित्त कमेटी* (Standing Finance Committee), *केंद्रीय सलाहकार परिषद* (Central Advisory Council), *रेलवे भाड़ा समिति* (Railway Rates Tribunal) आदि।

(१) *वित्त कमेटी* का मुख्य कार्य रेलवे के वित्त-सम्बन्धी मामलों पर विचार करना है। नई रेलों के निर्माण और आवश्यक रोलिंग स्टाक आदि खरीदने का काम भी इसी समिति के जिम्मे है। सरकार द्वारा प्रस्तावित खर्चों पर भी यही समिति पहले विचार करती है और फिर स्वीकृति के लिए भारतीय पार्लियामैंट के सम्मुख पेश करती हैं।

(२) *केंद्रीय सलाहकार परिषद* की स्थापना एकवर्थ कमेटी की उस सिफारिश के अनुसार हुई थी जिसमें कमेटी ने जनता और रेलवे विभाग में सम्पर्क बढ़ाने के लिए इस कमेटी की स्थापना पर जोर दिया था। जिसमें जनता, सरकार तथा व्यापारिक और औद्योगिक संस्थाओं के प्रतिनिधि हैं। इस परिषद का मुख्य कार्य रेलवे नीति निर्धारण करने में सलाह देना, यात्रियों के लिए सुविधाएं बढ़ाने के सुझाव देना और कर्मचारियों की नौकरी संबंधी अवस्थाओं पर उचित सलाह देना है। किंतु यह परिषद साल में १—२ बार ही अपनी बैठक करता है और सरकार तो इसे केवल नाम मात्र की संस्था मानता है। जिस की विशेष विषयों पर राय जान लेना ही काफी समझा गया है। कुंजरू कमेटी ने सिफारिश की थी कि इसके अधिकांश सदस्य व्यापारिक और औद्योगिक संघों के प्रतिनिधि ही होने चाहिए तथा कमेटी की बैठक भी कई बार होनी चाहिए।

एकवर्थ कमेटी की सिफारिश के अनुसार स्थानीय सलाहकार समितियों की भी नियुक्ति की गई है। प्रत्येक शासन के लिए अलग २ समितियां है जिनमें सरकार, प्रान्तीय संसद, व्यापारिक वर्ग तथा जनता का प्रतिनिधित्व किया जाता है। एक सदस्य केन्द्रीय सलाहकार परिषद द्वारा भी निर्वाचित किया जाता है। इस कमेटी का अध्यक्ष रेलवे का सामान्य मैनेजर होता है। इन कमेटियों का कार्य अपने २ क्षेत्रों में चलने वाली रेलों में यात्रियों को अधिकाधिक सुविधा देने, नई रेलवे लाइनें खोलने,

स्टेशन बनाने तथा समय विभाग में यथा संभव परिवर्तन करने आदि बातों में सलाह देना है।

रेलवे भाड़ा सलाहाकार समिति (Railway Rates Advisory Committee)

रेलवे द्वारा लिए जाने वाले भाड़े या किराये का प्रभाव जनता पर पड़ता है अतः यदि रेलवे अधिक किराया वसूल करने लगे तो देश के निवासियों पर यह भाररूप हो सकता है अतः किराये को व्यवस्थित करने आदि के लिए रेलों पर कुछ नियंत्रण आवश्यक समझा जाता है। आरंभ में जब विदेशी पूंजी से रेलों का निर्माण और विकास किया गया तो इन कंपनियों को अपनी पूंजी पर ब्याज देने की गारंटी सरकार ने दी किंतु कम्पनियों द्वारा नियत किए गए किराये पर सरकार का नियंत्रण होने पर भी कोई विशेष लाभ जनता को नहीं हुआ। अस्तु भारत सरकार ने एकवर्थ कमेटी को सरकार द्वारा नियंत्रण रेलों के किराये आदि की वर्तमान पद्धति की अवस्था और रेलवे तथा भारतीय व्यापारियों के बीच झगड़े सुलझाने वाली संस्था की जांच करने के लिए नियुक्त किया। इस कमेटी ने रेलवे और व्यापारियों के बीच के संबंधों का अध्ययन किया और यह निर्णय दिया कि रेलवे भाड़ा आदि नियत करने में बड़ी स्वतंत्र है, तथा यह बिल्कुल अवांछनीय है। कमेटीको राय में रेलवे रेट्स ट्रिब्यूनल का स्थापित किया जाना आवश्यक था। किंतु सरकार यह ट्रिब्यूनल स्थापित नहीं करना चाहती थी। जनता की पुकार को मान्यता देने के लिए १६२५-२६ में भारत सरकार ने एक *भाड़ा सलाहकार समिति* (Railway Rates Advisory Committee) स्थापित करने का निश्चय किया। इस कमेटी में सभापति सहित तीन सदस्य नियुक्त किए गए। सभापति एक स्वतंत्र अफसर था जो पूरे समय के लिए नियुक्त किया गया। एक सदस्य रेलवे और एक सदस्य व्यापारिक संस्थाओं का प्रतिनिधित्व करने को नियुक्त हुआ।

इस कमेटी के जिम्मे निम्न कार्य सौंपा गया :—

(१) पक्षपात के मामलों में की गई शिकायतों की जांच करके रिपोर्ट पेश करना।

(२) भाड़ा के अत्यधिक और अवांछनीय होने की शिकायतों पर विचार करना।

(३) सामान आदि (जिसके नष्ट हो जाने की आशंका हो या जिससे अन्य सामान नष्ट हो जाता हो) भेजने के लिए किए गए पैकिंग की दुरुस्ती अथवा दोष पूर्ण सिलाई के लिए अपनी राय देना।

(४) विभिन्न दरों पर ले जाये जाने वाले सामान के पैकिंग इत्यादि की जांच करना।

प्रारंभिक अवस्था में यह तय किया गया कि किसी भी प्रकार की शिकायत करने के पहले १००) एक प्रार्थना पत्र सहित रेलवे के एजेंट के पास जमा करा दिए जावें। रुपया जमा होने के तीन महीने के भीतर यह एजेंट एक स्टेटमेंट बनाकर अपनी सिफारिस सहित रेलवे बोर्ड को भेजेगा किंतु १९२७ में यह पद्धति परिवर्तित कर दी गई और यह तय किया गया कि प्रार्थना पत्र केवल १०) शुल्क के साथ सीधे रेलवे विभाग के यहां प्रस्तुत किया जाय। यह विभाग इस पर उपयुक्त सिफारिश कर रेलवे एजेंट के सम्मुख पेश करे। रेलवे एजेंट इस पर अपनी राय देकर प्रार्थना पत्र पुनः २ मास के भीतर रेलवे विभाग को लौटावे। इस प्रत्युत्तर पर रेलवे विभाग यह निश्चय करे कि अमुक प्रार्थना पत्र को भाड़ा सलाहकार समिति के सम्मुख निर्णय देने के लिए प्रस्तुत करे या नहीं। यदि विभाग इस प्रार्थना पत्र को कमेटी के सम्मुख पेश करना उचित न समझे तो वह अस्वीकृत कर दिया जाय और इसकी सूचना प्रार्थी को देदी जाय। किंतु यदि मामला कमेटी के विचारार्थ प्रस्तुत कर दिया जाय तो प्रार्थी के पास रेलवे अपना मत लिखकर भेज देगी जिसका उत्तर उसे २ सप्ताह में देना पड़ेगा।

इस लम्बी अनावश्यक पद्धति के कारण यह कमेटी सफलता पूर्वक कार्य नहीं कर सकी। इसके कार्य में कई दोष पाये गए—(१) प्रार्थी अपनी शिकायत का प्रार्थनापत्र भारत सरकार के पास भेजता था और यदि सरकार उसको कमेटी के सम्मुख पेश करना उचित नहीं समझे तो प्रार्थी के लिए अपनी सुनवाई कराने के लिए कोई अन्य मार्ग नहीं रहता है। उसे चुप होकर बैठ जाना पड़ता है। सरकार इस बात की अधिक कोशिश करती थी कि कमेटी के सम्मुख प्रार्थनापत्रों की बाढ़ न आजाय (२) प्रार्थनापत्रों पर विचार–विनिमय करने में ही बहुत समय लग जाता था। (३) कमेटी के सदस्यों में जनता का कोई विश्वास नहीं था क्योंकि किसी भी मामले में उनकी स्वतन्त्र राय नहीं हो सकती थी। (४) शिकायत को सिद्ध करने का भार प्रार्थी पर ही रहता था। प्रार्थी को अपनी बातें सही सिद्ध करने के लिए कई (Statistical datas) की आवश्यकता पड़ती थी जिसका प्राप्त करना प्रायः असम्भव ही था। अस्तु बहुत से व्यापारी तो इस कठिनाई से बचने के लिए मन मार कर चुप हो जाते थे। (५) कमेटी की सिफारिशें केवल सलाह के रूप में ही होती थीं जिनको स्वीकार या अस्वीकार करना सरकार के हाथ में था। अस्तु व्यापारिक वर्ग में इस बात पर बड़ा असंतोष था।

इस प्रकार यह कमेटी न तो अपना काम सुचारु रूप से ही कर सकी और न जनता का विश्वास ही प्राप्त कर सकी। रेलवे बोर्ड अथवा जनता की दृष्टि में इस

कमेटी का कोई महत्व नहीं था। अस्तु जनता बार २ एक भाड़ा समिति (Railway Rates Tribunal) के स्थापित किए जाने की मांग कर रही थी जिसके सदस्य जनता में से ही चुने जांय। भारतीय रेलों के १९४८ के कानून [Indian Railways Amendment (Act) 1948] के अनुसार ४ अप्रैल १९४९ को एक रेलवे भाड़ा ट्रिब्यूनल (Railway Rates Tribunal) की नियुक्ति की गई। इस का कार्य जनता और रेलवे के बीच भाड़े सम्बंधी झगड़ों का निपटारा करना है। इस ट्रिब्यूनल में एक सभापति, दो केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त सदस्य हैं। केवल वही व्यक्ति इसके सदस्य हो सकते हैं जो एक उच्च न्यायालय के जज बनने योग्य हो। इस समय इस ट्रिब्यूनल में एक चीफ जस्टिस सभापति और २ वकील सदस्य हैं। निर्णय निश्चय करने में ट्रिब्यूनल एसेसर (assessors) से भी सहायता लेता है। ये एसेसर एक तो व्यापार, उद्योग कृषि सम्बन्धी संस्थाओं का प्रतिनिधित्व करेंगे जिनकी संख्या ६० से ऊपर नहीं होगी। इसमें से कम से कम $\frac{1}{3}$ सदस्य व्यापार, $\frac{1}{3}$ उद्योग और $\frac{1}{3}$ कृषि संस्थाओं का प्रतिनिधित्व करेंगे जिनका चुनाव केन्द्रीय सरकार देश को व्यापारिक, औद्योगिक और कृषि संस्थाओं के सहयोग से करेगी। दूसरे एसेसर रेलवे का प्रतिनिधित्व करेंगे जिनकी संख्या २० से अधिक नहीं होगी। इसके सदस्य वे ही हो सकेंगे जिन्हें रेलवे का अनुभव होगा।

इस ट्रिब्यूनलके वे ही अधिकार होंगे जो एक सिविल कोर्ट(Civil Court) के होते हैं अर्थात् मामलों को सुलझाने के लिए ट्रिब्यूनल गवाहों के बयान ले सकता है, गवाहों की उपस्थिति पर जोर दे सकता है, सम्बन्धित कागजातों को पेश करने के लिए जोर डाल सकता है और गवाहों की सुनवाई के लिए आयोगों की नियुक्ति कर सकता है। इस ट्रिब्यूनल को रेलवे के खिलाफ निम्न बातों की शिकायतें सुनने और उन पर अपना निर्णय देने का अधिकार भी है:—

(१) कम से कम तोल, पैकिंग तथा सामान भेजने में जोखिम होने की दृष्टि से उन पर लगाया गया भाड़ा अधिक है, इसका निर्णय करना।

(२) अनुपयुक्त भाड़ा लगाने पर विचार करना।

(३) एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन के बीच सामान ले जाने के किराये की दर बताने पर विचार करना।

(४) किसी वस्तु को अनावश्यक रूप से उसकी वास्तविक श्रेणी से ऊंची श्रेणी में रख कर अधिक भाड़ा प्राप्त करना।

ट्रिब्यूनल चाहे तो दो स्टेशनों के बीच की दरों को निश्चित कर सकता है अथवा किसी वस्तु को ऊंची या निम्न श्रेणी में वर्गीकरण कर सकता है किन्तु इस प्रकार के अधिकार का उपयोग ट्रिब्यूनल केवल केन्द्रीय सरकार से पूछ कर ही कर सकता है। संक्षेप में इस ट्रिब्यूनल का कार्य यह निर्णय करना है कि भाड़े को अमुक

दर अधिक है या उचित ही है, अधिक स्वतन्त्रता पूर्वक सामान एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाने में सहयोग देना और अमुक वस्तुओं का वर्गीकरण सही है या नहीं।

किसी मामले का निर्णय करने के लिए ट्रिब्यूनल ने कुछ नियम बना रखे हैं जिसके अनुसार कार्य किया जाता है। भाड़े सम्बन्धी शिकायत कोई व्यक्ति निजी तौर से अथवा रेलवे शासन या केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रस्तुत की जा सकती है। सभी प्रार्थनापत्र मन्त्री के पास १००) शुल्क तथा ५०) अतिरिक्त जमा के साथ भेजे जाने चाहिए। ट्रिब्यूनल एक रजिस्टर में सभी प्रार्थनापत्र प्राथमिकता के अनुसार दर्ज करता रहता है इसकी लिखित सूचना संबन्धित व्यक्तियों के पास भेज दी जाती है जिसका उत्तर एक महीने के भीतर देना अनिवार्य होता है अन्यथा उत्तर न आने पर एक तरफा कार्यवाही कर दी जाती है। मामलों का निर्णय ट्रिब्यूनल के अधिक सदस्यों की राय से ही होता है, यह निर्णय दोनों पक्षों पर लागू होता है।

अध्याय १६

रेलवे दर और किराया

RAILWAY RATES

पूर्वकालीन नीति—जिस समय भारतवर्ष में सर्व प्रथम रेलवे का प्रचार हुआ उस समय राज्य ने,जो पूंजी कम्पनियों द्वारा लाई गई थी, उसपर ब्याज की निश्चिव सुविधा प्रदान की थी और साथ ही साथ अन्य प्रकार की सुविधायें भी प्रदान की थीं। उसके बदले में सरकार को यात्रा का दर आदि निर्धारित करने का पूर्ण रुपेण अधिकार प्राप्त था। सवारी गाड़ी से बहुत ही कम आय प्राप्त होने की आशा थी। वहां रेलवे पूरी तौर से माल गाड़ी की दर पर निर्भर करती थी। शुरू में जो दरें लगाई गई थीं उनका प्रथम उद्देश्य यही था कि देश के आन्तरिक भागों से कच्चा माल बन्दरगाहों तक पहुंचे। तीन श्रेणी यात्री और पंचम श्रेणी माल की योजना की गई। ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा कोयले के लिए एक विशेष दर निर्धारित की गई। भारत की दीन आर्थिक दशा और यहां के निवासियों का जीवन स्तर देखते हुए दरें बहुत ही ऊंची और अनुचित थीं। भारत सरकार ने अपनी नीति की घोषणा की—'रेलवे ज्यादा से ज्यादा जनसाधारण के लिए उपयोगी हो।' उपर्युक्त दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि सरकार दर व किराया निर्धारित करने के कार्य में पूर्णरूपेण उत्सुक प्रतीत होती थी।

सन् १८६१-६२ में सरकार द्वारा यह निश्चय किया गया कि बजाय निश्चित दरें स्थापित करने के उच्च स्तर कायम किया जाना चाहिए। उच्च स्तर से वास्तविक दरें स्थापित करने का कार्य व्यक्तिगत कम्पनियों के अधिकार में ही होना चाहिए। उस समय सरकार का यह उद्देश्य था कि वह रेलवे लाभ को जनसाधारण तक पहुंचाना चाहती थी और वह कार्य दरोंको नीची करने से ही संपन्न हो सकता था किंतु इसके विपरीत कंपनियोंकी यह इच्छा थी कि उच्च स्तरीय दरोंका निर्धारण हो। सन् १८६५में सर्व प्रथम बम्बई लाइन पर उच्च दर स्तर को क्रियात्मक रूप दिया गया। तत्पश्चात् अन्य लाइनों में प्रांतीय सरकारों द्वारा इस प्रकार का कार्य किया गया। उसी साल माल की सुविधा के लिए मांग बढ़ी और इतनी बढ़ी कि रेलवे उसके लिए अपर्याप्त प्रतीत होने लगी। रेलवे कम्पनियों ने सुविधायें अधिक बढ़ाने की अपेक्षा खर्च अधिक बढ़ा दिया। भारत सरकार ने इस प्रकार की अनुचित और हानिकारक नीति पर नियन्त्रण करने

का विचार किया। भारत सरकार और रियासती सचिव के बीच में इस प्रकार दर और किराये के सम्बन्ध में एक विवाद उठ खड़ा हुआ। अन्त में भारत सरकार ने यह कार्य अपने हाथ में लिए और स्थानीय सरकारों के हाथ में उच्च स्तर स्थापित करने का अधिकार सौंप दिया गया जिसमें कि कम्पनी से संबंधित कुछ सुविधाओं का ध्यान अवश्य रखा जाय।

सन् १८६६ में भारत मंत्री ने मद्रास में उच्च स्तर के बढ़ाने पर जोर दिया और साथ ही अवध के लिए भी यही बात थी। इस प्रकार किराया दर वृद्धि की नीति संकीर्ण दृष्टिकोण की थी और देश के कल्याण की भावना उसमें न थी। ट्रेफिक रसीद का प्रचलन हुआ और भारत में रेलवे विकास का श्रीगणेश हुआ। निम्नांकित तालिका जो कि सन् १८६६ की है दरें और किराये की ओर इंगित करेगी :—

दर किराया पाइयों में

रेलवे	*प्रति मील*			*माल प्रतिटन प्रति मील*						
	प्रथम	द्वि०	तृतीय	प्रथम	द्वि०	तृतीय	चौथा	पंचम	षष्ट	विशेष दर
इ० आई०	१८	६	३	८	१४	१८	२२	२८	—	७
जी. आई. पी.	१८	६	२.५	८	१०	१४	१५	२४	५६	—
मद्रास	१८	६	३	८	१२	१४	१८	२४	४८	—
बी० बी०	१५	७	३	८	१०	१४	२०	२८	४०	—
ई० बी०	१८	६	३	८	१४	१८	—	२८	५६	६
ओ० आर०	१८	६	३	१०	१४	१८	—	२८	५६	७

सन् १८६६-१८८२ तक दरें व किराया

यह समय राज्य द्वारा रेलवे निर्माण का समय था। (मीटर गाज) छोटी लाइनों पर रेलवे का निर्माण कर खास ट्रन्क लाइनों से देश के आन्तरिक भागों को जोड़ना इसका उद्देश्य था। स्वेज नहर के खुलने और जी० आई० पी० और ई० आई० रेलवे के जबलपुर में मिलने से आयात और निर्यात एक हद तक बहुत ही बढ़े। यह कार्य १८६६–७० में हुआ। सन् १८६६ में भारत मंत्री के दबाव के कारण किराये की दरें भी बढ़ा दी गई। किन्तु भारत सरकार ने इसे 'अन्धनीति' माना। राज्यों की रेलवे के पूर्ण होने पर सरकार यह चाहती थी कि माल की दरों और यात्रियों के किराये में कमी की जाय। सरकार की यह राय थी—'कि उस समय निम्न श्रेणी का किराया और दर भी माल को आकर्षित नहीं कर सकता था।' सड़कें और नदियां बहुत ही बड़े माल के भाग को इस ओर आकर्षित करते थे। शासन की सूचना द्वारा ज्ञात होता है—'यह निसन्देह कहा जा सकता है कि अधिक माल कम दर पर ले जाना अधिक सुरक्षित प्रतीत होता है, अपेक्षाकृत कम माल

ऊंची दरों पर।' निम्न दरों के होने से शुरू में थोड़ा नुक्सान होगा किन्तु माल को इस प्रकार का प्रोत्साहन मिलने से वह अल्प काल में हानि को लाभ रूप में परिणित कर देगा।" सरकारी संचालकों ने इसी सम्बन्ध में यह कहा है—'भारत जैसे देश में जहा कि विशेषतः जनसंख्या अधिक और दरिद्र है यह एक मूर्खतापूर्ण बात होगी कि ऊंची दरें स्थापित की जांय जिससे कि यात्रियों और माल का आवागमन बन्द सा हो जाय। सच्ची नीति इस सम्बन्ध में यह होगी कि हम ऐसी निर्धारित दरें बनायें जिससे कि अधिक से अधिक जनता को लाभ पहुंचे। ताकि अधिक मात्रा और माल का आवागमन हो।'

सन् १८७३-७४ में एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन का बिना दूरी का अन्दाज लगाये दरों का निर्धारण किया गया।

माल प्रतिमन		*यात्री प्रति यूनिट*	
तीसरी श्रेणी	८ आना	प्रथम श्रेणी	८ आना
द्वितीय ,,	६ ,,	द्वितीय ,,	४ ,,
प्रथम ,,	४ ,,	तृतीय ,,	२ ,,
विशेष ,,	२ ,,	विशेष ,,	१ ,,

किन्तु उन कुल दरों को दो साल बाद ही परिवर्तन करना पड़ा। उसकी जगह मील की दरें स्थापित करनी पड़ीं। इसी समय अनाज पर से दरें घटाई गई उसका भार अकाल था और उसके कारण रेलवे की आय में उल्लेखनीय प्रगति दृष्टिगोचर हुई। भारत सरकार ने बार २ कम्पनियों पर इस बात का दबाव डाला कि वे दरें कम करें और उसके परिणामस्वरूप दरें कम की गई। इसका परिणाम कार्य और आय दोनों की दृष्टि से उत्तम रहा।

भारत सरकार जिसने कि दरें घटाने के लिए इतना जोर दिया था उस पर विशेषतः ब्रिटिश व्यापारियों के स्वार्थों का असर था। इंग्लैंड को इस समय कच्चे माल की आवश्यकता थी। रेलवे दरों को इसलिए सुधारने की आवश्यकता अनुभव हुई कि जिससे कच्चे कपास का निर्यात बढ़े साथ ही गेहूं और अन्य पदार्थ भी बाहर जाय और बाहर से पक्का माल आयात हो। रेलवे का सामान और पूंजी बाहर से आयात की जाती थी और इस रूप में आयात और निर्यात का संतुलन रखने का प्रयत्न किया जाता था। इस रूप में विदेशी उद्योगों को अनुचित लाभ पहुंचाया गया जहां कि यहां के उद्योगों को नुकसान हुआ। सिर्फ यहां कृषि को महत्व प्रदान किया गया। इस प्रकार यह दरों की नीति भारत के अस्थिर आर्थिक विकास में सहायक हुई।

इस समय के मध्य में रेलवे व अन्य आवागमन के साधन पूर्ण नहीं हो चुके थे और साथ ही रेलवे अपनी दक्षता को बढ़ाने की ओर भी सतर्क नहीं थी।

राजपूताना—मालवा—राज्य लाइन के खुलने से बाद में अवश्य ही प्रति स्पर्धा होने लगी जिससे कि अव्यवस्था को धक्का पहुंचा।

१८८२-१९०३ के मध्य दरें व किराया

सन् १८८७ में राजपूताना मालवा राज्य लाइनका निर्माण हुआ जिसका जंकशन बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे के स्थान अहमदाबाद पर था। इससे बम्बई और दिल्ली के बीच ३४५ मील दूरी कम हुई। छोटी लाइनका कुल मार्ग देहली बम्बई वाया राजपूतानाथा। मलावा लाइन ८८९ मील थी वहां अन्य बड़ी लाइनों का रास्ता जो कि इलाहबाद और जबलपुर था लगभग२३४मील था। इस रूपमें बम्बईने कलकत्ता से एक अनुकूल स्थति ग्रहण करली थी। एक बहुत बड़ा निर्यात् रूप में कपास, गेहूं व अन्न बम्बई से होने लगा। बम्बई से देहली अन्न की दर ११ आना प्रति मन थी वहां कलकत्ता की बड़ी लाइन पर १३ आना प्रति मन थी, उसका परिणाम कलकत्ता पर बुरा पड़ा। कलकत्ता के व्यापारियों ने भारत सरकार को इस बात के लिये विवश किया कि यह पुनः कलकत्ता के स्तर को लौटाने का प्रयत्न किया जावे। किन्तु भारत मंन्त्री ने भारत सरकार की बात स्वीकार न की और यह घोषित किया गया—दरों का घटाना और प्रतिस्पर्द्धा का हटाया जाना एक अवास्तविक वस्तु स्थति है और यदि ठीक भी होती तो यह संभव नहीं हैं, क्योंकि भौगोलिकता के कारण जो लाभ प्राप्त है उसे प्रतिबन्धों के द्वारा कम नहीं किया जा सकता। भारत मंत्री इस प्रति स्पर्धा के पक्ष में थे क्योंकि इससे और भी किराया व दरें घटेगी। भारत सरकार ने इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया और उन कटौतियों का स्वागत किया गया जो कि प्रति स्पर्धा के फल स्वरूप हुईं।

सन् १८८३ ई० में 'सेवा का मूल्य' 'मात्रानुसार दर' आदि सिद्धान्तों को स्वीकार किया गया जिससे कि साधारणतया निम्न व उच्च स्तरों का निर्धारण कार्य हो जाय। प्रकाश का मूल्य भी साथ ही जोड़ दिया गया। बहुत सी रेलवे कम्पनियों ने अपने किराये व दरों में इसलिये कटौती की जिससे पड़ौसी रेलवे के माल को आकर्षित किया जा सके। अब रेलवे अलग रूप में उपस्थित नहीं थी वरन् उनमें एक दूसरे के प्रति प्रतिस्पर्धा की भावना थी और अन्त में इतनी बढ़ी कि सरकार को उसमें हस्तक्षेप करना पड़ा।

सन् १८८४ में सिलेक्ट कमेटी ने यह देखा कि सरकार द्वारा निर्धारित दरों का प्रचार है। अतः उस रूप में इस बात की सिफारिश की कि सरकार उच्च व निम्न स्तर निर्धारित करे। उसमें पूंजी लगाने वाले के स्वार्थ का भी ध्यान रखा जाय। उस समय तक एक रेलवे का विभागीकरण अन्य से भिन्न था। प्रो० आर० डी० तिवारी के शब्दों में 'कम्पनियां समय समय पर अपनी दरों की तालिका निर्धारित करती थीं जिसके कारण अन्यावश्यक रूप से पेचीदापन आ जाता था।

भिन्न २ दरों व वर्गों का तथा सुरक्षा नियमों से व्यापार एवं उद्योग में शिथिलता आ गई।' सन् १८८४—८५ में भारत सरकार ने आन्तरिक झगड़ों को सुलझाने और एक्यता लाने का उपयुक्त प्रयत्न किया।

१८८७ का प्रस्ताव

निम्नांकित उच्च और निम्न मील दरों का अंकन किया गया—

माल दर श्रेणी	प्रति मन प्रति मील उच्चतम पा०	निम्न पाई	प्रति सवारी श्रेणी	किराया प्रतिमील उच्च स्तर पा०	नि० पाई
प्रथम श्रेणी	१/३	१/६	प्रथम	१८	१२
द्वितीय ,,	१/२	१/२	द्वितीय	९	६
तृतीय ,,	२/३	२/३	मध्यम	४½	३
चतुर्थ ,,	५/६	५/६	तृतीय	३	१½
पंचम ,,	१	१			

कम्पनियों को दरों और किराये के निर्धारण में पूरी स्वतन्त्रता दी गई किन्तु अस्वाभाविक प्राथमिकता यह समझी गई। इसके साथ ही इस बात की भी सिफारिश की गई कि सभी रेल्वे ई० आई० आर० का वर्तमान वर्गीकरण स्वीकार कर अपनाये। इसके साथ ही इस बात पर जोर दिया गया कि दरों में सुविधायें प्रदान की जाय। प्रस्ताव में यह कहा गया—'भिन्न भिन्न रेल्वे कम्पनियों को जहां तक संभव हो यह बताने का प्रयत्न करना चाहिये कि मानो वे एक ही व्यवस्था के अन्तर्गत हैं और देश का उत्पादनकर्ता भिन्न भिन्न प्रकार के अनुमान आदि से घबरा न जाय जब कि उसे निर्दिष्ट स्थान पर माल पहुंचाना पड़े।'

यह प्रस्ताव सभी कम्पनियों द्वारा स्वीकार नहीं किया गया। सरकारी तालिका में इस बात की स्वतन्त्रता नहीं प्रदान की गई कि जिससे कुछ भी परिवर्तन संभव हो और वर्गीकरण में परिवर्तन भी अवांच्छनीय था। उसके अनुसार सरकार ने १८९७ में उसे बदला—

माल दर श्रेणी	प्रति मील प्रति मन पाइयों में उच्चतम	निम्न	किराया प्रति मील प्रति यात्री पा० श्रेणी	उच्चस्तर	निम्न
स्पेशल (विशेष)	१/३	१/१०			
प्रथम	१/३	१/६	प्रथम	१८	१२
द्वितीय	१/२	,,	द्वितीय	९	६
तृतीय	२/३	१/६	मध्यम	४½	३
चतुर्थ	५/६	,,	तृतीय	३	१½
पंचम	१	,,			

नवीन परिवर्धित और संशोधित, वस्तु भी कुछ कम्पनियों द्वारा स्वीकार न की गई (जी० आई० पी०, बी० बी० एण्ड० सी० आई० आर और मद्रास रेल्वे) यह उसी समय कार्य रूप में आ सकता था जब कि सरकार प्रथम इकरार की समाप्ति के पश्चात उसे अपने हाथ में ले ले।

बीसवी सदी के आरम्भ में ही यह अनुभव होने लगा कि रेल्वे एक उत्तम उद्योग है। माल का आवागमन बढ़ रहा था और यह आशा की जाती थी कि दरों के कम होने पर इसमें और भी प्रगति होगी। दो विशेषज्ञ मि० रोर्बट्सन और प्रिस्टले ने भारत, इंगलैण्ड और अमेरिका की दरों का अध्ययन किया और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि भारत में दरे बहुत ही ऊंची है। उन्होंने दरों और किरायों में कमी की सिफारिश की और साथ ही टेपरिंग और टेलिस्को दरों की शुरुआत पर ध्यान दिलाया।

१९०३—१९१४ के मध्य—दरें

रेलवे के बीच व जहाज—रानी और रेल्वे के बीच आन्तरिक और तटीय स्थानों में प्रति स्पर्द्धा के परिणाम स्वरूप दरों में कटौती हुई। यह समय १९०३—१४ का था। प्रथम-विश्व—युद्ध के शुरु होने से मूल्य और पारिश्रमिक में वृद्धि और रेल्वे का अन्य खर्च भी बढ़ा। रेलवे ने उस समय दर-झगड़े का अनुभव किया। उच्च खर्च की वृद्धि ने उन्हीं से युक्तीकरण के लिये विवश किया और प्रति स्पर्धा का युग समाप्त हो गया। अक्टूबर १९१६ में रेलवे—बोर्ड की स्थापना दरो व किराये के निर्धारण रूप में हुई।

प्रतिस्पर्धा ने निसन्देह दरों में कटौती पैदा की किन्तु इससे देश में अन्य आवागमन के साधनों की उन्नति नहीं हुई। दक्षिणी-भारत-रेलवे और त्रिमालसल चावल केन्द्र के बीच प्रति-स्पर्धा हेतु, रेलवे-कम्पनी ब्रिटिश-इण्डिया-स्टीम नेवीगेशन कम्पनी से समझौते में शामिल हुई जिसके आधार पर जहाज-कम्पनी ने बन्दर पर अपनी नावों का आवागमन बंद किया। इस प्रकार वह भार रेलवे की ओर गया। और बन्दर नष्ट हो गया। इससे जनता को कोई लाभ नहीं हुआ क्योंकि रेलवे में किराया कम व जल्दी ही ले जाने जैसी सुविधा नहीं प्राप्त थी।

व्यापार और उद्योगो को 'प्रतिबन्धात्मक-दरों से नुक्सान हुआ। इन दरों के अनुसार एक लाइन से दूसरी लाइन पर आवागमन पर प्रतिबन्ध लगाया जाता था। बी० बी० एण्ड० सी द्वारा यह दरें इसलिये प्रयोग में लाई जाती थीं कि जिससे भड़ौच की जहाज-कम्पनी का उद्योग नष्ट हो जाय। भड़ौंच और बम्बई के मध्य एक जहाज—सर्विस चालू हुई थी जिसके कारण उधर का माल जहाज द्वारा ही जाता था, परन्तु 'प्रति बन्धात्मक—दरों' के कारण वह बिल्कुल समाप्त ही कर दी गई।

रेलवे—दरों के निर्धारण में एक उद्देश्य यह कार्य कर रहा था कि कच्चे माल का निर्यात् और पक्के माल का आयात बढ़े। उत्तर-प्रदेश के व्यापारी चेम्बर ने किरायों के संबध में इस प्रकार कहा है-'असमान रेलवे दरों का वितरण भारतीय उद्योग को अत्यधिक हानि कारक है। दरें इस प्रकार निर्धारित की गई हैं कि जिसके द्वारा निर्यात् (कच्चे माल) और आयात (पक्के माल)को प्रोत्साहन मिले। कई रेल्वे कम्पनियों की प्रति स्पर्धा ने दरों को अनुकूल लाने में काफी भाग लिया। १६१६–१८ के औद्योगिक आयोग ने इस बात की ओर इंगित किया था—'दरों का परिवर्तनशील इतिहास इस बात को बतलाता है कि जिससे माल एक बन्दर से दूसरे बन्दर की ओर बदलता है।' इसके परिणाम स्वरूप उद्योग भी बन्दरगाह वाले शहरों में ही अधिक रूप से स्थापित हुऐ।

प्रथम महायुद्ध के समय दरें

प्रथम महायुद्ध के समय यात्रा और माल दोनों पर अत्यधिक रूप से भार बढ़ा। भारत को रेल्वे सामान के लिए विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता था और उन आयातों पर प्रतिबन्ध सा लग गया था। इसके साथ ही रेल्वे को युद्ध सामान और सेना को ले जाना पड़ता था। साधारण ट्रेफिक रोकने के उपाय किये गये। एक केन्द्रीय प्राथमिकता समिति की स्थापना की गई जो कि आवश्यक, प्राथमिक, साधारण ट्रेफिक का निर्णय करे। कार्यशील व्ययों को सुचारू रुप से चलने देने के लिए दरों और किराये में वृद्धि होगई। अप्रेल १६१७ से ही प्रति मन कोयला पर १ पाई और अन्य सामान पर २ पाई अतिरिक्त किराया लगाया गया। यह एक युद्ध जनित उपाय था जिससे सरकार को सहायता मिलती। साथ ही सरकार द्वारा साधारण उपयोग के लिये रेल्वे कार्य में आनी थी।

इस समम के मध्य में दरों में एकयता न थी और अलग अलग वर्गीकरण थे परन्तु समय समय पर इस बात का प्रयत्न किया गया कि दरों में समानता हो। एक संरक्षणात्मक—समिति की स्थापना प्रथम १६०५ में रेल्वे समिति द्वारा की गई। प्रथम साधारण रूप से माल का वर्गीकरण १६१० में हुआ जिसको १६१५ में रेल्वे बोर्ड ने मान्यता देदी।

युद्ध-पश्चात रेल्वे-दरें और किराया

युद्ध के समय नवीन रेल्वे लाइनें स्थापित नहीं की जा सकीं। अतः युद्ध पश्चात यह समस्या प्रकट रूप से सामने आई। भारत का विदेशी व्यापार बहुत ही बढ़ा। ज्यों ही कार्यशील खर्चे बढ़े उसी रूप में मूल्य और पारिश्रमिक में वृद्धि हुई। इन खर्चों को व्यवस्थित रूप देने के लिए अतिरिक्त किराया बढ़ाया गया जिसका कि

रेलवे और व्यापारियों ने विरोध किया। रेल्वे कम्पनियों ने इस बात का सुझाव रखा कि उच्च समदरें साधारण रूप से निश्चित हो जानी चाहिये। साथ ही इस बात की इच्छा प्रकट की गई कि वास्तविक दरों का कार्य स्वयं उनके हाथ में ही हो। एकवर्थ समिति ने भी दरों में वृद्धि की सिफारिश की थी। इस रूप में भारत सरकार ने उच्चतम दर-विभाजन को दोहराया। दरों का निर्धारण १५ से २५% था। ये सब परिवर्तन १९२२ अप्रेल से कार्य रूप में आये—

माल दर (पाइयों में)			*प्रति मन प्रति मील*		
श्रेणी	*उच्च*	*निम्न*	*श्रेणी*	*उच्च*	*निम्न*
प्रथम	०·३८	०·१००	षष्टम	०·८३	०·१६६
द्वितीय	०·४२		सप्तम	०·९६	
तृतीय	०·५८	०·१६६	अष्टम	१·०४	
चतुर्थ	०·६२		नवम	१·२५	
पंचम	०·७७		दस	१·८७	

वृद्धि का अधिकार रेल्वे के अधिकारियों को दिया गया क्यों कि उच्चतम दरें तो वह निर्धारित करसके पर निम्नतर दर पुराने स्तर पर स्थिर ही रही। भारत सरकार का यह कार्य न्यायसंगत न था क्योंकि बढ़ते हुए खर्च की दृष्टि से निम्नतर स्तरों में भी वृद्धि आवश्यक थी। जनता ने इस बात की आलोचना की कि ये दरें भारत से कच्चे माल के निर्यात और पक्के माल के आयात पर जोर देती हैं। एकवर्थ कमेटी की सिफारिशों के अनुसार दरों का ट्रिब्यूनल स्थापित न करने से जनता में संदेह और भी बढ़ गया और इससे व्यापारिक क्षेत्रों में असन्तोष ने प्रकट रुप धारण किया।

यात्रियों के उच्चतम किराये में १९२२–२३ में वृद्धि हुई। किन्तु सन् १९२४ में उच्चतम श्रेणी का किराया कम कर दिया गया और तृतीय श्रेणी का किराया उसी स्तर पर रखा गया। यह बात ध्यान में रखी गई तथा प्रथम व द्वितीय श्रेणी की माल की रसीदों में कमी की गई, उसकी प्रति क्रिया स्वरुप यह कार्य किया गया। किराये कम होजाने पर भी आय और यात्रियों में कमी हुई। रेल्वे अधिकारियों ने तृतीय श्रेणी के ट्रेफिक को विकसित करने की ओर ध्यान नहीं दिया किंतु इस पर भी वह वृद्धि पर थी। इसके साथ यदि वे तृतीय श्रेणी का किराया आदि कम कर देते तो निश्चित रूप से आय में भी वृद्धि होती। इसके विपरीत रेल्वे अधिकारियों ने प्रथम और द्वितीय श्रेणी के ट्रेफिक की ओर ध्यान दिया। तृतीय श्रेणी के कम्पार्टमेंट में दम-घुटने जैसी स्थिति में थे वहां प्रथम और द्वितीय श्रेणी बहुत कम वा खाली चलते थे।

सन् १९३०-१९३९ तक दर नीति

आर्थिक संकट के कारण ट्रैफिक रसीदें भी घटी और खर्च बराबर बढ़ते रहे।

रेलवे-शासन जैसा कि उसके लिये यह साधारण वार्ता थी कि उसने खर्च को ठीक रूप देने के लिये किराया में वृद्धि की है। उत्तम तरीका यह होता कि उन खर्चों को व्यवस्थित रूप देने को अन्य उपाय ढूंढ़े जाते। सन् १९३० के अन्त में दरें व किराये प्रमुख रेलवे लाइनों में वृद्धि पा गये। जहां एक ओर रेलवे आय पर व्यापारिक आर्थिक संकट का प्रभाव था वहां दूसरी ओर थोड़ी सी दूरी के लिये मोटर आवागमन उपलब्ध हो रहा था।

मोटर-प्रति स्पर्द्धा से बचने के लिये बहुत सी रेलवे कम्पनियों ने अपने किराये में कमी की, किन्तु लम्बी यात्रा की दरों में परिवर्तन नहीं किया गया। यह एक अवांच्छनीय कदम था। यात्री ट्रैफिक को अतिरिक्त सुविधा देने के लिए टिकट और अन्य अतिरिक्त सेवाएं प्रदान की गईं। सब प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप भी यात्री-ट्रैफिक कम हुआ इसमें आर्थिक संकट और सड़क प्रति स्पर्द्धा कारण थे। निम्नांकित तालिका इस बात को प्रकट करता है—

पेसेन्जर (यात्री)		*ट्रैफिक और रसीद (आय)*
साल	*यात्री संख्या करोड़ों में*	*आय (करोड़ रुपयों में)*
१९२९—३०	६२.४३	३८·५९
१९३८—३९	५३.०६	३०.७३

माल के ट्रैफिक की दरें भी वृद्धि पर थीं जिससे कि उनकी आय में कमी न हो किन्तु फिर भी राज्य द्वारा संचालित रेलवें की आय में कमी रही। यह समय १९३०-३३ का था। सन् १९३४ में प्रथम बार रसीदों की वृद्धि हुई और उससे पुनः समन्वय १९३६ तक होता रहा। कुछ प्रकार के ट्रैफिक ठीक करने के लिये कन्शेसन दरें निर्धारित की गईं। मुख्य रेलवे द्वारा प्रकाश संबंधी दरें भी शुरू की गईं।

सामान का वर्गीकरण १९२२ में शुरू हुआ था जिसका जनता और रेलवे अधिकारियों में से किसी ने भी स्वागत नहीं किया। उनमें भिन्न भिन्न समय पर दोष बतलाये गये और उसमें परिवर्तन की माँग की गई। इसी के अनुसार भारत सरकार ने मई सन् १९३६ में माल का वर्गीकरण किया। इसके अनुसार श्रेणियों की संख्या १० से १६ कर दी गई। वह इस प्रकार है :—

	पाई प्रति मन प्रति मील			*पाईप्रति मन प्रति मील*	
श्रेणी	*उच्च*	*निम्न*	*श्रेणी*	*उच्च*	*निम्न*
१	०·३८	०·१००	३	०·५८	०·१६६
२	०·४२		४	०·६२	
२ अ	०·४६		४ अ	०·६७	
२ ब	०·५०		४ ब	०·७२	
२ स	०·५४		५	०·७६	

६	०·८३		८	१·०४	
६ अ	०·८६	०·१६६	६	१·२६	०·१६६
७	०·६६		१०	१·८७	

दरों के स्तर को साधारण व सरल बनाने के लिये रेलवे अधिकारियों द्वारा कोई भी कार्य नहीं किया गया। वैज्ञानिक अंक उपलब्ध न थे और इस रुप में भिन्न २ वस्तुओं का निर्धारण कठिन व असंभव था। वैज्ञानिक अंकों की बिना उपलब्धि के ये श्रेणी विभाजन बेकार थे। इस संशोधित वर्गीकरण से भी स्थिति में कोई अन्तर नहीं हुआ। कार्य शील खर्च ऊंचे रहे और अपने घाटे को पूरा करने के लिये उसने "डेप्रिशिएशन फण्ड" से रुपया लिया। रेलवे ने कभी भी खर्चों को कम करने का प्रयत्न नहीं किया। प्रो० आर० डी तिवारी के शब्दों में "रेलवे-सड़क व्यवस्था के असफलता का एकमात्र कारण, साहस, दूरदर्शिता और निर्णय की कमी थी। उन्होंने कभी भी ट्रैफिक को आकर्षित करने और मितव्ययता लाने का प्रयत्न नहीं किया। रेलवे अधिकारी अपनी पुरानी भावनाओं के कारणस्वरूप पूर्ण रुपेण परिवर्तन आदि तो न कर सके और उसकी जगह कुछ मितव्ययता करके दरों को बढ़ाते रहे।"

१६४०-४७ तक दर-नीति

द्वितीय महायुद्ध के शुरू होने के साथ ही रेलवे की आय में वृद्धि हुई किन्तु उसके साथ ही मूल्य और पारिश्रमिक आदि में भी वृद्धि हुई। भारत सरकार ने साधारण रूप से आय वृद्धि के लिए मार्च १६४० में दरों और किराये में वृद्धि की।

सिंवा कोयला, कोक, ईंधन, सैनिक सामान, रेलवे सामान, अन्न, खाद को छोड़कर सबमें १२½% की वृद्धि की गई। इसी प्रकार कोचिंग ट्रेफिक में भी वृद्धि की गई। कोयला, कोक, और ईंधन में १२½% से १५% वृद्धि की गई। इसके बाद उसमें २०% वृद्धि हुई। सब यात्री ट्रैफिक में १ आना प्रति रुपया बढ़ा। इस प्रकार साधारण बजट के लिए रेलवे सेवाओं का उपयोग अनार्थिक और अनुपयोगी व संकीर्ण दृष्टि का द्योतक है।

युद्ध का समय रेलवे के लिए वृद्धि का कारण हो सका। अनुमानित ट्रैफिक आय ६६·६२ करोड़ रुपया १६३८-३६ से २२५·७४ करोड़ रुपया १६४५-४६ में हो गई। निम्नांकित तालिका से यह स्पष्ट है कि यात्री और माल ट्रैफिक बढ़ा :—

श्रेणी १ रेलवे (मिलयन)

साल	*यात्री संख्या*	*मील*	*माल (टॅन)*	*टन मील*
१६३८-३६	५१२	१७,७८०	११३,३	२१,७८६
१६४५-४६	१,०१३	३६,६१८	१३२,६	२८,७३२

इसके साथ ही कार्यशील खर्च भी ५४'०१ करोड़ रुपया १६३८-३६ से १४५'०६ करोड़ रुपया १६४५-४६ में हो गया। मूल्य और पारिश्रमिक वृद्धि पर था तथा उसके परिणाम स्वरूप भविष्य में कार्यशील खर्चे भी बढ़ेंगे। युद्ध के समय में नवीन रेल मार्गों की स्थापना का कार्य बन्द था। अतः युद्धके बाद पूर्व स्थापनका प्रश्न सामने आया। आय को बढ़ाने के लिए यात्री किराये में १ आना,१ रुपया पर वृद्धि की गई। यह कार्य १ मार्च १६४७ से ही हुआ। जहां तक सामान का सवाल है, कुल अलग अलग रूप में वृद्धि हुई।

दर-स्तर में दोष

दर स्तर में इतनी जटिलता थी कि हमेशा से जनता की यह मांग रही कि इसे सरल, नियन्त्रित किया जाय। ये शिकायतें वेगवुड समितिके सामने प्रस्तुत की गईं, जिस तालिकामें अपवाद श्रेणी दर के अलावा भिन्न२ मील प्रथा की शिकायत भी थी। जो दरें ली जाती थी वे तीन प्रकारकी थीं—(१)श्रेणी दर(२)शिङ्कल दर (३) स्टेशन दर। भिन्न २ वस्तुएँ १६ श्रेणियों में विभाजित थी। हर एक श्रेणी के लिए उच्चतम और निम्नतम दरें निर्धारित थी जो कि रेलवे बोर्ड की स्वीकृति से थी परन्तु उस मध्य में रेलवे वस्तुऐं ले जाती थीं। ये आधारभूत श्रेणी दरें प्रति मन प्रति मील समान थी। इन दरों में दूरी व दूरी की रुकावट आदि का भिन्न २ प्रकार से निर्धारण न था। श्रेणी दरों के अलावा शिङ्कल्य दरें थीं जो कि उच्चतर स्तर से नीचीं और निम्न से ऊंची थी। स्टेशन दर वा विशेष दर विशेष परिस्थितियों के अनुसार निर्धारित की जाती थी जिससे नवीन उद्योगों को संरक्षण मिले व पुराने उद्योग अपने अस्थायी संकटों का सामना कर सके।

'फ्लैट' समतल-श्रेणी दर लम्बे समय व ट्रैफिक के लिए अनुपयुक्त थी। इसके अलवा शिङ्कल्य दर में भिन्नता थी। अन्न, दर से और अन्य वस्तुऐं भिन्न २ रेलों में भिन्न २ श्रेणियों में रखी गई। आवागमन के खर्चों के अलावा जो भिन्न २ प्रकार के खर्च कम दूरी, अधिक दूरी, जहाज, घाट खर्च—दर के स्तर को भरकम बनाते थे। इस प्रकार के अनुमान में जटिलता बहुत थी और उसके कारण अनुभवी व्यक्ति भी गल्ती कर देते थे। हर एक रेलवे अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हुए व्यापारिक स्वातन्त्र को बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील थीं। प्रत्येक रेलवे ने यह निर्धारण अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को ध्यान में रखते हुए किया था न कि उसमें राष्ट्र और सम्पूर्ण रेलवे का ध्यान रखा।

अखिल भारतवर्षीय रेलवे परिषद ने १९४४ में यह निर्णय किया कि रेलवे दर के साधारणीकरण व स्तर के बारे में जांच की जाय। जांच का कार्य स्वतन्त्रता की प्राप्ति के साथ ही पूर्ण होगया।

सन १९४७-५१ तक रेलवे-दर नीति

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भारत की भिन्न २ रेलवे और राज्य रेलवें एक रूप में मान ली गई। यह आशा की गई थी कि सभी रेलवे अपने शक्ति और साधनों को केन्द्रित कर देश के व्यापार आदि को उन्नत करने की चेष्टा करेंगे।

भारत के विभाजन के परिणाम-स्वरुप ट्रैफिक आय घट गई। माल की आय भी घट गई, उसका कारण कम-दर और 'दंगे' के कारण गड़बड़ी था। रेलवे में पुलिस का आवागमन देश में एक व्यवस्था स्थापन के रुप में बढ़ गया। कुल कार्य शक्ति-व्यय २५ करोड़ रुपया था जिससे केन्द्रीय-वेतन आयोग की सिफारिशें भी व अन्य कन्शेसन तथा कोयले की कीमतें वृद्धि पा गईं।

इन यात्री और माल के खर्चों को व्यवस्थित रुप देने के लिए १ जनवरी १९४९ से दर व कर में वृद्धि की गई। यह सभी श्रेणियों के लिये लागू था। नये किराये श्रेणी बद्ध प्रति पाई प्रति मील, प्रति यात्री निम्नलिखित थे—प्रथम ३०, द्वितीय १६, मध्यम ९ (मेल) और ७ (साधारण) तृतीय ४ (साधारण)। टेलिस्कोप आधार पर किराये में वृद्धि हटाकर समतल (फ्लेट) दर निर्धारित की गई।

यद्यपि रेलवे परिषद-समिति ने अपना साधारणीकरण का कार्य पूरा कर दिया किन्तु उसको १९४० में अन्तिम रुप नहीं दिया जा सका। इस समय के मध्य में घाटे को पूरा करने के लिऐ माल की दर वृद्धि हुई। कुछ वस्तुएं निम्न श्रेणी से ऊंची श्रेणी पर हुईं और कुछ दरों को वृद्धि टेलिस्कोप आधार पर हुई। अन्न की दरों में वास्तविक रुप से कोई भी वृद्धि नहीं हुई। अतिरिक्त किराया २० से ३०% और मासिक व्यय ५०% बढ़ा।

यात्री किराया

यह एक सर्व साधारण की शिकायत थी कि रेलवे अधिकारी आवश्यकता से अधिक प्रथम व द्वितीय श्रेणी को तृतीय श्रेणी की अपेक्षा महत्व प्रदान करते थे। तृतीय श्रेणी में होने वाली आय, कुल का बहुत बड़ा भाग है। रेलवे-मन्त्रणालय ने प्रयोगात्मक रुप में एक नवीन योजना प्रस्तुत की। चतुर्थ श्रेणी विभाजन—प्रथम द्वितीय, मध्यम,तृतीय,परन्तु १९४९में इसको छोड़ दिया गया और इसकी जगह तीन श्रेणी प्रथा का ही अवलम्बन किया गया। प्रथम, द्वितीय, तृतीय। प्रथम में २४ पाई प्रति मील कमी हुई। इस आशा से कि द्वितीय श्रेणी में यात्रा करने वाले

प्रथम में यात्रा करेंगे। किन्तु देखा यह गया कि यह घटा हुआ किराया भी मध्यम वर्ग के लिये भारी था। तीन श्रेणी विभाजन व संशोधित व्यवस्था जिसमें द्वितीय श्रेणी सोने की व्यवस्था शामिल थी न तो अधिक प्रसिद्ध और न सफल ही हुई। प्रथम और द्वितीय श्रेणी के मध्य एक 'विशेष द्वितीय' श्रेणी को लाया गया। यह कार्य १ दिसम्बर १६४६ में कार्यान्वित हुआ और इसका किराया १४ पाई प्रति मील था। सोने व अन्य प्रकार की व्यवस्था प्रदान की गई। इस प्रकार पुरानी चतुर्थ श्रेणी प्रथा को लाया गया।

पूर्व नाम करण प्रथम, द्वितीय, तृतीय, मध्यम १ जुलाई १६५० से पुनः चालू हुआ। अतिरिक्त किराया ६ पाई मी० प्रति यात्री था। प्रत्येक यात्री के लिये हवा युक्त-कोच व्यवस्था समाप्त सी कर दी गई। उसका किराया ३० पाई प्रतिमील हुआ। १ अप्रेल १६५१ को पुनः किरायों आदि में नवीन विकास योजना के द्वारा परिवर्तन लाया गया।

यात्री किराया प्रति मील—पाइयों में

किराया	*हवा श्रेणी*	*प्रथम*	*द्वितीय*	*मध्यम*		*तृतीय*	
				मेल	*साधा०*	*मेल*	*साधा०*
पुराने किराये	३०	२४	१४	६	७.५	५	४
नवीन संशोधित दर	३०	२७	१६	१०.५	६	६	५

तृतीय श्रेणी में प्रथम व द्वितीय श्रेणी के किराये के अनुपात में अधिक वृद्धि हुई। भीड़ तो तृतीय श्रेणी की पुरानी कहानी है। बैठने की व्यवस्था न होने पर भी उच्च-किराये की मांग करना साधारण जनता का शोषण करना ही है जो कि न्याय गत नहीं कहा जा सकता। पुर्नस्थापन की योजना से इन्कार नहीं किया जा सकता किन्तु समय समय पर किराये में वृद्धि अवांच्छनीय है। सरकार को प्रत्येक प्रकार से मितव्ययिता का प्रयत्न करना चाहिये।

माल ट्रेफिक

जैसा कि पूर्व वर्णन हो चुका है कि रेल परिषद—समिति ने साधारणीकरण का जांच-कार्य हाथ में लिया था। सन् १६४७ में एक सलाहकारिणी-समिति-जिसमें दस-आफिसर भी थे—बनाई गई जो कि रेलवे बोर्ड को युद्ध-पश्चात समस्याओं पर राय दे। सन् १६४८ के मध्य में युद्ध पश्चात स्थापित सलाहकारिणी-समिति ने अपना कार्य पूरा कर टेलिस्कोप-श्रेणी—दर और शिड्यूल्य—दर प्रस्तुत की। मंत्रि—मंडल के द्वारा स्वीकृति मिलने के बाद अक्टूबर १६४६ से ही यह नवीन वर्गीकरण कार्य में

लाया गया। इनके निर्धारण में साधारण स्तर का ध्यान रखा गया जिसमें वस्तुओं के मूल्य के साथ आय वृद्धि हो।

निम्नांकित तालिका द्वारा उच्चतम निम्न स्तर दर प्रतिमन का निर्धारित कार्य क्रम समझ में आ सकेगा—

आधार टेलिस्कोप दर

श्रेणी	*प्रथम ३०० मील*	*+ ३०० मील आगे*	*+ उसके आगे की दूरी*	*उच्चतमपाई प्रति मन प्रतिमील*	*निम्नतम पाई प्रतिमन प्रतिमील*	*उच्चतम दर जिसमें जहाजी खर्च नहीं* रु० आ० पा०
१	·४६	·४५	·४०	·४६		
२	·५४	४६	·४५	·५४		३—४—०
						३—१०—०
३	·५८	·५४	·४६	·५८		४—०—०
४	·६३	·५८	·५४	·६३	·१६	४—६—०
५	·६८	·६३	·५८	·६८		४—१२—०
६	·७३	·६८	·६३	·७३		५—२—०
७	·७८	·७३	·६८	·७८		५—६—०
८	·८४	·७८	·७३	·८४		६—०—०
९	·९०	·८४	·७८	·९०		६—७—०
१०	·८७	·९०	·८४	·९७		६—१४—०
११	१·०४	·९७	·९०	१·०४	·२०	७—६—०
१२	१·११	१·०४	·९७	१·११		७—१४—०
१३	१·१८	१·११	१·०४	१.१८		८—८—०
१४	१·४१	१·१८	१·११	१·४१		९—४—०
१५	२·११	१·४१	१·१८	२·११		११—०—०

दरों का वर्गीकरण तीन प्रकार से हुआ (१) स्टैण्डर्ड टेलिस्कोप श्रेणी दर (२) स्टैण्डर्ड टेलिस्कोप वेगन भार दर (३) स्टेशन—स्टेशन दर।

स्टैण्डर्ड–टेलिस्कोप श्रेणी दर—सभी वस्तुएं १५ श्रेणियों में विभक्त हैं। इनको अनुमानित करने का ढंग टेलिस्कोप है। उच्चतम दरें जो कि तालिका में हैं वे इस बात को प्रकट करती हैं कि प्रतिमन, प्रति मील प्रथम ३०० मील में क्या लगेगा।

स्टैण्डर्ड–टेलिस्कोप वेगन भार स्तर दरें—वे हैं जो ट्रेफिक चलने पर बोल दी जाती हैं। ये स्टैण्डर्ड टेलिस्कोप श्रेणी दर से कम होती है किन्तु कुछ विशेष वस्तुओं के ही प्रयोग में आती है।

स्टेशन स्टेशन दर—यह विशेष दर है जो कि कुल दूरी जो कि दो स्थानों (स्टेशन सिर्फ) में होती है, ली जाती है। व्यक्तिगत रेलवे को अभी भी यह अधिकार है कि वह स्टेशन–स्टेशन दर घोषित करें जो कि स्टेण्डर्ड टेलिस्कोपश्रेणी से कम होती है परन्तु यह अधिकार सीमित है। कोई भी रेलवे किसी भी वस्तु में साधारण घटाव नहीं कर सकती।

कोयले कोक व ईंधन के लिए अलग दरें निर्धारित की गई हैं। इसके अलावा अल्प–दूरी ६ पाई प्रति मन सभी वस्तुओं पर ली जाती है जब कि दूरी ७५ मील से कम हो। चारे आदि के लिये भी विशेष दरें निर्धारित की जाती हैं जब कि सरकार रेलवे को राय देती है और जब उसकी आवश्यकता अनुभव हो।

शिड्युल्य–दरों और विशेष दरों की समाप्ति ने दरों की विशुद्धि और निर्भरता पर जोर दिया है। रेलवे बोर्ड ने भी सभी रेलवें को इस प्रकार का आदेश दिया है कि वे दर रजिस्टर तैयार करे। जनता की यह एक पुरानी शिकायत है कि दर–रजिस्टर के अभाव में उसे इसकी पूरी सूचना पाने में अत्यन्त आपत्ति का सामना करना पड़ता है। ऐसी आशा की जा सकती है कि इस दर रजिस्टर के बनने से यह शिकायत दूर हो सकेगी।

एक महत्वपूर्ण परिवर्तन जो कि नवीन नीति द्वारा आया है वह टेलिस्कोप आधार का अपनाना है जिसमें मील और वेगन शिड्युल्य दर शामिल है। अब दूरी स्टेशन से लेकर निर्दिष्ट स्टेशन तक बिना सीमा को ध्यान में रखे गिनी जाती है। जहां पहिले अन्य खर्च अलग अलग होते थे परन्तु अब एक स्तर किया गया है।

युद्ध-पूर्व समय में व्यक्तिगत रेलवे द्वारा कम दूरी वा रास्ते का सस्ता दाम लेना उसकी दूरी की कमी का सूचक नहीं था। अब ऐसी बहुत सी भिन्नताओं को हटा दिया गया है। नवीन पद्धति के श्री गणेश से रास्ते की समस्या का हल स्पष्ट निकल सका है। किन्तु जटिलता वहां उपस्थित होती है जहां कि वास्तविक रूप में दो स्टेशनों के मध्य दो प्रकार से मार्ग जावे। इसमें कम दूरी वाला स्थान कम समय का स्थान नहीं ग्रहण कर सकता और न आर्थिक अन्तर ही पैदा कर सकता है। अतः रेलवे परिषद–समिति और रेलवे बोर्ड ने यह तय किया है कि ७५ मील से कम में जहां कि टूट न हो उतार–चढ़ाव खर्च जोड़ दिया जाय।

इस नवीन–दर स्तर की सफलता वा असफलता ही स्टेशन-स्टेशन से दरों की घोषणा की सार्थकता प्रकट करेगी। यदि कुछ सालों में ट्रैफिक का भार टेलिस्कोप दरों पर ठीक रुप से चल निकलेगा तो सफलता है और यदि यह पाया जाय कि ट्रैफिक पर प्रति स्टेशन खर्च लिया जाता है तो यह साधारणीकरण करने का प्रयत्न एक असफलता मानली जायगी।

किन्तु इन आधुनिक परिवर्तनों से भी जनता सन्तुष्ट नहीं हुई है। व्यापारिक जाति तो और भी साधारणीकरण के लिये दबाव डाल रही है। घाट और कम दूरी खर्च अभी भी असमान है। रिस्क रेट की समस्या अभी भी ज्यों की त्यों है और उसमें महान परिवर्तन की आवश्यकता है। व्यापारी मालिक की जिम्मेदारी पर जहाजी इच्छा का उपयोग करता है अथवा किन्ही में रेलवे रिस्क के आधार पर। इन दोनों में अन्तर होता है।

यह एक सर्व साधारण की मांग है कि एक केन्द्रीय दर निर्धारण समिति की स्थापना की जाय। राशनिंग को नीति के साथ हो हमें आवागमन की सुविधाओं का ख्याल रखना होगा। रेलवे दरों का ठीक रूप से निर्धारण तब तक संभव नहीं है जब तक कि रेलवे, सड़कें, आन्तरिक, वाह्य, तटीय, जल-आवागमन का समन्वय न हो। अत्र जो भी दर निर्धारण समिति में है उन्हें राष्ट्रीय कल्याण के दृष्टिकोण को सामने रखकर व्यापार, उद्योग, कृषि की उन्नति का लक्ष्य सामने रखकर यह कार्य करना चाहिए।

यात्री और माल ट्रेफिक आय तुलना

रेलवे द्वारा जो ट्रेफिक को लेने ले जाने का आन्दोलन चलाया गया उसके द्वारा राष्ट्र का कार्य विकास की दिशा में बढ़ा। वे देश के कुल यात्री ट्रेफिक का ८०% और माल का ७०% ले जाती है। सन् १६०० में कुल माल ट्रेफिक ७००० मिलियन टन अनुमानित है वह १९४६-५० में २५·०१८ मिलियन टन बढ़ा है। इस प्रकार की वृद्धि भारत की आर्थिक प्रगति का सुन्दर सूचक है।

द्वितीय महायुद्ध के कारण यात्री और माल का आना जाना बढ़ा। यात्री ट्रेफिक १९४६-५० में यात्री संख्या को देखते हुये १६३८-३६ से तिगुना था। यात्रियों की एक्सप्रेस, व साधारण से यात्रा १५६% युद्ध पूर्व समय से अधिक थी। फ्रेट भी इसी प्रकार की वृद्धि बतलाता है। टन प्रतिशत २१% युद्ध पूर्व से अधिक है और वही ३५% टन मील वृद्धि बतलाता है।

निम्नांकित तालिका इन दोनों की तुलनात्मक समीक्षा का सुन्दर अंकन है—

माल और यात्री आय
(अनुमानित)

साल	*यात्री आय*	*माल आय*
१६००	३३	६५
१६०६	३७	६०
१६१६-२०	४४	५३
१६२५-२६	४०	५७
१६२६-३०	३८	६०

१९३३-३४	३५	६२
१९४१-४२	३५	६२
१९४४-४५	४७	५०
१९४६-४७	४९	४६
१९४७-४८	४८.५	४६
१९४८-४९	४९	४६
१९४९-५०	४७	५१
१९५०-५१	४४	५५
१९५१-५२	४३	५५

उपर्युक्त अंकों से यह स्पष्ट प्रतिभासित होता है कि यात्री (भार) ट्रैफिक अधिक विकास प्रकट करता है और दोनों के बीच आय का स्तर अर्थात् फ्रेट और यात्री ट्रैफिक लगभग समान है। यह यात्री ट्रैफिक बढ़ने का परिणाम है। यद्यपि यात्रियों की पर्याप्त भीड़ आदि आपत्तियों का सामना करना पड़ता है फिर भी उनका घनत्व कम नहीं होता। १९४८-४९ से यात्री ट्रैफिक का प्रतिशत में जो कमी अनुभव होती है उसका कारण उनके आवागमन में कमी हुई, उस बात की निर्देशक सूचना नहीं है वरन् १ अक्टूबर १९४९ से नवीन संशोधित स्टेण्डर्ड दरों के निर्धारण से यह वस्तु स्थिति घटित हुई है।

अध्याय १७

भारतीय रेलों की प्रमुख-समस्या

PROBLEMS OF INDIAN RAILWYS

बिना टिकट यात्रा—

एक बहुत ही स्थायी समस्या जो भारतीय रेलवे के सन्मुख है, वह है बिना टिकट यात्रा। टिकट—विहीन यात्रा से होने वाले नुकसान का हम अन्दाज ठीक रूप से नहीं लगा सकते। रेलवे बोर्ड ने अभी हाल में इस प्रकार के वार्षिक नुकसान के अंक २ करोड रुपये बतलाये हैं। कुंजरू—समिति की सूचना अनुसार— "टिकट विहीन यात्रा करने वाले तीन श्रेणी में विभक्त किये जा सकते हैं"—(१) वह धोखे बाज व्यक्ति जो कि पास में पैसा रखता है परन्तु यदि संभव हो तो किराया तक नहीं देना चाहता (२) द्रव्य हीन यात्री (३) परिस्थितियों के शिकार जो कि टिकट खरीदने का प्रयत्न करता है परन्तु खरीद नहीं सकता। साधारणतया उसका कारण या तो बुकिंग—आफिस समय पर नहीं खुलता या उसे ऐसी सुविधा नहीं मिलती।

भारत और अन्य देशों में रेलवे को धोखा देना अनैतिकता नहीं मानी जाती है। "वास्तव में व्यापारी को धोखा, आयकर से बचना और बिना टिकट—रेलवे यात्रा करना कभी कभी साहसिक कार्य माने जाते हैं" प्रथम श्रेणी के बिना टिकट यात्रा करने वाले को निषेध्यात्मक कानूनों द्वारा ही बंद किया जा सकता है। कुंजरु समिति ने यह सिफारिश की है कि स्टेशन पर निगरानी चतुर जांचकर्ता और अतिरिक्त पुलिस की नियुक्ति इसके रोकने में सहायक हो सकते हैं। साथ ही जहां कहीं इससे भी अधिक आवश्यकता अनुभव हो वहाँ पर रेलवे मजिस्ट्रेट भी नियुक्त किये जांये जिससे अनाधिकार चेष्टा रुके। द्रव्य हीन लोगों की संख्या भी कम की जा सकती है यदि टिकट—जांचने का खर्च प्रभाव पूर्ति हो। तीसरी श्रेणी के टिकट विहीन यात्री रेलवे की अनिपुणता के द्योतक हैं।

इन साल में रेलवे ट्रैफिक का बनन्व काफी विस्तार पा गया है। सन् १९४९—५० में यात्री-ट्रैफिक १९३८—३९ से दूना था। यात्री मील—यात्रा युद्ध-काल से पूर्व १५९% अधिक थी युद्ध के पश्चात जो एक समस्या साधारण आदमी को आश्चर्य में डालती है वह यह कि भीड़ का बढ़ना। बहुत बड़ी संख्या में यात्री

टिकट नहीं ले सकते और परिणाम स्वरूप वे बिना-टिकट यात्रा करते हैं। साथ ही तृतीय श्रेणी में भीड़ अधिक होने से उन्हें उच्च श्रेणी में यात्रा करने के लिये मजबूर होना पड़ता है। दशा आजकल सुधर गई है किन्तु अभी अतिरिक्त भीड़ हटाने का प्रयत्न करना है।

इस समस्या को शक्ति के साथ हाथ में लेना चाहिये। टिकट-विहीन यात्रा को पूर्ण रूपेण रोका जाना संभव नहीं है जबतक कि रेलवे कर्मचारी इस बुराई के विरुद्ध कटिबद्ध नहीं हो जाते। कुछ हद तक तो रेलवे टिकट जांचने में भी भ्रष्टाचार-विरोधी संस्था बनाना चाहिए जो कि विश्वास आदि का सामना करे। अतिरिक्त बुकिंग आफिस खोले जायें और उनका समय टिकट की मांग के आधार पर हो। इसके अलावा स्टेशन के दरवाजों पर हुई बुराइयों का निराकरण हो जिसमें टिकट जांचे जाय और अचानक तालाशी ली जाय। रेलवे-मजिस्ट्रेट और विशेष पुलिस इस बुराई से लड़ने के लिये नियुक्त की जावे। भिन्न रेलवे व्यवस्थाओं द्वारा टिकट विहीन यात्रा को रोकने के प्रयत्नों के लिये जाने के बाद भी, उत्तर प्रदेश और बम्बई सरकार ने इसके लिये विशेष प्रयत्न किया है। इन सब प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप दशा में कुछ सुधार है।

यात्रियों को सुविधायें

भारतीय रेलवे बराबर इस ओर प्रयत्नशील है कि निम्न श्रेणी में यात्रा करने वाले को अधिक से अधिक सुविधाएं मिलें। गत तीन साल से इस बात की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। १९४६-४७ "में उत्तमता कोष १ की स्थापना की गई जिससे कि निम्न श्रेणी में यात्रा करने वालों की सुविधाओं की योजना थी। किन्तु अलग रेलवे प्रथा में सुधार करने के मार्ग के अनुसरण के कारण स्वरूप "उत्तमता कोष को विकास कोष में परिणित कर दिया गया जो—(अ) यात्रियों की सुविधाएँ (आ) श्रम-उन्नति (इ) रेलवे योजना जो कि आवश्यक हो परन्तु ये पुरस्कारयुक्त कई कार्यों में विभाजित था।

पुर्व तीन श्रेणियों का विभाजन इस इच्छा से किया गया कि जिससे कि अधिक सुविधाएँ मिले। किन्तु रेलवे को पुनः पुराने चार श्रेणी विभाजन पर लौटना पड़ा कारण कि नवीन ढंग सफल नहीं हुआ। इस बात के प्रयत्न किए जा रहे हैं कि अधिक भीड़ हटे और दशा में सुधार हो। बड़ी चौड़ी कुर्सियां और पंखों की व्यवस्था तृतीय श्रेणी के लिये की जा रही है। सामाजिक नेतृत्व करने वाले मनुष्य नियुक्त किये गये हैं जोकि रेलवे स्टेशन पर यात्रियों की रक्षा करें। एक पंच वर्षीय योजना जो कि सन् १९५० से चलेगी वह ३ करोड़ रुपया प्रतिवर्ष सुविधाओं की वृद्धि के लिये व्यय करेगी। उदाहरण के लिये विश्रामगृह, प्लेट-फार्म पर चद्दर पंखे आदि लगाना।

अतिरिक्त बुकिंग आफिस सुविधाएं कई जगह सुविधा के लिए प्रदान की गई है। विश्राम गृह आदि भी बनाये गये हैं बिजली, पंखा, छत,सड़क आदि की सुविधाएँ यात्रियों के लिये की गई हैं।

रेलवे में अभी भी अधिक भीड़ चल रही है। उसके लिए महत्वपूर्ण कारण जो इसका उत्तरदायी है वह डिब्बों की कमी है जो कि पर्याप्त समय से पुर्न स्थापन की आवश्यकता अनुभव कर रहे हैं। साथ ही राष्ट्र में इस प्रकार के निर्माणकारी कारखानों का अभाव है। इसको दूर करने के लिए विशेषतः एक्सप्रेसकी जगह जनता एक्सप्रेस चली है। इस प्रकार की रेलों की संख्या १८ हैं।

रेलवे का विद्युतिकरण

यह एक महत्वपूर्ण शक्ति का कार्य है। एक तृतीय श्रेणी की रेल वा पटरी के लिए भी बहुत अधिक पूंजी और संग्रह की आवश्यकता है जिसमें फीडर, तार, उप स्टेशन बनाने होते हैं। यह पूंजी जो कि एक स्थान पर व्यय हो जाती है वह इतनी दृढ है कि यदि वह योजना असफल हो जाती है तो भी वह वहां से हटाई नहीं जा सकती।

रेलों का विद्युतीकरण करने से कई लाभ होंगे। इससे कोयले की बचत हो सकती है जो कि अन्य जगह औद्योगीकरण में सहायक हो सकता है। प्रत्येक भारतीय अर्थ शास्त्र के विद्यार्थी को यह ज्ञात होगा कि उच्च श्रेणी का कोक, भाप, गैस कोयला भण्डार केन्द्र भारत में सीमित रूप में है। समय २ पर इस बात की मांग उठती है कि उच्च श्रेणी का कोयला अन्य उद्योगों के लिए सुरक्षित रखा जाय जब कि रेलवे में अन्य प्रकार का कोयला प्रयोग में लाया जा सकता है। कारण कि उसकी ४% शक्ति ही उपयोग में लाई जाती है और बाकी बेकार जाती है। इसके अलावा भी उच्च श्रेणी के कोयले की अपनी रसायनिक और औद्योगिक महत्ता है। उसके आन्तरिक तत्वों पर बहुत से उद्योग निर्भर करते हैं। लोह फौलाद उद्योग जिसकी सीमा विस्तारयुक्त है उसे उच्च श्रेणी का कोयला बहुत बड़ी तादाद में चाहिए और इधर रेलवे का कोयले का प्रयोग व्यक्तिगत रूप से राष्ट्र की औद्योगिक प्रगति रोकता है।

विद्युतीकरण से कोयले का उपभोग कम हो जायगा। इसके अलावा गर्म शक्ति स्थान जो कि विद्युत पूर्ति कार्य करेंगे उससे भी कोयले में ६०% बचत होगी। इसके अलावा ऐसे स्थानों में निम्न श्रेणी का कोयला भी प्रयोग में आ सकता है। इसके साथ ही जहां पर जल शक्ति प्राप्त है वहां कोयले की १००% बचत हो सकती है।

विद्युतीकरण से गति में भी अन्तर आ सकता है कारण कि वैसे उन्हें कोयले व पानी आदि लेने के लिये के लिए ठहरना पड़ता है इसके अलावा

मरम्मत आदि में भी भाप से कम समय लगता है। भारतीय रेलवे जांच आयोग ने १६४७ में यह अनुमान लगाया 'एक विद्युत यन्त्र भाप के यन्त्र से दूना मील ले जाने में वार्षिक रूप से सहायक है और इस रूप में वह पूंजी की कमी ही होगी पर साथ ही एक विद्युत यन्त्र की कीमत भाप वाले यन्त्र से ५०% ऊंची होगी।' विद्युत शक्ति यन्त्र का वार्षिक खर्च कम होता है अपेक्षाकृत वाष्प के। कारण उसका यह होता है कि उसमें आइल आदि की आवश्यकता नहीं होती। श्रमिक खर्च भी बढ़ जाता है। डा० डी० एल० मलहोत्रा के कथनानुसार निम्नांकित खर्च विद्युत और वाष्प खर्च में गिने जा सकते हैं।

प्रति एन्जिन मील रुपयों में

	वाष्प	*विद्युत*
मरम्मत	०·७	०·४
लुबरीकेशन	०·०६	०·०१
पानी	०·०८	—
	०·८४	०·४१

विद्युतीकरण में एक अतिरिक्त लाभ यह भी है कि इसमें धुंओं का असर नहीं होता। इससे यात्रियों का सुख बढ़ता है। साथ ही स्टेशन की सफाई का खर्च कम पड़ता है और सिगनल बिलकुल स्पष्ट दीखते हैं। इस से गति बढ़ती है और समय आदि का सदुपयोग होता है। इससे एक पथ पर ही अनेकों गाड़ियों के चलने की सुविधा मिलती है। सामयिक सेवाएं भी इसके द्वारा प्रदान की जा सकती हैं।

रेलों के विद्युतीकरण के लिए बहुत बड़ी भारी पूंजी की आवश्यकता है जिससे कि सेवायें सस्ते में उपलब्ध हों और घनत्व भी ठीक रूप से हो। उन क्षेत्रों के लिए भी विद्युतीकरण न्यायसंगत है जहां कि कोयले की पूर्ति कठिनाई से हो या न हो। अपवाद में जी० आई० पी० भोर,और थाल घाट। प्रथम विद्युत लाइन१६२५ में खोलीं गई। उसके बाद इस दशा में बहुत ही कम प्रगति की गई है। ऐसी आशा की जाती है कि देश में जल-विद्युत की योजना के सफल होने के बाद मुख्य रेलों के विद्युतीकरण के प्रश्न को उठाया जायगा।

सवारी गाड़ी की सुरक्षा और दुर्घटनाएं

जहाँ तक सुरक्षा का प्रश्न है वहां तक भारतीय रेलवे विदेशी रेलों की तुलना में प्रशंसा पात्र हैं। दुर्घटनाओं और मृत्यु का अनुपात लाखों में से अनुमान किया जाता है। १६४६-५० की दुर्घटनाऐं ०·०८ और आकस्मिक ०·२६। १६४६-५०

में अन्य समय से अधिक दुर्घटनाएं हुई हैं। निम्नलिखित तालिका १९४५-४६ से १९४९-५० तक की दुर्घटनाओं आदि का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करेगी :—

साल	संख्या	घटनाएं	संख्या	दुर्घटनाएं
१९४५–४६	५९	०·०८	२५३	०·२३
१९४६–४७	९३	०·०८	३४०	०·२९
१९४७–४८	२९·८	०·२९	७२१	०·६९
१९४८–४९	५५	०·०५	२६०	०·२२
१९४९–५०	१११	०·०८	३६५	·०२९

सन् १९५०–५१ की दुर्घटनाओं में पर्याप्त जन क्षति हुई। उनमें चार मुख्य है और उनमें मरने वाले की संख्या १६६ है। कुछ भले ही असावधानी और गल्ती से हुई हो परन्तु बाकी रास्ते से हटने पर ही हुई।

पथ से हटने पर राज्य सरकारों द्वारा, रेलवे अधिकारियों द्वारा, सुरक्षा पुलिस द्वारा पर्याप्त विवाद हो चुका है। अतः उसके परिणाम स्वरूप पेट्रोल आदि की व्यवस्था तथा पाइलट एंजिन की व्यवस्था तथा सुरक्षा पुलिस का प्रबन्ध कर दिया गया है। इसके साथ ही निश्चित रेलवे लाइनों पर रास्ते जल्दी से गर्म न हों उसके लिये विशेष योजना की गई है।

दो एंजिनों की सेवा, जो कि एक तो लोकोमोटिव में ठीक हो और दूसरा पथ में, धारणा फ्रांस की राज्य रेलवे अधिकारियों से आई। उसका कारण शिकायतों के बारे में अधिक पूंछताछ व पथों का अस्त व्यस्त होना था। उन्होंने इस बात की सूचना दी की डब्ल्यू० पी० लोकोमोटिव ६० मील प्रति घण्टा चाल से चले तो सुरक्षित है, मुआवजों आदि की शीघ्र ही जांच–पड़ताल हो सके इसके लिये क्लेम–कमीशन नियुक्त किये गये हैं जो कि इसकी पूरी व्यवस्था करे।

विभागीय प्रथा

किसी भी बड़े उद्योग में और विशेषतः रेलवे उद्योग में कई प्रकार के कार्यों का सम्पादन होता है और कई स्थानों पर होता है। कार्य विभिन्न भागों में विभाजित किया जा सकता है। उसके दो भाग, कार्य की व भाग की दृष्टि, से किये जा सकते हैं। प्रत्येक प्रकार के कार्य के वर्गीकरण का पहले निर्धारण होता है और उससे सम्बन्धित कर्मचारी को वह कार्य भार सौंप दिया जाता है। इसके पश्चात भागीय (देश के भागों रूप में) वर्गीकरण किया जाता है जिसमें एक अधिकारी पूर्ण रूपेण अपने उत्तर–दायित्वों को निभा सकता है। इन सब में समन्वय पैदा करने के लिये एक जनरल मैनेजर कार्यकारिणी में से होता है और कुछ सलाहकार होते हैं। यह आदेशों की श्रृङ्खला दो उपायों (कार्य विभागीय) से सम्बन्धित होती है।

विभागीय संस्था में प्रत्येक भागीय अधिकारी प्रत्यक्ष रुप से प्रधान अधिकारी के प्रति उत्तरदायी होता है अर्थात् सभी अधिकारी किसी विशेष विभाग के अन्तर्गत उसके प्रधान अधिकारी के प्रति उत्तरदायी होते हैं और उससे जनरल मैनेजर के प्रति उत्तर दायी होते हैं।

भागीय संस्थाएं में एक भागीय सुपरिनटेन्डेन्ट नियुक्त किया जाता है जिसके प्रति सभी विभागीय अधिकारी जो कि उस भाग में होते हैं और भागीय अन्य अधि-कारी उसके प्रति उत्तरदायी होते हैं और उसके द्वारा जनरल मैनेजर के प्रति उत्तर दायी होते हैं। जनरल मैनेजर मुख्य अधिकारियों की नियुक्ति अपनी सहायता के लिये करता है जो कि उसके मुख्य सहकारी रुप में कार्य करते हैं।

विभागीय-प्रथा के गुण-दोष

इस प्रकार की व्यवस्था एक केन्द्रीय रूप लेती है। बहुत से अधिकारी अपने विभागीय कार्य में विशेषज्ञ होते हैं और उसके कारण अपने कार्य में निपुण हो जाते हैं। मुख्य अधिकारी सारे विभाग की समस्या को सोचने में उत्तम रहते हैं। इससे अपव्यय और देरी का बचाव होता है। यह देखा गया है कि विभागीय रेलवे में जिला अधिकारी अच्छी तरह से प्रत्यक्ष नियन्त्रण रख सकता है इससे अनुशासन और निपुणता बढ़ती है।

किन्तु विभागीय व्यवस्था में कुछ दोष भी है। कई विभागों में पत्र व्यवहार में ही पर्याप्त समय नष्ट हो जाता है। इसके अलावा भिन्न भिन्न अधिकारियों में किसी वस्तु को देखने की अलग अलग वृत्ति होती है। अतः उनमें समन्वय कठिनाई से होता है। यह भी डर रहता है कि स्थानीय अधिकारियों को हटा दिया जाय और उसके बाद जनता का सम्पर्क न बढ़ सके। यदि विभाग में इस प्रकार का मतभेद हो तो किसी निर्णय पर नहीं पहुंचा जा सकता है जब तक कि मामला स्वयं मैनेजर के पास न पहुंचे। जब हम इसके गुणों अवगुणों का समन्वय करते हैं तो यह कह सकते हैं कि इसमें केन्द्रीयता का रूप है परन्तु केन्द्रीय रूप इतना भारी और भरकम हो जाता है कि जिसके परिणाम स्वरूप किसी जिले में किसी को उत्तर-दायित्व सौंपना जटिल हो जाता है जो कि प्रयत्क्ष रूप में एक अवगुण है।

भागीय (डिवीजनल) प्रथा के गुण-दोष

इस व्यवस्था में किसी व्यापारिक क्षेत्र में अधिकारी कर्मचारी और एन्जीनियर एक मुख्य अधिकारी के प्रति उत्तर-दायी होते हैं। इसमें एक गुण यह है कि कार्य शीघ्र और निर्णय बिना मत भेद के हो जाते हैं। इससे पत्र व्यवहार की दुविधा बच जाती है। उत्तर दायित्व का भार हस्तान्तरित किया जा सकता है। इसमें विकेन्द्रीय करण का गुण है और स्थानीय-समन्वय की महत्ता है।

किन्तु भागीय व्यवस्था भी अपने आपको अवगुणों से नहीं बचा सकी है क्योंकि इसमें विशेषज्ञता का अभाव होता है। यह भी कहा जा सकता है कि यह प्रथा अपव्ययी भी है और अधिकारियों में व्यक्तिगत सम्पर्क का अभाव होता है कारण कि भाग काफी बड़े होते हैं। यदि रेलवे विभागीय संस्था रूप है तो उसमें १० भाग या जिले होंगे। किन्तु वही भागीय व्यवस्था में सिर्फ ५ विभाग से ही अपना काम निकाल ले। इसके साथ ही सम्पर्क के अभाव के कारण डिवीजनल–अधिकारी अपने कार्यालय पर ही रहते हैं। यह साधारणतया स्वीकार किया जाता है कि बड़ी व्यवस्था भागीय कार्य ठीक रूप से कर सकेगी। विभागीय व्यवस्था छोटी रेलवे के लिये अधिक उपयुक्त है उसकी सीमायें बिल्कुल स्पष्ट है।

दोनों प्रकार की व्यवस्थाएँ—विभागीय और भागीय–भारतीय रेलवे में पाई जाती है। ई० आई० और ई० पी० रेलवे भागीय संस्था रखते हैं जब कि अन्य की व्यवस्था विभागीय है। जी० आई० पी० रेलवे की व्यवस्था दोनो का मिश्रितरूप है। विभागीय–संस्था पूर्ण रूपेण कुछ अधिक लाभ-दायक मालूम हुआ। कुंजरू–समिति की सूचना में—'इसके कुछ भी कारण हो किन्तु विभागीय-व्यवस्था ने सिवाय बी० बी० एण्ड० सी० आई० को छोड़कर हर ओर संतोष जनक परिणाम दिखाये हैं।' किन्तु समिति ने इस बात की भी सिफारिश की है कि भागीय प्रथा को बिल्कुल ही छोड़ने से पूर्व उसकी पूरी जांच कर लेनी चाहिये। अभी तक सरकार को जोन–शासन के लिये कौन सी व्यवस्था अपनानी चाहिये इसका निर्णय नहीं किया है। जोन का निर्माण अपने आश्रय के आधार पर ही होगा। अंतिम निर्णय में पर्याप्त अनुभव प्राप्त होंगे और दोनों के गुणों का समन्वय हो सकेगा।

माल-ट्रेफिक-कार्य

युद्ध और युद्ध पूर्व में माल को भेजने में वेगन की कमी खटकती थी। वेगन की कमी कुल वेगन संख्या पर नहीं किन्तु उनके उपयोग पर निर्भर करती है। कुंजरू–समिति ने यह वर्णन किया है—'वेगन की कमी एक रोग के लक्षण हैं। यह स्वयं रोग नहीं है। एक व्यापारी जब ५ वेगन चाहता है और रेलवे एक की योजना करती है तो इसका मतलब यह नहीं कि दूसरे चार का अस्तित्व नहीं है। उसका मतलब यही है कि वे कहीं लगे हुये और उन्हें इस रूप में बर्ता जा रहा है कि जिसमें उसका पूरा उपयोग न हो सके।"

कार्य बीच में 'रोकना' देरी के कारण है। किन्हीं स्थानों पर इनकी भीड़ विशेषत: बड़े शहरों में ही देरी के मुख्य कारण है और उसके कारण बहुत बड़ी संख्या में वेग कट कर पड़े रहते हैं।

अध्याय १८

भारत में सड़कों के विकास का इतिहास

ROAD DEVELOPMENT IN INDIA

अति प्राचीन काल से ही भारतीय शासक राष्ट्र की उन्नति में सड़कों का महत्व समझते रहे हैं। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में जो खुदाई की गई, उससे इस बात के पर्याप्त प्रमाण मिले हैं कि भारतीय ५००० वर्ष पूर्व भी सड़कें बनाने की कला में निपुण थे। २५०० और ३५०० वर्ष पूर्व जो नगर विद्यमान थे उनमें सड़कें काफी चौड़ी थी तथा पानी के निकास के लिये भी उचित प्रबन्ध था। आर्य काल में भी उत्तम सड़कों का अभाव नहीं रहा। राजा बिम्बसार द्वारा ६ वीं शताब्दी में बनाया गया एक महापथ अब भी पटना जिले के दक्षिणी पूर्वी भाग में स्थित है। मौर्य काल में भी सड़कों की व्यवस्था बड़ी उत्तम थी। इसका प्रमाण कौटिल्य के अर्थशास्त्र से मिलता है। कौटिल्य के अनुसार राजकीय मार्ग (जिन पर रथ चलते थे) तथा चरागाहों को जाने वाली सड़कें २४ फीट चौड़ी होती थी। युद्धस्थलों, शमशानों और गांवों को जोड़ने वाली सड़कें ४८ फीट तथा बागों, बगीचों और जंगलों को जाने वाली सड़कें २४ फीट और मनुष्यों तथा चौपाये के उपयोगार्थ ३ फीट चौड़ी सड़कें बनाई जाती थी। चन्द्रगुप्त के राज्य काल में सड़कों की व्यवस्था की देख रेख करने के लिये एक यातायात विभाग होता था तथा निश्चित दूरी पर जगह २ ऊंचे खंभे गड़े हुए थे जिन पर दूरी अङ्कित रहती थी। एक मुख्य सड़क पटना से उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त को जोड़ती थी। स्ट्रैबो का मत है कि इस मार्ग के सहारे सहारे ईरस्टथनीज़ और मेगस्थनीज़ दो यूनानी विद्वानों ने भारत का भ्रमण किया। इन सड़कों का बीच का भाग कुछ उन्नतोदर होता था जिससे पानी सुगमता पूर्वक बहकर चला जा सकता था।

सम्राट अशोक ने भी अपने राज्य काल में सड़कें बनाने में बड़ा ध्यान दिया। उसके समय के एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि उसके राज्य में सड़कों के दोनों किनारे बड़ आदि के छायादार वृक्ष लगाये जाते थे, जिसके नीचे यात्री और पशु थकान दूर करने के लिए विश्राम करते थे। प्रत्येक आधे कोस की दूरी पर आम-जामुन आदि फलों के वृक्ष लगे हुए थे। सड़कों के किनारे यात्रियों की सुविधा के लिये मीठे पानी के कुएं और पक्की धर्मशालाएं भी निर्माण की गई थी। ५ वीं

शताब्दी में आने वाले चीनी यात्री फाहीयान ने उस समय की सड़कों की स्थिति की बडी प्रशंसा की है। इस प्रकार हिन्दू राज्य काल में ऐसी सड़कें अधिक थी जो देश के विभिन्न भागों को राजधानी से जोड़ती थी।

मुस्लिम काल में भी रोड निर्माण में काफी प्रगति होती रही। मुहम्मद तुगलक ने एक ट्रंक रोड दिल्ली से दौलताबाद तक बनाई जिसके बारे में मुस्लिम यात्री इब्न-बतूता का कहना है कि यह यात्रा ४० दिनों में समाप्त होती थी। सड़क के दोनों ओर कई प्रकार के छायादार वृक्ष लगे थे जिससे यात्री यही समझता था कि वह एक सुन्दर बाग में होकर गुजर रहा है। प्रत्येक तीन मील के अन्तर पर विश्राम घर भी बनाये गये थे। शेरशाह के राज्य काल में भी सड़कों की रक्षा की जाती थी। *तारीखे शेरशाही* नामक पुस्तक में इस सम्बन्ध में लिखा है कि 'बादशाह ने गरीब यात्रियों की सुविधा के लिये सड़क के दोनों ओर प्रति दो कोस की दूरी पर सरायें बना रखी हैं। एक सड़क तो उसने पंजाब में अपने किले से आरम्भ कर पूर्वी बंगाल के सुनार-गांव तक बनाई थी। एक दूसरी सड़क उसने आगरा से दक्षिण में स्थित बुरहानपुर तक बनवाई थी। इसके अतिरिक्त एक सड़क आगरा से जोधपुर और चित्तौड़ तथा दूसरी लाहौर से मुलतान तक भी बनवाई जिनके किनारे यथा स्थान सरायें भी बनाई गई थी। उसने सब मिला कर विभिन्न सड़कों पर १७०० सरायें बनवाई। सड़कों के किनारे फल और छायादार वृक्षों का भी प्राचुर्य्य था जिसके नीचे थकित यात्री विश्राम करते थे।" इस प्रकार मुग़ल काल में सड़कों की देखरेख और निर्माण होता रहा। १८ वीं शताब्दी में लिखी गई *चहार गुलशन* (Chahar Gulshan) नामक पुस्तक में २४ सड़कों का वर्णन मिलता है जिनमें से १३ मुख्य इस प्रकार थीं—(१) आगरा—दिल्ली; (२) दिल्ली—लाहौर; (३) लाहौर—गुजरात—अटक; (४) अटक—काबुल (५) काबुल—गजनी—कंधार; (६) गुजरात—श्रीनगर; (७) लाहौर—मुल्तान; (८) दिल्ली-अजमेर; (९) दिल्ली—बरेली—बनारस—पटना; (१०) दिल्ली—कोल, (११) आगरा-इलाहाबाद; (१२) बीजापुर—उज्जैन और (१३) सिरौंजा—नरवाड़।

हिन्दू और मुग़ल कालीन सड़कें अधिकतर देश की सुरक्षा के लिए युद्ध की दृष्टि से ही बनाई गई थी अत: व्यापारिक और नागरिक (Civilian) कार्य के लिए सड़कों का अभाव सा ही था। मुख्य सड़कों से दूर के स्थानों में तो यातायात के साधनों का नितान्त अभाव था।

अंग्रेजी काल (British Period)

अंग्रेजी राज्य की स्थापना के बाद भारतीय सड़कों का व्यवस्थित रूप से विकास किया जाने लगा। किन्तु इस समय भी पहले उन्हीं सड़कों को बनाया गया जिनका सैनिक अथवा शासन सम्बन्धी महत्व ही अधिक था अस्तु देश के व्यापार

अथवा आर्थिक विकास के लिए सड़कों का बनाया जाना पूरी तरह नहीं किया गया। सबसे बड़ी योजना जो पुन: कार्यान्वित की गई, वह थी ग्राण्ड ट्रंक रोड (Grand Trunk Road) जिसको १८५८ में ५० लाख रुपये की लागत से लाहौर से पेशावर के २६४ मील लम्बे टुकड़े की मरम्मत की गई। इस पर १०३ पुल भी निर्माण किये गए। किन्तु सड़कें बनाने की नीति में लार्ड बैंटिक और लार्ड डलहौजी के समय में परिवर्तन किया गया। इस काल में *सैनिक बोर्ड* (Military Board) के स्थान पर एक केन्द्रिय सार्वजनिक कार्य विभाग (Central Public works Depart ments) की स्थापना की गई। किन्तु इसी काल में रेलों की उन्नति हो रही थी, अत: धनाभाव के कारण कुछ समय तक सड़कों के निर्माण में बाधा पड़ी। प्रारम्भ में स्वायत शासन से भी सड़कें बनाने के कार्य में सहयोग मिला किन्तु केन्द्रीय सरकार ने सड़कों के निर्माण को ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया क्योंकि इसका ध्यान इस समय केवल रेलमार्गों के विस्तार और सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण सड़कों के निर्माण में ही लगा था। प्रान्तीय सरकारों ने भी सड़कों के बनाने की जिम्मेदारी स्थानीय संस्थाओं पर छोड दी, जिनकी स्वयं की आर्थिक अवस्था अत्यन्त गिरी हुई थी अस्तु बड़ी सड़कें नहीं बनाई जा सकती थी। इस प्रकार प्रथम युद्ध के पूर्व के काल में भारत में सड़कों की स्थिति बड़ी ही दोषपूर्ण और अपर्याप्त थी किन्तु धीरे २ रेलों के निर्माण से सड़कों के निर्माण को सहायता मिलने लगी। देश के आन्तरिक भागों से रेलों के लिए माल की पूर्ति करने और उनका लाया हुआ माल देश के आन्तरिक भागों में पहुंचाने के लिए रेल की लाइनों से समकोण बनाने वाली सड़कों की बड़ी आवश्यकता थी और धीरे २ इस आवश्यकता की पूर्ति की गई।

लार्ड रिपन की विकेन्द्रीयकरण की नीति के फलस्वरूप स्थानीय संस्थाओं की स्थापना हुई। इन संस्थाओं तथा विभिन्न प्रांतों ने अपने २ क्षेत्रों में सड़क निर्माण का कार्य आगे बढ़ाया। परन्तु जैसा कि ऊपर कहा गया है, उनके पास धन का ऐसा अभाव रहता था कि पर्याप्त मात्रा में सड़कों के निर्माण पर व्यय नहीं कर सकते थे, विद्यमान सड़कों की रक्षा करना और उन्हें ठीक दशा में रखना (Maintenance) ही उनका मुख्य कार्य था। अतएव नवीन सड़कों के निर्माण का कार्य बहुत मंदा रहा। प्रथम युद्ध के पश्चात् देश में मोटर यातायात की बड़ी तीव्र गति से वृद्धि होने लगी अस्तु जनता ने देश में अधिक सड़कें बनाये जाने की मांग की। १९२७ में श्री एम० आर० जयकर (Dr. M. R. Jaykar) की अध्यक्षता में एक *सड़क-विकास-समिति* (Road Development Committee) की स्थापना की गई। इस समिति को मोटर यातायात की वृद्धि को ध्यान में रखते हुए पर्याप्त मात्रा में सड़कों का विस्तार करने के सम्बन्ध में जांच करने तथा उपयुक्त सुझाव देने का कार्य सौंपा गया।

इस कमेटी ने १६२८ में अपनी विस्तृत रिपोर्ट भारत सरकार को प्रस्तुत की। कमेटी ने इस बात पर अधिक जोर दिया कि देश को सर्वांगीण उन्नति के लिए सड़कों के विकास को परमावश्यकता है। इस आवश्यकता के तीन मूलभूत कारण बताये गए। (१) गांवों का कृषि पैदावार को शहरों या मंडियों तक लाने (२) ग्रामीण जनता की सामाजिक और सांस्कृतिक प्रगति तथा (३) रेल-मार्गों की उन्नति में सहायता देने के लिए सड़कों में विस्तार होना आवश्यक समझा गया। कमेटी ने यह प्रस्ताव रखा कि देश की सर्वांगीण उन्नति को ध्यान में रखते हुए सड़कें बनाने की जिम्मेदारी केंद्रीय सरकार की ही होनी चाहिए क्योंकि सड़कों पर चलने वाली मोटरों तथा अन्य सवारियों द्वारा जो कर वसूल किया जाता है वह सब केन्द्रीय सरकार के सामान्य वित्तविभाग में जमा हो जाता है अस्तु केंद्रीय सरकार प्रमुख सड़कों का बनाना अपने हाथ में ले और स्थानीय तथा प्रांतीय सरकारों को इस आर्थिक बोझ से मुक्त करें। कमेटी का यह भी सुझाव था कि रेलें भी सड़कों के निर्माण कार्य में आर्थिक सहायता दें क्योंकि उनकी आय का एक बहुत बड़ा भाग सड़कों द्वारा ढोये गए सामान के जरिये ही होता है किंतु कमीशन ने इस बात का विरोध किया कि सड़कों के निर्माण के लिए ऋण न लिया जाय क्योंकि इससे अन्य आवश्यक योजनाओं के धनाभाव के कारण पूरा होने में बाधा पड़ सकती है। सड़कों के निर्माण कार्य में सहायता देने के लिए कमेटी ने पैट्रोल कर में २ आने (४ आ० से ६ आ०) प्रति गैलन वृद्धि करने की सिफारिश की।

समिति के सुझावों पर विचार करके केंद्रीय सरकार ने इस सम्बन्ध में कुछ प्रस्ताव पास किए जिसके अनुसार मोटर स्प्रिट पर मार्च १६२६ में कर लगाया गया और इस प्रकार बढ़ी हुई आय को सड़कों के निर्माण पर व्यय करने के लिए एक पृथक कोष *केन्द्रीय सड़क विकास* कोष (Central Road Development Fund) में जमा करने का निश्चय हुआ। इस कोष में से भिन्न २ प्रांतों को सड़क निर्माण के लिए उसी अनुपात में धन प्राप्त होता है जिस अनुपात में उनमें पैट्रोल का उपभोग होता है। इस कोष में से केवल १५% धन एक केंद्रीय संरक्षित कोष (Central Reserve Fund) में इस उद्देश्य से इकट्ठा किया जाता है कि उससे विकास कोष के शासन तथा टैकनीकल अनुसंधान संबंधी कार्यों का खर्च चल सके। इस फण्ड में ३१ मार्च, १६४७ तक २७·०३ करोड़ रुपया एकत्रित हो चुका था (प्रति वर्ष १½ करोड़ रुपया इस कोष में जमा किया जाता रहा है) इसमें से ५·०६ करोड़ रुपया तो संरक्षित कोष में रखा गया और शेष २१·६४ करोड़ रुपया राज्यों में बांटने के लिए उपलब्ध हुआ। इस धन में से १८·५ करोड़ रुपया ३१ मार्च १६४७ तक वास्तव में बांटा जा चुका था।

१६२६ में जब सड़क कोष का निर्माण हुआ तो उसके पूर्व प्रान्तीय सड़कों का व्यय प्रांत की साधारण आय से तथा स्थानीय संस्थाओं की सड़कों का व्यय उनकी साधारण आय से दिया जाता था। उपर्युक्त कोष की स्थापना का उद्देश्य था उनके कार्य में सहयोग देना जिससे नवीन सड़कों का निर्माण हो सके। किन्तु दुर्भाग्यवश उसके पश्चात के १० वर्ष व्यापारिक मंदी के थे अस्तु प्रान्तों और स्थानीय संस्थाओं को धनाभाव का सामना करना पड़ा। इससे वे अपनी साधारण आय में से जितना व्यय पहले कर सकते थे अब उतना भी व्यय करनेमें असमर्थ रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि केन्द्रीय सरकार की सहायता पाने पर भी वे अधिक सड़कों का निर्माण नहीं कर सके। १६२८–२६ में गवर्नरी प्रान्तों में ६४३८० हजार रुपया सड़कों पर व्यय हुआ किंतु १६३८—३६ में यह रकम घट कर ६०२१० हजार रुपया ही रह गई। अस्तु, अब भारत सरकार को यह स्वीकार करना पड़ा कि सड़क कोष में से राज्य को मिलने वाले रुपये का २५ प्रतिशत सहायक सड़कों (Feeder roads) पर खर्च किया जा सकता है किन्तु जो सड़क रेलों के मुकाबले में प्रतिस्पर्द्धा करती है उन पर भी अपने हिस्से के २५% से अधिक रुपया राज्य की सरकारें खर्च नहीं कर सकतीं। धनाभाव के कारण सड़कों का पूर्ण विकास नहीं हो सका। हमारे देश में सड़कों का विकास कितना धीमा हुआ है इसका अनुमान इसी से लग जाता है कि १६००—४५ तक ४५ वर्षों में हमने जितनी मील लंबी सड़कें बनाईं उतनी मील सड़कें संयुक्त राज्य अमेरिका ने केवल १½ वर्ष में ही बना ली थीं। १६०० में अविभाजित भारत में १७६,००० मील लम्बी सड़कें थी। १६४५ में यह लम्बाई बढ़ कर २,३६५,३५ मील हो गई—अर्थात् ४५ वर्षों में भारत में केवल ६०,५३५ मील लंबी सड़कें ही बनाई गईं। यदि हम केवल पक्की सड़कों को ही लें तो सन् १६०० में सब सड़कों की लम्बाई ४७००० मील थी, वह १६४५ में ७८६६० मील हो गई अर्थात् ४५ वर्षों में केवल ३१,६६० मील लम्बी ही पक्की सड़कें भारत में बन सकीं। सड़कों पर जो खर्च होता रहा है उससे भी इस धीमे विकास का पता लगता है। सड़क कोष बनने के बाद सड़कों पर होने वाला कुल खर्च द्वितीय महायुद्ध तक बढ़ने की अपेक्षा उल्टा कम ही हुआ, क्योंकि प्रान्तों और राज्यों ने अपनी आय में से सड़कों पर कम खर्च किया यद्यपि इन वर्षों में मोटर यातायात पर लगने वाले करों में बहुत अधिक वृद्धि हुई।

संक्षेप में १६३६ तक सड़क कोष द्वारा दी गई आर्थिक सहायता से सड़कों के निर्माण में इस प्रकार प्रगति हुई—केंद्रीय शासित और प्रान्तीय क्षेत्रों में २५३ लाख रुपयों की लागत से ३८२ नए पुलों का निर्माण किया गया और और ४२ लाख रुपये विद्यमान पुलों की मरम्मत तथा विकास में व्यय हुआ। १२३० मील लम्बी कंक्रीट की सड़कें और १५०० मील लंबी सभी मौसम में व्यवहृत की जाने योग्य सड़कें

बनाई गईं तथा २२०० मील लंबी विद्यमान सड़कों की मरम्मत की गई। इसके अतिरिक्त २२ लाख रुपये मिश्रित कार्यों पर खर्च किये गये।

सन् १९३४ में भारत सरकार ने एक अर्द्ध–राज्य—संस्था — *भारतीय सड़क कांग्रेस* (Indian Road Congress) का निर्माण किया। इस संस्था का उद्देश्य भारत के विभिन्न भागों के सड़क विशेषज्ञों के सड़क निर्माण और रक्षा कार्यों में प्राप्त अनुभवों और विचारों का आदान प्रदान करना था। इस संस्था का वार्षिक अधिवेशन प्रति वर्ष होता है इसमें पुलों के निर्माण कार्य, अनुसंधान तथा प्रयोग, मिट्टी का परीक्षण आदि बातों पर महत्व पूर्ण विचार और विवाद किए जाते हैं तथा समय २ पर बहुमूल्य सुझाव भारत सरकार के सम्मुख प्रस्तुत भी किए जाते हैं।

द्वितीय महायुद्ध और नागपुर योजना

जब द्वितीय महायुद्ध आरंभ हुआ तो भारत सरकार के सामने सड़कों का महत्व और अधिक सामने आया और युद्धकाल में इस ओर विशेष रूप से ध्यान दिया जाने लगा जब कि सैनिक कार्यों के लिए युद्ध सामग्री तथा फौजें सीमान्त प्रदेशों में भेजने की शीघ्र आवश्यकता अनुभव हुई। देश के पश्चिमी और पूर्वी सीमाओं पर सड़कों का यथेष्ट विस्तार और सुधार हुआ। १९४०—४१ में गवर्नरों के प्रान्तों में सड़कों पर कुल ६·२६१ करोड़ रुपया व्यय किया गया। १९४३—४४ में यह खर्च ७·८४६ करोड़ रुपये तक पहुंच गया और १९४५—४६ में १३·३७ करोड़ रुपये तक और १९४६—४७ में १२·८७ करोड़ रुपया खर्च हुआ जबकि मोटर यातायात से प्राप्त होने वाली आय इस काल में क्रमशः १०·९७ करोड़; ८·१२७ २६·४९ और २०·१० करोड़ रुपया थी। इन आंकड़ों से यह स्पष्ट हो जाता है कि खर्चकी अपेक्षा आय अधिक रही है।

सड़कों के भावी विकास के प्रश्न पर विचार करने के लिए नागपुर में १९४३ में भारत के विभिन्न प्रान्तों तथा देशी राज्यों के प्रधान इंजीनियरों का एक सम्मेलन हुआ था इस सम्मेलनमें आगामी २० वर्ष की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर सड़कों के निर्माण सम्बन्धी एक योजना स्वीकार की गई थी। इस योजना के अनुसार अविभाजित भारत में ४ लाख मील लम्बाई की ४४८ करोड़ रुपये की लागत पर सड़कें बनाने का प्रस्ताव स्वीकार किया गया। इस सम्मेलन ने इस बात पर जोर दिया कि भारत सरकार एक *केन्द्रीय सड़क बोर्ड* (Central Road Board) की अविलम्ब स्थापना करें जिसको सड़कें प्रतिदिन की रक्षा सम्बन्धी नीति को लागू करने का पूरा २ अधिकार हो। इस योजना के अनुसार भारत में सड़कों का विस्तार इस प्रकार होने का निश्चय किया गया :—

सड़कों की किस्में	*लम्बाई*	*व्यय (करोड़ रुपयों में)*
राष्ट्रीय राज्यमार्ग	२२,०००	४७
,, सड़कें (Trails)	३,०००	३
प्रांतीय राजमार्ग	६५,०००	१२१
प्रमुख जिला सड़कें	६०,०००	६२
अन्य जिला सड़कें	१००,०००	८०
ग्रामीए सड़कें	१५०,०००	३०
युद्ध काल का शेष	×	१०
पुल आदि बनाने	×	४५
भूमि हस्तगत करने आदि पर	×	५०
	४००,०००	४४८ करोड़ रुपये

भारत का विभाजन हो जाने से भारत के हिस्से में ३७३ करोड़ रुपये की लागत पर ३,११,००० मील लम्बाई की सड़कें बनाना रहा। इस योजना में यह भी सिफारिश की गई थी कि राष्ट्रीय सड़कों को बनाने और उनको ठीक हालत में रखने की पूरी आर्थिक जिम्मेदारी भारत सरकार की होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त भारत सरकार का काम देश के विभिन्न भागों की सड़क योजनाओं में समन्वय करना होना चाहिए और इस दृष्टि से *केन्द्रीय सड़क शोध संस्थान* (Central Road Research Institute), Central Standards Specifications और टैकनीकल सलाह की भारत सरकार को व्यवस्था करनी चाहिए। सड़कों के निर्माण सम्बन्धी आवश्यक सामान सीमेंट, मशीनें आदि को उपलब्ध करने और अधिक कुशल इंजीनियरों की संख्या बढ़ाने तथा टैकनीकल शिक्षा सम्बन्धी व्यवस्था करने के लिए भी भारत सरकार को उपयुक्त क़दम उठाने चाहिए।

इस योजना का मुख्य उद्देश्य देश में सड़कों का इस प्रकार निर्माण करना है कि विकसित कृषि प्रदेश का एक भी गांव किसी न किसी मुख्य सड़क से ५ मील से अधिक दूर न रहे। इसी प्रकार जो प्रदेश कृषि प्रधान (Non-Agricultural) नहीं है उसका कोई गांव किसी न किसी मुख्य सड़क से २० मील से अधिक दूर न रहे। भारत सरकार और राज्य की सरकारों ने इस योजना को सामान्य रूप से स्वीकार किया पर कितने समय में यह योजना कार्यान्वित होनी चाहिए इस बारे में विचार भेद रहा। अन्त में १० वर्ष के आधार पर १०० करोड़ रुपये के खर्च की एक योजना बनी किन्तु आर्थिक कठिनाई, शिक्षित और कुशल सड़क

विशेषज्ञों के अभाव और पर्याप्त मात्रा में सामान न मिल सकने की कमी के कारण इस योजना के अनुसार प्रगति नहीं हो सकी।

नागपुर योजना के अनुसार भारत की सड़कों का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है :—

(१) *राष्ट्रीय राजमार्ग* (National Highways)—इस प्रकार की सड़के समस्त देश को न केवल आर्थिक दृष्टि से ही बल्कि सैनिक दृष्टि से भी एक सूत्र में बांध देगी। इन सड़कों द्वारा राज्य की राजधानियां, बड़े २ औद्योगिक और व्यापारिक नगर, मुख्य २ बन्दरगाह आपस में एक दूसरे से मिला दिए जायेंगे। भारत को ब्रह्मा, नैपाल और तिब्बत से भी ये सड़कें मिलायेंगी। विभाजन के पश्चात् इन सड़कों की कुल लम्बाई १३,४०० मील है जिसमें से लगभग ११,८०० मील लम्बी तो सड़कें बनी हुई हैं और लगभग १६०० मील लम्बे बीच २ के टुकड़े छूटे हुए हैं। ये सड़कें अधिकतर पक्की (Surfaced) हैं।

(२) *प्रान्तीय राजमार्ग* (Provincial Highways)—ये प्रांतों और राज्यों की प्रमुख सड़कें हैं जिनका महत्व व्यापार और उद्योग की दृष्टि से बहुत अधिक है। ये सड़कें राष्ट्रीय सड़कों द्वारा अथवा निकटवर्ती राज्यों की सड़कों से मिली हुई हैं। प्रान्तीय सरकारों पर इन सड़कों के निर्माण और उनको ठीक दशा में रखने की जिम्मेदारी है।

(३) *जिले की सड़कें* (District Roads)—ये जिले के विभिन्न भागो को आपस में जोड़ती है अर्थात् इनका कार्य उत्पत्ति क्षेत्रों को बाजारों या मंडियों से जोड़ना हैं। बड़ी सड़कों तथा रेलों से भी उनका सम्बन्ध है। इनकों बनाने का जिम्मा जिला बोर्डों के आधीन है। इनमें से अधिकांश सड़कें कच्ची हैं जो वर्षा के दिनों में सर्वथा अनुपयुक्त हो जाती हैं।

(४) *गांव की सड़कें* (Village Roads)—ये सड़कें गांवों को आपस में एक दूसरे से मिलाती हैं। इनका सम्बन्ध निकटवर्ती जिले और प्रांतों की सड़कों से भी होता है। प्रायः ये पगडंडियां मात्र हैं। ये अधिकतर गांव वालों के सहयोग से ही निर्माण की जाती हैं।

नागपुर सम्मेलन के सुझावों के फलस्वरूप केंद्रीय सरकार ने निश्चय किया कि १६४७ के पश्चात् राष्ट्रीय राजमार्ग बनाने का उत्तरदायित्व वह अपने ऊपर ले लेगी। इसी निर्णय के अनुसार १ अप्रैल १६४७ से इन सड़कों को बनाने और उनको ठीक दिशा में रखने का जिम्मा भारत सरकार ने ले लिया है, किन्तु इसकी मुख्य शर्तें यह हैं :—

(१) केन्द्रीय सरकार जिस सड़क को उचित समझेगी उसे ही राष्ट्रीय राजमार्ग घोषित कर सकेगी तथा इस प्रकार की सड़कों को बनाने में प्राथमिकता देने का पूर्ण

अधिकार भी केन्द्रीय सरकार को होगा।

(२) सड़कों पर कितना व्यय किया जाय यह निश्चय केन्द्रीय सरकार की सहमति से ही किया जायगा।

(३) यद्यपि सड़कों आदि के निर्माण कार्य के लिए प्रान्तीय सार्वजनिक कार्य-विभाग ही होगा किन्तु यदि केन्द्रीय सरकार चाहे तो सड़कों के निर्माण और देख रेख के लिए अन्य विभाग भी स्थापित किया जा सकता है।

(४) मोटर आदि सवारियों पर जो—अभी टैक्स लगे हैं—अन्य कोई नया कर नहीं लागू किया जायगा और केन्द्रीय सरकार की समस्त अव्यापारिक मोटरें आदि प्रान्तीय अथवा स्थानीय करों से मुक्त होंगी।

(५) प्रान्तीय सरकारों का मुख्य कार्य जिले और गांवों की सड़कों का विकास करना होगा।

भारत सरकार ने नागपुर योजना में प्रस्तुत किए गए कई सुझावों को मान लिया है। इन सुझावों के अनुसार विभिन्न प्रान्तीय सरकारों ने भी अपनी पंच-वर्षीय योजनायें बनाईं जिस पर १ अप्रैल १९४७ से आरम्भ होने वाले वर्ष से ५ वर्षों के भीतर १४६.८९ करोड़ रुपया खर्च होने का अनुमान लगाया गया। राज्यों ने भी पांच वर्षों के भीतर ३३,३९३ मील सड़कों की मरम्मत, १७,५०७ मील लम्बी नई सड़कों का निर्माण और ३०,०९३ मील लम्बी सड़कों को सुधारना अथवा पुनः निर्माण करने का। निश्चय किया इस योजना के अन्तर्गत निर्धारित कार्य बहुत ही धीमे हुआ क्योंकि Anti-inflationary उपायों के कारण सरकार को खर्चों में कमी करनी पड़ी। इसके अतिरिक्त द्वितीय महायुद्ध के पश्चात के वर्षों में देश की आर्थिक अवस्था पूर्णरूप से न सुधर सकने तथा भूमि के प्राप्त होने में देरी होने और सड़कों के निर्माण संबन्धी मशीनों तथा अन्य आवश्यक सामान के उपलब्ध न हो सकने के कारण भी सड़कों के निर्माण कार्य में देरी हुई। १९४७ की अप्रैल से १९५० की मार्च तक के तीन सालों में 'ए' श्रेणी के राज्यों में २२.८३८ करोड़; 'बी' श्रेणी के राज्यों में ३.७०२ करोड़, और 'सी' श्रेणी के राज्यों में ०.५७२ करोड़—कुल २७.११२ करोड़ रुपया सड़कों पर खर्च हुआ है जब कि नागपुर योजना के अनुसार इन वर्षों में राष्ट्रीय सड़कों के अतिरिक्त (जो भारत सरकार के जिम्मे है) ६११ करोड़ रुपया खर्च हो जाना चाहिए था। इसके मुकाबले में केवल २७.११ करोड़ रुपया खर्च हुआ अर्थात् इन वर्षों में केवल ५% प्रगति हुई।

सड़कों के भावी विकास के लिए वैज्ञानिक खोज का एक बड़ा महत्व है। इसी उद्देश्य से सितम्बर १९५० में सड़कों संबन्धी एक केन्द्रीय *अनुसंधान संस्थान* (Central Research Institute) की स्थापना की गई है। इसका कार्य

स्थानीय शोध-संस्थानों के—जो मद्रास, कलकत्ता, पटना और लखनऊ आदि स्थानों में स्थित हैं—कामों का समीकरण करना और उनको मार्ग दर्शाना होगा।

पंच वर्षीय योजना और सड़कों का भविष्य

भारत सरकार द्वारा नियुक्त *योजना आयोग* (National Planning Commission) ने देश के सर्वाङ्गीण विकास के लिए एक पंच-वर्षीय योजना जुलाई १९५२ में प्रस्तुत की है। सड़कों के विकास के बारे में आयोग का मत है कि सड़कों का निर्माण कार्य नागपुर योजना में बताई गई गति से नहीं हो सकता किन्तु यह आवश्यक है कि सड़कों संबन्धी योजना आर्थिक जीवन के अन्य क्षेत्रों जैसे कृषि, उद्योग आदि संबन्धी योजनाओं की आवश्यकता को ध्यान में रख कर बनाई जानी चाहिए। कृषि उत्पादन में जो सड़कें सहायक हों अथवा जिनके द्वारा नयी भूमि को जोड़ा जा रहा है या जो सड़कें रेलो की सहायक या पुरक रूप में काम करती है और किन्हीं स्थानों पर भीड़ को कम करती हैं उनको प्राथमिकता देनी चाहिए। सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण सड़कों को भी पहले बनाना चाहिए। किस सड़क को प्राथमिकता दी जाय यह संबन्धित राज्यों पर ही छोड़ा गया है। ये राज्य अपने राज्य में सड़कों की आवश्यकता और उनकी प्राथमिकता का ध्यान रखते हुए *केन्द्रीय विकास परिषद* (Central Development Council) के आदेशानुसार अपनी योजनाएं बनावें।

पंच वर्षीय योजना में राष्ट्रीय सड़कों के बारे में इस प्रकार से प्राथमिकता का निर्णय किया गया है—(१) अभी कुल राष्ट्रीय सड़कों की लम्बाई १३४०० मील हैं जिनमें से केवल ११८०० मील लम्बी सड़कें बनी हैं और लगभग १६०० मील लम्बे बीच २ में टुकड़े छुटे हुए हैं। सड़कों के बीच में इन छुटे हुए टुकड़ों को बनाना। पंच वर्षीय योजना के अनुसार १६०० मील में से ७५० मील टुकड़े प्रथम पांच वर्षों में बनाये जायेंगे (जिनमें से ४०० मील पूरे बन जायेंगे और ३५० मील आधे बन पावेंगे) (२) सड़कों के ऊपर की सतह में सुधार करना ताकि वे अधिक बोझा बर्दाश्त कर सकें। वर्तमान समय में से ११८०० मील में से केवल ४३०० मील लम्बी सड़कें ही अच्छी सतह वाली हैं शेष ७५०० मील लम्बी सड़कों में से केवल २२०० मील ही लम्बी सड़कों की सतह में आगामी ५ वर्षों में सुधार किया जायगा। (३) पुराने पुलों में सुधार करना ताकि उन पर होकर अधिक भारी बोझा ढोया जा सके। अभी राष्ट्रीय सड़कों के बीच में ११२ पुलों की जगह छुटी हुई है, अस्तु आगामी ५ वर्षों में ६० पुलों को ३०० लाख रुपये की लागत से तैयार किया जायगा।

पंच वर्षीय योजना के अनुसार इस कार्य के लिए २३ करोड़ रुपया भारत सरकार, ५०.५८६५ करोड़ रुपये 'ए' श्रेणी के राज्य, १४.७७६ करोड़ रुपये 'बी' श्रेणी के राज्य और ५.३७१६ करोड़ रुपये 'सी' श्रेणी के राज्य—कुल मिला कर

६३·७३७६ करोड़ रुपया सड़कों पर खर्च करेगी।

सड़कों की वर्तमान स्थिति (Present Position of Roads)

हमारे देश में सड़कों की वर्तमान स्थिति असंतोषजनक है। अविभाजित भारत में २,६६,००० मील लम्बी सड़कें थीं किन्तु विभाजन के फलस्वरूप अब देश में केवल २,३६,००० मील लम्बी सड़कें ही रह गई हैं। इसका अर्थ यह है कि हमारे यहां प्रतिवर्ग मील क्षेत्रफल पीछे केवल ०·२२ मील लम्बी सड़कें हैं जब कि इतने ही क्षेत्रफल पीछे अमेरिका में १·०३ और ब्रिटेन में २·०२ मील, फ्रांस में १·८४ मील और जर्मनी में ०·६५ मील है। नीचे की तालिका में अन्य देशों के मुकाबले में भारत की सड़कों सम्बन्धी स्थिति बताई गई है*:—

देश	*क्षेत्रफल (वर्ग मील लाख)*	*जन संख्या (लाख में)*	*मोटर योग्य सड़कें*	*मोटर अयोग्य सड़कें*	*कुल लंबाई (मीलों में)*
संयुक्त राज्य अमेरिका	३०·२७	१३२०·००	१,०००,०००	२,००६,०००	३,००६,०००
यूनाइटेड किंगडम	०·८६	४६०·००	१६०,१२०	१६,१७०	१७६,२६०
फ्रांस	२·१३	४१८·००	—	—	
भारत	१२·१७	३१८७·००	१८१,४०६	५७,५७५	२३६,०८१
पाकिस्तान	३·६५	७१·००	५,५६६	४८,११६	५५,६१३

इस प्रकार हमारे देश में १६४६ में कुल २३६,०८१ मील लंबी सड़कें थी जिनमें से ६५,२१८ मील लंबी पक्की सड़कें और ११३,७६६ मील कच्ची सड़कें—राज्यों को छोड़कर थीं†। नीचे की तालिका में कुछ प्रमुख देशों में प्रति वर्ग मील

* केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रकाशित "Our Road" से उद्धृत पृ० ५७

† मुख्य प्रान्तों में पक्की और कच्ची सड़कों का विस्तार इस प्रकार है :—

प्रान्त	पक्की सड़कें (मीलों में लम्बाई)	कच्ची सड़कें
मद्रास	२३,६७५	१४,३८६
बम्बई	१०,८२६	२,६२३
प० बंगाल	३,७७६	७,६६१
उड़ीसा	२,७६५	३,८४४
उत्तर प्रदेश	८,५७६	२३,६६४
पू० बंगाल	२,७२७	८,३६४
बिहार	४,७००	२७,६४२
मध्य प्रदेश	६,४१८	३,५६६
आसाम	१,१७६	१२,६४७
सम्पूर्ण भारत का योग	६५,२१८	११,७६५

और प्रति १,००,००० व्यक्तियों के पीछे सड़कों का विस्तार दर्शाया गया है, जिससे ज्ञात होगा कि सड़कों के विस्तार की दृष्टि से भारत की स्थिति बहुत ही कमजोर है**:—

देश	*प्रति वर्गमील पीछे*	*प्रति १००,००० व्यक्तियों पीछे*	*विशेष*
	(सड़कों की लंबाई मीलों में)		
इटली	०·८६	२४७	मोटर योग्य
जापान	३·००	६६४	,,
इंगलैंड	२·०२	३६२	,,
फ्रांस	१·८४	६३४	,,
जर्मनी	०·६५	२६०	,,
सं. रा. अमेरिका	१·०३	२,४६६	,,
भारत	०·२२	८६	केवल ३५% मोटर योग्य
पाकिस्तान	०·१५	?	?

कच्ची सड़कों के अतिरिक्त भारत में प्रायः सभी बड़े २ नगर पक्की सड़कों द्वारा मिले हैं। भारत में चार बडी २ 'ट्रंक रोड' हैं। ये सड़कें बहुत पुरानी हैं। एक सड़क जो सबसे मुख्य है—*ग्रांड ट्रंक रोड* (Grand Trunk Road) कलकत्ते से इलाहबाद, दिल्ली और अमृतसर होती हुई लाहौर चली जाती है। दूसरी ट्रंक रोड कलकत्ते से मद्रास तक; तीसरी मद्रास से बम्बई और चौथी बम्बई से दिल्ली तक चली गई है। ये चारों सड़कें ५,००० मील लंबी हैं एक अन्य सड़क मिर्जापुर से जबलपुर होती हुई नागपुर तथा दूसरी मिर्जापुर से गढ़मुक्तेश्वर, मुरादाबाद, बरेली और बनारस होती हुई पटना जाती है। इसी प्रकार एक सड़क आगरा से अजमेर होती हुई नीमच तक जाती है। देश में सबसे अधिक विस्तार दक्षिणी भारत और सबसे कम राजस्थान, पंजाब, उड़ीसा और पश्चिमी बंगाल में हैं।

हमारे देश की छोटी सड़कों पर तो नदियों पर पुलों का अभाव है ही बड़ी सड़कों पर भी पर्याप्त पुल नहीं है। उदाहरणार्थ, कलकत्ता से मद्रास जाने वाली सड़क पर बहुत जगह पुल नहीं हैं। ग्रांड ट्रंक रोड पर सोन नदी पर सड़क का पुल नहीं है, मोटरें आदि रेल से पार उतारी जाती हैं। बहुत सी सड़कें बाढ़ के समय नष्ट हो जाती हैं अतएव इन सड़कों पर वर्षा ऋतु में यात्रा करने में बड़ी कठिनाइयाँ पड़ती हैं। कभी कभी तो नदियों आदि पर पुल न होने के कारण गन्तव्य स्थान तक

** देखिये डा० गैडगिल कृत "Modern Industrial Evolution of India"

पहुंचने के लिए काफी लम्बा चक्कर लगा कर जाना पड़ता है। वर्षा ऋतु में सड़कों पर भारी बोझा ले जाना दुष्कर हो जाता है अस्तु, अधिकांशतः कुली आदि के सिर पर रख कर ही सामान इधर से उधर ले जाया जाता है। सड़कों में कई जगह गहरे गड्ढे पड़े हैं जिनसे भी आने जाने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। गांवों की अधिकांश सड़कों द्वारा वर्षा ऋतु में आना जाना नहीं हो सकता अतः वर्ष के उन दिनों में ग्रामों का संबंध नगरों से टूट सा जाता है और इन पगडंडियों पर केवल मनुष्य ही आ जा सकते हैं*।

देश को अधिक सड़कों के विस्तार की आवश्यकता है

जब से भारत में यातायात का आरंभ हुआ है तब से सड़कों का महत्व बहुत बढ़ गया है। आजकल रेल-निर्माण के साथ २ सड़कों के निर्माण का कार्य भी आवश्यक माना जाने लगा है यद्यपि देहातों में बैलगाड़ियां अधिक चलती हैं फिर भी सड़कों के विस्तार से लारियों और ट्रकों का प्रचार बढ़ रहा है। इनकी गति तीव्र होने के कारण यातायात शीघ्र हो सकता है। अतएव बैल गाड़ियों और तांगों तथा इक्कों का स्थान धीरे २ मोटरें और लारियां ले रही हैं। अतः सड़कों को पक्की बनाना तथा उनको ठीक दशा में रखना और भी आवश्यक हो गया है। नगरों के आस पास हरी तरकारियां, दूध, मक्खन आदि शीघ्र नष्ट हो जाने वाले पदार्थों को नगरों में पहुंचाने के लिए लारियों की जरूरत पड़ती है। भारत कृषि प्रधान देश है जहां के अधिकांश निवासी गांवों में निवास करते हैं। परन्तु उनको अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दिन प्रति दिन शहरों में आना जाना पड़ता है। न्याय तथा शासन और शिक्षा व अस्पताल आदि के केंद्र नगरों में ही होते हैं अस्तु, गावों से शहरों का सम्पर्क बढ़ाना बहुत आवश्यक है। इसके लिए तीव्रगामी यानों (Vehicles) की आवश्यकता है। खेती में उत्पन्न होने वाले पदार्थों को भी उपभोग के क्षेत्रों और औद्योगिक तथा व्यापारिक मंडियों तक भेजने के लिए भी मोटर ट्रकों और गाड़ियों की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त नगरों में उद्योग-धंधों की वृद्धि होने से मजदूरों का आना जाना भी बढ़ रहा है जिसके लिए शीघ्रगामी यानों की आवश्यकता है। दूसरे, नगरों का भीड़-भड़क्का कम करने के लिए धंधों का विकेन्द्रीयकरण (decentralisation) एवं जनसंख्या का बिखराव आवश्यक है। इनके लिए भी शीघ्र गामी यानों की अत्यधिक आवश्यकता है। संक्षेप में देश की आर्थिक उन्नति के लिए सड़कों के विस्तार की अत्यधिक आवश्यकता है।

* केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रकाशित, "Our Roads" से पृ० ५८

* देखिये एफ० पी० आंतिया: "Transport" (O.U.P. Pamphlet No. 34) पृ० १४

अध्याय १६

मोटर यातायात

MOTOR TRANSPORT

भारत में सड़कों पर यातायात करने के लिए मोटर आदि यांत्रिक गाड़ियों का उपयोग थोड़े ही समय से आरंभ हुआ है। ४० वर्ष पूर्व तो भारत में मोटरों की संख्या बहुत ही कम थी। मोटरें केवल धनाढयों द्वारा ही प्रयुक्त की जाती थी और सम्पूर्ण देश में लगभग ४००० मोटरें थी जो देश की जनसंख्या और विस्तृत क्षेत्रफल की आवश्यकताओं के हिसाब से बहुत ही कम थी। मोटर-यातायात की प्रगति में बाधा पड़ने का मुख्य कारण सड़कों की अत्यन्त खराब दशा का होना था। प्रथम महायुद्ध काल में मोटर यातायात में आशातीत वृद्धि हुई। इसका मुख्य कारण यह था कि युद्ध काल में विदेशों से अधिक संख्या में मोटर-गाड़ियों का आयात किया गया जिससे देश की सीमाओं पर युद्ध संबंधी सामग्री शीघ्रता पूर्वक भेजी जा सके। जब युद्ध समाप्त हो गया तो बची हुई मोटर-गाड़ियां नागरिकों के उपभोग के लिए उपलब्ध हो सकी। भारतीयों ने इनको क्रय कर लिया और इस प्रकार १६१८-२० से ही भारत में मोटर यातायात की प्रगति होने लगी है। सड़कें पहले से ही बड़ी निकम्मी दशा में थी अस्तु जब मोटरों और बसों का उपयोग बढ़ने लगा तो सड़कों की दशा में और भी खराबी होने लगी। किंतु इतने पर भी युद्धान्तर काल में व्यापार में वृद्धि हो जाने से अधिक मोटर गाड़ियों की मांग की जाने लगी। अस्तु, जनता ने इस बात की मांग भी सरकार के सम्मुख प्रस्तुत की कि वर्तमान सड़कों के विकास और देख रेख के लिए सरकार महत्वपूर्ण कदम उठाये। फलस्वरूप भारत सरकार ने एक *सड़क जांच समिति* श्री जयकर के सभापतित्व में १६२७ में स्थापित की। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट में इस बात पर जोर दिया कि सड़कों के विकास की जिम्मेदारी मोटर गाड़ियों पर ही होनी चाहिए तथा उनकी वित्त-व्यवस्था समिति द्वारा आयोजित सड़क *विकास कोष* में से की जाय। इसके लिए पैट्रोल पर कुछ कर वृद्धि भी की गई। इस प्रकार इस काल में सबसे पहले मोटरों पर अप्रत्यक्ष रूप में कर लगाया गया।

१६३० से ही भारत में मोटर-गाड़ियों की संख्या में बहुत वृद्धि होने लगी। इन गाड़ियों द्वारा ले जाये गए सामान में ही अधिक उन्नति हुई। अस्तु रेलों को

सामान न मिलने के कारण प्रति वर्ष २ करोड़ रुपये की हानि होने लगी। सरकार की अधिकांश पूंजी रेलों में लगी थी अस्तु उसने रेलों को इस आर्थिक हानि से बचाने के लिए १६३३ में *मिचैल-किर्कनैस* (Mitchell-Kirknes) समिति स्थापित की जिसका मुख्य उद्देश्य रेल और मोटर यातायात में होने वाली प्रतिस्पर्द्धा का अध्ययन कर इस बारे में उपयोगी सुझाव देना था। रेलों से तो मोटरों की स्पर्द्धा बढ़ रही थी, किंतु विभिन्न मोटर-कम्पनियों में भी यातायात के लिए अत्यधिक लाग-डाट होने लगी। इससे न केवल भारतीय सड़कोंकी स्थिति ही बिगड़ी बल्कि मोटरों से यात्रा करने वाले मुसाफिरों को भी कई कठिनाइयों और असुविधाओं का सामना करना पड़ा। अतएव अब सरकार ने मोटर यातायात को नियंत्रित करने के हेतु *मोटर गाड़ी कानून* (Motor Vehicles Act) सन् १६३६ में स्वीकृत किया। इस कानून का मुख्य उद्देश्य अधिकांश में मोटर यातायात शासन संबंधी व्यवस्थाओं और लाइसेंस आदि देने की सुविधाओं को प्रदान करने का था। इसी एक्ट के अंतर्गत यात्रियों के जीवन का बीमा (दुर्घटना बीमा) करने की व्यवस्था भी रखी गई।

जब द्वितीय महायुद्ध आरंभ हुआ तो मोटर-मालिकों को पैट्रोल तथा मोटर के कल पुर्जों के पर्याप्त मात्रा में न मिल सकने के कारण नुकसान उठाना पड़ा। जितनी सामान ढोने वाली व्यापारिक गाड़ियां थीं वे सब सरकार ने युद्ध सहायता के नाम पर हस्तगत कर लीं। नागरिकों को मोटर-यात्रा में असुविधा होने लगी क्योंकि थोड़े अन्तर के लिए मोटरें ही अधिक सुविधा जनक थी। पैट्रौल की कमी को कुछ हद तक लकड़ी से स्टीम बनाकर दूर किया गया। किंतु युद्धान्तर काल में मोटरों की संख्या में बहुत वृद्धि हुई। सन् १६३६ में केवल १४४,००० मोटर गाड़ियां ही थी किन्तु १६४८ में यह संख्या बढ़कर २,७७,७३३ हो गई*। इसमें से २४,७३८ मोटर साइकिलें, १३३,६६८ कारें, १२३१६ किराये पर चलने वाली गाड़ियां, ३३,६८६ मुसाफिर ले जाने वाले बसें, ६५,४४२ सामान ढोने वाली गाड़ियों और शेष अन्य प्रकार की मोटरें थीं।

मोटर गाड़ियों पर लगाये जाने वाले टैक्स से भारत सरकार को एक निश्चित आर्थिक लाभ होता है। केंद्रीय सरकार मोटर गाड़ियों और कल पुर्जों पर आयात कर और चुंगी कर तथा मोटर-टायरों पर केवल चुंगी कर लगाती है। प्रान्तीय सरकारें मोटर गाड़ियों पर कर और फीस तथा पैट्रोल पर विक्रय कर वसूल करती हैं। किंतु इस प्रकार लगाए गए कर सभी प्रान्तों में समान नहीं है। मिचैल-किर्कनैस समिति के अनुमानानुसार यह कर पंजाब में सम्पूर्ण खर्च के २०% बंगाल में २०.५%; मध्य प्रदेश में २१%; बिहार में २३%; उत्तर प्रदेश में २७% और मद्रास में ४०% है। ऊंचे करों के अतिरिक्त जो मोटर गाड़ियां

दो प्रान्तों के बीच में चलती हैं उन पर दुहरा कर भी लगाया जाता है। सन् १९५० में *मोटर गाड़ी कर जाँच समिति* ने इस प्रकार लगाए जाने वाले दुहरा कर की निन्दा की है।

१९२५ में पैट्रौल पर चार आने प्रति गैलन कर लगाया गया। १९२९ में यह कर ५ आना प्रति गैलन कर दिया गया। अस्तु इस समय मोटर कर से प्राप्त होने वाला धन सड़कों पर किये जाने वाले खर्चे का १५०% था। १९२९ में मोटर गाड़ियों पर प्रति मोटर वार्षिक कर ५१०) था। १९३९ में पेट्रौल कर १० आना प्रति गैलन और १९४९ में १५ आना प्रति गैलन किया गया। इस कर के अतिरिक्त राज्य की सरकारों ने पैट्रौल पर बिक्री कर भी लगा दिया इससे मोटर मालिकों पर कर भार अधिक पड़ गया।

सन् १९३१ के पूर्व मोटर-कारों पर २०% और ट्रकों तथा बसों पर १५% आयात कर लगाया जाता था। १९३२ में यह वृद्धि क्रमशः ३७½ और २५% कर दी गई। अब यह आयात कर क्रमशः ४५% और ३०% है।

इन अंकों से ज्ञात होता है कि भारत में मोटर यातायात पर लगाया जाने वाला कर अधिक भारी है। *मिचैल–किर्कनैस कमेटी* ने मोटर और रेल यातायात के सापेक्षिक क्षेत्रों तथा उनकी कार्य प्रणाली और उन पर लगाये जाने वाले कर की जांच करके विस्तृत रिपोर्ट पेश की। कमेटी ने यह बताया कि रेलों द्वारा केन्द्रीय सामान्य वित्त विभाग को ५·२४% आय प्रत्यक्ष रूप से और ०·४७% आय कर द्वारा मिलती है यह सब मिला कर रेलों पर होने वाले खर्चों का ५·८९% आता है। यदि इसमें १३·७% ब्याज और देखरेख की व्यवस्था का ८·९% भी सम्मिलित कर लिया जाय तो कुल मिलाकर २२·६% आता है इसके मुकाबले में मोटर यातायात पर लगाया जाने वाला कर अन्य खर्चों का २०% होता है किन्तु इस कमेटी की रिपोर्ट देने के बाद से अब बिक्री कर और पैट्रौल कर में वृद्धि हो जाने से यह प्रतिशत ३०% आता है। अस्तु, इस कमेटी ने निर्णय दिया कि मोटर यातायात इतना अधिक कर भार वाहन नहीं कर सकता और न ही सड़कों के निर्माण- विकास, वृद्धि और उनके देख रेख पर ही मोटरें अधिक खर्च कर सकती हैं। ऐसा अनुमान लगाया गया कि पैट्रौल कर द्वारा प्राप्त होने वाली आय का केवल १/६ भाग सड़क कोष द्वारा सड़कों पर व्यय किया जाता है। मोटर यातायात द्वारा प्राप्त सम्पूर्ण आय—१९ करोड़ रुपये—में से केन्द्रीय सरकार के सामान्य विभाग को १०¾ करोड़ रुपया मिल जाता है और केवल ८¼ करोड़ रुपया सड़कों आदि पर व्यय करने के लिए राज्य की सरकारों और सड़क कोष को प्राप्त होता है।

यातायात पर युद्धोत्तर नीति निर्धारण समीति (Post war policy Committee on Transport) ने १९४३ में इस बात की ओर निश्चित रूप से निर्देशन किया की मोटर यातायात पर उसके भार वाहन करने कि शक्ति से भी

अधिक कर लगाये गए हैं। इस कमेटी ने यह भी कहा कि रेलों की अपेक्षा मोटरों द्वारा सामान्य वित्त विभाग को तीन गुना अधिक धन प्राप्त होता है। यह कमेटी इस निर्णय पर पहुंची कि "वास्तव में मोटर यातायात लगाया जाने वाला कर रेलों की अपेक्षा अधिक विषम अनुपात में होता है और यह नीति सरकार के उस सिद्धान्त के विरुद्ध है कि सरकार का कार्य किसी एक यातायात के साधन पर—दूसरे साधनों को हानि पहुंचाने के लिए अधिक कर लगाना नहीं है।" इस कमेटी ने यह भी बताया कि जहां प्रति टन मील पीछे सड़कों पर खर्च करने के लिये १·६५ पाई की ही आवश्यकता होती है वहाँ भारत में लारियों और बसों द्वारा प्राप्त कर आय प्रति टन मील ६ पाई से भी अधिक होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि मोटरों पर लगाये जाने वाले कर का २८% भाग सड़कों पर व्यय किया जाता है और शेष ७२% सामान्य वित्त विभाग को वास्तविक लाभ होता है। आजकल तो प्रति टन मील ८ पाई का कर लिया जाता है।

मोटर यातायात पर लगाये जाने वाले कर की अधिकता अथवा न्यूनता की जांच करने के लिए भारत सरकार ने *यातायात सलाहकार परिषद* (Transport Advisory Council) के आदेशानुसार एक कर *जांच समिति* (Motor Vehicles Taxation Enquiry Committee) सन् १९५० में बिठाई। इस कमेटी को यह कार्य सौंपा गया कि वह मोटर यातायात पर लगाने वाले कर की स्थिति पर जांच करे और यह भी बताये कि अधिक कर होने से मोटर यातायात के विकास पर क्या प्रभाव पड़ा है। यह कमेटी अपनी जांच के पश्चात् इस निर्णय पर पहुंची कि भारत सरकार की रेल विकास सम्बन्धी कोई व्यवस्थित नीति नहीं है और ऐसी हालत में मोटरों पर कर किस हिसाब से लगाया जाय यह निश्चित रूप से नहीं मालूम किया जाता। इस कमेटी ने इस बात पर अवश्य जोर दिया कि मोटर रखने वाले लोगों पर विषम अनुपात में कर न लगाया जाय। इस कमेटी ने निम्न सिफारिशें कीं :—

(१) एक साधारण करदाता की तरह मोटर रखने वाला, रेलवे द्वारा दिए गए कर के बराबर ही सामान्य वित्त विभाग को कर दे।

(२) भारत संघ और राज्यों की करनीति में इस प्रकार समन्वय किया जाय कि मोटर रखने वाले को अन्य योजनाओं के खर्च सहन करने अथवा मोटर उद्योग स्थापित करने के हेतु आवश्यक पूंजी देने के लिए अतिरिक्त कर न देना पड़े।

(३) मोटर यातायात पर लगाई गई कर प्राप्ति में से सामान्य वित्त विभाग के लिए निश्चित रकम निकाल लेने के पश्चात् शेष रकम सड़कों के विकास में खर्च की जाय।

(४) इस शेष रकम से एक सड़क कोष स्थापित किया जाय।

इस कमेटी ने मोटर यातायात पर लगने वाले दुहरा-कर और मोटर मालिकों पर पड़ने वाले उसके प्रभाव की जाँच करने के बाद यह निर्णय दिया कि चुंगी द्वारा प्राप्त होने वाली कर की रकम में ७५% की वृद्धि हुई है जबकि १६२१ में यह रकम केवल ७½% ही थी। यह कमेटी इस निष्कर्ष पर भी पहुंची कि बड़े २ प्रांतों में मोटर मालिकों द्वारा प्राप्त होने वाली कर की रकम सड़कों पर किये जाने वाले व्यय से दुगुनी थी। अस्तु इस कमेटी ने दुहरा-कर प्रणाली का—जो केंद्रीय, प्रांतीय और राज्य की सरकारों अथवा जिला बोर्डों द्वारा अपने २ क्षेत्रों में लगाई जाती हैं—घोर विरोध किया और यह भी कहा कि मोटरों पर आयात कर तथा पुर्जों व मोटर टायरों पर आयात और चुंगी कर तथा मोटरों पर बिक्री कर तथा अन्य स्थानीय कर बहुत अधिक है। इस सम्बन्ध में इसने निम्न सुझाव पेश किए :—

(१) राज्यों द्वारा मोटर स्प्रिट पर लगाया जाने वाला बिक्री कर समाप्त कर दिया जाय।

(२) इसके बजाय पेट्रोल पर प्रति गैलन ६ आने अतिरिक्त कर (Surcharge) लगाया जाय। यह कर विभिन्न प्रांतों में पैट्रोल के उपभोग के अनुपात में लगाया जाय।

(३) पैट्रोल पर लगने वाले खर्च में कमी करने की तरकीब निकाली जाय।

(४) जिला बोर्डों और म्युनिसिपैलिटियों द्वारा मोटर गाड़ियों पर लगाया जाने वाला, सभी प्रकार का स्थानीय कर उठा दिया जाय।

इस कमेटी ने मोटर यातायात के राष्ट्रीयकरण पर भी विचार किया। इस कमेटी ने यह स्वीकार किया कि यातायात सर्विसों की साधारण व्यवस्था राज्य द्वारा संचालित संस्थाओं के हाथ में हो। किन्तु जब तक पहिले से ही राष्ट्रीयकरण किए गये मार्गों का ठीक समन्वय न हो तब तक नये मार्गों का राष्ट्रीयकरण न किया जाय। इसके अतिरिक्त सरकार को नये मार्गों को अपने हाथ में तभी लेना चाहिए जब उसे इस बातका पूर्णतः निश्चय हो जाय कि क्षेत्र विशेषों में प्राईवेट कंपनियां ठीक प्रकार संतोषजनक रूप से काम नहीं कर रही हैं। गांव और नये प्रदेशों में मोटर यातायात का पूर्ण विकास करने के लिये सरकार को चाहिये कि वह निजी कम्पनियों को कर आदि में कुछ विशेष सुविधायें दे जिससे निजी कम्पनियां नये मार्गों के आरंभ करने में रुचि ले सके।

भारत के विभिन्न भागों में मोटर गाड़ियों की संख्या इस प्रकार थी* :—

प्रांत	१६४५–४६	१६४८
मद्रास	१८,६५३	३१,६६०

* देखिये इंडियन ईयर बुक (१६५०) पृ० ३०४

बम्बई	३०,०२६	३८८२६	
बंगाल	३१,०७७	३६,२६६	
उत्तर प्रदेश	१५,८१७	२१,३८०	
अविभाजित पंजाब	११,३१४	८,०१८	(पूर्वी पंजाब)
बिहार	८,५१४	१२,२०३	
मध्य प्रदेश	५,५२४	७,२३२	
आसाम	७,६६३	६,३८५	
उड़ीसा	१,५१३	२,००४	
संपूर्ण भारत का योग	१४४,६६४	२३५,०३०	

मोटर उद्योग (Automobile Industry)

मोटर उद्योग एक आधारभूत उद्योग है जिसका महत्व शांति और युद्ध दोनों समय में बहुत है। अभी तक भारत के कारखानों में विदेशों से आयात मोटरों के विभिन्न भागों को जोड़कर मोटर तैयार की जाती रही हैं किन्तु अब कुछ समय से भारत में विदेशी फर्मों (न्यूफाल्ड ग्रूप) के सहयोग से पोर्ट ओखा में मोटर बनाने का कारखाना खोला गया है। सन् १६४६ में कुल २६,८५४ मोटर गाड़ियां अलग २ भाग जोड़कर तैयार की गईं। सरकार द्वारा मोटरों के विभिन्न भागों को बनाने वाले उद्योग को संरक्षण मिला है। नीचे की तालिका में प्रमुख कारखानों की उत्पादन क्षमता दी गई है :—

हिन्दुस्तान मोटर्स	१६,२०० मोटर गाड़ियां	प्रीमियर ऑटोमोबाइल्स	१२,६००
जनरल मोटर्स	१५,००० ,,	अशोक मोटर्स	६,०००
फोर्ड मोटर्स	१४,४०० ,,	रूट्स समूह	३,०००

मोटर यातायात का राष्ट्रीयकरण (Nationalisation of Motor Transport)

रेल और मोटर यातायात में प्रतिस्पर्धा होने से बहुत हद तक देश को आर्थिक हानि पहुंची है। अस्तु, रेलों का तो पूर्णतया राष्ट्रीयकरण हो ही चुका, किन्तु मोटर यातायात के राष्ट्रीयकरण के प्रयत्न भी कई प्रान्तों में किए गए हैं। मोटर यातायात का राष्ट्रीयकरण किया जाय या न किया जाय, इस समस्या पर काफी पक्ष और विपक्ष में विचार उपस्थित किए जा चुके हैं।* सड़क यातायात के साधनों

* मोटर यातायात के राष्ट्रीयकरण के पक्ष में कुछ विचार इस प्रकार प्रकट किए गए हैः—

(१) राष्ट्रीयकरण के हिमायतियों का कहना है कि यदि मोटर यातायात की व्यवस्था सरकार के हाथ में आ जायेगी तो जनता को न केवल सस्ती अपितु कुशल यातायात भी उपलब्ध हो

का राष्ट्रीयकरण करने के लिये हमारे यहां तीन प्रमुख पार्टियों के भिन्न २ विचार हैं। सरकार को लगभग ८०० करोड़ रुपये की पूंजी रेलों आदि में लगी है इस हेतु वह यह सहन नहीं कर सकती थी कि रेल–मोटर प्रतियोगिता के फलस्वरूप उसको किसी प्रकार की आर्थिक हानि उठानी पड़े। प्रान्तीय सरकारों का कथन है कि सड़कों को बनाने और उत्तम अवस्था में उनको रखने में उसका अधिक रुपया खर्च हो जाता है और इस प्रकार उन सड़कों पर निजी व्यापारी लोग अपनी मोटरें चलाकर लाभ उठाते हैं। पूंजीपतियों का कहना है कि जब किसी ओर से सड़कों आदि बनाने अथवा मोटर सर्विस चालू करने के लिए पूंजी उपलब्ध नहीं हो रही

सकेगा क्योंकि अभी तक व्यक्तिगत मालिक अधिक से अधिक किराया लेकर भी जनता को यात्रा संबंधी कोई सुविधायें नहीं पहुंचा सके हैं क्योंकि उनका एक मात्र ध्येय लाभ कमाना है। उन्हें जनता की सुविधा और आराम का कोई ख्याल नहीं बल्कि वे सदैव अधिक किराया लेकर उसका शोषण करते रहे हैं।

(२) ज्यों २ मोटर द्वारा की जाने वाली यात्रा में वृद्धि होती है त्यों २ मोटर मालिक किराया बढ़ाते जाते हैं। यह हो सकता है कि रेलों के मुकाबले में मोटर यातायात सस्ता पड़ता हो किंतु यह इतना अव्यवस्थित है कि इस बात की कोई गारंटी नहीं की जा सकती कि किराया स्थिर रहेगा। यात्रियों और माल ढोने का किराया सभी प्रान्तों में एक सा रहे इसके लिए यह नितान्त आवश्यक है कि सड़क यातायात का राष्ट्रीयकरण किया जाय।

(३) अब तक व्यक्तिगत मोटर मालिकों ने उन दूर बसे गांवों अथवा स्थानों को (जहां जनसंख्या कम होने से न तो अधिक यात्री ही मिलते हैं और न अधिक सामान ढोने को ही मिलता है) बड़े शहरों अथवा व्यापारिक मंडियों से जोड़ने का काम पूर्ण रूप से नहीं किया है। मोटर सर्विसें उन्हीं मार्गों पर चलती है जहां उन्हें यात्री और सामान मिल सके। नतीजा यह होता है कि देश का एक बड़ा भाग यातायात की सुविधाओं से वंचित हो जाता है। अस्तु यदि सरकार मोटर यातायात को अपने अधिकार में करले तो वह सुगमता से ही नए मार्गों पर अपनी गाड़ियां चलाकर देश के विभिन्न भागों को एक दूसरे से जोड़ सकती हैं।

(४) सड़कों का राष्ट्रीयकरण हो जाने से मोटरों आदि की कार्य क्षमता भी बढ़ जायगी और जनता को यह लाभ होगा कि ये सर्विसें उन्हीं के हितों को ध्यान में रखकर चलाई जायगी क्यों कि सरकार के सम्मुख जनता की सुविधाएं प्रथम होंगी और लाभ का विचार अन्तिम। यात्रियों को अधिक सुविधाएं मिल सकेंगी, मोटरें अच्छी अवस्था में रखी जा सकेंगी, सर्विसें निश्चित समय पर चलाई जायेंगी और किराए तथा भीड़ में कमी होगी। अभी तक कोई मोटर मालिक इन बातों पर ध्यान नहीं देता। मोटरों में अन्धाधुन्ध यात्री भेड़ बकरियों की तरह ठूस दिए जाते हैं. ठीक समय पर गाड़ियां नहीं छोड़ी जाती तथा प्रायः गाड़ियों की मरम्मत पर भी उचित ध्यान नहीं दिया जाता जिससे मार्ग में यात्रियों को असुविधा उठानी पड़ती है। अस्तु यदि सरकार मोटर यातायात पर अपना नियंत्रण कर ले तो ये सब दोष मिट सकते हैं।

(५) अभी तक सड़कें बनाने, उनको ठीक हालत में रखने का काम प्रान्तीय सरकारों के अधिकार में है और मोटरों आदि की मरम्मत, टूट फूट का बचाव आदि करने का जिम्मा मोटर

थी तब इन्हीं लोगों ने लाभ का विचार न कर जोखम होते हुए भी उन्होंने अपनी पूंजी इस कार्य के लिये लगाई अस्तु अब सड़कों के यातायात साधनों का राष्ट्रीयकरण करना उनके हितोंके विरुद्ध होगा। अतः राष्ट्रीयकरण की इस समस्या को हल करने के लिए राष्ट्रीय सरकार ने रेलवे बोर्ड की सिफारिशों से उत्साहित होकर एक त्रिसूती योजना बनाई और इस योजना को कार्यान्वित करने का भार प्रान्तीय सरकारों को सौंपा। इस योजना के अन्तर्गत विभिन्न प्रान्तों में संयुक्त पूंजी वाले 'निगम' बनाने का उद्देश्य था जिसके हिस्से केन्द्रीय रेलवे विभाग, प्रान्तीय सरकारें और निजी पूंजीपतियों में बांटे जाने वाले थे। अधिकृत पूंजी का ३० से ३३% हिस्से

मालिकों का होता है। अस्तु यदि सड़कों की बुरी दशा होने से मोटरों आदि को हानि होती है तो अप्रत्यक्ष रूप से उसका प्रभाव यात्रियों और जनता पर ही पड़ता है क्योंकि मोटर किराए की दरों में वृद्धि कर दी जाती है। अस्तु सड़कें बनाने तथा मोटरें चलाने का अधिकार सरकार के ही हाथ में हो तो अवश्य नए मार्गों को चलाने के पहले वह सब प्रकार का विचार करके जनता को व्यर्थ के भार से बचायेगी।.

(६) मोटर कर्मचारियों, नौकरों आदि को भी काफी राहत मिल सकेगी। उनके काम करने के घण्टे निश्चित होंगे और उनकी कार्यक्षमता भी बढ़ सकेगी।

मोटर मालिकों द्वारा राष्ट्रीयकरण के विपक्ष में ये दलीलें दी जाती हैं :-

(१) श्री पट्टाभीसीतारमैया ने अखिल भारतीय मोटर संघ कांग्रेस की एक सभामें (जनवरी १९४७) भाषण देते हुए कहा कि "सड़कों का विचार स्वतः ही गलत है। मोटर मालिकों की शिकायतें सुनकर उनकी जांच करना और उपयुक्त निर्णय देना बहुत ही समझदारी का काम है। उन लोगों ने ऐसे समय में इस अनिश्चित व्यवसाय में अपनी पूंजी लगाई है जब उन्हें लाभ की कोई आशा न थी। अनेक विघ्न बाधाओं को पार कर अब उन्हें कुछ लाभ होने लगा है तो नियन्त्रण, लाइसेंस लेने की दिक्कतें और घूसखोरी इतनी बढ़ गई कि उनका जीवित रहना ही दुर्लभ हो गया है। अतः अब यह कहना कि वे अपने व्यवसाय को सरकार को सौंप दें उतना ही हास्यपद होगा जितना कि किसी भलाई करने वाले के साथ कोई बुराई करे।"

(२) यदि मोटर यातायात विभिन्न व्यक्तियों के हाथ में हो तो आपसी प्रतिस्पर्धा होने से यातायात में उन्नति हो सकना संभव है, इसके लिये नवीनतम आविष्कार काम में लाये जा सकते हैं, अधिक आरामदायक गाड़ियां चलाई जा सकती हैं और इस प्रकार कार्य और उत्पादन क्षमता बढ़ाई जा सकती है किन्तु यदि मोटर यातायात अबाध रूप से सरकार के हाथ में आजाता है तो उसके विकास में बाधा पड़ना स्वाभाविक ही है क्योंकि सरकारी कर्मचारी इतनी रुचि और लगन से काम नहीं करेंगे।

(३) सरकार द्वारा राष्ट्रीयकरण कर लेने से सबसे बड़ी हानि यह होगी कि सरकार और उसके कर्मचारियों के बीच अच्छे सम्बन्ध न रह सकेंगे। उनमें अधिक हड़तालें होंगी, उनकी मांगे पूरी न की जा सकेंगी और इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से अनिश्चित काल तक के लिए जनता को मोटर यातायात से होने वाले लाभ से वंचित रहना पड़ेगा।

(४) अभी तक मोटरें जहां चाहे यात्रियों की सुविधा के लिये मार्ग में कहीं भी ठहर सकती हैं और नये यात्री ले सकती अथवा उतार सकती है किन्तु राष्ट्रीयकरण होजाने पर यह सुविधा न रह सकेगी क्योंकि सरकारी बसें नियत स्थानों पर ही ठहरती हैं।

भारतीय रेलों, ३० से ३५% प्रान्तीय सरकारों तथा शेष जनता में बाँटा जाने वाला था। यदि पूंजीपति चाहें तो वे नकद रुपयों की बजाय चालू अवस्था की मोटर गाड़ी भी दे सकते थे। सभी प्रान्तों में इस प्रकार निर्मित निगमों द्वारा ही मोटर यातायात की व्यवस्था होने को थी। इस कार्य में जो भी लाभ होगा वह हिस्सेदारों में उनकी हिस्से-पूंजी के अनुपात में बांट दी जायगी। इस योजना का सभी क्षेत्रों में स्वागत किया गया किन्तु कुछ समय बाद पूंजीपतियों ने इस योजना काइस आधार पर कड़ा विरोध करना आरम्भ किया कि यदि निगम बन गए तो नई व्यवस्था में उनका कोई महत्व नहीं रह जायगा और प्रत्येक बातों में रेलवे द्वारा उन्हें हार माननी पड़ेगी तथा उनके द्वारा दी जाने वाली मोटरों की कीमत का अनुमान सही २ नहीं लगाया जा सकेगा जिससे उन्हें व्यर्थ की आर्थिक हानि उठानी पड़ेगी। किन्तु इतना होने पर भी सभी राज्यों ने मोटर यातायात के राष्ट्रीयकरण की नीति अपनाली है। पिछले ४-५ वर्षों में इस दिशा में विभिन्न राज्यों में यथेष्ट प्रगति हुई है।

उत्तर प्रदेश की सरकार ने १९४७ से ही सवारियां ले जानी वाली मोटरों का राष्ट्रीयकरण कर लिया है। इस कार्य के लिए संयुक्त पूंजी वाली कम्पनियां बनाने को सरकार ने अपने बजट में १३३ लाख रुपये की रकम मंजूर की। समस्त प्रान्त को मोटर यातायात की सुविधाओं के अनुसार नौ प्रदेशों में बांटा गया है—गोरखपुर, कानपुर, लखनऊ, इलाहाबाद, आगरा, बरेली, मेरठ, कुमायूं और गढ़वाल-जिसमें प्रत्येक में एक २ संयुक्त पूंजी वाली कम्पनी होगी। मैदानी क्षेत्रों में चलने वाली मोटर-सर्विस में सरकार का हिस्सा ३०% और रेल विभाग तथा मोटर मालिकों का हिस्सा क्रमश २५% और ४५% रखा गया किंतु पहाड़ी क्षेत्रों में चलने वाली सर्विसों में रेल विभाग का कोई हिस्सा नहीं रखा गया केवल सरकार (५१%) और मोटर मालिकों (४९%) दोनों ही को इसमें हिस्सा मिला। सरकार ने यह भी निर्णय दिया कि जिन मोटर मालिकों को इस नई योजना से हानि होगी उनको सरकार उन मार्गों पर मोटर चलाने की प्राथमिकता देगी जिनका राष्ट्रीयकरण कुछ समय तक के लिए

---

(५) यदि मार्गों का राष्ट्रीयकरण होगया तो मोटर मालिकों को उससे हुई हानि के उपलक्ष्य में एवजाना देना पड़ेगा और इस एवजाने की रकम इतनी अधिक होगी कि यह सरकार की कमजोर आर्थिक दशा को और भी अधिक जर्जर बना देगी। इसके अतिरिक्त एवजाने की रकम का निर्णय करना भी कठिन होगा

(६) मोटर मालिकों का कहना है कि मोटर यातायात कानून के अन्तर्गत सड़कों पर चलने वाली मोटर सर्विसों की कार्य क्षमता बढ़ाने के लिए पहले ही से हिदायतें मौजूद हैं, ऐसी हालत में राज्य द्वारा नियन्त्रित सर्विसों से कोई विशेष लाभ नहीं हो सकेगा अस्तु यातायात प्रतिस्पर्धा और एकाधिकार के दोषों से मुक्त होने का सबसे उत्तम मार्ग यही होगा कि प्रत्येक सर्विस को स्वतन्त्र रूप से चलने दिया जाय और इसके लिये व्यक्तिगत मालिक यदि चाहे तो वे सहकारी रूप में आपस में मिलकर एक निश्चित आकार का रूप ले सकते हैं।

नहीं किया जा रहा है। कुल मोटरों की आवश्यकता की आधी संख्या रेलों द्वारा और शेष मोटर मालिकों से निश्चित दरों पर मोटरें खरीद कर पूरी की जायगी। आरंभ में यह सर्विस केवल यात्रियों को ही ले जायेगी। अब उत्तर प्रदेश में इस योजना के अनुसार सरकारी विभाग द्वारा ही मोटर सर्विस का संचालन होता है। सबसे पहली सरकारी सर्विस २५ मई १९४७ को आरंभ की गई। सितम्बर १९४९ तक १५० मार्गों का राष्ट्रीयकरण किया जा चुका था जिस पर ११६२ सवारी गाड़ियां, ५५६ ट्रकें और ४६ किराये की मोटरें चल रही थीं। उत्तर प्रदेश में इस योजना द्वारा सरकार को आशातीत सफलता मिली है इसका ज्ञान नीचे दी गई तालिका से होगा:—*

उत्तर-प्रदेश रोड़-वेज द्वारा हुई प्रगति

वर्ष 31 मार्च	सवारी गाड़ियां	ट्रक	किराये की गाड़ियां	यात्रियों की संख्या	मार्ग जिन पर सर्विसें चलाई गईं	कुल दूरी जो तय की गई	वास्तविक आय
१९४८	५११	३३६	...	१,२१,०९,७८८	३१	४४,१७,४४७	४५५३३१
१९४९	८५६	५२४	३२	२,६५,२४,६०३	१२८	१,७६,०९,८०६	१३६८००९
१९५०	१२६०	५८३	४७	२,०२,३९९,२६	२३१	२,७०,१७ ८०६	५४८५१६

आरंभ में सवारी गाड़ियों का किराया निम्न श्रेणी के लिए ६ पाई प्रति मील और उच्च श्रेणी के लिए ९ पाई प्रति मील नियत किया गया किंतु पैट्रोल पर चुंगी बढ़ जाने तथा महंगाई आदि के भत्ते में वृद्धि हो जाने से निम्न श्रेणी का किराया ६ से ७½ पाई प्रति मील कर दिया गया, ऊपरी श्रेणी का किराया वही रखा है। यात्रियों को सब प्रकार की सुविधा दी जाती है। स्त्रियों और पुरुषों के टिकट घर अलग २ बने हैं। उनके बैठने आदि का उपयुक्त इंतजाम है। मोटर-स्टेशनों पर पानी के पीने और टट्टी घरों आदि तथा कुलियों आदि की भी उचित व्यवस्था की गई हैं। सवारी गाड़ियों में निश्चित संख्या से अधिक सवारियां नहीं ली जाती और यात्रियों की सभी सुविधाओं का यथाशक्ति ध्यान रखा जाता है। अब तो १९५० के अंत से ही उत्तर प्रदेश के कई नगरों के बीच भी मोटर सर्विसें नियमित रूप से चलाई जा रही हैं। मेले आदि के समय भी विशेष मोटर सर्विसें चालू कर जनता को अधिकाधिक आरामदायक यात्रा करने की सुविधा दी जाती है।

बम्बई में *राज्य सड़क यातायात कम्पनी* (State Road Transport Company) की स्थापना १९४७ में की गई। इसमें भारत सरकार और प्रांतीय

* देखिये भटनागर, बहादुर आदि की "ट्रांसपोर्ट इन माडर्न इण्डिया" पृ. २०९–२१०

सरकार की पूंजी १:३ के अनुपात में लगाई गई है। इसका उद्देश्य धीरे २ राज्य भर के मोटर यातायात को अपने नियन्त्रण में ले लेना है। बम्बई सरकार को इसमें जो सफलता मिली है उसका अनुमान नीचे के आंकड़ों से लगाया जा सकता है :—

वर्ष	*मार्ग जिन पर सर्विस चलती है*	*मार्गों की दूरी*	*दूरी जो तय की गई*	*प्रति माह ले जाये गए यात्रियों की संख्या*
१९४८	८	२४०	१०८,७५२	१७,७८२
१९५०	४६५	१५,०३६	२६१,९४७	४२,४७,६४७

यह कम्पनी बम्बई के दस प्रदेशों में अपनी सर्विस चलाती है। इससे जो कुछ लाभ होता है उसका अधिकांश भाग उत्तम सड़कें बनाने तथा यात्रियों के सुख और सुविधा में खर्च किया जाता है।

पूर्वी पंजाब और मद्रास में भी सरकारी विभागों द्वारा ही मोटर सर्विस का संचालन होता है। उड़ीसा में *सड़क यातायात निगम* (Road Transport Corporation) की स्थापना होने वाली है जो राज्य द्वारा संचालित मोटर यातायात को अपने हाथ में ले लेगा। पश्चिमी बंगाल में फिलहाल कलकत्ते और वृहत कलकत्ते की बस सर्विसों तक ही राष्ट्रीयकरण सीमित होगा। मध्य प्रदेश में 'सी० पी० ट्रांसपोर्ट सर्विसेज लि०' (C. P. Transport Services Ltd) और प्रांतीय यातायात कम्पनी द्वारा मोटर सर्विसेज चलाई जा रही हैं। ट्रावनकोर, मैसूर, कोचीन, सौराष्ट्र आदि में भी मोटर यातायात का राष्ट्रीयकरण आरम्भ हो गया है। दिल्ली में केन्द्रीय सरकार द्वारा मोटर यातायात का संचालन होता है पर अब यह संचालन *'दिल्ली सड़क यातायात'* संस्था (Delhi Road Transport Authority) नाम की स्वतन्त्र संस्था के हाथ में चला गया है।

दिसम्बर १९५० में भारतीय संसद ने *सड़क यातायात निगम विधेयक* (Road Transport Corporation Bill) पास कर दिया। इस बिल के पास होजाने से राज्य की सरकारों को सड़क यातायात के राष्ट्रीयकरण का अधिकार मिल गया है और राज्य को अपनी बस सर्विसों की Statutory Corporation द्वारा प्रबन्ध व्यवस्था कराने का अधिकार प्राप्त होगया है।

पंच वर्षीय योजना में राज्य द्वारा चलने वाली मोटर सर्विसेज के लिए 'अ' श्रेणी के राज्यों के लिए ५·६ करोड़ रुपया, 'ब' श्रेणी के राज्यों के लिए १·६ करोड़ रुपया और 'स' श्रेणी के राज्यों के लिए २० लाख रुपया—इस प्रकार कुल ७·४ करोड़ रुपया रखा गया है। योजना आयोग ने इस बात पर भी जोर दिया है कि राज्य की यातायात सर्विसें जिन मोटर गाड़ियों को काम में लें उनका Standardi

sation हो और देश के मोटर उद्योग के विकास से पुरानी मोटर गाड़ियों के स्थान पर नई गाड़ियां बदलने और उनकी संख्या बढ़ाने के उपायों का अवलम्बन किया जाय। मोटर गाड़ी सुधारने के कारखानों की स्थापना करने और Technical personnel को शिक्षा देने की उचित व्यवस्था करने की ओर भी विशेष ध्यान देना चाहिए।*

---

* देखिये, 'फाइव ईयर प्लान' पृ० १७८–१७९

अध्याय २०

रेल मोटर प्रतिस्पर्धा और उनका समन्वय

RAIL ROAD COMPETITION & THEIR CO-ORDINATION

यातायात के विभिन्न साधनों का कार्य-क्षेत्र अलग २ होता है और इसलिए जब एक साधन अपने क्षेत्र को लांघ कर दूसरे साधन के क्षेत्र में जाने की कोशिश करता है तभी दोनों साधनों के बीच प्रतिस्पर्द्धा उत्पन्न हो जाती है जिसके फलस्वरूप हर एक साधन अपनी स्थिति को मजबूत बनाये रखने के लिये कम किराया आदि लेकर आर्थिक संकट पैदा कर देता है। दूर २ के यातायात के लिए रेलों के बराबर सुविधा का साधन दूसरा नहीं है। यद्यपि हवाई जहाज की उन्नति होने से हल्का माल थोड़े समय में दूर २ तक ले जाया जा सकता है फिर भी माल ले जाने के लिए रेलों की आवश्यकता बनी हुई है। इसलिए रेलों का अपना पृथक क्षेत्र है। इसके विपरीत रेलों को देश के आन्तरिक भाग से माल लाने और उनका लाया हुआ माल देहातों में ले जाने के लिये लारियों और बैलगाड़ियों की आवश्यकता होती है। जहां दूरी कम है वहां रेलों का बनाना और उनके द्वारा माल ले जाना अधिक खर्चीला पड़ता है। रेल की लाइन बनाने का व्यय, स्टेशन, फ्लेटफार्म, कर्मचारियों डिब्बे, एंजिन, सिगनल, कल पुर्जे आदि का इतना अधिक खर्चा पड़ता है कि रेलों की तुलना में सड़कें बनवाना अधिक सस्ता पड़ता है क्योंकि बस या मोटर मालिकों को न तो सडकें बनवानी पड़ती है—यद्यपि वे पैट्रोल-कर के रूप में सड़क बनाने का आंशिक व्यय सहन करते हैं—और न उन्हें स्टेशन आदि बनवाने अथवा असंख्य कर्मचारी ही रखने पड़ते हैं। एक बस के मालिक को मोटर खरीदने के लिए रुपया चाहिए और उसे चलाने के लिए एक ड्राइवर, एक क्लीनर तथा एक आपरेटर की जरूरत है। इन सब का परिणाम यह होता है कि मोटर लारी कम किराया लेकर सफलता पूर्वक रेलों की तुलना में प्रतिस्पर्धा कर सकती है। इसी प्रकार तटीय भागों में जहाजों और रेलों में भारी किंतु कम कीमती सामान ढोने के लिए प्रतिस्पर्द्धा होती है। अस्तु, भिन्न साधनों—रेलों, सड़कों, जहाजों—आदि का क्षेत्र भिन्न २ है और यदि दोनों का विस्तार अपने अपने क्षेत्र में ही हो तो उनमें प्रतियोगिता का भय न रहे।

परन्तु दुर्भाग्य वश हमारे देश में कुछ सीमा तक रेलों और सड़कों में यात्री और सामान ढोने में प्रतिस्पर्धा होने लगी है जिसके फलस्वरूप दोनों में यह विवाद छिड़ गया है कि दोनों में कौन अधिक लाभदायक है। रेलों की प्रायः यह शिकायत **रहती है** कि मोटरें उनसे अपने मार्ग में कहीं २ ठहर सकने और माल लाने ले जाने की सुविधा होने के कारण प्रतिस्पर्धा करने लगी हैं और इसके लिए वे जहां उन्हें सामान मिल सकता है वहीं वे जा सकती हैं और कम किराये पर ही सामान ढोकर रेलों को आर्थिक हानि पहुंचाती है। इसके अतिरिक्त जहां रेलों की लाइनें ठीक हालत में रखने तथा उनके निर्माण में खर्च करने के लिए रुपया व्यय करना पड़ता है वहां मोटरों को सड़कें सरकार द्वारा बनाई मिल जाती हैं और उन्हें सुधारने आदि के लिए भी कुछ खर्च नहीं करना पड़ता है। इस प्रकार सड़कों को सरकार प्रत्यक्षित रूप में आर्थिक सहायता मिल जाती है जब कि रेलों को इस प्रकार का कोई लाभ सरकार द्वारा नहीं मिलता। इन शिकायतों का उत्तर मोटर और बस वाले यह कहकर देते हैं कि रेलें सामान ढोने आदि के कार्य के लिए अब पुरानी हो गई हैं, उनकी महत्ता कम हो गई जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि दिन प्रतिदिन मोटरों आदि को ही सामान ले जाने के लिए चुना जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि सरकार द्वारा सड़कें निर्माण की जाती हैं किंतु ऐसी बात नहीं के वे केवल मोटरों द्वारा ही उपभोग की जाती हों। बैलगाड़ियां, साइकलों, गैस, जल तथा बिजली कम्पनियों और पैदल चलने वाले लोगों द्वारा भी व्यवहृत की जाती हैं। अस्तु यह कहना कि सड़कें पूर्ण रूप से मोटर और बसों के लिए ही निर्माण की जाती हैं न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता। जहां तक मोटर तथा बसों आदि का प्रश्न है सड़कों के निर्माण में वे भी कर तथा लाइसेंस शुल्क देकर अप्रत्यक्ष रूप में अपना भाग अदा करती हैं। मोटर तथा बस मालिकों का कहना है कि उन्होंने अपनी सर्विस-चला कर समाज को बहुत लाभ पहुंचाया है। उनके द्वारा जो व्यापार किया जाता है वह उन्हीं की देन है, रेलों की नहीं। उन्होंने दूरस्थ कई ऐसे भागों का विकास किया है जहां किसी भी यातायात के अन्य साधनों की पहुंच नहीं हुई है। इन्होंने रेलों के पूरक का काम किया है। इस प्रतिद्वंदिता के युग में जनता सस्ते से सस्ता साधन सामान ढोने के लिए ढूंढती है और इसमें यदि उन्हें अधिक व्यापार मिले तो वास्तव में यह उनका महत्व ही है। इसलिए रेल-मोटर में प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो जाती है।

यदि इस रेल-मोटर प्रतिस्पर्धा के कारणों पर ध्यान दिया जाय तो ज्ञात होगा कि इस प्रतिस्पर्धा का मुख्य कारण रेलों और मोटरों द्वारा चार्ज किया जाने वाला किराये का तरीका है। रेलवे अर्द्ध-एकाधिकार की संस्थाएं हैं अतः वे विभिन्न सामानों पर उनकी किराया चुकाने की शक्ति के अनुसार किराया तय करती हैं। इस पद्धति के अनुसार अधिक मूल्यवान वस्तुएं ऊंची श्रेणी में गिनी जाती हैं और

इनको भारी और कम मूल्यवान वस्तुओं की अपेक्षा अधिक रेल-भाड़ा चुकाना पड़ता है। इसके विपरीत मोटर-बस आदि किसी माल विशेष को ले जाने के लिए ऐसा भाड़ा लेती हैं जिसमें उनका थोड़ा सा लाभ का अंश भी सम्मिलित रहता है और यह भाड़ा रेलों द्वारा नियुक्त किए गए भाड़े से कम ही होता है। मोटरें अधिक मूल्यवान वस्तुओं के लिए साधारणतया कम भाड़ा लेती हैं और इस लिए अधिक भारी और निम्न श्रेणी की ऐसी वस्तुएँ जो कम मूल्यवान होती हैं रेलों के द्वारा ढोये जाने के लिए छोड़ देती हैं। इस प्रकार रेल-मोटर प्रतियोगिता केवल अधिक मूल्यवान और कम वजनी वस्तुओं के लिए ही होती है। मोटरें ऐसे सामान को ले जाने के लिए कम भाड़ा लेती है इसलिए रेलों की अपेक्षा इनको अधिक व्यापार मिल जाता है। फल स्वरुप रेलों को अधिक वजनदार सामान ढोने में कोई विशेष लाभ नहीं होता। अस्तु-यही रेल मोटर प्रतिस्पर्धा का मुख्य कारण है।

भारत में रेल–मोटर प्रतिस्पर्धा का श्री गणेश अभी थोड़े ही समय से हुआ है। इसका मुख्य कारण यह था कि भारत में रेलों और सड़कों का निर्माण किसी योजना के अव्यवस्थित ढंग से हुआ है क्योंकि १६२० के पूर्व तक भारत सरकार का मुख्य उद्देश्य रेलों के विकास करने का था अत: सड़कों के निर्माण कार्य की ओर इतना ध्यान नहीं दिया गया अन्यथा सड़कें रेलों की सहायक होती न कि प्रति–स्पर्धी। सड़कों और रेलों की आपसी प्रतिस्पर्धा राष्ट्र के लिए हानि कारक सिद्ध होती हैं। मोटर वाले अधिक मूल्यवान माल जो अधिक भाड़ा दे सकते हैं ले जाते हैं तथा थोड़ी दूर वाले यात्रियों को भी ले जाते हैं। रेल को भारी और कम कीमती माल और लंबी यात्रा के यात्री जो अधिक भाड़ा नहीं दे सकते उन्हें ले जाना पड़ता है। इसका परिणाम यह होता है कि रेलों को घाटा होता है। उधर रेलों की प्रति-स्पर्धा के कारण मोटर वाले भी किराया तो अधिक नहीं लेते किन्तु बहुत अधिक सवारियां भर कर, रद्दी मोटरों को चला कर बहुत घन्टे ड्राइवरों से काम लेकर प्रतिस्पर्धा करते हैं। परिणामत: मोटर द्वारा यात्रा करने वालों को भी कष्ट होता है। अस्तु प्रतिस्पर्धा सब प्रकार से राष्ट्र के लिए हानिकर है।

कुछ ही वर्षों से भारत में रेल-मोटर प्रतिस्पर्धा अधिक अनुभव होने लगी है। १६२५—२६ में रेलवे बोर्ड द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट में इस बात का कोई जिक्र तक नहीं मिलता किन्तु १६२६–२७ को रिपोर्ट ने इस ओर ध्यान दिलाया कि रेलें मोटरों द्वारा की जाने वाली प्रतिस्पर्धा को अनुभव करने लगी हैं। इस रिपोर्ट में यह भी बताया गया कि प्रतिस्पर्धा किन क्षेत्रों में अधिक है। बम्बई में नई बसों के आगमन से बी० बी० एन्ड सी० आई० रेलवे के प्रथम और द्वितीय श्रेणी के व्यापार को भी हल्का धक्का लगा। इसी प्रकार कलकत्ते के निकटवर्ती स्थानों में ई० आई० और ई० बी० रेलवे द्वारा होने वाले व्यापार को भी मोटरों से प्रतिस्पर्धा

करनी पड़ती है। जिन भागों में एन० डब्ल्यू० रेलवे चलती है उनमें भी विशेषकर कालका–शिमला और लाहौर–अमृतसर के बीच में मोटर बसें चलने लगीं। जी० आई० पी० रेलवे जिन भागों में जाती है वहां उसे भी ३६ मोटर बसों से यात्रियों के प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती थी। रेल मोटर प्रतिस्पर्धा के कारण रेलवे के सम्मुख कई नई समस्याएं उठी जिनका निराकरण करना आवश्यक था। उन पुराने मार्गो पर जिन पर पहले से रेलों का आधिपत्य था —अथवा उन नए भागों में जिनमें मोटरें चलीं रेल मोटर प्रतिस्पर्धा अधिक बढ़ी। अस्तु देश के भीतरी भागों में विशेषकर बी० एन्ड सी० आई और ई० बी० रेलवे के क्षेत्रों में इस प्रतिस्पर्धा के कारण इन रेलों को काफी आर्थिक हानि उठानी पड़ी।

जी० आई० रेलवे ने इस प्रतिस्पर्धा का मुकाबला करने के लिए पूना और लोनावाला, बड्नेरा और नागपुर तथा नागपुर—कोंटा लाइनों पर विशेष किराया कर दिया। अन्य रेलों को भी तीसरे दर्जे के किराये में काफी कमी करनी पड़ी ताकि मोटरें द्वारा ले जाये जाने वाले यात्री रेलों की तरफ आकर्षित हो सकें। प्रतिस्पर्धा की इस भीषण समस्या पर टीका करते हुए १६२६—३० के रेलवे बोर्ड की रिपोर्ट ने कहा, "पिछले कुछ वर्षों से रेल मोटर प्रतिस्पर्धा ने भीषण रूप धारण कर लिया है और रेलवे शासन को भी यह अनुभव होने लगा है कि इस समस्या का हल करने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न भिन्न प्रकार के ढंग काम में लाने की पूर्ण आवश्यकता है। इसके लिए दिन में कई बार और अधिक तेज दौड़ने वाली रेलें चलाने, वर्तमान रेलों के आने जाने के समय से यात्रियों की सुविधानुकूल परिवर्तन करने तथा माल ले जाने के किराए में कमी करने से जो माल पहले मोटरों द्वारा ढोया जाता था अब बहुत हद तक रेलों द्वारा ले जाया जाने लगा।

१९३० की विश्व व्यापी व्यापारिक मंदी ने भारतीय रेलों की आर्थिक स्थिति को बिगाड़ दिया क्योंकि मूल्यों में कमी हो जाने से रेलों द्वारा किए जाने वाले व्यापार में बहुत अधिक घाटा पड़ गया किन्तु इस मंदी का मोटरों आदि पर कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ा। वे अब समय असमय ही सामान और यात्रियों को ले जाने के लिए अपनी सर्विसें चलाने लगीं बशर्ते उनको सामान और यात्री उतना किराया (जितना वे चाहती थीं) देने के लिए मिल सके। किन्तु रेलें ऐसा नहीं कर सकती थीं। यात्री और व्यापार चाहे मिले या न मिले उन्हें तो समय पर ही जाना पड़ता था। अस्तु इस काल में जब मोटरों की व्यवस्था में सुधार हो गया तो रेल-मोटर प्रतिस्पर्धा भी अधिक भीषण रूप से उत्पन्न हो गई। इस स्थिति का अध्ययन करने के लिए भारत सरकार ने १९३३ में *मिचेल-किर्कनेस समिति* Mitchell Kirkness Committee) की नियुक्ति की। इस समिति ने बताया कि प्रति वर्ष रेल मोटर द्वारा होने वाली केवल यात्रियों की प्रतिस्पर्धा के फलस्वरूप रेलों को २ करोड़

रुपये की हानि हो रही है। इस कमेटी ने यह भी कहा कि यद्यपि थोड़ी दूरी के लिए ही मोटरें चलती हैं किन्तु कई अवस्थाओं में तो ६५ मील से अधिक दूरी के लिए भी यात्री मोटरों द्वारा ही ले जाये जाते हैं। कमेटी का अनुमान था कि आगामी कुछ वर्षों में थोड़ी और अधिक दूरी दोनों के ही लिए मोटर यातायात का विकास होगा जिससे रेलों को यात्रियों द्वारा होने वाली आय में कमी पड़ जायगी। किन्तु जहाँ तक माल आदि ले जाने का प्रश्न है मोटरें अधिक दूरी तक सामान ले जाने के लिए रेलों से प्रतिस्पर्धा करने के उपयुक्त नहीं है किन्तु रेलों पर इसका भी असर पड़ा। इस प्रकार मोटरों द्वारा की जाने वाली प्रतिस्पर्धा का प्रभाव एन० डब्लू रेलवे, ई० आई० रेलवे और ई० बी० रेलवे पर अधिक पड़ा। १९३४—३५ में अधिक मोटर बसों के चलने से यह प्रतिस्पर्धा और भी बढ़ गई क्योंकि अब रेलों की ही तरह ये भी नियत समय और निश्चित दरों पर यात्रियों और माल को लेजाने लगीं।

मिचेल- किर्कनैस कमेटी ने रेल-मोटर प्रतिस्पर्धा को कम करने के लिए निम्न सुझाव १९३३ में पेश किये :—

(१) यदि रेलों को होने वाली आर्थिक हानि से बचाना है तो शीघ्र ही मोटरों को नियन्त्रण करने के लिये कठोर नियमों का लागू करना आवश्यक है। प्रति मोटर के लिये ५० मील का क्षेत्र नियत किया जाय जिसमें वे अबाध रूप से अपनी सर्विस चला सकें। जो सड़कें रेलों के समानान्तर हैं उन पर जनता की व्यापारिक मोटर नहीं चलाने दी जाय बल्कि यदि रेलें चाहें तो वे अपनी बस सर्विस उपयुक्त क्षेत्रों में चालू कर सकती हैं।

(२) मोटरों पर सरकार द्वारा एक निश्चित कर लगाया जाय तथा रेलों की तरह ही उन पर यह नियम लागू किया जाय कि वे अपने समय—विभाग और दरों की सूची बनाकर सरकार से स्वीकृत करायें। उन ग्रामीण भागों में जहां रेल मार्ग नहीं बनाये जा सकते मोटरों को सामान लाने और ले जाने का एकाधिकार दे दिया जाय।

(३) साधारण शासन सम्बन्धी व्यवस्था के लिये एक केन्द्रिय रेल, सड़क जलमार्ग, डाक तथा तार विभाग (Central Board of Communications) की स्थापना की जाय।

मिचेल-किर्कनैस कमेटी द्वारा प्रस्तुत की गई इन सिफारिशों पर विचार करने के लिये सरकार ने प्रांतीय सरकारों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन शिमला में १९३३ में बुलाया। इस सम्मेलन ने यह अनुभव किया कि न केवल राष्ट्रीय हित में ही बल्कि जनता के हित में भी इस बात की आवश्यकता है कि रेल मोटर याता-यात के साधनों में सहयोग और समन्वय स्थापित किया जाय जिससे आर्थिक क्षति

रोकी जा सके, साथ ही यह भी अनुभव किया गया कि गांवों की सड़कों को रेलों को सहयोग देने के लिये ही निर्माण किया जाय और इस कार्य के लिये सभी प्रकार से प्रोत्साहन दिया जाय। सम्मेलन ने कमेटी के इस प्रस्ताव को—कि किन्हीं क्षेत्रों में रेलों द्वारा अपनी बस सर्विसें चालू की जाय—भी स्वीकृत कर लिया और इस बात पर जोर दिया कि मोटर यातायात पर लाइसेंसों आदि के देने में तथा यात्रियों की सुरक्षा सम्बन्धी सुविधाओं का ध्यान रखने में मोटरों पर अधिक कठोर नियन्त्रण रखा जाय तथा भविष्य में सुधार योजनाओं के विकास में इस बात का ध्यान रखा जाय कि सरकार की नीति यातायात के विभिन्न साधनों में समन्वय स्थापित करने की हो। सारे देश के सभी प्रान्तों में मोटर पर लगाये जाने वाले कर तथा नियमों में एकरूपता हो और इसको सुचारू रूप से कार्यान्वित करने के लिये एक केन्द्रीय संस्था के स्थापना की इच्छा व्यक्त की गई।

रेल सड़क के इस सम्मेलन की सिफारिशों के फलस्वरूप भारत सरकार ने १६३३ के रेलवे एक्ट को देश भर में लागू किया जिसके अन्तर्गत रेलों को अपनी बस सर्विस चलाने का अधिकार दिया गया और रेल तथा सड़क यातायात में समन्वय स्थापित करने के लिये एक *केन्द्रीय यातायात सलाहकार परिषद* (Central Transport Advisory Council) की स्थापना १६३५ में की गई। इस परिषद ने रेल-मोटर समन्वय के लिये एक रूपरेखा तैयार की जिसके अनुसार मिचेल किर्कनैस कमेटी द्वारा सिफारिश किये गये 'क्षेत्र तरीके' (Zoning System) को शीघ्रातिशीघ्र काम में कार्यान्वित करने का आदेश दिया गया तथा मोटर बसों को तीसरे व्यक्तियों की सुरक्षा के लिये बीमा कराना आवश्यक समझा गया। नियमित रूप से ड्राइवरों का डाक्टरी मुआयना किया जाना भी आवश्यक माना गया। ग्रामीण क्षेत्रों में चलने वाली मोटरों को एकाधिकार दिया जाय तथा सहायक सड़कों का निर्माण रेलों के पूरक के रूप में किया जाय। साधारणतया मोटरों का अन्तर प्रान्तीय आवागमन भी रोका जाय यदि आवश्यकता पड़ ही जाय तो विशेष आज्ञापत्र द्वारा ही ऐसा किया जाय।

वेजवुड कमेटी १६३६

इतना सब होने पर भी रेल-मोटर प्रतिस्पर्धा कम नहीं हुई वरन् वह बढ़ती ही गई। इससे रेलों को बराबर आर्थिक हानि हो रही थी। सरकार ने १६३६ में फिर एक कमेटी वैजवुड *कमेटी* (Wedgewood Committee) रेल मोटर की प्रतिस्पर्धा की जांच करने के लिये बिठाई। इस कमेटी ने बताया कि रेलों को इससे होने वाली आर्थिक हानि १६३३ में २ करोड़ रुपये से १६३५ में ३ करोड़ और १६३७ में ४½ करोड़ रुपया हुई। इस कमेटी ने यह भी कहा कि मोटरों की अवस्था में सुधार

होने तथा सड़कों की लम्बाई में वृद्धि होने के कारण रेल मोटर प्रतिस्पर्धा और भी भीषण रूप धारण कर रही थी।

जी० आई० पी० रेलवे और एम० एंड० एस० एम० रेलवे ने भी यही शिकायत की कि उनके विभिन्न प्रयत्नों के बावजूद भी रेल मोटर प्रतिस्पर्धा बढ़ रही है, इसका प्रभाव यात्री और माल ले जाने दोनों पर पड़रहा है। १६३७ में ई. आई. रेलवे ने भी रेलवे बोर्ड के सामने यही कहा कि सारी रेल पद्धति में ही यह प्रतिस्पर्धा आरम्भ हो गई है इसके मुख्य स्थान वे बड़े २ औद्योगिक नगर हैं जहां से मोटरें और रेलें दोनों ही एक साथ छूटती हैं यथा गया, पटना, बनारस, इलाहाबाद, कानपुर, लखनऊ, आगरा, दिल्ली, देहरादून और सहारनपुर। यह प्रतिस्पर्धा विशेषकर बंगाल और संयुक्त प्रांत तथा पंजाब में बढ़ती जा रही थी।

इस स्थिति की जाँच करने के लिये सरकार ने १६३६ में वेजवुड समिति नियुक्त की। सबसे पहले समिति ने इसी बात पर जोर दिया कि हमारी राय में मोटर यातायात को रोकने के लिए कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाना चाहिए और जनता के हितार्थ दोनों ही साधनों—रेल और सड़क—का विकास किया जाय किन्तु साथ ही साथ कमेटी ने इस बात की ओर भी इशारा किया कि सड़क यातायात की स्थिति बहुत ही बिगड़ चुकी है; इसका मुख्य कारण पुरानी तथा अव्यवस्थित मोटरों और अधिक सवारियों को भर कर लेजाना है। अस्तु सड़क यातायात की उचित व्यवस्था करना जनता के हितों में आवश्यक समझा गया किन्तु ऐसा करने में कई कठिनाइयां थी। पहला कारण यह था कि विभिन्न प्रान्तीय सरकारें अपने प्रान्तों में सड़कों के निर्माण और विकास के लिए जिम्मेदार समझी जाती थी किन्तु कई सरकारों को इस सम्बन्ध में पूरी तरह अपने अधिकार भी नहीं ज्ञात थे अस्तु सड़कों के विकास में कई सरकारों ने तो कोई ध्यान ही नहीं दिया। दूसरे प्रान्तीय सरकारों और केन्द्रीय सरकारों के बीच में इस सम्बन्ध में कुछ विरोधाभास चल रहा था क्योंकि केन्द्रीय सरकार रेलों के विकास में ही अपना हित मानती थी और प्रान्तीय सरकारें सड़कों के निर्माण में। अस्तु प्रान्तीय सरकारों द्वारा केन्द्रीय सरकार पर यह आरोप लगाया जा रहा था कि सरकार सड़कों के विकास के मार्ग में रोड़ा अटका रही है। इन कारणों से भारत में अपर्याप्त सड़कों और हानिप्रद रेलों से देश को आर्थिक नुकसान हो रहा था। इस सम्बन्ध में वेजवुड कमेटी की राय थी कि भारत में खेती तथा उद्योग धन्धों के उन्नति के लिए यातायात के साधनों के विकास की बहुत बड़ी आवश्यकता है। यह तभी सम्भव और सरलता पूर्वक, हो सकता है कि जब—रेल सड़क का सहयोग तथा समन्वय स्थापित हो सके।

इस कमेटी का विचार था कि जहां तक रेलों की व्यवस्था का सवाल है वह

काफी हद तक ठीक है किन्तु सड़कों की व्यवस्था में सुधार होना शीघ्रातिशीघ्र आवश्यक है। इसके लिए कमेटी ने कई सुझाव रक्खे:—

(१) इस प्रकार की सुव्यवस्था का मुख्य उद्देश्य न केवल रेलों की ही प्रतिस्पर्धा से रक्षा करना होना चाहिए बल्कि सड़कों और रेलों दोनों के हितों को ध्यान में रखना आवश्यक है। मोटर यातायात पर कठोर नियन्त्रण स्थापित करना चाहिए। और उसके लिए समय २ पर उनकी जांच और देख भाल करनी चाहिए। निश्चित संख्या से अधिक सवारियाँ भर कर ले जाने पर रूकावट होनी चाहिए। प्रत्येक मोटर कितना सामान और यात्री लेजा सकेगी इसका निर्णय पहले ही कर लेना चाहिए और उसी के अनुसार उन्हें आज्ञा मिलनी चाहिए। मोटर ड्राइवरों के काम के घन्टे निश्चित किये जांय। कोई भी ड्राइवर एक साथ ५ घन्टे से अधिक और दिन में ६ घन्टे से अधिक (आधे घन्टे के विश्राम को छोड़कर) काम नहीं कर सकता। मोटर ड्राइवरों की स्वास्थ्य सम्बन्धी जांच भी समय २ पर होती रहनी चाहिए। सभी मोटर गाड़ियों में गति सूचक नये यन्त्रों का लगाया जाना आवश्यक माना गया और विभिन्न प्रकार की गाड़ियों की प्रति घण्टा रफ्तार निश्चित की जानी चाहिए— यथा हल्का सामान ढोने वाली लारी के लिए २५ मील प्रति घण्टा, अन्य साधारण मोटरों के लिए १५ मील प्रति घण्टा और ट्रैलरों के लिए ३० मील प्रति घण्टा की रफ्तार होनी चाहिए।

(२) इस कमेटी ने इस बात पर भी जोर दिया कि केवल व्यवस्था सुधर जाने से ही कोई विशेष लाभ नहीं होगा। समन्वय पूर्ण रूप से हो सके इसके लिये यह भी आवश्यक है कि मोटर गाड़ियों आदि को जितनी मांग हो उससे अधिक गाड़ियां न होनी चाहिये। क्योंकि यदि मोटरों की संख्या मांग से अधिक हुई तो देश को आर्थिक हानि भुगतनी पड़ेगी। अस्तु, कमेटी ने यह सुझाव दिया कि मोटरों को चलाने के लिये लाइसेंस लेना अनिवार्य कर देना चाहिये। यात्री ले जाने वाली मोटर को विभिन्न मार्गों पर ही लाईसेंस दिये जाने चाहिये। इन विभिन्न मार्गों के लिए कमेटी ने भाड़ा तय करने का सुझाव भी दिया। इसके लिए प्रादेशिक लाइसेंस देने वाली संस्था ही यह निश्चय करे कि किन वस्तुओं को मोटर गाड़ियां ले जा सकती हैं और किन किरायों पर।

(३) सभी प्रान्तों में मोटरों और बसों पर कर, एक सा लगाया जाय और यदि करों में विभिन्नता हो तो उसे शीघ्र से शीघ्र समाप्त किया जाय।

(४) सड़कों के विकास के लिये कमेटी का कहना था कि यद्यपि सड़कों के निर्माण का कार्य प्रान्तीय सरकारों पर है किन्तु यह आवश्यक है कि केन्द्रीय और प्रान्तीय दोनों सरकारें ही इस कार्य में सहयोग दें जिससे जो क्षेत्र अभी तक यातायात की दृष्टि से पिछड़े हैं उनकी भी उन्नति हो सके।

(५) कमेटी ने इस बात पर भी अपनी राय प्रकट की कि रेलवे भी सड़कों पर अपनी मोटरें चलावें और यदि चाहे तो मोटरों के मालिकों से लाभ के अंश में अपना हिस्सा रख कर सामान और यात्रियों आदि के लेजाने का ठेका दे सकती हैं तथा अधिक से अधिक ट्रैफिक रेलों को मिल सके; इसके लिये कमेटी ने कुछ सुधार करने के तरीके भी बताये। दूर की सफर के लिये यह कहा गया कि जो कुछ सुविधायें अभी हैं उनको बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि ऊंची श्रेणी के यात्रियों द्वारा खर्च के इस अनुपात में आय बहुत कम होती थी। किन्तु थोड़ी २ दूरी की यात्रा के लिये रेलों में कई सुधारों की आवश्यकता है। जंकशनों पर रेलों के मिलने का समय इस प्रकार रखा जाय कि यात्रियों का कम से कम समय वहां नष्ट हो। तीसरे दर्जे के मुसाफिरों के लिये सीटें सुरक्षित कराने, बिजली के पंखे लगाने तथा अच्छी बैठकें बनाने के लिये सुधार किया जाना अति आवश्यक है। प्रदर्शनियों, मेलों तथा यात्राओं आदि के लिये भी रियायती दर से टिकट जारी किए जांय। रेलों से माल भेजने में अभी जो कठिनाइयां और व्यर्थ का विलम्ब होता है वह रोका जाय।

कमेटी की सिफारिशों के अनुसार १६३६ में *मोटर गाड़ी कानून* (Motor Vehicles Act) बनाया गया जिसका उद्देश्य सड़क यातायात का नियंत्रण करना तथा रेल के साथ समन्वय करना था। इस कानून के अंतर्गत प्रत्येक प्रदेश में प्रादेशिक यातायात अधिकारी नियुक्ति किए गए हैं जो मोटर गाड़ियों का नियंत्रण करते हैं। मोटर लारियों को इस अधिकारी से मोटर चलाने का आज्ञापत्र लेना पड़ता है। इस आज्ञापत्र में इस बात का उल्लेख रहता है कि मोटर में कितनी सवारी या माल ले जाया जा सकता है। कोई भी मोटर एक दिन में ६ घंटे और सप्ताह में ४५ घंटे से अधिक नहीं चलेगी। १६४३ के उपरांत प्रत्येक मोटर को तीसरे पक्ष की जोखिम के लिए बीमा कराना अनिवार्य होगा।

द्वितीय महायुद्ध और उसके पश्चात्

युद्ध काल में रेल-मोटर प्रतिस्पर्धा एक दम कम हो गई क्योंकि अधिकांश सवारी और सामान ले जाने वाली व्यापारी गाड़ियां सरकार ने सामरिक कार्य के लिए हस्तगत कर लीं। रेलों को भी युद्ध का सामान और फौजें आदि भेजने में व्यस्त होना पड़ा, अतः नागरिक यातायात की तरफ कम ध्यान दिया जाने लगा। वास्तव में इस काल में यातायात के सभी साधनों का एक प्रकार से *युद्ध यातायात परिषद* (War Transport Board) के आदेशानुसार समन्वय हो गया। निजि मोटर गाड़ियां भी पैट्रोल की कमी और मोटरों के पुर्जे न मिलने के कारण अब कम चलने लगी अस्तु, रेल मोटर प्रतिस्पर्धा एक प्रकार से रुक ही गई। युद्ध के पश्चात् सरकार

इस स्थिति को पुनः नहीं लाना चाहती थी अतः १९४८ में एक सड़क यातायात निगम कानून (Road Transport Corporation Act) स्वीकृत किया जिसके फलस्वरूप प्रान्तीय सरकारों को इस बात का अधिकार देदिया गया कि वे चाहें तो अपने यातायात निगम स्थापित कर सकती हैं अथवा ऐसी कम्पनियां स्थापित कर सकती हैं जिसमें प्रान्तीय सरकार, रेलें तथा सड़कों पर बस चलाने वाली साझीदार हों। तभी से उत्तर प्रदेश, बम्बई तथा दिल्ली की सरकारों ने मोटर यातायात का राष्ट्रीयकरण कर लिया है।

यातायात के विभिन्न साधनों के बीच में समन्वय नहीं होने का दूसरा उदाहरण रेलों और समुद्रतटीय जहाजी यातायात के बीच का है। समुद्रतटीय जहाजी यातायात और रेलों के बीच में भाड़ा नीति में पारस्परिक संबंध, तथा सम्मिलित यातायात और सम्मिलित भाड़ों की व्यवस्था होनी चाहिए। अब तक रेलवे की भाड़ा नीति से समुद्रतटीय यातायात को बड़ी आर्थिक हानि पहुंची है।

इसी प्रकार रेलवे और जल यातायात तथा हवाई यातायात में भी समन्वय की आवश्यकता है। अब तक हमारे देश में रेलों की ओर ही विशेष ध्यान दिया गया है। इसका परिणाम जल यातायात और सड़क यातायात के लिए हानिकर हुआ है। अब इसी कमी को पूरा करना है। योजना आयोग ने अपनी रिपोर्ट में इस बात पर जोर दिया है कि "यातायात के विकास की तमाम केन्द्रीय योजनायें एक केंद्रीय संस्था द्वारा जांची जानी चाहिए ताकि उचित समन्वय हो सके।"

अध्याय २१

जल मार्ग

INLAND WATERWAYS & OCEAN ROUTES

बहुत प्राचीन काल से ही नदियों का महत्व न केवल भीतरी भागों में यात्रियों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने और माल ढोने के लिये बहुत अधिक रहा है बल्कि नदियां सिंचाई के भी काम में आती रही हैं। लिखित इतिहास के पहले से ही नदी-यातायात का विकास इस देश में हो चुका था। *युक्ति कल्पतरु* नामक प्राचीन संस्कृत की पुस्तक में समुद्र और नदी में चलने योग्य नावों की निर्माणकला का उल्लेख मिलता है। रेल और सड़कों की वृद्धि से जलमार्ग का महत्व घट गया है। परन्तु यदि ध्यान पूर्वक देखा जाय तो जल मार्ग का महत्व अब भी कम नहीं है और उसकी उन्नति करना देश की आर्थिक उन्नति के लिये बहुत आवश्यक है। टूटने फूटने वाली या हिलने से खराब हो जाने वाली चीजों के लिये जल मार्ग द्वारा अन्तरण बहुत उपयुक्त होता है। जलमार्ग में पूंजी भी कम लगती है क्योंकि उसमें न तो स्टेशन आदि का बखेड़ा ही करना पड़ता है और न मरम्मत आदि का ही अधिक व्यय होता है। आन्तरिक जलमार्ग की उन्नति से एक बड़ा भारी लाभ यह है कि विदेशों से आने वाले जहाज देश के भीतरी भागों में सीधे आ सकते हैं। उनका माल बन्दरगाहों पर उतार कर रेल गाड़ियों पर लादने की आवश्यकता नहीं पड़ती। अस्तु जलमार्ग की उन्नति करना बहुत आवश्यक है।

भारतीय जलमार्गों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है :—

(१) भीतरी जलमार्ग

(२) सामुद्रिक जलमार्ग

(१) भीतरी जलमार्ग (Inland Waterways)

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है अत्यन्त प्राचीन काल से ही भारतीय नदियों का उपयोग यातायात के लिये होता रहा है। किन्तु नदी-यातायात का ह्रास रेलों के विकास के साथ साथ १८५५ से आरम्भ हुआ। १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत सरकार के प्रधान इंजीनियर *सर आर्थर काटन* (Sir Arthur Cotton) ने एक पार्लियामेंट की कमेटी के सम्मुख कहा था, "मेरा कहना है कि भारत के

लिये जलमार्ग अधिक उपयोगी सिद्ध होंगे। रेलों पर जितना व्यय हुआ है उससे आठवें भाग में नहरें बनाई जा सकती हैं जो माल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर बहुत कम खर्च में ले जा सकती हैं। इन नहरों से सिंचाई भी होगी और वे व्यापारिक जलमार्ग का काम भी देंगी।" सर काटन ने नहरें बनाने की पूरी योजना बनाई थी जिसमें ३ करोड़ रुपया खर्च होने का अनुमान लगाया गया था। यह योजना इस प्रकार थी :—

(क) कलकत्ता से करांची—नहर द्वारा गंगा को सिंध से मिला कर।

(ख) कोकोनाडा से सूरत—गोदावरी और ताप्ती को नहर द्वारा मिला कर।

(ग) तुंगभद्रा से एक नहर निकालकर, अरब सागर के किनारे कारवार तक जाने का मार्ग।

(घ) पोनंग नदी द्वारा पाल घाट और कोयंबटूर से होते हुये एक मार्ग।

इस योजना द्वारा समस्त भारत में नहरों का एक जाल बिछा देने का विचार था किन्तु ब्रिटिश पूंजीपतियों ने इसका विरोध किया क्योंकि उनकी अधिकांशतः पूंजी रेलों में लगी थी। अस्तु भारत सरकार ने भीतरी जलमार्गों को उन्नत करने का कोई प्रयास नहीं किया। बीसवीं शताब्दी में भारत में सिंचाई के लिये नहरों को बनाने का कार्य बड़े उत्साह से किया गया। इसका प्रभाव भी नदी-यातायात पर बुरा पड़ा क्योंकि नदियों में मुख्यतः उनके ऊपरी भागों में नहरों में पानी चले जाने से, पानी की कमी होने लगी। इन नहरों में भी देश की बहुत पूंजी लगी हुई है किन्तु भारत सरकार ने नहरों को जलमार्ग बनाने की ओर ध्यान नहीं दिया। फलस्वरूप देश में जल मार्गों की उन्नति नहीं हो सकी।

भारत की कुछ नहरें भी जलमार्गों का काम देती हैं। उनमें से मुख्य ये हैं।*

(१) पूर्वी पंजाब की सरहिंद नहर में हिमालय पर्वत की लकड़ियां बहाकर लाई जाती हैं।

(२) गंगा और यमुना की नहरों में भी थोड़ी बहुत खेती की पैदावार एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाई जाती है।

---

*भारत में नावें चलाने योग्य नहरों की लम्बाई इस प्रकार है :—

(अ) बंगाल—मिदनापुर नहर ६५ मील, हिजली नहर ५० मील, उड़ीसा तटीय नहर ५४ मील, कलकत्ता और पूर्वी नहर ८३४ मील।

(ब) मद्रास—गोदावरी नहर ५०० मील; कृष्णा नहर ४०० मील; बकिंघम नहरें २६८ मील; वेदरानयम नहर ३५ मील; पश्चिमी तटीय नहर ४०० मील।

(स) गंगा की नहरें, ३३६ मील।

(द) बिहार उड़ीसा की नहरें, ५०० मील।

देखिये K. T. Shah 'Trade' (N. P. C. Report) पृ० १००-१०२

(३) बंगाल का पश्चिमी भाग तो नहरों की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है। भारत के विभिन्न भागों से निर्यात के लिये जो माल कलकत्ता को आता है उसका लगभग २५% जलमार्गों द्वारा ही लाया जाता है। इसका भी ६३% तो अकेले आसाम से ही नदियों और नहरों द्वारा आता है। कलकत्ता के जलमार्गों द्वारा किये जाने वाला व्यापार प्रतिवर्ष लगभग ४५ लाख टन का होता है जिसमें ३४% स्टीमरों द्वारा और ६६% देशी नावों द्वारा ढोया जाता है। यात्री भी नावों द्वारा अधिक आते जाते हैं *हिजली, सरकूलर, पूर्वी नहर, मिदनापुर* और *उड़ीसा नहर* द्वारा पश्चिमी जिलों की पैदावारें कलकत्ता तथा अन्य व्यापारिक मण्डियों को पहुंचाई जाती हैं।

(४) दक्षिणी भारत में *बकिंघम नहर* कोरोमंडल तट पर दक्षिण की ओर २७६ मील तक जाती है और मद्रास को कृष्णा के डेल्टा से जोड़ती है।

(५) *गोदावरी नहर* में दोलेशवरम तक तथा *कृष्णा नहर* में ४०० मील तक नावें चलती हैं।

(६) *कर्नूल कड़ापा नहर* भी १६० मील तक नावें चलाने योग्य है। दक्षिणी भारत में नदियों के डेल्टा की कपास, चावल आदि इन्हीं नहरों द्वारा ढोया जाता है।

नीचे की तालिका में नदी और नहरों द्वारा होने वाले यातायात की प्रगति बतलाई गई है :—

वर्ष	*लम्बाई (मीलों में)*	*नावों की संख्या*	*माल ढुलाई (लाख टन)*	*यात्री (लाखों में)*
१६००	३,६००	२०८,०००	२२	६
१६२६-३०	४,००८	२१५,१८५	१,३७	३१
१६३८-३६	४,२०५	२०६,०००	१,०७	१६
१६४६-५०	५,७२४	——	१,६२	३८

नदी यातायात

सम्पूर्ण भारत में जलमार्गों की लम्बाई ४१,००० मील है जिनमें से २६००० मील लम्बी नाव्य नदियां और १५,००० मील लम्बी नहरें हैं। भारत में साल भर जारी रह सकने वाले जलमार्गों पर स्टीमर्स और देशी बड़ी २ नावें चलती हैं। उत्तरी भारत में नदियों में २०००० मील तक जहाज चलते हैं। जलमार्गों की दृष्टि से बंगाल, आसाम, मद्रास तथा बिहार महत्वपूर्ण हैं।

दक्षिणी भारत में गोदावरी, कृष्णा, नर्बदा तथा ताप्ती नदियों के निचले भागों में ही नावें चल सकती हैं। इनका शेष भाग पठारी है। गंगा नदी में मुहाने

से ५०० मील ऊपर तक (जहां लगातार रूप से नदी ३० फीट गहरी है) *कानपुर* तक नावें चला करती हैं। यमुना नदी में *प्रयाग* से *राजापुर* तक साल भर नावें चलती हैं। ब्रह्मपुत्र नदी में मुहाने से *डिब्रूगढ़* तक ८०० मील—नावें चलती हैं किन्तु इस नदी में नावें चलाने में कुछ असुविधाओं का सामना करना पड़ता है। नदी के मार्ग में प्रायः नये २ द्वीप बनते रहते हैं जिसमें नावों को खेने में बड़ी अड़चन पड़ती है तथा वर्षा ऋतु में पानी की तेजी के कारण नावों के उलट जाने का डर रहता है। हुगली नदी में भी *नादिया* तक जहाज पहुंच सकते हैं। छोटी २ नहरें बड़ी २ नदियों को जोड़ती हैं इसलिये कलकत्ते से आसाम तक स्टीमर चलते हैं।

यद्यपि भारत में नदियां बहुत हैं किन्तु फिर भी आन्तरिक आवागमन के लिये उनका पूर्ण उपयोग नहीं होता इसका मुख्य कारण भूमि की रचना तथा अब तक विदेशी सरकार का ध्यान केवल रेल मार्गों को उन्नत करना ही रहा है। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित कारण मुख्य हैं *:—

(१) भारत की अधिकांश नदियों वर्षा के दिनों में बाढ़ आ जाती है इस समय नदी की धारा तेज होती है अतः उसमें नाव खेना बड़ा कठिन होता है।

(२) गर्मी के दिनों में अधिकांश नदियां सूखी रहती हैं। जो कुछ थोड़ा बहुत पानी नदियों में मिलता है वह जाड़ों और गर्मियों के आरंभ में यहां की विशाल नहर—व्यवस्था को पानी देने के लिए उपयोग में आ जाता है। सिंचाई के लिए पानी को इस तरह अलग कर देने से नदियों में सूखी ऋतु में पानी नहीं रहता।

(३) दक्षिण की नदियां तो पठारी भूमि पर बहने के कारण नावें चलाने के योग्य है ही नहीं। क्योंकि इन के मार्गों में जगह २ प्रपात पड़ते हैं।

(४) कभी २ नदियां अपने मार्ग भी बदला करती हैं इस कारण भी उनका उपयोग नहीं किया जा सकता क्योंकि वे एक किनारे से दूसरे किनारे की ओर पतली धारा के रूप में बहने लगती हैं। अधिकतर नदियों के किनारे बहुत दूर तक रेती रहती है इस कारण नदी के किनारे तक लदी हुई गाड़ियों का आना कठिन हो जाता है।

(५) प्रायः सभी नदियां छिछले तथा बालूमय डेल्टाओं में गिरती हैं अतः समुद्री किनारे से देश के भीतरी भागों में जहाज़ नहीं जा सकते।

भारत में नदी यातायात को विकसित करने की बड़ी आवश्यकता है। पिछले महायुद्ध के समय इसका महत्व विशेष रूप से सामने आया। अभी तक जल यातायात प्रान्तीय सरकारों का विषय रहा है इस कारण से भी इसके देश व्यापी

*देखिये मेमोरिया का "भारत का आर्थिक भूगोल" (१९५२) पृ० ३२९-३३०।

विकास की कोई योजना नहीं बन सकी। देश में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जो विधान बना है उसमें अन्तर्राज्य की नदियों और जल मार्गों का यातायात भारत सरकार का विषय कर दिया गया है और *केन्द्रीय जल शक्ति, सिंचाई और नौका संचालन आयोग* (Central Waterways, Irrigation and Navigation Commission) के जिम्मे देश के नदी यातायात को एक योजना के आधार पर विकसित करने का काम सौंपा गया है।

इस प्रश्न पर यह आयोग दो दृष्टियों से विचार कर रहा है। एक तो मौजूदा जल मार्गों का सुधार और नये जल मार्गों की स्थापना करना और उनको नावें चल सकने योग्य बनाना। दूसरे संगठन और व्यवस्था में सुधार करना जिससे व्यापारियों का अधिक से अधिक सहयोग मिल सके। नदी यातायात के मार्ग में एक बड़ी कठिनाई यह है कि सिचाई की नहरों के कारण पानी की कमी आ जाती है इसका उपाय यह है कि जल संचय (Water Conservation) को उचित व्यवस्था की जावे। यह व्यवस्था बड़ी खर्चीली होती है और केवल जल-यातायात के लिए इतना खर्च करना संभव नहीं हो सकता। इसलिए नदी के उपयोग की बहु-मुखी योजनाओं (सिंचाई, बिजली, बाढ़ नियंत्रण, यातायात आदि) के बनने पर ही यह व्यवस्था संभव है। इसलिए भारत सरकार ने नदियों को बहुमुखी योजना की नीति को स्वीकार किया है। इससे जल यातायात की कठिनाई दूर हो जायगी।

केंद्रीय जलशक्ति, सिंचाई तथा नौका संचालन आयोग ने भारत के विभिन्न भागो में जल मार्गों की उन्नति करने की जो योजना बनाई है वह यह है :—

(१) बंगाल में दामोदर घाटी योजना (Damodar Valley Project) के फल स्वरूप रानीगंज की निचली कोयले की खानों को हुगली नदी से एक जल यातायात की नहर के द्वारा मिलाया जायगा तथा गंगा बैरेज प्रोजेक्ट के अन्तर्गत भी एक नहर बनाने की योजना है जो भागीरथी से झाँसीपुर के पास मिलेगी। गंगा नदी और भागीरथी के बीच के जल मार्ग, तीस्ता—नदी योजना के अन्तर्गत उत्तरी बंगाल के जलमार्ग; पूर्वी बंगाल और कलकत्ते के बीच के जलमार्गों का पुनर्निमाण किया जायगा।

(२) आसाम की दीहींग, डिब्रू, धनसीरी, कलांग नदियों का पुनरुत्थान करना।

(३) बिहार में गंडक और कोशी नदियों तथा उनकी सहायक नदियों का पुनर्निर्माण करना तथा सोन घाटी योजना के अंतर्गत सोन नदी को १५० मील तक यातायात के योग्य बनाना।

(४) बेतवा और चम्बल नदियों की बाढ़ के पानी को रोक कर ऐसी व्यवस्था

करना जिसके फल स्वरूप शीत ऋतु में भी यमुना नदी में यातायात के लिए पर्याप्त पानी की मात्रा उपलब्ध हो सके ।

(५) महानदी योजना के अन्तर्गत हीरा कुंड बांध के पूरा हो जाने पर महानदी का ३०० मील का टुकड़ा जल यातायात के योग्य हो सकेगा।

(६) उड़ीसा की तटीय नहरों को बढ़ाकर मद्रास की नहरों से जोड़ दिया जाय जिससे आसाम से मद्रास तक जल यातायात का सीधा सम्पर्क स्थापित किया जा सके ।

(७) मध्य प्रदेश में नर्बदा और ताप्ती नदियों को भी यातायात के योग्य बनाने का प्रश्न विचाराधीन है ।

भारतीय आन्तरिक जल मार्गों के विकास के लिए *एशिया पूर्वी देशों के आर्थिक आयोग* (Economic Commission for Asia and Far East) के विशेषज्ञ *श्री ओटो पोपर* (Otto Popper) की सेवायें इस विषय में जांच पड़ताल करने और भारत सरकार को सलाह देने के लिए ली गई थीं। उनकी यह सलाह है कि देशी नावों को सहकारिता के आधार पर संगठित करना चाहिए और उनका पूरा २ उपयोग करना चाहिए। श्री पोपर ने इस बात की ओर भी ध्यान आकर्षित किया है कि गंगा के उत्तरी हिस्से में नावों के ठहरने के स्थान (River ports) और सामान उतारने चढ़ाने की मशीनें (Crane) आदि यांत्रिक साधनों की कमी है उसकी पूर्ति करना आवश्यक है। नदी के किनारों को स्थान छोड़ने से रोकने के लिए किनारों पर झाड़ियां लगाने की आवश्यकता पर भी उन्होंने जोर दिया है ताकि जमीन की घिसावट से किनारों का स्थान न बदले और उनसे होने वाली हानि न हो सके। उन्होंने यह भी अनुमान लगाया है कि यदि भीतरी जल मार्गों का व्यवस्थित रूप में संगठन किया जा सके तो बहुत ही सस्ते में सामान आदि ढोया जा सकता है—प्रति टन मील आधा आने में जबकि अभी प्रति टन मील माल ढोने में दो आने खर्च आता है ।

पंच वर्षीय योजना आयोग ने भीतरी जल जलमार्गों के विकास के लिए १६ लाख रुपये खर्च करने का अनुमान लगाया है।

(२) सामुद्रिक मार्ग (Ocean Routes)

भारत के प्रधान सामुद्रिक मार्ग निम्न पांच प्रधान बन्दरगाहों से आरंभ होते हैं—यथा बम्बई, कोचीन, मद्रास, विजिगापट्टम तथा कलकत्ता। भारत हिन्द महासागर के सिरे पर स्थित है जिसमें होकर पूर्व से पश्चिम को व्यापारिक मार्ग निकलते हैं। यहां से पूर्व और दक्षिण पूर्व को सामुद्रिक मार्ग चीन, जापान, पूर्वी द्वीप समूह और आस्ट्रेलिया को; दक्षिण और दक्षिण पश्चिम में संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोप तथा अफ्रीका और दक्षिण में लंका को जाते हैं। इस प्रकार भारत पश्चिमी कला

कौशल प्रधान देशों को पूर्वी खेतीहर देशों से मिलाने के लिए एक कड़ी का काम करता है।

भारत के बन्दरगाहों पर मिलने वाले प्रधान जल मार्ग ये हैं :—

(१) *स्वेज जल मार्ग* (Suez Route)—इस मार्ग के खुल जाने से भारत और यूरोप के बीच का व्यापार बहुत बढ़ गया है। यह जल मार्ग पी० एन्ड ओ० (P&O) तथा बी० आई० एस० एन (B. I. S. N.) कंपनियों के नियंत्रण में है। जहां तक भारत का यूरोप के व्यापार से संबंध है, भारत यूरोप को कच्चा और खाद्य पदार्थ भेजता है तथा बदले में तैयार माल और मशीनें आदि मंगवाता है।

(२) *आशा अन्तरीप मार्ग* (Cape Route)—भारत को दक्षिणी अफ्रीका और पश्चिमी अफ्रीका से जोड़ता है। कभी २ दक्षिणी अमेरिका जाने वाले जहाज भी इसी मार्ग से जाते हैं। भारत इस मार्ग से अपने यहां रुई, कोयला, शक्कर आदि मंगवाता है।

(३) *सिंगापुर जल मार्ग* (Singapore Route) का आवागमन की दृष्टि से स्वेज जलमार्ग के बाद दूसरा स्थान है। यह मार्ग भारत को चीन और जापान से जोड़ता है। इस मार्ग द्वारा भारत, कनाडा और न्यूजीलैंड के बीच का व्यापारिक समतुलन भी होता है। भारत में इस मार्ग से सूती, रेशमी कपड़ा, लोहे व स्पात का सामान, मशीनें, चीनी के बर्तन, खिलौने, रासायनिक पदार्थ, कागज़, आदि आते हैं और बदले में रुई, लोहा, मैंगनीज, जूट, लाख, अभ्रक आदि निर्यात आते हैं।

(४) *सुदूर पूर्व का जलमार्ग* (Australian Route) भी क्रमशः महत्वपूर्ण बनता जा रहा है। यह मार्ग भारत को आस्ट्रेलिया से जोड़ता है। इस मार्ग से भारत में गेहूं, कच्ची ऊन, घोड़े और फल आदि वस्तुओं का आयात होता है और बदले में जूट, चाय, अलसी आदि निर्यात की जाती हैं।

अध्याय २२

समुद्र तटीय यातायात (१)

INDIAN SHIPPING

यद्यपि भारत का सामुद्रिक किनारा स्वाभाविक बन्दरगाहों से पूर्ण नहीं है फिर भी इसकी स्थिति अन्तर्राष्ट्रीय जल मार्ग के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। अपनी स्थिति, विशालता तथा आर्थिक उन्नति के विचार से इस देश का समुद्री व्यापार में महत्वपूर्ण स्थान होना आवश्यक है। बहुत प्राचीन काल से ही भारतीय अच्छे नाविक रहे हैं। श्री हाजी के अनुसार, "पुरानी दुनिया के महाद्वीपों के बीच में एक pedant की तरह स्थित ४००० मील से भी अधिक समुद्र तटीय रेखा तथा अपनी भूमि की उर्वरा शक्ति के लिए प्रख्यात देश भारत प्रकृति की कृपा से ही समुद्री व्यापार करने के उपयुक्त है।"* डा० राधा कुमुद मुखर्जी का तो यहां तक कहना है कि भारतीय जहाजी शक्ति के विकास के फलस्वरूप ही भारतीय सभ्यता अपनी चरम सीमा तक पहुंच चुकी थी जिसका प्रभाव विदेशी सभ्यताओं पर बहुत अधिक पड़ा।** वास्तव में पूरी तीस शताब्दियों तक भारत पुरानी दुनिया के मध्य में स्थित विश्व की सबसे प्रमुख सामुद्रिक शक्ति रहा है जिसका व्यापारिक सम्बन्ध न केवल एशिया के सीमान्त देशों से ही प्रत्युत उस वक्त की ज्ञातव्य दुनिया के सभी देशों से था। इस बात के प्रमाण अब भी विद्यमान है। अस्तु, यह बात निर्विवाद सत्य है कि बहुत प्राचीन काल से ही भारतीय जहाजों द्वारा समुद्री व्यापार होता था। सिकन्दर की फौजें जब लौटने लगी तो २००० जहाजों के बेड़े का उन्होंने अपनी समुद्री यात्रा के लिए उपयोग किया था। यहां हम भारतीय जहाजी शक्ति के उत्थान, पतन और पुनः विकास के इतिहास का अध्ययन करेंगे।

मुगल काल (Shipping in the Mughal Period)

मुगल काल में नौकाओं और जहाजों का निर्माण बड़े पैमाने पर होने लगा था। इनके तीन मुख्य उपयोग होते थे—युद्ध के लिए; आनन्द यात्रा के लिए और व्यापार के लिए। मुगल शासकों ने युद्ध के लिए मजबूत जहाजी बेड़े बनवाये।

---

* देखिये, एस० एन० हाजी "इकोनोमिक्स आफ शिपिंग" पृ० ३६५

** देखिये राधाकुमुद मुकर्जी 'हिस्ट्री आफ इण्डियन शिपिंग'

बाबर, शेरशाह सूरी तथा अकबर सभी बादशाहों ने अपने राज्य काल में नौका निर्माण की ओर विशेष ध्यान दिया। अकबर के समय में बंगाल, काश्मीर और लाहौर में विभिन्न प्रकार के जहाजों और नौकाओं का निर्माण किया जाता था। बंगाल में हुगली और ढाका के बने जहाज बड़े प्रसिद्ध होते थे। तत्कालीन विदेशी यात्रियों ने भारत की जहाजी कला की बड़ी प्रशंसा की है। *बावरी* (१६६६–७५ ई०); *फ्रायर* (१६७४ ई०) आदि लेखकों ने भारतीय विशाल जहाजों को देख कर बड़ा आश्चर्य प्रकट किया। फ्रायर ने सूरत में ऐसे बड़े जहाज देखे जैसे उसने यूरोप में कहीं नहीं देखे थे। सन् १६१२ ई० में बेस्ट नामक यात्री ने गोआ में २४० भारतीय जहाजों के एक बड़े बेड़े को खंभात की ओर जाते देखा था। *पेल सएर्ट* ने लिखा है कि केवल सूरत में ८०० से लेकर १००० टन वाले चार या पांच शाही जहाज पश्चिमी देशों को जाने के लिये हर वक्त तैयार रहते थे। व्यापारियों के निजी जहाजों की संख्या इससे कहीं अधिक रहती थी।

इस काल में हुगली, जैसोर, ढाका, मछलीपट्टम, बेसीन, सूरत, गोआ आदि स्थानों में सभी प्रकार के छोटे बड़े जहाज बनाये जाते थे। बेसीन में तो स्पेन का राजा अपने लिये जहाज बनवाता था। इसी प्रकार कुस्तुनतुनिया का राजा अपने लिये ढाका और हुगली में जहाज तैयार करवाता था।† सिन्ध में हर समय ४०००० नावें और जहाज भाड़े पर उपलब्ध हो सकते थे।* निकोलो कौंटी के लेख से पता चलता है कि एक बड़े जहाज के निर्माण में लगभग १५,००० स्वर्ण मुद्राएं तक व्यय होती थीं। राज्य के लिये तो जहाज बनते ही थे, व्यापारी लोग अपने निजी कार्यों के लिये भी उक्त कारखानों में जहाज और नौकाएं बनवाते थे।

१७ वीं शताब्दी में यूरोपीय यात्रियों ने भारतीय जहाजों के जो वर्णन किये हैं उनसे ज्ञात होता है कि साधारणतया ३०० से ५०० टन तक माल एक भारतीय जहाज में लदता था। जब कि इंगलैंड में १८ वीं शताब्दी के अन्त तक ३०० से ४०० टन तक के ही अधिकांश जहाज होते थे। १५८८ ई० में जबकि इंगलैंड के पास सब मिला कर केवल १५० जहाज थे, भारतीय जहाजों की संख्या इससे कई गुना अधिक थी। इंगलैंड के इन १५० जहाजों में से अधिकांश १५० टन वाले ही थे। १६०२ ई० में इंगलैंड की जहाजी शक्ति केवल १०० जहाजों की रह गई, इस समय भी भारत के पास कुछ जहाज १८०० टन तकके थे। १६१२ ई० में मिडिलटन नामक यात्री ने एक जहाज सूरत में देखा जो १५३ फीट लम्बा, ४२ फीट चौड़ा तथा ३१ फीट गहरा था और इसमें १५०० टन माल आता था।** बावरी के

† देखिए, राधाकमल मुकर्जी 'इकोनोमिक हिष्ट्री आफ इण्डिया'

* राधाकमल मुकर्जी 'इकोनोमिक हिस्ट्री आफ इण्डिया' पृ० २१३

** देखिये, राधाकुमुद मुकर्जी 'हिस्ट्री आफ इण्डियन शिपिंग' (१९१२) पृ० २०२

अनुसार "इस काल के भारतीय नावें और जहाज अपने ढंग में सर्वोत्तम कोटि की है।" गोलकुंडा के राजा के पास एक मजबूत जहाजी बेड़ा था। राजा और उसके सरदारों के लिये अच्छे हाथी लाने के लिये कई जहाज अराकान, तनासरिम और लंका को जाते थे। किसी २ जहाज में तो २५ तक बड़े हाथी बैठ जाते थे।× अकबर के समय में सुव्यवस्थित नौ-विभाग था जिसका अध्यक्ष 'मीर बहरी' कहलाता था। इसके अधीन ये कार्य थे—जहाजों और नौकाओं के निर्माण की व्यवस्था, अनुभव प्राप्त मल्लाहों की नियुक्ति, नदियों तथा बन्दरगाहों की देख भाल, और चुंगी की व्यवस्था। भारत से जहाज अधिकतर तुर्की साम्राज्य, अफ्रीका और यूरोप को जाते थे। बड़े व्यापारी जहाजों के साथ छोटी २ नौकाएं भी होती थी। इलाहाबाद और लाहौर में बड़े आकार वाले जहाज बनाये जाते थे। अकबर के बाद मुगलों की जहाजी शक्ति कमजोर होने लगी। यद्यपि १६६४ ई० में फिर शाही बेड़े को दृढ़ बनाने का प्रयत्न किया गया किन्तु हुगली, बालेश्वर और जैसोर में बड़ी कठिनाई से ३०० जहाज तैयार हो सके।

मुगलों के अतिरिक्त भारत के स्वतंत्र हिन्दू शासक भी अपने जहाजी बेड़े रखते थे। बंगाल, आसाम के शासकों, सिक्खों, जाटों तथा विजयनगर के राजाओं ने इस ओर काफी ध्यान दिया परन्तु सबसे अच्छा शक्तिशाली और व्यवस्थित मराठों का जहाजी बेड़ा था जिसका संगठन शिवाजी ने बड़े अच्छे ढंग से करवाया था। मुसलमानों तथा यूरोप के लोगों से टक्करें लेने तथा लूट-पाट करने में मराठों को इस बेड़े से बड़ी सहायता मिलती थी। श्रीपुर, बकल, आदि द्वीपों के शासकों ने भी अपने निजी बेड़े तैयार करवाये थे।*

ब्रिटिश काल (British Period) [१७५७ से १६४७ तक]

मराठों की बढ़ती हुई सैन्य तथा जहाजी शक्ति का तत्कालीन फ्रांसीसी, पुर्तगाली और अंग्रेजों को बड़ा डर था अस्तु १७५६ में अवसर पाकर अंग्रेजों ने मराठों के जहाजों पर आक्रमण कर दिया और उनके जहाजों को जला दिया तथा उनकी तोपें छीन ली गई।*† इस प्रकार यह देशी जहाजी बेड़ा; जो लगभग एक शताब्दी तक यूरोपीय लोगों के लिए एक प्रधान खतरा बना हुआ था और जो हिंदू नौ-शक्ति का अंतिम उल्लेखनीय प्रतीक था, समाप्त कर दिया गया।

मराठों के अतिरिक्त १८ वीं शताब्दी में भारत के कुछ अन्य राज्यों ने भी जहाजी कला की ओर ध्यान दिया। दिल्ली, आगरा के जाट, रूहेल खंड के रुहेले तथा बंगाल के नवाब अपने बेड़े रखते थे जो प्रायः युद्ध के लिए ही प्रयुक्त होते थे।

× मुकर्जी—'इकोनोमिक हिस्ट्री' पृ० २३१-३२

* मुकर्जी—'इण्डियन शिपिंग' पृ० २१६-१८

*† मुकर्जी—'इण्डियन शिपिंग' पृ० २३८-४२

व्यापार की ओर इनका ध्यान बहुत कम गया। इस समय भी सूरत और भावनगर में जहाज बनाये जाते थे। सन् १७५० में 'दरिया दौलत' नामक एक विशाल जहाज भावनगर में बनाया गया जो लगभग ८७ वर्षों तक लगातार उपयोग में आने पर भी १८३७ ई० तक बिल्कुल ठीक हालत में था और बराबर काम दे रहा था। भारतीय जहाजों की ऐसी दृढ़ता देखकर यूरोप के व्यापारी भी उन्हें खरीदते थे।

१६ वीं शताब्दी के मध्य तक जब प्रायः सम्पूर्ण भारत में अंग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित हो गया तो वे अपने शासन को दृढ़ बनाने में जुटे। व्यापार का जो मुख्य उद्देश्य लेकर अंग्रेज भारत में आये थे राजनैतिक उलझनों में पड़ जाने पर भी वे बराबर उसकी ओर दत्तचित रहे। पूर्वी द्वीपों का व्यापार हाथ से निकल जाने पर उन्होंने अपनी सारी शक्तियां भारतीय व्यापार पर लगा दी थीं। व्यापार एक साधन था जिसके द्वारा वे इंग्लैंड में तैयार हुई वस्तुओं की खपत इस बड़े देश में करके यहां की अपार धन राशि खींच सकते थे। भारत में प्रभुत्व स्थापित हो जाने पर अंग्रेजों ने जहाजों की संख्या में असाधारण वृद्धि करनी शुरु की। उन्होंने मुख्य २ स्थानों पर जहाजी बेड़ों का निर्माण कराया। १७३६ और १८६३ ई० के बीच केवल बंबई बन्दरगाह में छोटे बड़े मिलाकर कुल ३०० जहाज तैयार करवाये गये। जहाज निर्माण के अन्य केन्द्र हुगली, सिलहट, चिटगांव, ढाका और मछलीपट्टम थे। कलकत्ता में १७८१ ई० में ही जहाज बनाने का एक बड़ा कारखाना खुल गया था। १८ वीं शताब्दी के अंत तक यहां १७००० टन वाले ३५ जहाजों का निर्माण हुआ। इसके बाद २० वर्षों में कुल १,०५,६६३ टन के २३७ जहाज हुगली में तैयार करवाये गए। कलकत्ता और बम्बई में बने हुए जहाज बड़ी संख्या में इंग्लैंड भी जाते थे। विदेशियों ने उनकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।* *लिंडसे* नामक अंग्रेज लेखक ने भारत की जहाजी शक्ति की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि १७८६ ई० में भारतीय व्यापारियों के पास इतने अधिक जहाज थे कि जितने ईस्ट इंडिया कंपनी, डचों, फ्रान्सीसियों और अमेरिका वालों के पास कुल मिलाकर होंगे।

तत्कालीन वाइसराय *लार्ड वैलेजली* ने भारत और इंगलैंड दोनों के हित की दृष्टि से इंगलैंड की सरकार से सिफारिश की कि इन दोनों देशों के बीच व्यापार के लिये भारत में ही निर्मित जहाजों को काम में लिया जाय। उसने लिखा—"कलकत्ता के बन्दरगाह में इस समय लगभग १०,००० टन की जहाज रानी है। ये जहाज माल ढोने के लिये भारत में ही तैयार किये गये हैं। इस बन्दरगाह पर निजी जहाज रानी के परिणाम को देखते हुए तथा यह देखते हुए कि जहाज-निर्माण कला

* मुकर्जी—'इंडियन शिपिंग,' पृ० २४५-५२

बंगाल में कितनी पूर्णता को प्राप्त हो चुकी है, हमारा विश्वास है कि कलकत्ता का बन्दरगाह अंग्रेज व्यापारियों को उन सभी जहाजी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है जो लन्दन तक भारतीय माल को ढोने के लिये अपेक्षित हैं।" बम्बई के बने हुए सागौन की लकड़ी के जहाज इंग्लैंड के बलूत की लकड़ी के बने जहाजों से अच्छे होते हैं।"*

इस प्रकार वैलेजली भारतीय नौ-उद्योग को इसलिये प्रोत्साहन देना चाहता था कि अंग्रेज व्यापारियों को भारत में तैयार जहाज मिल सकें। यद्यपि उपर्युक्त सिफारिश में अंग्रेज व्यापारियों के लाभ का ध्यान रखा गया था, तो भी यदि वह स्वीकृत हो जाती तो भारत में जहाज निर्माण का व्यवसाय जारी रहता। परन्तु इंग्लैंड की पार्लियामेंट ने लार्ड वैलेजली के इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया। इंग्लैंड के लोगों ने भारतीय जहाजी उन्नति के विरुद्ध आवाजें उठानी शुरु की। कितने ही अंग्रेज कहने लगे कि यदि इस भारतीय उद्योग को न रोका गया तो इंग्लैंड का व्यवसाय चौपट हो जायगा। १८१४ ई० तक भारतीय निर्मित जहाज इंग्लैंड आते जाते थे पर प्रजा द्वारा उपर्युक्त विरोध करने पर इसी वर्ष ब्रिटिश पार्लियामेंट ने एक कानून बनाया कि लंदन के बन्दरगाह में कोई भी ऐसा जहाज नहीं आ सकता, जिसमें कम से कम तीन चौथाई यात्री अंग्रेज न होंगे और जिसका मालिक अंग्रेज के अलावा कोई और होगा, चाहे वह इंग्लैंड का ही बना हुआ जहाज क्यों न हो। यह कानून मुख्यत: भारतीय जहाजों को लक्षित करके बनाया गया था। इस प्रकार के असंगत नियमों के कारण भारत के देशी व्यापार पर घातक चोट पहुंची। यहां के जहाजी उद्योग का नष्ट करना तो ऐसा ही हुआ जैसे किसी व्यक्ति के हाथ-पैर काट लिए जायं। इसके फलस्वरूप भारत का यूरोपीय व्यापार तो चौपट हुआ ही किंतु अफ्रीका, अरब, ईरान तथा दक्षिण-पूर्व के देशों से भी उसका संबंध विच्छिन्न हो गया। ये वे देश थे जो शताब्दियों तक भारत से व्यापारिक संबंधों द्वारा जुड़े हुए थे।

कुछ लोगों का अनुमान है कि देशी जहाज निर्माण का व्यवसाय इसलिये नष्ट हुआ कि १९वीं शताब्दी के आरम्भ से जहाजों के निर्माण में लकड़ी का स्थान लोहे ने ले लिया और अब पुराने ढंग के जहाजों की जगह भाप से चलने वाले जहाजों की मांग अधिक बढ़ गई थी। अत: भारत में बनने वाले पुराने आकार प्रकार के जहाज अब उपयोगी न हो सकते थे। यद्यपि यह अनुमान अंशत: सत्य कहा जा सकता है किन्तु भारतीय नौ-उद्योग के विनाश का मूल कारण विदेशी शासकों की प्रतिकूल नीति ही थी। ऐसा नहीं था कि भारत में अच्छे और मजबूत जहाजों का

† विलियम डिग्बी 'प्रोस्परस ब्रिटिश इंडिया,' पृ० ८५-८६

बनना बिल्कुल ही बन्द हो गया हो। भारत में १६ वीं शताब्दी के आरम्भ में कई जगह नये ढंग के जहाजों का भी निर्माण होने लगा था। १८३६ और १८५७ ई० के बीच बम्बई के कारखानों में बड़ी संख्या में स्टीमर बनाये गये थे। ये २०४ टन से लेकर १,४५० टन तक परिमाण वाले थे। बड़े जहाजों का निर्माण कलकत्ता में भी किया जाने लगा। अंग्रेजों के कई जलयुद्धों में ये भारतीय जहाज बड़े उपयोगी सिद्ध हुये। सिन्ध, दजला और फरात आदि नदियों में चलने वाले अनेक बड़े धुआंकशों का निर्माण बम्बई में हुआ था। यदि बृटिश काल में पोत निर्माण कला को भारत में प्रोत्साहन दिया गया होता तो बड़े से बड़े जहाजों का निर्माण यहां हो सकता था, क्योंकि उपयुक्त सामग्री तथा अनुभव का यहां अभाव न था। वस्तुतः बात यह थी कि भारतीय जहाजी कला को संवर्धित करना अंग्रेज लोग अपने हित के विरुद्ध समझते थे। इसीलिये उन्होंने उसका बिल्कुल नष्ट कर देना ही उचित समझा।

इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के आरम्भ और १६ वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों से ही भारतीय जहाजी कला का विनाश होने लगा। इस समय ब्रिटेन न केवल अपने लिए आवश्यक जहाजों का निर्माण करने लगा, अपितु बाहरी देशों की मांग भी पूरी करने लगा किन्तु अभागे भारत में अब इस कला का विकास न हो सका। अंग्रेज कम्पनियों के हाथ में भारत के समुद्री तथा तट के व्यापार का प्रधान भाग आ ही गया, अन्य समुद्रों पर भी उन्हें अधिकार प्राप्त होते गये। ब्रिटेन की सरकार अन्य देश वालों के साथ प्रतियोगिता करने के लिए अपने देश वासियों को आवश्यक सहायता बराबर देती रही, इसी कारण बीसवीं शताब्दी में ब्रिटेन की व्यापारिक शक्ति यूरोप में प्रमुख हो गई।

१८५४ ई० में विलियम मैकिनपन और राबर्ट मैकिनज़ी के द्वारा एक जहाजी कम्पनी (Calcutta Burma Steam Navigation Co.) खोली गई। यह ब्रिटिश इंडिया जहाजी कम्पनी की ही सहायक कम्पनी थी। इस समय इस कम्पनी के पास १७ जहाजों का बेड़ा था जो कलकत्ता. सिंगापुर, चिटगांव, अंडमान द्वीप, मद्रास, बम्बई, करांची और फारस की खाड़ी के बीच में आते जाते थे। सन् १८७४में जब जेम्स मैके ने इस कम्पनी में साझेदारी ली, तभी से इस कम्पनी का संगठन दृढ़ और अधिक सुव्यवस्थित हो गया। इस कम्पनी ने देशी कम्पनी को आर्थिक हानि पहुंचाने के लिए भाड़ा युद्ध (Freight war) आरंभ कर दी और इस प्रकार भारतीय व्यापार को हथियाने में एकाधिकार प्राप्त कर लिया। स्वेज नहर के खुल जाने के पश्चात तो भारत और ब्रिटेन का व्यापार बहुत बढ़ गया इसके फलस्वरूप इस कम्पनी को भी अधिक आर्थिक लाभ होने लगा।

सन् १८६३ में जमशेद जी ताता ने भी एक कम्पनी *ताता-लाइन्स* (Tata lines) के नाम से स्थापित की जिसका मुख्य उद्देश्य भारत से सूत ले जाना और

जापान से तैयार सूती माल लाना था। इस कम्पनी को नष्ट करने के लिए अंग्रेजी कम्पनी (Peninsular & Orient Co.) ने अपना किराया १६) प्रतिघन फुट से घटा कर केवल १॥) रु० प्रतिघन फुट कर दिया। ताता का किराया प्रतिघन फुट १२) था। ताता कम्पनी ने इसके लिए भारत सरकार के मंत्री से विरोध किया किन्तु उसकी शिकायत पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। फलस्वरूप ताता कम्पनी को अपना व्यवसाय समाप्त कर देना पड़ा। जब टाटा कम्पनी टूट गई तो फिर अपना घाटा पूरा करने के लिए अंग्रेज कम्पनी ने किराया बढ़ाकर १६) कर दिया। इसी प्रकार अन्य भारतीय जहाजी कम्पनियों को—जो विभिन्न भारतीय व्यवसायियों द्वारा निर्मित की गई थी—विवशतः टूटना पड़ा। इसका एकमात्र कारण विदेशी कम्पनियों, द्वारा भारतीय जहाजी कम्पनियों का विरोध करना था। ये कम्पनियां भारतीय जहाजों का विरोध दो तरह से करती थीं। एक तो पहले किराये को कम करके भारतीय जहाजों को इस क्षेत्र से हटा दिया जाता था और फिर किराया पुनः बढ़ा दिया जाता था। दूसरे, माल भेजने वाले विदेशी जहाजों से ही अपना माल भेजते थे इसमें उन्हें भाड़े का एक अंश—प्राय १०% एक निश्चित समय के बाद वापिस मिल जाता था। भारतीय जहाजों के मार्ग में और भी कई कठिनाइयां थीं। अंग्रेजी और यूरोपीय बीमा कम्पनियां उनके विरुद्ध पक्षपात का व्यवहार करतीं, और समुद्रतटीय व्यापार और मुसाफिरों के आवागमन को अंग्रेजी जहाज प्रोत्साहन नहीं देते थे।

अंग्रेजी जहाजी कम्पनियों के एकाधिकार से टक्कर लेने का सबसे पहला कदम सन् १६२० में एक भारतीय जहाजी कम्पनी का निर्माण किया जाना था जिसमें प्रत्यक्ष रूप से श्री वाल चंद हीराचंद, स्वर्गीय श्री नेतराम मुरारजी, श्री लालू भाई सामल भाई तथा श्री कीलाचंद देवचंद जैसे प्रसिद्ध व्यवसायी और पूंजीपतियों का हाथ था। इस कम्पनी का नाम *सिंधिया स्टीम नेवीगेशन* कं० (Sindia Steam Navigation Co.) रखा गया। इस कम्पनी ने एक जहाज *'लिबर्टी'* खरीद कर भारतीय समुद्र में व्यापार आरम्भ किया किन्तु शीघ्र ही कम्पनी ने यह अनुभव किया कि केवल एक ही जहाज से भारतीय जहाज-उद्योग तथा तटीय व्यापार स्वावलम्बी नहीं हो सकता अतः और भी कई जहाज इंगलैंड में कम्पनी द्वारा खरीदे गए। ये जहाज भारत और ब्रह्मा तथा भारत और यूरोप के बीच के मार्ग पर चलाए गए। इस जहाजी कम्पनी का अंग्रेजी कम्पनी (British India Steam Navigation Co.,) ने घोर विरोध किया और सब प्रकार से भारतीय कम्पनी को हानि पहुंचाने का प्रयत्न किया। फल स्वरूप अंग्रेजी कम्पनी ने बम्बई और रंगून के बीच चावल ले जाने के किराये में प्रति टन पीछे १२) की कमी कर दी-१८) से घटा कर ६) प्रति टन ही कर दिया। किन्तु भारतीय कम्पनी को अब भी

भारतीय व्यापारियों द्वारा पर्याप्त मात्रा में चावल ले जाने का व्यापार मिलता रहा अस्तु जैसे तैसे कम्पनी अपना कार्य चलाती रही किन्तु किराये की इस लाग डाट में कम्पनी को आर्थिक हानि उठानी पड़ी। १६२२ में बी० आई० एस० एन० कम्पनी ने भारतीय कम्पनी को खरीदने का प्रस्ताव भी रखा किन्तु इसमें उसे सफलता नहीं मिली। अस्तु १६२४ ई० में एक समझौता इन दोनों कम्पनियों के बीच में हो गया जिसके फलस्वरूप सिंधिया कम्पनी भारतीय तटीय व्यापार में ७५,००० टन वाले जहाजों का उपयोग कर सकती थी किन्तु विदेशी व्यापार अंग्रेजी कम्पनी के हाथ में ही रहा।

सिंधिया कम्पनी ने अब व्यवस्थितरूप से अपने जहाजी बेड़े को संगठित करने और उसमें वृद्धि करने की स्वस्थ्य नीति अपनाई। इस कार्य की प्रगति के हेतु कम्पनी ने नए जहाज खरीदना और *अन्यभारतीय जहाजी कम्पनियों* को संरक्षण देना शुरू कर दिया। सन् १६३३ में उपरोक्त दोनों कम्पनियों के बीच हुए समझौते को पुनः दुहराया गया। इस बार सिंधिया कम्पनी को अवश्य कुछ लाभदायक शर्तें प्राप्त हुई। कम्पनी के जहाजों की शक्ति १,००,००० टन तक बढ़ा दी गई और उसे बी० आई० एस० एन० कं० के साथ २ बंगाल की खाड़ी के तटीय भागों में होने वाले यात्री–व्यापार में भी भाग मिला। इस समझौते के अनुसार व्यापार ले जाने के लिए *कोटा (Quota)* निश्चय किया गया जिससे प्रथम बार जहाजी उद्योगों में स्थिरता आई। किन्तु इस बार भी विदेशी व्यापार में भारतीयों को कोई भाग न मिल सका। सन् १६३७ में सिंधिया कम्पनी ने बम्बई से हज तक मुसलमान यात्रियोंको ले जाने का कार्य आरम्भ किया किन्तु शीघ्र ही अंग्रेजी कम्पनी की सहायक कम्पनी *मुगल लाइन* से तीव्रस्पर्धा होने से इसे इस व्यापार से हाथ खींच लेना पड़ा।

भाड़ा युद्ध (Rate war)

वास्तव में अब तक भारतीय कम्पनियों को इस उद्योग में लगातार ही आर्थिक हानि उठानी पड़ रही थी क्योंकि अंग्रेज सरकार और अंग्रेज कम्पनियों का एक मात्र उद्देश्य भारतीय जहाजी कम्पनियों को समाप्त कर देने का ही था, इस के लिए कई अन्यायपूर्ण तरीके काम में लाए गए। अंग्रेजी कम्पनियों ने अपने जहाजों का किराया एक दम कम करके भारतीय जहाजों से तीव्र प्रतिस्पर्धा आरंभ कर दी। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है ताता बन्धुओं द्वारा संचालित एक जहाजी कम्पनी (Tata Line) भारत से चीन तक जहाज चलाती थी। इस कम्पनी को नष्ट करने के लिए अंग्रेजी कम्पनी पी० एंड ओ०(P&O)ने अपना किराया१६) रु० टन से घटा कर १½ रु० टन कर दिया और जब टाटा कंपनी इस आर्थिक हानि को

न सह सकने के कारण टूट गई तो इस कंपनी ने अपना घाटा पूर्ण करने के लिए पुनः किराया बढ़ा कर १६ रु० टन कर दिया। इसी प्रकार *स्वदेशी स्टीम नेवीगेशन कंपनी* (Swadeshi Steam Navigation Co.,) तूतीकोरिन और कोलंबो के बीच जहाज चलाती थी। उसे भी एक अंग्रेज कंपनी ने भाड़े में प्रतियोगिता करके नष्ट कर दिया। जब *सिंधिया स्टीम नेवीगेशन कंपनी* ने बर्मा से चावल का व्यापार आरंभ किया तब जहाज का किराया १८) रु० टन था किन्तु अंग्रेजी कंपनी ने घटाकर ६) रु० टन कर दिया जिससे भारतीय कंपनी को उधर से हाथ खींच लेना पड़ा। करांची से जद्दा तक तीसरे दर्जे का किराया १७२) प्रति टन था किंतु अंग्रेज़ी कंपनी ने प्रतियोगिता में उसे घटा कर २०) प्रति टन कर दिया। ध्यान रहे कि इसी में से ३६) रु० प्रतिजन जद्दा तथा करमान पर कर के रूप में एवं २० रु० प्रति जन भोजन आदि के व्यय के रूप में कंपनी को देना पड़ता था। एक अन्य भारतीय कंपनी *बंगाल बर्मा स्टीम नैविगेशन कं०* Bengal Burma Steam Navigation Co.,) को नष्ट करने के लिए बी० आई० एस० एन० नामक अंग्रेज कंपनी ने चिटगांव और रंगून के बीच यात्रियों के भाड़े को १६) से घटा कर ४) कर दिये। इसी प्रकार १९३४ में चावल ले जाने के भाड़े में एशियाटिक कम्पनी ने प्रति मन पीछे १४ रु० से घटा कर ।।) प्रति मन कर दिया। इसी प्रकार अन्य अनुचित उपायों द्वारा अंग्रेज कंपनियों ने भारतीय सामुद्रिक व्यापार को पनपने नहीं दिया। भारतीय जहाजों के मार्ग में कई अन्य कठिनाइयां भी उपस्थित कर दी जाती थी—उदाहरणार्थ जो स्थान भारतीय जहाजों के ठहरने के लिए निश्चित होते थे उनमें अंग्रेजी जहाज स्वेच्छा पूर्वक आकर लंगर डाल देते थे अथवा जो व्यापार भारतीय जहाजों द्वारा होने वाला होता था उसे अंग्रेजी कम्पनियां ही ले लेती थीं। इससे भारतीय जहाजों को बड़ी आर्थिक हानि उठानी पड़ी। कई कंपनियां तो सदा के लिए ही नष्ट हो गईं। इस प्रकार भारतीय पूंजी की जो हानि हुई है वह अनुमानतः १०—१२ करोड़ रुपये से ऊपर की हुई है। बम्बई में सन् १९२७ में कुल मिला कर ३३ भारतीय जहाजी कंपनियों की स्थापना हुई जिनकी अधिकृत पूंजी (Authorsied Capital) २२ करोड रुपए से भी अधिक और चुकता पूंजी (Paid-up Capital) ३¼ करोड़ रुपये से भी अधिक थी किन्तु अब इनमें से केवल ४ कंपनियां ही जीवित हैं, शेष गहरी आर्थिक हानि उठाकर नष्ट हो गई। इसमें कोई संदेह नहीं कि यथाशक्ति इन कंपनियों ने बी० आई० एस० एन कम्पनी से लोहे लेने में टक्कर ली किन्तु इस शक्तिशाली प्रतिस्पर्धा के सम्मुख ये कम्पनियां अधिक काल तक नहीं टिक सकी। महात्मा गांधी के शब्दों में. "भारतीय जहाजी कंपनियों का मरण इसलिए हुआ कि अंग्रेजी कंपनियां जीवित रह सकें।" इसका सबसे महत्वपूर्ण परिणाम यही हुआ कि

भारतीय कंपनियों को न केवल आर्थिक हानि ही उठानी पड़ी अपितु भारतीय सामुद्रिक व्यापार का बृहत भाग भी अंग्रेजी कंपनियों के हाथ में छोड़ना पड़ा और तो क्या तत्कालीन भारत सरकार ने अपने गुप्त आदेश यह दे रखे थे कि यदि सरकारी कार्य के लिए सरकारी कर्मचारियों को यात्रा करना ही पड़े तो वे अंग्रजी जहाजों में ही करें। यह सब कार्य अंग्रेज जहाजी व्यापार को उन्नतिशील बनाने के लिए किए गए।

सामुद्रिक व्यापार समिति (Merchantile Marine Committee)

प्रथम महायुद्धके बाद भारत में राष्ट्रीय जहाजी बेड़ेके अविलम्ब निर्माण करने की मांग की जाने लगी। देश की आर्थिक विकास की दृष्टि से तो यह आवश्यक था ही पर देश की सुरक्षा के लिए भी इसका महत्व था। भारत सरकार ने श्री पी० एस० शिवास्वामी अय्यर के विशेष अनुरोध पर ३ फरवरी १६२३ में *श्री हैडलम* (Headlam) के सभापतित्व में—जो *रायल इण्डियन मैरीन* के अध्यक्ष थे—एक *सामुद्रिक व्यापार समिति* नियुक्त की। इस समिति ने निम्नलिखित सिफारिशें की:—

(१) लाइसेंस प्रणाली द्वारा देश का समुद्रतटीय व्यापार भारतीय जहाजों के लिये सुरक्षित रखा जाय।

(२) भारत सरकार तत्कालीन एक अंग्रेजी जहाजी कम्पनी को खरीद ले और उसकी व्यवस्था आदि भारतीय कम्पनियों के आधीन कर दी जाय जिससे तटीय व्यापार में भारतीयों का लाभ हो सके अर्थात् समुद्रतटीय बेड़े का भारतीय करण किया जाय।

(३) भारतीयों को विदेशी जहाजों पर अनिवार्य रूप से काम दिया जाय।

(४) जहाज निर्माण के उद्योग को आर्थिक सहायता देकर पुनर्जाग्रत किया जाय।

(५) भारतीय युवकों और अफसरों को जहाजी शिक्षा देने का उचित प्रबन्ध किया जाय।

यद्यपि इस समिति द्वारा प्रेषित की गई ये सिफारिशें बड़ी महत्वपूर्ण थीं किंतु भारत सरकार के कानों में जूं तक न रेंगी। व्यर्थ में समिति के सुझावों पर विचार करने के बहाने दो वर्ष नष्ट कर दिये और अन्त में सरकार ने इन सिफारिशों में से केवल एक सिफारिश को स्वीकार किया। भारतीय युवकों को जहाजी शिक्षा देने के लिये *डफरिन* (Dufferin) जहाज की स्थापना सन् १६२७ में की गई। सरकार के इस कार्य का विदेशी कम्पनियों द्वारा कड़ा विरोध किया गया।

जहां सिन्धिया कम्पनी में ४० भारतीय युवक अफसरों की स्थिति में थे वहां पी० एण्ड० ओ० कम्पनी में केवल ४ भारतीय अफसर थे। इस प्रकार भारतीयों को

अंग्रेजी जहाजों पर बहुत कम काम दिया गया था। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी कम्पनियों को प्रति वर्ष सरकार द्वारा डाक आदि ले जाने के लिये १५ लाख रुपयों की आर्थिक सहायता मिलती रही। इसके अलावा सरकार ने विदेशी जहाजों को यात्रियों आदि के ले जाने की गारन्टी देदी थी जिसके लिये भी इन कम्पनियों को अप्रत्यक्ष रूप से ५५ लाख रुपये सालाना दिये जाते रहे। सन् १९३५ में तो भारत सरकार ने इस आशय के गश्ती पत्र सभी प्रान्तीय सरकारों को भेजे कि वे अपनी आवश्यकताओं की वस्तुएं विदेशों से विदेशी जहाजों में आयात या निर्यात करें। इसका घातक प्रभाव हमारे देशी जहाजों पर पड़ा।

समुद्रतटीय व्यापार के भारतीयकरण के प्रयत्न (Reservation of Coastal Traffic)

सन् १९२८—२९ में *श्री एस० एन० हाजी* ने भारतीय व्यवस्थापिका सभा में इस आशय के बिल पेश किये कि आगामी ५ वर्षों के भीतर समुद्रतटीय व्यापार का कम से कम तीन चौथाई भाग भारतीयों के लिये सुरक्षित रखा जाय और अनुचित उपायों द्वारा जो प्रतियोगिता भारतीय कम्पनियों के विरुद्ध की जाती है वे हटा दी जांय। इन प्रस्तावों पर सभा में बड़ा वादविवाद हुआ। सरकार ने इन बिलों का कड़ा विरोध किया और कहा कि यदि व्यापार को केवल भारतीय जहाजों के लिये सुरक्षित रखा जायगा तो बर्मा आदि देशों के व्यापारियों को बड़ा नुकसान होगा। किन्तु राष्ट्रीय ग्रुप के कतिपय नेताओं—श्री मोतीलाल नेहरु और ला० लाजपतराय ने सरकार के इस रुख की कड़ी निन्दा की और कहा कि जब अन्य देशों में तटीय व्यापार उस देश के निवासियों के लिये ही सुरक्षित रहता है तो क्या कारण है कि भारतीयों को इस लाभ से वंचित किया जाय। श्री हाजी के बिलों को काफी समर्थन मिला (७१ वोटों में से ४९ वोट हाजी के प्रस्ताव के पक्ष में थे) अस्तु, अब सरकार ने इस पर विचार करने का भार एक *सिलैक्ट कमेटी* पर छोड़ा। इस कमेटी को अपनी राय १९२९ में पेश करनी थी। इस बीच में सरकार यह प्रयत्न करती रही कि येन केन प्रकारेण भारतीय और विदेशी जहाजी कम्पनियों में सहयोग अथवा समन्वय हो जाय। अस्तु, जनवरी १९३० में तत्कालीन वाइसराय लार्ड इरविन ने एक जहाजी सभा का आयोजन किया किन्तु प्रयत्न असफल ही रहा क्योंकि अंग्रेजी जहाजी कम्पनियां, भारतीय कम्पनियोंके जहाजी व्यापार पर किसी भी प्रकार से सहयोग पूर्ण समझौता करने को तैयार नहीं हो रही थीं। सन् १९३० में जब देश में राष्ट्रीय आन्दोलन छिड़ गया तो भारतीय नेताओं ने व्यवस्थापिका सभा से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। फलस्वरूप कुछ समय के लिये श्री हाजी के बिलों पर कोई विचार न होने के कारण वे अस्वीकृत किए गये।

सन् १६३७ में एक बार फिर *श्री अब्दुल हलीम गजनवी* ने तटीय-व्यापार को भारतीयों के लिये सुरक्षित करने का एक प्रस्ताव भारत सरकार के सामने रखा जिसमें इस बात पर भी ज़ोर दिया गया कि भारतीय तटीय भागों में विदेशी कम्पनियों द्वारा किये जाने वाली अनुचित प्रतियोगिता भी समाप्त की जाय। किन्तु भारत सरकार ने इस प्रस्ताव को अव्यवहारिक कहकर अस्वीकृत कर दिया और केवल यह घोषित कर दिया कि सरकार का उद्देश्य भारतीय जहाजी व्यवसाय को उन्नत करना है, इसके लिये उसने एक स्वतन्त्र विभाग भी स्थापित किया।

अध्याय २३

समुद्र तटीय यातायात (२)

INDIAN SHIPPING

द्वितीय महायुद्ध और उसके पश्चात (During & After II World war)

सितम्बर १६३६ में जब द्वितीय महायुद्ध आरंभ हुआ तो भारत सरकार को यह अनुभव हुआ कि भारतीय जहाजी बेड़े की कितनी आवश्यकता है। इस काल में बहुत से भारतीय जहाज सरकार ने युद्ध कार्य के लिए अपने अधिकार में ले लिये जिससे देश की रक्षा की जा सके। कई जहाज शत्रुओं द्वारा नष्ट कर दिए गये। युद्ध के पश्चात् भारतीय जहाजों की संख्या केवल ६३ थी जिनका वजन १३१,७४८ टन था। इनमें से ६ जहाज तो अकेले सिंधिया कम्पनी के ही थे। सम्पूर्ण जहाजों के वजन का यह ६१% था।

भारत में नौ-उद्योग के पुर्नजन्म का श्रेय सिंधिया कम्पनी को है। पहले इस कम्पनी ने विदेश में बने हुए जहाज खरीद कर इस दिशा में पथ-प्रदर्शन किया पर शीघ्र ही उसके संचालकों ने इस बात का अनुभव कर लिया कि बिना अपने देश में जहाजों को निर्माण का प्रबन्ध हुए इस ओर यथेष्ठ उन्नति संभव नहीं है। उनकी यह चिर-प्रतिष्ठित अभिलाषा अनेक बाधाओं को पार करने के बाद सफलीभूत हो सकी। २१ जून १६४१ के दिन भारतीय जहाज निर्माण की योजना का शिलान्यास *विशाखापट्टनम* (विजगापट्टम के समीप गांधी नगर) में डा० राजेन्द्र प्रसाद के द्वारा सम्पन्न हुआ। इस कंपनी ने पूर्वी समुद्रतट पर विजगापट्टम में जहाजों के निर्माण का-कारखाना खोला और उसके लिए आवश्यक मशीनें आदि विदेशों से निर्यात की गई। कारखानें में लकड़ी, लोहे, शक्तिगृह, ड्राइंग आदि के विभिन्न विभाग खोले गए और उनमें काम करने के लिए अनुभवी कार्यकर्त्ता नियुक्त किये गये। अनुभव-प्राप्त विदेशी एवं देशी इंजनियरों को भी नियुक्त किया गया। अब तक इस कम्पनी ने पोत-निर्माणशाला (Shipping-yards) पर लगभग ४ करोड़ रुपया खर्च किया है। पूरी योजना को कार्यान्वित करने के लिए अभी १० करोड़ रुपये की और आवश्यकता है। अभी तक जहाजों के लिये प्राय: सभी प्रकार का लोहे का सामान इंजिन, बायलर आदि विदेशों से आयात करना पड़ता है।

सिंधिया कम्पनी द्वारा विशाखापट्टनम के कारखानें में सबसे पहला जो जहाज बना उसका नाम *जल उषा* रखा गया। यह जहाज ४१५ फीट लंबा, ५२ फुट चौड़ा और ३० फुट गहरा है। इसमें २६०० अश्वशक्ति का इंजिन लगा है तथा इसका वजन ८००० टन है। इस जहाज के निर्माण में कुल लागत लगभग ६८ लाख रुपये लगी है। इसका जलावतरण पंडित नेहरू के हाथों १४मार्च १९४८ में सम्पादित हुआ। पंडित जी ने इस अवसर पर जो शब्द कहें वे बड़े महत्वपूर्ण हैं,। उन्होंने कहा, "भगवान् करे यह जहाज (जिसे आज हम जल में उतार रहे हैं) भविष्य में अवतरित होने वाले कितने ही छोटे बड़े भारतीय जहाजों का अग्रणीय बनें। इन जहाजों द्वारा हम भारत का संदेश संसार के कोने २ में पहुंचावें। विजगापट्टम के इस बन्दरगाह पर हम न केवल जहाज-उद्योग का प्रारंभ कर रहे हैं बल्कि हमने यह भी अच्छी तरह देख लिया है कि यह स्थान भारत के पूर्वी तट पर सबसे महत्वपूर्ण नौ-सैनिक अड्डा (Naval Base) है। हम चाहते हैं कि इसका विकास हो।··· जब मैं इस नये सुन्दर जहाज 'जल उषा' को समुद्र पर तैरते देख रहा था तब मैं सोच रहा था कि यह जहाज देश की उस नौका—नवीन भारत सरकार का प्रतीक है, जिसका अवतरण कुछ महीने पूर्व ही हो चुका है।

विजगापट्टम में 'जल उषा' के पश्चात् दूसरा जहाज '*जल प्रभा*' तैयार हुआ। इसका जलावतरण भारत के तत्कालीन उप-प्रधान मंत्री स्वर्गीय वल्लभाई पटेल के द्वारा २० नवम्बर, १९४८ को हुआ। यह भी ८००० टन का जहाज है। सिंधिया निर्माण शाला में इतने परिणाम वाले तीन अन्य जहाज भी तैयार हो चुके हैं। पांचवे जहाज '*जल पद्म*' का अवतरण श्री हरेकृष्ण मेहताब द्वारा १४ सितम्बर, १९५० को किया गया। सिंधिया कम्पनी की योजना है कि वह प्रतिवर्ष ८—६ हजार टन वालें तथा ५५० फुट लम्बाई तक के ४—५ जहाज तैयार करे। इस समय विजगापट्टम में जहाजों के लिए दो अवतार मार्ग (Runways) हैं। योजनानुसार अभी ३ या ४ अवतार-मार्ग और बनना शेष है। पोत— निर्माणशाला में कुल मिलाकर २००० सुशिक्षित तथा कुशल व्यक्ति कार्य कर रहे हैं। अब तक ८ जहाज बनकर तैयार हो चुके हैं। जो सभी लायड़ बीमा कम्पनी द्वारा अत्युतम जहाज होने का प्रमाण पा चुके हैं। सबसे बड़ी कठिनाई यहां सामान की है। जो जहाज इस समय इंग्लैंड में ३५ से ४० लाख रुपया की लागत में बन सकता है वैसे ही जहाज भारत में निर्माण करने में ६४ या ६५ लाख रुपया लगता है। इस व्यय को देखते हुए भारत की अधिकांश कम्पनी विदेशों में बने जहाजों को ही खरीदना पंसद करती है। कुछ समय पूर्व भारत सरकार इस पोत-निर्माणशाला को ३·५ करोड़ रुपये में खरीद लेने का विचार करती थी किन्तु धनाभाव के कारण वह इस कार्य में सफल न हो

सकी। अब सरकार इसके उत्थान और विकास में क्रियात्मक भाग ले रही है और भारतीय कम्पनियों को आर्थिक सहायता प्रदान कर रही है।

इस समय सिंधिया तथा उससे संबंधित कम्पनियों के पास छोटे बड़े मिलाकर कई दर्जन जहाज हैं। द्वितीय महायुद्ध में उनके ६ बड़े और ४ छोटे जहाज शत्रु द्वारा नष्ट कर दिए गए। इस युद्ध में सिंधिया कम्पनी का काम बहुत समय तक बंद रहा। अनेक बड़ी मशीनें भी विजगापट्टम से बम्बई भेज दी गई। ब्रिटिश सरकार ने युद्ध काल में विजगापट्टम के कारखानों का पूरा उपयोग किया। सिंधिया कम्पनी के जहाज निर्माण के हेतु मंगाया गया फौलाद भी सरकार ने युद्ध कार्य के लिये ले लिया। १९४७ से ये कारखाने पुनः ठीक स्थिति में आये। इस कम्पनी के पास ३४,००० टन वाला एक बड़ा जहाज है (*जल–आजाद*) जो द्वितीय महायुद्ध के बाद के बने हुए बड़े जहाजों में से एक है।

सिंधिया कम्पनी का विचार है कि भारत सरकार द्वारा निश्चित २० लाख टन के जहाज बनाने के लिए भारत सरकार को सक्रिय कदम उठाना चाहिए। इस कार्य के लिए कम से कम ४० जहाज २० लाख टन वजन के होना आवश्यक है जो तटीय व्यापार में लगे हों तथा ३६ पुराने जहाजों की भी मरम्मत कराने की आवश्यकता होगी। अस्तु इस कम्पनी का कहना है कि यदि भारत की आवश्यकता के इन ७६ जहाजों को इस कम्पनी को निर्माण करने के लिए आदेश मिल जाय तो पोत-निर्माण शाला का भविष्य और भी सुगठित और दृढ़ हो सकता है। अस्तु भारत सरकार यदि इन जहाजों को बनाने का कार्य विभिन्न भारतीय कंपनियों द्वारा इस निर्माणशाला को दिला दे तो यह कंपनी आगामी दस वर्षों में ७६ जहाज सरलता और कम व्यय में निर्माण कर सकती है तथा इसकी पोतशाला में भी विस्तार हो सकेगा।

सन् १९४७ में भारत स्वतन्त्र हो गया। इसके पूर्व १९४५ में श्री सी० पी० रामस्वामी एय्यर की अध्यक्षता में एक युद्धान्तर पुनर्विकास नीति उपसमिति (Postwar Reconstruction Policy Sub-Committee) नियुक्त की गई। इस कमेटी ने भारतीय जहाजी बेड़े के विकास के इतिहास का पूर्ण रूप से अध्ययन किया और अंग्रेज सरकार की अब तक इस सम्बन्ध में बरती गई उपेक्षा-पूर्ण नीति का कड़ा विरोध किया और कहा कि "भारतीय जहाजी बेड़े के विकास का इतिहास वचन भंग की दर्दनाक कहानी है।" इस कमेटी ने अनुमान लगाया कि युद्ध के पूर्व भारत में केवल ३० जहाज थे जिनकी संपूर्ण टन शक्ति १५०,००० थी। इस रिपोर्ट के अनुसार १९३८-३९ में ३,२१० विदेशी जहाज–जिनकी कुल जहाज रानी १,१०,१०,७६९ टन थी भारतीय बन्दरगाहों में आये और यहां से १,६०,६७००० टन सामान ले गये। भारत के तटीय व्यापार में जहां विदेशियों का भाग

५१,१८,६५२ टन रहा वहाँ भारत के हिस्से में केवल १७,६०,६४७ टन ही रहा अर्थात् तटीय व्यापार पर विदेशियों का ७४·४० प्रतिशत और भारतीयों का २५·६० प्रतिशत भाग रहा। इस कमेटी की राय में यह अंक भारत जैसे विशाल जनसंख्या, विस्तार और इतनी बड़ी तटीय रेखा के विचार से बहुत ही नगण्य है।"

इस कमेटी की मुख्य कमेटी ने—*व्यापारिक नीति समिति* (Shipping Policy Committee) ने १६४७ में एक विस्तृत रिपोर्ट पेश की और सरकार द्वारा राष्ट्रीय जहाजी नीति अपनाने की जोरदार सिफारिश की। इस कमेटी ने यह निर्णय दिया कि आगामी ५-७ वर्षों के भीतर भारत सरकार को कम से कम २० लाख टन का जहाजी बेड़ा बना लेना चाहिये क्योंकि कम से कम इतनी शक्ति हुये बिना भारत अपने व्यापारिक दायित्व को नहीं निभा सकता। इस समिति की मुख्य सिफारिशें ये थीं :—

(१) भारतीय जहाजी बेड़े से मतलब उस जहाजी बेड़े से होगा जिस पर विशुद्ध भारतीयों का स्वामित्व तथा अधिकार और व्यवस्था होगी। किसी भी जहाज को भारतीय जहाज मानने के पूर्व इन शर्तों का पूरा होना आवश्यक होगा:—

(क) बृटिश भारत के किसी भी बन्दरगाह या बन्दरगाहों पर ऐसे जहां की रजिस्ट्री होनी चाहिये।

(ख) जहाजी कम्पनियों के हिस्सों और ऋणपत्रों में कम से कम ७५% भाग भारतवासियों का होना चाहिये।

(ग) सभी संचालक भारतीय ही हों।

(घ) मैनेजिंग एजेंट भी, यदि कोई हों, भारतीय ही हों।

(२) भारतीय तट का शत प्रतिशत व्यापार, बर्मा तथा लंका के साथ भारतीय व्यापार का ७५%; समीपवर्ती देशों—अफ्रीका, मध्यपूर्व के देश, थाइलैंड, हिन्दचीन, मलाया तथा पूर्वी द्वीपसमूह—के व्यापार का ७५% और दूरवर्ती देशों के साथ व्यापार का ५०% तथा उस पूर्वी व्यापार (Oriental Trade) का ३० प्रतिशत जिसे जर्मनी, ईटली आदि विरोधी शक्तियों (Axis power) द्वितीय महायुद्ध में खो दिया है, आगामी ५-७ वर्षों में भारत के हाथ में आ जाना चाहिये।

(३) यद्यपि हमारी वर्तमान शक्ति को देखते हुये इतना व्यापार हमारे बूते के बाहर दिखाई पड़ता है तो भी कोई कारण नहीं कि अपनी टन शक्ति बढ़ा लेने पर हम इतने व्यापार को—१०० लाख टन माल और ३० लाख यात्रियों को—संचालित न कर सकें। अस्तु इस व्यापार को ले जाने के लिये हमें २० लाख टन जहाजी बेड़े की आवश्यकता है (देशी नावों को छोड़ कर)।

(४) चूंकि भारतीय जहाजी उद्योग अभी अपनी बाल्यावस्था में ही है अतः इस समिति ने उनकी टन शक्ति का निर्धारण करना उचित नहीं समझा और न ही उन के द्वारा होने वाले पूंजीगत खर्चों पर ही कोई रोक लगाई किन्तु इस बात की ओर अधिक जोर दिया कि एकाधिकार की व्यवस्था को यथाशक्ति रोका जाय।

(५) भारतीय जहाजों को मिलने वाले विभिन्न नये देशों के व्यापार को सभी कम्पनियों में समान रूप से वितरित किया जाय।

(६) जहाजी बेड़े की टन शक्ति और व्यापार आदि के आँकड़ों के संचयन तथा प्रकाशन में आमूल परिवर्तन किया जाय।

(७) भारत सरकार का वाणिज्य विभाग पोर्टट्रस्ट आदि को शासन व्यवस्था यातायात विभाग से अपने हाथों में ले ले।

इन सिफारिशों को कार्यान्वित करने के लिये इस समीति ने ये उपाय भारत सरकार के सम्मुख रखे—

(१) एक जहाजी परिषद (Shipping Board) की अविलम्ब नियुक्ति की जाय जिसमें जहाजी कम्पनियों के स्वामी, अन्य व्यापारी तथा उद्योगकर्त्ता, सभी सदस्य हों तथा इसका सभापतित्व एक ऐसे निष्पक्ष व्यक्ति के हाथ में हो जो चतुर, अनुभवी और न्याय में दक्षता रखता हो। इस परिषद का काम यह होगा—

(क) भारतीय तटीय और विदेशी व्यापार में लगे भारतीय जहाजों के आर्थिक सहायता के लिए दिये गये प्रार्थना पत्रों पर विचार करना और उसको अपनी उचित सिफारिशों सहित भारत सरकार के सम्मुख रखना। इसके अतिरिक्त यह परिषद इस बात पर भी अपनी राय प्रकट करेगा कि जिन कम्पनियों को भारत सरकार द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त हुई है उनके नियन्त्रण में भारत सरकार का हाथ कहां तक होगा?

(ख) भाड़ाप्रतिस्पर्धा और Deferred Rebates तथा एकाधिकार के दोषों को दूर करने के लिये भारत सरकार को उचित सलाह देना।

(ग) भारतीय जहाजी कम्पनियों को आज्ञापत्र (licences) देकर तटीय व्यापार को पूर्ण रूप से व्यवस्थित और नियन्त्रित करना।

(२) २० लाख टन जहाजी बेड़े को बनाने के लिये अंग्रेजी जहाजी कम्पनियों से उचित व्यापारिक समझौते करना। इसके अतिरिक्त भारत में ही देशी कम्पनियों द्वारा जहाजी उद्योग को प्रोत्साहन देना और संयुक्त राज्य से भी कुछ जहाज भारत के लिये खरीद लेना आदि।

व्यापारिक नीति समिति की विस्तृत रिपोर्ट में दी गई विभिन्न सिफारिशों पर विचार कर भारत सरकार ने एक बड़ी व्यापारिक योजना बनाई जिसमें तीन राष्ट्रीय व्यापारिक निगमों (Shipping Corporation) की स्थापना की व्यवस्था है।

प्रत्येक निगम के जिम्मे विभिन्न क्षेत्रों में व्यापार संचालन का कार्य रहेगा। प्रथम निगम भारत और फारस की खाड़ी, भारत और लाल सागर के बीच तथा मिश्र के बन्दरगाहों और भारत–चीन–जापान और भारत आस्ट्रेलिया के बीच व्यापार संचालन करेगा। द्वितीय निगम भारत-अमेरिका और भारत मलाया तथा पूर्वी द्वीप समूह के बीच व्यापार संचालन करेगा। तीसरा निगम भारत और पूर्वी तथा दक्षिणी अफ्रीका और इंग्लैंड के बीच व्यापार संचालन का कार्य करेगा। अनुमान से हरेक निगम की व्यवस्था में लगभग १० करोड़ रुपये लगेंगे। ये तीनों ही राज्य के नियन्त्रण में रहेंगे। पहले यह निश्चय किया गया था कि प्रत्येक निगम के चालू करने के लिये कुल पूंजी में से ५१ प्रतिशत राज्य की, २६ प्रतिशत व्यवस्थापक एजेंटों की और शेष २३ प्रतिशत जनता की रहेगी किन्तु बाद में परिस्थिति का ध्यान रख यह तय किया गया कि सरकार का हिस्सा ७६ प्रतिशत रहे। इन निगमों का उद्देश्य भारतीय जहाजों की टन शक्ति की मात्रा में शीघ्रातिशीघ्र वृद्धि करना और जहाजी यातायात का बढ़ाना है पर भारत सरकार की आर्थिक और अन्य कठिनाइयों के कारण अभी एक ही निगम स्थापित किया गया है। *पूर्वी व्यापारिक निगम* (Eastern Shipping Corporation) की व्यवस्था सिंधिया स्टीम नैवीगेशन कम्पनी को ७६:२४ के अनुपातिक आधार पर सौंपी जा चुकी है। इसका कार्य भारत और सुदूरपूर्व आस्ट्रेलिया और मध्यपूर्वी देशों के बीच के व्यापार का संचालन करना है। अन्य दो निगम *इंडिया स्टीम नैवीगेशन* कं० (India Steam Navigation Co.) और *भारत लाइन्स लिमिटेड* (Bharat Lines Ltd.) होंगे। इनमें से प्रत्येक की ठीक व्यवस्था करने के लिये ११ सदस्यों की एक समिति होगी, जिसमें ६ सदस्य सरकार द्वारा मनोनीत, ३ व्यवस्थापक एजेंटों के और २ जनता द्वारा निर्वाचित होंगे। एक सरकारी विशेष संचालक (Official Director) इस निगम की सारी व्यवस्था का नियन्त्रण करेगा। सरकार ने कुछ जहाजों के तैयार करने का ठेका सिंधिया कम्पनी को दे रखा है। इनमें से *जलपद्म* और *जलपालक* नामक जहाज-८००० टन प्रति जहाज-तैयार होकर अवतरित हो चुके हैं।

अब विदेशी व्यापार में भी भारतीयों को हिस्सा मिलने लगा है। सन् १९४७ में सिंधिया कम्पनी की जहाजी सर्विस नियमित रूप से अमेरिका और भारत के बीच चालू हो चुकी है। सन् १९४८ में सिंधिया कंपनी और *इन्डिया स्टीम कम्पनी* की अन्य सर्विसें भारत और इंगलैंड तथा योरोपीय देशों के बीच चालू हो गई। बाह्य समुद्रों में भारतीय कंपनियों को उचित भाग प्राप्त कराने के लिए सरकार जो आवश्यक प्रयत्न कर रही थी इसके फलस्वरूप अप्रेल सन् १९५० को दो देशी कंपनियों को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक सम्मेलन द्वारा भारत ब्रिटेन यूरोप की लाइन में यातायात आरंभ करने की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व

भारतीय कंपनियों के जहाज केवल बर्मा, भारत और लंका के समुद्र तटों पर ही दीख पड़ते थे पर अब वे दूर देशों के तटों पर भी दिखाई पड़ने लगे हैं। भारतीय कंपनियां अब भारत–ब्रिटेन–यूरोप; भारत अमेरिका; भारत–आस्ट्रेलिया और भारत मलाया आदि लाइनों में भी भाग पाने लगी हैं।

भारत सरकार सब प्रकार से देश में २० लाख टन शक्ति का जहाजी बेड़ा तैयार करने में प्रयत्नशील है। इसके अनुसार कई देशी कंपनियों को सरकार द्वारा पर्याप्त आर्थिक सहायता भी मिली है। भारत सरकार अपनी आवश्यकता के अनुसार भारतीय जहाज, भारतीय कंपनियों से खरीदती है। विदेशों से जहाज खरीदने में भी सरकार सहायता देती है। सन् १९४९ में सिंधिया कंपनी ने १५,७०० टन शक्ति के चार जहाज़ और इंडियन कौपरेटिव कंपनी ने १०,००० टन शक्ति के ४ जहाज़ विदेशों से खरीदे। सितम्बर सन् १९५१ में भारत सरकार ने संयुक्त राज्य अमेरिका से १५ व्यापारिक जहाज़ १,१०,१३० टन शक्ति वाले लगभग ११० लाख डालर की लागत से खरीदे तथा सिंधिया कंपनी और भारत स्टीमशीप कंपनी में से प्रत्येक ने ६ और भारत लाइन्स ने २ तथा ग्रेट–ईस्टर्न कंपनी ने १ जहाज अमेरिका से खरीदा।

जनवरी १९५१ में एक *तटीय व्यापार सबन्धी सम्मेलन* (Coastal shipping Conference) बुलाया गया जिसमें जहाजी बेड़े का पूर्ण रूप से भारतीय करण करने की नीति पर विचार किया गया। इस सम्मेलन में समुद्र तटीय व्यापार की भारतीय मात्रा को और अधिक बढ़ाने के प्रश्न पर विचार किया गया। बी० आई० एस० एन०; ऐशिया स्टीम नैविगेशन कंपनी तथा सिंधिया कंपनियों से किए गए पुराने समझौते को रद्द कर दिया गया। कुछ ब्रिटिश जहाजों को भविष्य में लाइसैंस नहीं देने का निर्णय हुआ किंतु कुछ समय के लिए बी० आई० एस० एन० कंपनी और एक कंपनी को व्यापार करने की इजाज़त दे दी गई। भारतीय कंपनियों को सरकार ने यह आश्वासन दिया कि जहां तक संभव होगा सरकारी माल लाने ले जाने का काम वह उन्हीं से लेगी। विदेशी व्यापार के संबन्ध में भी यह निर्णय किया गया कि कि आगे से विदेशी व्यापार संबन्धी सरकारी समझौतों में यह धारा रखी ज़ाय कि ५०% माल भारतीय जहाजों में लाया ले ज़ाया जायगा। इसके फलस्वरूप समुद्री तटीय यातायात केवल भारतीय जहाजों के लिए सुरक्षित रखा गया है जिसके अनुसार पश्चिम तट पर स्थित कलकत्ता तक का तटीय व्यापार केवल भारतीय जाहाजों के हाथ में ही रहेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि भारतीय जहाजों को अब प्रतिवर्ष ३० लाख टन बोझा ढोने को मिल सकेगा जिसको ढोने के लिए भारत को कम से कम ३,५७५,००० टन शक्ति वाले जहाजों की

आवश्यकता होगी जब वर्तमान समय में हमारे पास केवल २,००,००० टन शक्ति के ही जहाज हैं अतः हमे १,७५,००० टन शक्ति वाले जहाजों की और जरूरत होगी।

नीचे की तालिका में विश्व के प्रमुख देशों के जहाजों की टन शक्ति (१९४८) बताई गई है। इससे ज्ञात होगा कि भारत की स्थिति इस संबन्ध में बहुत ही निकृष्ट है:—

देश	कुल टन शक्ति (००० टनों में)	देश	कुल टन शक्ति (००० टन में)
संयुक्त राज्य अमेरीका	२९,१६५	यूनान	१,२८६
इंगलैंड	१८,०२५	स्पेन	१,१४७
नार्वे	४,२६१	डेनमार्क	१,१२३
फ्रांस	२,७८६	जापान	१,०२४
हालैंड	२,७३७	जर्मनी	४२८
इटली	२,१००	भारत	३२७
स्वीडन	१,९३७	पाकिस्तान	३३

भारत सरकारके तीन मंत्रालय इस समय भारतीय जहाज व्यापार से संबंधित है। व्यापार मंत्रालय के अन्तर्गत जहाजी व्यापार के कानून बनाने, समुद्रों पर यात्री और माल की सुरक्षा से ताल्लुक रखने वाला कानून, जहाजों पर काम करने वाले व्यक्तियों को चुनने तथा उनकी व्यवस्था करने संबन्धी कानून और भारतीय व्यापारिक जहाजी बेड़े के विकास की रूप रेखा तैयार करने का काम है। इसी मंत्रालय के अधीन कर्मचारियों को शिक्षा देना आदि का काम भी सौंपा गया है। यातायात मंत्रालय पोर्ट ट्रस्ट आदि के प्रबन्ध संबन्धी व्यवस्था का कार्य करने तथा उद्योग मंत्रालयके जिम्मे पोत-निर्माणशाला आदि से संबन्धित कार्य है। इन तीनों मंत्रालय के कार्यों का समन्वय करने के लिए एक "डायरेक्टर जनरल ऑफ शिपिंग" भी है।

पंचवर्षीय योजना

सन् १९४७ में जो सामुद्रिक व्यापार समिति नियुक्त की गई थी उसने भारतीय जहाजों के लिये आगामी ५—७ वर्षों में २० लाख टन शक्ति का लक्ष्य उपस्थित किया था। इस लक्ष्य तक हम अभी नहीं पहुंच सके हैं। युद्ध के पहले भारतीय जहाजों की टन शक्ति २४५,००० थी, १९४६ में १,२७,०८८ और १९५० में ३,७७,५०० थी। भारतीय जहाजों की संख्या में वृद्धि करना आवश्यक है इसके बिना न समुद्रतटीय व्यापार, भारतीय जहाजों के हाथ में पूर्णतया आ सकता है

और न ही पुराने जहाजों को बदला जा सकता है और न विदेशी व्यापार में ही हम भाग ले सकते हैं। अस्तु पंचवर्षीय आयोग ने इस कार्य की उन्नति के लिए प्रथम ५ वर्षों में १४.६ करोड़ रुपया खर्च करने का प्रस्ताव रखा है। इस योजना के अनुसार ४ करोड़ रुपया ८०,००० टन शक्ति वाले जहाजों के लिये जो समुद्रतटीय व्यापार में लगे हैं, ६.५ करोड़ रुपया १,२५,००० टन शक्ति विदेशी व्यापार में लगे जहाजों पर और ४.५ करोड़ रुपया ६०,००० टन ईस्टर्न शीपिंग कारपोरेशन (जो भारत सरकार ने स्थापित किया है) प्राप्त करने में व्यय किया जायगा। चूंकि जहाजों की टन शक्ति बढ़ाने के लिये भारत सरकार कम्पनियों को आर्थिक सहायता देगी, इसलिये वह कम्पनियों पर अपनी देख-रेख भी रखेगी ताकि माल और यात्रियों से उचित भाड़ा वसूल किया जाय, प्रबन्ध अच्छा हो और लाभांश पुनः इसी उद्योग की उन्नति में लगे।

उपर्युक्त वर्णन से ज्ञात होगा कि किस प्रकार अनेक विघ्न बाधाओं को पार कर भारतीय जहाजी उद्योग का आधुनिक काल में पुनर्जन्म हुआ। प्राचीन काल में निर्मित नौकाओं और जहाजों के जो दृश्य आज सांची, कन्हेरी, अजन्ता, बोरी बन्दर, जगन्नाथपुरी, भुवनेश्वर और मथुरा आदि में सुरक्षित हैं उन्हें देखकर और युक्तिकल्पतरु जैसे ग्रन्थों में विविध प्रकार के जलयानों का वर्णन पढ़कर हमें अपने पूर्वजों के नौ-उद्योग का परिचय मिलता है और यह जानकर आश्चर्य होता है कि जब विज्ञान का आज के जैसा विकास नहीं हुआ था उस समय भी भारतीयों ने इस उद्योग को इतना विकसित किया था। अब आवश्यकता इस बात की है कि आंतरिक, तटीय तथा बाह्य व्यापार के लिये बड़ी मात्रा में नौकाओं और आधुनिक जहाजों को तैयार किया जाय। व्यापार के अतिरिक्त रक्षा के लिये भी एक मजबूत राष्ट्रीय जहाजी बेड़े की जरूरत है।

इन सबके लिये भारतमें नौ-निर्माण की उद्योगशालाएं शीघ्र खुलनी चाहिए। कुछ लोगों का यह ख्याल है कि यहां जहाजों के निर्माण के लिये यथेष्ठ इस्पात और अन्य आवश्यक सामान उपलब्ध नहीं है अतः इस उद्योग की वृद्धि में अड़चन उपस्थित हो रही है। परन्तु इससे हमें जहाजों के निर्माण का कार्य बन्द न कर देना चाहिए। इस्पात के स्थान पर मजबूत लकड़ी के जहाज बनाये जा सकते हैं। विशेषज्ञों का कथन है कि ऐसी लकड़ी के जहाज इस्पात के बने जहाजों की अपेक्षा ढाई गुना अधिक समय तक चलते हैं। इसके अतिरिक्त लकड़ी के जहाजों में खर्चा भी अपेक्षाकृत कम बैठेगा। अस्तु इस बात की आवश्यकता है कि कलकत्ता, बम्बई, विजगापट्टम आदि स्थानों में अधिक से अधिक जहाजों और नावों का निर्माण हो तथा पुराने जलयानों की मरम्मत का ठीक प्रबन्ध हो।

भारत की विभिन्न आर्थिक और व्यापारिक योजनाओं को सफल बनाने के लिए अनुभवी इंनजीनियरों, पोत-संचालकों (कप्तानों) और अन्य विशेषज्ञों की बड़ी संख्या में आवश्यकता है। यहां के लोगों को जहाज निर्माण तथा संचालन के नवीन वैज्ञानिक ढंग से भली भांति परिचित होना जरूरी है। विदेशों में इस संबंध में किए गए नवीनतम अन्वेषणों सम्यक् जानकारी प्राप्त करने के लिए सरकारी की ओर से तथा व्यापारिक संगठनों की ओर से प्रतिवर्ष अधिक से अधिक व्यक्ति विदेशों को भेजे जांय। अन्य उपयुक्त स्थानों—मद्रास, बम्बई, अहमदाबाद, नागपुर, कानपुर, विजगापट्टम तथा अमृतसर आदि स्थानों में जहाजों से विभिन्न वर्ग के कार्यकर्ताओं की शिक्षा के लिए शिक्षणालय खोले जा सकते हैं। भारत सरकार द्वारा कलकत्ते के समीप दो स्कूल और एक कालेज इसी उद्देश्य से खोले जा रहे हैं।

भारत में समुद्री जहाज बनाने का धंधा (Ship Building Industry)

द्वितीय महायुद्ध के पहले तक कलकत्ता और विजगापट्टम में केवल नावें ही बनाई जाती थीं अथवा जहाजों की मरम्मत होती थी किन्तु सन् १६४१ में सिंधिया कम्पनी ने विशखापट्टनम में समुद्री जहाज बनाने का उद्योग आरंभ किया जिसमें अब तक कई प्रसिद्ध जलयान बनकर अवतरण कर चुके हैं। यहां जहाज बनाने के उद्योग को निम्न सुविधायें प्राप्त हैं:—

(१) यह बन्दरगाह पूर्वी तट पर कलकत्ता और मद्रास के केंद्रवर्ती भाग में स्थित है अतः दोनों ओर से आने जाने की सुविधा है।

(२) इसका बन्दरगाह गहरा है अतः बड़े २ जहाजों के ठहरने की सुविधा है।

(३) बंगाल और बिहार के लोहे तथा कोयले के क्षेत्र बहुत ही निकट हैं। विजगापट्टम बी. एन. रेलवे द्वारा ताता नगर से जुड़ा है, अतः ईस्पात मिलने की सुविधा है।

(४) जहाज बनाने के उपयुक्त मजबूत लकड़ी बिहार, उड़ीसा और छोटा नागपुर के जंगलों से प्राप्त हो जाती है।

(५) कुशल और दक्ष मजदूर बंगाल और मद्रास से आ जाते हैं।

समुद्री जहाज बनाने के व्यवसाय का भविष्य बड़ा उज्वल है क्योंकि जिन कच्चे मालों की आवश्यकता पड़ती है वे भारत में ही मिल जाते हैं।

अध्याय २४

प्रमुख बन्दरगाह

IMPORTANT PORTS

बन्दरगाहों की उन्नति के साधन:

समुद्रतट पर स्थित जिन नगरों द्वारा किसी देश का व्यापार विदेशों से होता है वे बन्दरगाह कहलाते हैं। कोई भी बन्दरगाह समुद्र से भूमि में जाने का प्रवेश द्वार होता है। वास्तव में जलमार्ग पर बन्दरगाह एक ऐसा स्थान होता है जहां व्यापारिक माल उतारने और लादने के लिए जहाज ठहर सकते हैं। समुद्री बन्दरगाह भूमि और समुद्र दोनों के व्यापार के नाभिबिन्दु (nodal points) कहे जा सकते हैं किसी देश में बन्दरगाह की उत्पत्ति के लिये कई बातें जरूरी हैं जैसे (१) जिस स्थान पर बन्दरगाह बनाये जावें वहां की जमीन कड़ी होनी चाहिये क्योंकि बालू की जगह में बन्दरगाह बनाने और बाद में मरम्मत करने में बहुत खर्च हो जाता है। (२) समुद्र तट के निकट पानी काफी गहरा होना चाहिये जिससे ज्वार भाटा के कारण बड़े बड़े जहाज तट के निकट आकर ठहर सकें। (३) बन्दरगाहों पर ठहरने वाले जहाजों का तूफान अथवा आंधी से भी बचाव होना चाहिये अन्यथा वर्षा में जब समुद्र में आंधी आती है तो जहाजों के टूट जाने का डर रहता है। (४) बन्दरगाह के आस पास के समुद्र में नदियों द्वारा बहाकर लाई गई रेत और मिट्टी जमा न होनी चाहिये अगर ऐसा हुआ तो समुद्र का तल ऊंचा होता रहेगा और तब या तो जहाजों को समुद्र में दूर ठहरना पड़ेगा अथवा लगातार उस मिट्टी को यन्त्रों द्वारा निकालने का प्रयत्न करना पड़ेगा इसमें अधिक व्यय होगा। (५) बन्दरगाह का सम्बन्ध देश के भीतरी भागों (पृष्ठ देश) से रेल मार्गों, सड़कों अथवा नव्य योग्य नदियों से होना आवश्यक है तभी विदेशों का आयात माल देश के कोने कोने में भेजा जा सकेगा और देश की तैयार वस्तु अथवा कच्चा माल विदेशों को भेजा जा सकेगा। यह तभी संभव हो सकता है जब किसी बन्दरगाह का पृष्ठ-देश उपजाऊ, घना आबाद और आवागमन के मार्गों से पूर्ण हो।

भारत के तट पर बन्दरगाहों की कमी है:—

भारत की तट रेखा २००० मील लम्बी है किन्तु यह कम कटी-फटी तथा

सपाट है। इसके अतिरिक्त किनारे के निकट पानी बहुत छिछला है और किनारे अधिकतर चपटे और बालूमय है। नदियों के मुहाने पर ज्यादातर बालू इकट्ठी होती रहती है इसलिए बन्दरगाह तक जहाज नहीं पहुँच सकते। पश्चिमी समुद्र तट पर तो बम्बई और गोआ बन्दरगाहों को छोड़कर कोई अच्छा बन्दरगाह नहीं है। प्राय: सभी बन्दरगाह(इन दोनों को छोड़कर)मानसून के दिनों में व्यापारके लिये बंद रहते हैं इसके कई कारण हैं:-(१) नदियों द्वारा लाई गई बालू और मिट्टी के कारण ताप्ती और नर्बदा का मुहाना बहुत ही कम गहरा है। (२) इसके अतिरिक्त मई से अगस्त तक पश्चिमी तट पर मानसून हवाओं का प्रकोप अधिक रहता है, जहाजों की रक्षा के लिये कोई सुरक्षित स्थान नहीं है। (३) समस्त पश्चिमी भाग थोड़ी बहुत कटानों के अतिरिक्त—प्राय: सपाट और पथरीला है।

भारत के पूर्वी तट पर यद्यपि नदियों के डेल्टा अधिक हैं किन्तु इन नदियों द्वारा लाई मिट्टी से समुद्री तट अधिक पटता रहता है। कलकत्ता के बन्दरगाह पर भी यही कठिनाई रहती है। कभी-कभी तो घण्टों तक जहाजों को ज्वार भाटे की बाट जोहनी पड़ती है। इस भाग में कलकत्ता का बन्दरगाह ही प्राकृतिक है। मद्रास और विजगापट्टम तो कृत्रिम हैं। कलकत्ता के बन्दरगाह की मिट्टी झामों (dredgers) द्वारा निकाली जाती है।

भारत का चौथाई व्यापार इन बन्दरगाहों द्वारा ही होता है क्योंकि उत्तर की ओर के सीमान्त देश या तो पहाड़ी और अनउपजाऊ हैं या बहुत ही कम बसे हुये भाग हैं। भारत के मुख्य मुख्य बन्दरगाह कलकत्ता, विजगापट्टम, कंडला, मद्रास, ओखा, तूतीकोरिन, कोचीन, कालीकट, मंगलौर, मारसुगोआ, बम्बई, सूरत, तथा काठियावाड़ के अन्य बन्दरगाह हैं।

कलकत्ता का बन्दरगाह हुगली नदी के बायें किनारे पर है। नदी के किनारे से यह ८० मील उत्तर की ओर है। अत: यहाँ तक जहाज ज्वार भाटे के साथ ही आ सकते हैं। ज्वारके साथ ही जहाजों को आना और भाटेके साथ पुन:लौटना पड़ता है। हुगली नदी में मिट्टी का जमाव अधिक होने के कारण जहाजों को बड़ी कठिनाई पड़ती है अत: लगातार ड्रेजरों द्वारा मिट्टी को निकाला जाता है। कलकत्ता भारत का ही नहीं सम्पूर्ण एशिया का प्रमुख बन्दरगाह है। यह सिन्धु-गंगा की घाटी का मुख्य सामुद्रिक द्वार है। इसका पृष्ठ-देश बहुत धनी है। इसके-पृष्ठ देश में आसाम, बिहार, पश्चिमी बंगाल, उत्तर-प्रदेश, पूर्वी मध्य भारत, उड़ीसा, पूर्वी पंजाब और मध्य प्रदेश सम्मिलित हैं। यह बन्दरगाह अपने घने आबाद और उपजाऊ पृष्ठ-देश से रेल-मार्गों (ई० आई० आर०, बी० एन० आर०, तथा ई० बी० आर०), नदियों और नहरों द्वारा जुड़ा है। अत: गंगा की घाटी की पैदावार

गेहूं, चावल, गन्ना, कोयला, चाय आदि सहज ही में कलकत्ता लाई जा सकती है और विदेशों से प्राप्त माल को भिन्न-भिन्न भागों में पहुंचाया जा सकता।

कलकत्ता के बन्दरगाह में जहाजों के खड़े होने के लिए पांच सूखे हुए डाक्स (Dry Docks) हैं। आरंभ में यह बन्दरगाह कोशीपुर से गार्डन रीश तक ६ मील की लम्बाई में फैला हुआ था किन्तु अब इसे बढ़ाकर १६ मील कलकत्ता से नीचे की ओर बजबज तक और उत्तर में ६ मील की दूरी पर कोनगढ़ तक कर दिया गया है।

कलकत्ता भारत का व्यवसायिक केन्द्र भी है। यहां जूट, कागज़, दियासलाई रेशम, चीनी और लोहे के कारखाने हैं। यहां कारखानों की अधिकता होने का मुख्य कारण पृष्ठ देश में घनी आबादी, सस्ते मज़दूर, पर्याप्त पानी और कच्चा माल तथा रानीगंज और झरिया के कोयले की खानों का निकट होना है। कलकत्ते से विदेशों को जाने वाली मुख्य वस्तुयें जूट और जूट का तैयार माल, रस्से, चाय, शक्कर, लोहे का सामान, तिलहन, चमड़ा, अभ्रक, मैंगनीज, चावल और कोयला हैं। बाहर से आने वाले मुख्य आयात रूई का तैयार माल, ऊनी, सूती, रेशमी वस्त्र मशीनें शक्कर, मोटरें, कांच का सामान, कागज, पैट्रोल तथा रासायनिक पदार्थ है। कलकत्ता में अधिकतर भारी पदार्थों का व्यापार होता है जो इतने मूल्यवान नहीं होते जितने कि बम्बई बन्दरगाह के होते हैं। यहां मुसाफिरी जहाज बहुत कम आते हैं।

बम्बई :—भारत का ही नहीं दुनिया के प्रमुख बन्दरगाहों में से है। इस का बन्दरगाह बड़ा सुरक्षित है अतः यहां मानसून के तूफानी दिनों में भी जहाज़ बड़ी आसानी से ठहर सकते हैं। समुद्र के निकट जहाज़ों के ठहरने के लिए एक १४ मील लम्बी और ६ मील चौड़ी तथा २३ फीट गहरी एक खाड़ी-सी बन गई है इसी में ज़हाज़ आकर ठहरते हैं। यह बन्दरगाह यूरोप तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के अधिक निकट पड़ता है अतः कलकत्ता या मद्रास की अपेक्षा यहां व्यापार अधिक होता है।

यद्यपि पश्चिमी तट को पश्चिमी घाट देश के भीतरी भागों से अलग करता है किन्तु बम्बई ठीक पीछे थाल घाट और भोर घाट दर्रे हैं जो बंबई को उत्तरी भारत और गुजरात या दक्षिणी भारत से बी० बी० एण्ड सी० आई०, जी० आई० पी० तथा मद्रास, साउथ मरहठा रेलों द्वारा जोड़ते हैं। इसका पृष्ठदेश दक्षिण में मद्रास प्रान्त के पश्चिमी भाग से लेकर उत्तर में काश्मीर, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, राजस्थान मध्य भारत और गुजरात तक फैला है। यह पृष्ठ देश खेती की पैदावार के लिए बड़ा उपजाऊ है।

इस बन्दरगाह से रूई, अलसी, मूंगफली, चमड़ा, तिलहन, लकड़ी, सूती कपड़े, खालें, मैंगनीज, अभ्रक आदि वस्तुयें बाहर भेजी जाती हैं और बाहर से सूती, ऊनी तथा रेशमी वस्त्र, मशीनें, नमक, कोयला, कागज़, फल, रसायनिक पदार्थ, मिट्टी का तेल और लोहे का सामान मंगवाया जाता है। सन् १९४७–४८ में इस बन्दरगाह द्वारा ३६ लाख टन आयात और १४ लाख टन निर्यात हुआ। यहां मक्का, मदीना तथा यूरोप को जाने वाले मुसाफिर जहाज अधिक आते हैं। पिछले कुछ वर्षों से कठियावाड़ के बन्दरगाहों ने बम्बई से प्रतिद्वंदिता करनी आरंभ कर दी है।

मद्रास :—भारत का तीसरा बड़ा बन्दरगाह है। यह कृत्रिम बन्दरगाह है। यहां तट से लगभग २ मील दूर समुद्र में दो कंक्रीट की दीवारें बना कर १०० एकड़ समुद्र को घेरा गया है जहां वर्षा और तूफानों के समय जहाज़ आकर आसानी से ठहर सकते हैं। इसका पृष्ठ देश ट्रावनकोर, मैसूर और हैदराबाद तथा मद्रास प्रान्त है किन्तु यह न तो अधिक आबाद ही है और न अधिक उपजाऊ ही। यहां के मुख्य निर्यात मूंगफली. चमड़ा, तिलहन, खालें, तम्बाकू, रुई, मैंगनीज़, नारियल, मसाले लकड़ी तथा सूती वस्त्र है। मुख्य आयात मशीनें, लोहे का सामान, कागज़, मिट्टी का तेल, शक्कर, चावल तथा रसायनिक पदार्थ हैं।

कंडला का नया आधुनिक बन्दरगाह काठियावाड़ के समुद्र तट पर बनाया जा रहा है। करांची के पाकिस्तान में चले जाने के कारण भारत सरकार ने इस कमी को पूरा करने के लिए इस बन्दरगाह का उन्नत करना शुरू कर दिया है। यह रेल द्वारा गुजरात, राजस्थान आदि प्रान्तों से मिला है। ऐसा प्रयत्न किया जा रहा है कि यहां बड़े से बड़े जहाज भी सुरक्षित ठहर सकें। यह बन्दरगाह कच्छ की खाड़ी के पूर्वी भाग पर स्थित है। निकट समुद्र की गहराई भी ३० फुट है। इसका पृष्ठ देश मछली पकड़ने, नमक बनाने, ग्लास, सीमेंट तथा सेलखड़ी में अधिक धनी है।

काठियावाड़ के बन्दरगाह (Kathiawar Ports)

पिछले दिनों से काठियावाड़ के बन्दरगाह महत्वपूर्ण हो गये हैं। काठियावाड़ की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि वह राजस्थान और समीपवर्ती प्रदेशों के व्यापार को अच्छी तरह से कर सकते हैं। काठियावाड़ के बन्दरगाहों को यह लाभ है कि बन्दरगाह का खर्च और फीस इत्यादि बहुत कम है। मजदूरी भी यहां सस्ती है। काठियावाड़ और राजस्थान में व्यापार बिना माल को बीच में उतारे चढ़ाये किया जा सकता है क्योंकि वहां रेलवे लाइनों की चौड़ाई एक सी है किन्तु बम्बई के साथ ऐसा नहीं है। इन्हीं कारणों से काठियावाड़ के बन्दरगाह पिछले दिनों में अधिक महत्वपूर्ण बन गये हैं और वे बम्बई से प्रतिस्पर्धा करते हैं। काठियावाड़ के मुख्य बन्दरगाह ये हैं :—

भावनगर—यह खम्भात की खाड़ी के ऊपर पश्चिम की ओर स्थित है। बन्दरगाह में माल को सुरक्षित रखने के लिए सभी सुविधायें हैं और बन्दरगाह रेलवे लाइन द्वारा भिन्न २ बन्दरगाहों से सम्बन्धित है। जहाज बन्दरगाह से लगभग आठ मील दूरी पर ठहरते हैं और माल नावों द्वारा बन्दरगाह पर लाया जाता है। बन्दरगाह में रेत जमने के कारण १९३७ में नया गहरा बन्दरगाह बनवाया गया है जिसमें दो जहाज एक साथ रह सकते हैं। भावनगर का व्यापार तेजी से बढ़ रहा है।

वेदी बन्दर—नवानगर राज्य का बन्दरगाह है। काठियावाड़ में सबसे पहले इसी बन्दरगाह ने उन्नति की। यह कच्छ की खाड़ी में स्थित है। इस बन्दरगाह का समुद्रतट जहाजों के लिए बहुत उपयुक्त है और वर्ष के सब मौसमों में यह खुला रहता है।

ओखा—बम्बई राज्य का यह मुख्य बन्दरगाह है। यह काठियावाड़ प्रायद्वीप की उत्तर-पश्चिम की सीमा पर स्थित है। इस कारण जितने भी जहाज समुद्र तट पर चलते हैं उनकी पहुंच के अन्दर है। इस बन्दरगाह में केवल एक दोष है। इसका मार्ग टेढ़ा मेढ़ा और चक्करदार है और उसमें खतरा है। साथ ही यह जनसंख्या बाहुल्य प्रदेशों से बहुत दूर है। यहां से तिलहन, नमक, सीमेंट बाहर भेजी जाती है तथा बाहर से कोयला, पेट्रोल व मशीनें आती हैं।

नवलखी—मौरवी राज्य का यह प्रसिद्ध बन्दरगाह है और कच्छ की छोटी खाड़ी में स्थित है। बड़े जहाज बन्दरगाह से एक मील पर ठहरते हैं। फिर भी यह बन्दरगाह वर्ष भर खुला रहता है।

पोरबन्दर—यह एक महत्वपूर्ण बन्दरगाह है और पूर्वी अफ्रीका से इसका अधिक व्यापार होता है किन्तु वर्षा के दिनों में बन्दरगाह बन्द रहता है क्योंकि यह बिल्कुल खुला है। यहां से नमक व सीमेंट का निर्यात और कोयला, खजूर तथा मशीनों का आयात होता है।

दक्षिण भारत के बन्दरगाह (South Indian Ports)

मारमुगाओ—यह कोनकन तट पर स्थित है। यह पुर्तगीज भारत में है। इसका व्यापार क्षेत्र बम्बई, हैदराबाद और मैसूर तक फैला हुआ है। यहां से मैंगनीज, मूंगफली, कपास और नारियल विदेशों को भेजी जाती है।

कालीकट—यह कोचीन से ६० मील उत्तर में है। मानसून के आरम्भ में यह बन्द रहता है। यहां समुद्र छिछला है इस कारण जहाजों को बन्दरगाह से तीन मील दूर समुद्र में खड़ा होना पड़ता है। यहां से नारियल की रस्सी, कोपरा, कहवा, चाय, सोंठ, मूंगफली तथा मछली की खाद बाहर भेजी जाती है।

कोचीन—कोचीन दक्षिण में एक बहुत महत्वपूर्ण बन्दरगाह है। बम्बई और कोलम्बो के बीच में यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यहां से नारियल के रेशों के

रस्से, उसकी चटाइयां, कोपरा, नारियल का तेल, चाय और रबर विदेशों को भेजी जाती है।

तूतीकोरन—यह मद्रास का एक महत्वपूर्ण बन्दरगाह है और दक्षिण प्रायद्वीप के दक्षिण में अन्तिम सीमा पर स्थित है। किन्तु बन्दरगाह छिछला है इस कारण उसको बराबर खोदते रहने की आवश्यकता पड़ती है। कपास, चाय, सैना की पत्तियां और प्याज मुख्यत: यहां से बिदेशों को जाता है। इस बन्दरगाह का लंका से बहुत व्यापार होता है।

विजगापट्टम :—यह कारोमंडल तट पर स्थित और कलकत्ता तथा मद्रास के बीच में है। कलकत्ते से यह ५०० मील दक्षिण में है और मद्रास से यह ३२५ मील उत्तर में है। इस बन्दरगाह के लिए लगभग ६ वर्गमील के दलदल को साफ करके और ज्वार भाटा से बनी हुई खाड़ी को चौड़ा करके एक गहरे पानी वाले स्थान की व्यवस्था की गई जहां जहाज़ ठहर सकें। इसका पृष्ठ देश मध्य प्रदेश व मद्रास है। यहां से मैंगनीज, मूंगफली, हर्र, बहेड़ा, और खालें अधिकतर विदेशों को भेजी जाती हैं। बाहर से आने वाले पदार्थों में शक्कर, कपास, सूती वस्त्र, लोहा, लकड़ी और मशीनें मुख्य हैं। विज़गापट्टम बन्दरगाह पर सभी समुद्री जहाज़ तथा तटीय व्यापार में लगे हुये स्टीमर रुकते हैं।

विज़गापट्टम उड़ीसा तथा मध्य प्रांत के पूर्वीय भागके व्यापार के लिये, कलकत्ते से प्रतिस्पर्धा करता है। कलकत्ता की अपेक्षा विज़गापट्टम इन प्रदेशों के अधिक पास है और बन्दरगाह की फीस इत्यादि भी कम है। विज़गापट्टम बन्दरगाह के बन जाने से कलकत्ता के महत्व में कुछ कमी हो गई है। बी० एन० आर की एक लाइन बन्दरगाहको मध्य प्रदेश के रायपुर से जोड़ती है इस कारण बन्दरगाह मध्य-प्रदेश की मण्डियों के समीप पड़ता है।

अध्याय २५

हवाई यातायात

AIR TRANSPORT

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व तक

भारत में सर्व प्रथम हवाई उड़ान १६११ में आरंभ हुई। इस समय कुछ स्थानों में केवल प्रदर्शन की दृष्टि से हवाई उड़ान की व्यवस्था की गई थी। प्रथम महायुद्ध के पश्चात से हवाई यातायात का हमारे देश में वास्तविक विकास आरंभ हुआ। इस समय भारत सरकार ने कुछ जहाज उतरने के स्थानों (Landing Ground) की व्यवस्था की। प्रथम युद्ध काल में भारत सरकार को यह बात पूरी तरह अनुभव हो गई कि पूर्वी देशों और यूरोप को मिलाने के लिए भारत एक कड़ी का काम करता है अस्तु भारत में हवाई यातायात के विकास की अत्यन्त आवश्यकता है। सन् १६१६ में महायुद्ध की समाप्ति पर विश्व के ३० प्रमुख देशों और भारत ने मिलकर पेरिस नगर में हवाई यातायात को व्यवस्थित रखने के लिए बनाये गए अन्तर्राष्ट्रीय समझौते पर हस्ताक्षर किए। इस समझौते को स्वीकार करने का अर्थ यह था कि सभी समझौता करने वाले देश आपस में एक दूसरे देशों के हवाई जहाजों को अपने देश में से गुजरने में सहयोग देंगे और जहां तक संभव होगा हवाई यातायात, वायुयान संचालकों तथा वायुमार्गों को नियंत्रित करने वाले नियम सभी देशों में लगभग एक से ही होंगे। किन्तु इस समझौते पर हस्ताक्षर कर लेने के बाद भी भारत सरकार ने हवाई यातायात के विकास में कोई महत्वपूर्ण कदम नहीं उठाया। केवल कुछ उड्डयन-क्लब (Flying Clubs) अवश्य खोल दिए जहां विदेशी वायुयान आकर ठहर सकें।

सन् १६२६ में एक हवाई यातायात परिषद (Air Board) स्थापित किया गया। इस बोर्ड ने तत्कालीन स्थिति की जांच कर भविष्य में यातायात को बढ़ाने के लिए सरकार की क्या नीति होनी चाहिए इस पर अपने सुझाव पेश किए। इस बोर्ड ने आरंभ से ही इस बात पर जोर दिया कि हवाई यातायात की दृष्टि से भारत की स्थिति बड़ी महत्वपूर्ण है। वायुमंडल संबंधी अवस्थाएं भी यहां अनुकूल ही हैं और वर्ष के अधिकांश भागों में (केवल वर्षा ऋतु को छोड़कर) वायुमंडल स्वच्छ रहता है।

इसके अतिरिक्त भारत के विभिन्न प्रान्तों में स्थित व्यापारिक और औद्योगिक केंद्र एक दूसरे से बहुत दूर पड़ जाते हैं अस्तु उनको जोड़ने के लिए हवाई यातायात का विकास करना नितान्त आवश्यक है। इस संबंध में इस बोर्ड ने निम्न सुझाव भारत सरकार के सम्मुख रखे :—

(१) भारत में स्थिति सभी हवाई जहाजों के ठहरने के स्थान तथा आवश्यक सामान सरकारी सम्पत्ति होनी चाहिए और बेतार तथा वायुमंडल संबंधी सूचनाएं देने की सुविधा होना भी इसी का कार्य होना चाहिए।

(२) भविष्य में किये जाने वाले हवाई यातायात संबन्धी सभी विदेशी समझौते अथवा प्रसंविदा करते समय भारत सरकार की सम्मति जानना आवश्यक होगा और इस समझौते में भारत सरकार एक मध्यस्थ की बतौर भाग लेगी।

(३) जहां तक आन्तरिक वायु मार्गों के विकास का संबन्ध है, भारत सरकार नई कंपनियों को प्रारम्भिक काल में कुछ आर्थिक सहायता देगी।

(४) भारत में एक *नागरिक उड्डयन विभाग* (Civil Aviation Deptt.) होना आवश्यक है।

भारत सरकार ने इन सुझावों को पूर्ण रूप से स्वीकार कर लिया और फलस्वरूप एक नागरिक उड्डयन विभाग की स्थापना १९२७ में की गई। शीघ्र ही देश में एयरोड्रोम्स और उड्डयन क्लबों की स्थापना भी की गई। जिनमें हवाई जहाज चलाना सिखाया जाने लगा। दिल्ली, करांजी, बम्बई, मद्रास, कलकत्ता, लखनऊ, लाहौर और पटना में उड्डयन क्लब खोले गए। सन् १९२९ में भारत और लन्दनके बीच नियमित रूपसे साप्ताहिक हवाई यातायात आरंभ हुआ। इस मार्ग का संचालन एक अंग्रेज़ी कंपनी *इम्पीरियल एयरवेज* (Impetial Airways) के हाथ में था। इस मार्ग को सन् १९३० तक दिल्ली तक बढ़ा दिया गया। इसके द्वारा भारत सरकार ने दिल्ली और करांची के बीच डाक भेजने का समझौता भी किया किन्तु १९३१ में यह समझौता भंग कर दिया गया और अब भारत सरकार एक सरकारी हवाई सर्विस चालू करने पर विचार करने लगी किन्तु अर्थाभाव से यह विचार कार्यान्वित न किया जा सका। सन् १९३२ में भारत में *टाटा एयर लाइन्स* (Tata Air Lines) के वायुयान, इलाहाबाद, कलकत्ता और कोलंबो के बीच चलने लगे। इसी समय भारतीय रियासतों और सरकार के बीच एक समझौता यह भी हुआ कि वे अपने राज्यों में होकर भारतीय वायुयानों को निकलने देंगे। सन् १९३३में भारत सरकार और *ब्रिटिश एयरवेज* लि० (Britesh AirwaysLtd.) नामक अंग्रेजी कंपनी के साथ समझौता करके कराची सिंगापुर तक डाक ले जाये जाने का कार्य एक अर्द्ध, भारतीय कंपनी *इंडियन ट्रांसकॉन्टीनेन्टल एयरवेज* (Indian Trans Continental Airways) को सौंपा। इस अंग्रेजी

कंपनी का २५% हिस्सा भारतीय कंपनी, *इन्डियन नेशनल एयरवेज* (Indian National Airways) २५% भारत सरकार और शेष अंग्रेजी कंपनी का था। यह कंपनी अपने वायुयान करांची से सिंगापुर, साप्ताहिक रूप में और कलकत्ता से ढाका; करांची से लाहौर सप्ताह में दो बार चलाने लगी।

जैसा कि ऊपर कहा गया है इसी समय ताता-बन्धुओं ने टाटा एयर सर्विस नामक विशुद्ध भारतीय कम्पनी स्थापित करके करांची से अहमदाबाद, बम्बई और बिलारी होते हुए मद्रास तक आकाश मार्ग से डाक और यात्री ले जाने का काम आरंभ किया। इस कम्पनी ने धीरे २ बड़ी प्रगति की और उनके द्वारा देश के प्रसिद्ध २ नगरों का संबंध स्थापित हो गया। टाटा कम्पनी के स्थापित हो जाने के साथ ही साथ एक अन्य भारतीय कम्पनी इंडियन नेशनल एयरवेज भी सन् १९३३ में दिल्ली में स्थापित की गई। इसने अर्द्ध-भारतीय कम्पनी में अपना हिस्सा भी रखा। सन् १९३६ में *एयर सर्विस आफ इन्डिया* (Air Service of India) जो बम्बई और काठियावाड़ के बीच में चलने लगी— की स्थापना की गई। इस कंपनी की प्रगति बड़ी जल्दी हुई यहां तक कि सम्पूर्ण हवाई व्यापार का ७०% इसी कम्पनी द्वारा किया जा रहा था किन्तु आर्थिक हानि होने से १९४० में इसे बन्द हो जाना पड़ा। सन् १९३८ में समस्त ब्रिटिश साम्राज्य को जोड़ने और डाक ले जाने वाली हवाई योजना (All-up Empire Mail Service) की स्थापना की गई जिसके अन्तर्गत विभिन्न देशों की डाक विदेशों को ले जाई जाने लगी। भारत में भी इस योजना का सहयोग देने के लिए *टाटा एयर लाइन्स* (जो करांची से बम्बई तक डाक ले जाती थी) और *इंडियन नेशनल एयरवेज* (जो करांची और लाहौर के बीच डाक ले जाती थी) का संबंध उपरोक्त कम्पनी से किया गया। इन दोनों कम्पनियों को डाक ले जाने में प्रति वर्ष ४½ लाख और ३½ लाख रुपये तक मिलते थे।

इस प्रकार प्रथम महायुद्ध के पूर्व भारत में निम्न कम्पनियों के हवाई जहाज चलते थे :—

(१) इंडियन ट्रांस-कान्टनैन्टल एयरवेज लि०

१. करांची से कलकत्ता तक	सप्ताह में दो बार

(२) टाटा ऐयर लाइन्स

१. करांची—बम्बई—मद्रास होकर कोलंबो को—	सप्ताह में ५ बार
२. बम्बई—कनानोर—ट्रिवेनड्रम तथा त्रिचनापली को—	सप्ताह में १ बार

३. बंबई–इन्दौर–भूपाल–ग्वालियर–दिल्ली सप्ताह में २ बार

(३) इंडियन नेशनल ऐयरवेज लि०

१. कराची से लाहौर को सप्ताह में ५ बार

२. लाहौर से दिल्ली ,, ३ ,,

३. दिल्ली से लाहौर, बीकानेर और जोधपुर होता हुआ अहमदाबाद को ,, २ ,,

(४) एयर सर्विसेज आफ इंडिया लि०

१. बंबई–भावनगर–राजकोट जामनगर और पोरबन्दर तक केवल मौसम में

२. बंबई–पूना–कोल्हापुर ,,

सन् १९४० में उपरोक्त चौथी कंपनी आर्थिक कठिनाइयों के कारण बन्द कर दी गई। अन्य तीन कंपनियां भी युद्ध काल तक के लिए बन्द ही रही। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व विभिन्न देशों में हवाई मार्गों की लंबाई इस प्रकार थी—

संयुक्त राज्य अमेरिका	७०,७१८ मील
रूस	६५,८६५ ,,
फ्रांस	४०,८३३ ,,
जर्मनी	२४,९७४ ,,
इंग्लैंड	२४,३९५ ,,
आस्ट्रेलिया	२१,७४८ ,,
कनाडा	११,९१७ ,,
भारत	६,७०० ,,

इन आंकड़ों से ज्ञात होता है कि भारत में वायुमार्गों की लम्बाई बहुत ही थोड़ी थी। वास्तव में यह फ्रांस देश के वायुमार्गों की केवल १/६, जर्मन की १/५, ग्रेट ब्रिटेन की १/४ और संयुक्त राज्य अमेरिका की १/११ थी। इस समय भारत में केवल १५६ वायुयान थे जिनमें से ६५ व्यक्तिगत उड़ान के लिये, ४३ उड्डयन क्लबों में शिक्षा देने, ३४ नियमित रूप से व्यापारिक उड़ान के लिये और १४ मिश्रित उड़ानों के लिये प्रयुक्त किये जाते थे। नीचे की तालिका में भारत में हवाई यातायात की प्रगति का लेखा बताया गया है :—

भीतरी वायु यातायात की प्रगति

वर्ष	मार्गों की लम्बाई (मीलों में)	कुल उड़ान (मीलों में)	यात्रियों की संख्या	डाक ले जायी गई (टनों में)
१९३३	५,१८०	१५३	१५५	१०·५

१६३४	—	३४५	७५३	२१·३
१६३५	६,३६५	५५४	५५३	४३·४
१६३६	—	४६६	१,१७८	४६·४
१६३७	७,५००	६२२	२,१०४	६१·२
१६३८	६,७००	१,४१२	२,१०४	२४४·६

देशी हवाई सर्विसों के अतिरिक्त भारत में इस काल में कुछ विदेशी सर्विसें भी चालू थी जिनमें से मुख्य ये हैं ;—

(१) ब्रिटिश ओवरसीज ऐयर कारपोरेशन

१. लंदन—काहिरा—करांची—जोधपुर
कानपुर—इलाहाबाद—कलकत्ता—(स्थल मार्ग) सप्ताह में २ बार

२. लंदन—करांची—उदयपुर—ग्वालियर—इलाहाबाद
कलकत्ता—रंगून—आस्ट्रेलिया (स्थल और जल मार्ग दोनों) सप्ताह में ३ बार

(२) डच ऐयर लान्इस

१. नीदरलैंडस—करांची—जोधपुर—इलाहाबाद
कलकत्ता—रंगून—बटेविया मार्ग सप्ताह में २ बार

(३) ऐयर फ्रांस

१. पेरिस—करांची—जोधपुर—इलाहाबाद
कलकत्ता—रंगून—सैगान मार्ग सप्ताह में २ बार

(४) जर्मन ऐयर सर्विस

बर्लिन—करांची—कलकत्ता—रंगून—टोकियो सप्ताह में १ बार

द्वितीय महायुद्ध और उसके पश्चात

द्वितीय महायुद्ध के आरम्भ होने के साथ ही साथ विदेशी आकाश-मार्ग एक दम कम कर दिये गये। जहां पहले इंग्लैंड—भारत—आस्ट्रेलिया सर्विस सप्ताह में ५ बार चलती थी वह घटाकर केवल २ ही बार कर दी गई। संपूर्ण ब्रिटिश साम्राज्य की हवाई योजना भी समाप्त कर दी गई और डाक आदि ले जाने के किराये में भी वृद्धि कर दी गई। देशी सर्विसों द्वारा नागरिकों के लिये उपयोग भी कम किया गया। इंडिया नेशनल ऐयरवेज की सर्विस जो करांची से लाहौर तक चलती थी, सप्ताह में दो बार और टाटा लाइन्स जो बम्बई से कलकत्ता तक चालू थी, सप्ताह में चार बार ही कर दी गई। युद्धोत्तर काल में वायुयान का अधिकाधिक उपयोग देश के बचाव में किया जाने लगा। जब बर्मा और मलाया भी युद्ध क्षेत्र घोषित कर दिये गये तो करांची से लाहौर जाने वाली हवाई सर्विस बन्द कर दी गई और एक नया मार्ग

दिल्ली से कलकत्ता होता हुआ रंगून को खोला गया। जब बर्मा जापानियों के अधिकार में आ गया तो इसी मार्ग को रंगून से जोरहठ के मार्ग में बदल दिया गया। १९४३ के अन्त में देश में १७ नये मार्ग चालू किये गये जिनमें ७ ब्रिटिश ओवरसीज ऐयर कं०, टाटा कम्पनी, और इंडिया नेशनल एयरवेज कम्पनियों के अन्तर्गत, नौ शाही वायु सेना (Royal Air Force) और एक चाइनीज नेशनल ऐयरवेज कम्पनी के अन्तर्गत थे। इस प्रकार द्वितीय महायुद्ध ने हवाई यातायात की बड़ी वृद्धि की। इस काल में कई नई कम्पनियां खुलीं और कई पुरानी कम्पनियों ने अपने विस्तार को रूप रेखायें बनाई।

इस काल के पूर्व ही शाही वायु सेना की स्थापना हो चुकी थी। इस संस्था ने शीघ्र ही देश के सभी नागरिक उड्डयन क्लबों को अपने अधिकार में कर लिया। युद्ध के लिये कई भारतीय नवयुवकों को उड़ान और यान चलाने की शिक्षा दी गई। कई भारतीय वायुयान कम्पनियों को आर्थिक सहायता तथा उधार पट्टे (Land Lease Agreement) वायुयान भी सरकार द्वारा दिये गये।

१९४४ में भारत सरकार ने देश में नागरिक उड्डयन के विकास के लिए श्री मोहम्मद उस्मान के सभापतित्व में एक समिति स्थापित की जिसके सदस्य प्रांतीय सरकारों के प्रतिनिधि और गैर-सरकारी व्यक्ति भी थे। इस समिति को तीन कार्य सौंपे गए (क) युद्धोत्तर काल में नागरिक उड्डयन के विकास के लिए एक योजना बनाई जाय (ख) एयरोड्रोम तथा हवाई मार्गों का निर्माण और (ग) इनकी व्यवस्था करना। तत्कालीन वाइसराय ने यह घोषित किया कि हमारी योजना ऐसी होनी चाहिए जिससे देश की आर्थिक और सामाजिक उन्नति होकर हमारे रहन-सहन का दर्जा ऊंचा उठ सके। इस समिति ने हवाई यातायात के विकास का अध्ययन करके निम्न उपयोगी सुझाव भारत सरकार के सामने रखे :—

(१) हवाई यातायात की प्रगति और उसको सुचारू रूप से व्यवस्थित करने का कार्य निजी व्यापारिक संस्थाओं के जिम्मे ही छोड़ा जाय। किन्तु इस पर सरकार का नियंत्रण अवश्य रहे।

(२) नई हवाई कम्पनियां अथवा मार्गों को चालू करने के पहले, इनको लाइसेंस देने का कार्य, सरकार द्वारा स्थापित किया जाने वाला *हवाई यातायात लाइसेंस बोर्ड* (Air Transport Licensing Board) करे।

(३) देश के भीतर की सभी हवाई सर्विसे केवल ४ बड़ी २ कम्पनियों के अधिकार में ही हों।

(४) किन्हीं निश्चित अवस्थाओं में यदि सरकार चाहे तो कम्पनियों को प्रारंभिक काल में आर्थिक सहायता दे सकती है।

(५) देश में ज्यादा से ज्यादा देशी हवाई सर्विसें चालू की जांय।

(६) देश की आर्थिक दशा सुधारने तथा विदेशी देशों द्वारा प्राप्त अनुभव का लाभ उठाने के लिए भारतीय कम्पनियों का संबंध अधिक से अधिक अन्तर्राष्ट्रीय हवाई कम्पनियों से किया जाय।

इस कमेटी ने इस बात पर ज़ोर दिया कि देश में अविलम्ब एक हवाई यातायात आज्ञा पत्र देने के लिए सरकारी बोर्ड की स्थापना की जाय। कमेटी ने युद्धोत्तर काल की योजना पर १५.५ करोड़ रुपया खर्च किए जाने की राय दी जिसको सरकार ने स्वीकार कर लिया। इस योजना के अन्तर्गत देश में कुल मिलाकर ११५ एयरोड्रोम और ठहरने के स्थान बनवाने (जिनमें से २४ नए निर्माण किये जाने वाले थे) और हवाई मार्गों की लंबाई ११,२०० मील तक बढ़ाने तथा ७८ एयरोड्रामों पर रात्रि के समय वायुयान चलाने की सुविधा प्रदान करने का आयोजन था। इसके लिए नियमित रूप से निम्न १२ भीतरी हवाई सर्विसें इस प्रकार चालू की जाने का प्रस्ताव रखा गया:—

(१) करांची—बम्बई—मद्रास—कोलम्बो; (२) कलकत्ता—इलाहाबाद—कानपुर—दिल्ली—लाहौर—पेशावर—काबुल; (३) दिल्ली—नागपुर—हैदराबाद—मद्रास; (४) कलकत्ता—कटक—विजगापट्टम—मद्रास—कोलम्बो; (५) बम्बई—नागपुर—कलकत्ता; (६) करांची—जोधपुर—दिल्ली; (७) बम्बई— अहमदाबाद—दिल्ली; (८) कलकत्ता—अक्याब रंगून (९) करांची—क्वेटा—लाहौर; (१०) कलकत्ता—ढाका; (११) मद्रास—बंगलोर—कोचीन और (१२) लखनऊ—कानपुर—बम्बई।

अस्तु, १ जुलाई, १९४६ को भारत में वायुमार्गों का संचालन चार बड़ी २ कम्पनियों के अधिकार में था जिनके पास १९ बड़े और ६ छोटे वायुयान थे। इस समय भारत में निम्न सर्विसें चालू थीं :—

(१) इंडियन नेशनल एयरवेज लि०

१. दिल्ली—कलकत्ता	सप्ताह में प्रतिदिन
२. दिल्ली—करांची	" "
३. दिल्ली—पेशावर	सप्ताह में ३ बार
४. दिल्ली—लखनऊ	प्रतिदिन
५. दिल्ली—मद्रास	सप्ताह में २ बार
६. दिल्ली—लाहौर-अहमदाबाद	

(२) टाटा एयर लाइन्स

१. दिल्ली—बम्बई	प्रतिदिन
२. करांची—बम्बई	

३. बम्बई—कोलंबो — सप्ताह में ६ बार

४. बम्बई—कलकत्ता — ,, १ ,,

(३) एयर सर्विसेज आफ इंडिया लि०

१. बम्बई—भुज — सप्ताह में ७ बार

२. बम्बई—करांची — ,, ३ बार

३. बम्बई—लखनऊ — ,, १ ,,

(४) डैकन एयरवेज लि०

१. दिल्ली—मद्रास — सप्ताह में दो बार

१. हैदराबाद—बंगलौर — ,, ,,

देशी हवाई मार्गों के अतिरिक्त इस समय देश में कुछ विदेशी कम्पनियों के वायुयान भी चल रहे थे। बी. ओ. ए. सी. (B. O. A. C.) के वायुयान सप्ताह में पांच बार इंग्लैंड और भारत के बीच चलते थे। इसके अतिरिक्त हमारे यहां ७ उड्डयन क्लब भी थे— १. करांची एयरो क्लब; २. बम्बई फ्लाईंग क्लब; ३. मद्रास फ्लाईंग क्लब; ४. बिहार फ्लाईंग क्लब; ५. नार्थ इंडिया फ्लाईंग क्लब; ६. बंगाल फ्लाईंग क्लब तथा ७. दिल्ली फ्लाईंग क्लब।

नीचे की तालिका में भारत में हवाई यातायात की प्रगति बताई गई है—

वर्ष	उड़ान (घंटों में)	उड़ान (मीलों में)	यात्रियों की संख्या	डाक ले जाई गई (टनों में)
१९४५	२१,७८१	३,३२०,२७७	२४,०६०	४८०,६१६
१९४६	२९,५३९	४,५२०,०४६	१०५,२५१	१,०२६,४०३
१९४७	५९,३०१	६,३६१,६७३	२५४,९६०	१,४०५,०७३

अगस्त १९४७ में जब भारत दो भागों में बंट गया तो उस समय भी हवाई जहाजों ने यात्रियों और माल को पाकिस्तान से भारत लाने और भारत से पाकिस्तान ले जाने में काफी सहायता पहुंचाई। भारत सरकार ने पश्चिमी पंजाब से शरणार्थियों को भारत में लाने के लिए १० हवाई जहाज भाड़े पर नियुक्त किए जिन्होंने २९ अगस्त से १४ सितम्बर १९४७ के बीच में लगभग ८००० से १०००० शरणार्थियों को ढोया। १५ सितम्बर से तो भारत सरकार ने अपने स्वयं के वायुयान पंजाब के सरकारी कर्मचारियों तथा उनके परिवारों को भारत में लाने के लिए चालू किए किन्तु शरणार्थियों की संख्या बहुत अधिक होने से २० अक्टूबर से बी० ओ० ए० सी० कम्पनी के २५ वायुयान इस कार्य के लिए चलाये गए। इन वायुयानों द्वारा १५ सितम्बर और ३० नवम्बर १९४७ के बीच लगभग १,००,००० शरणार्थी भारतीय वायुयानों में लाए गए। इनकी कुल उड़ान ३,००,००० मील से भी अधिक

की थी। बी० ओ० ए० सी० के वायुयानों ने ८,००,००० मील लम्बी उड़ान की और वे ३५००० व्यक्तियों तथा १५ लाख पौंड सामान पाकिस्तान से भारत को लाए; नवम्बर के अन्त तक शरणार्थियों का लाना ले जाना सर्वथा रोक दिया गया, किन्तु १–२ वायुयान केन्द्रीय कन्ट्रोलिंग आथॉरिटी के पास छोड़ दिए गए जिससे यदि आवश्यकता हो तो शरणार्थियों को लाया जा सके। अन्तिम रूप से कार्य ७ जनवरी १९४८ को पूर्णतः समाप्त कर दिया गया। इसी प्रकार काश्मीर में हवाई जहाजों द्वारा भारतीय सेनाएं तथा माल और पूर्वी पाकिस्तान से शरणार्थियों को भारत में लाने तथा आसाम में बाढ़-ग्रस्त क्षेत्रों में सहायता पहुंचाने और दूसरे ऐसे अवसरों पर बहुत मदद मिली है।

विभाजन के पश्चात (१९४८–१९५१)

विभाजन के पश्चात देश में २३ वायुयान कम्पनियां थी जिनको अधिकृत पूंजी ४२·२ करोड़ रुपया थी। जहां विभाजन के पूर्व देश में १५०,०२० मील लम्बे वायुमार्ग थे वहां अब वे केवल १३,२९५ मील ही रह गए जिन पर ८ बड़ी बड़ी कंपनियों के हवाई जहाज २२ मार्गों पर चल रहे थे। इनके पास कुल मिलाकर ११६ हवाई जहाज, २२९ विमान चालक तथा १३० से ऊपर अन्य वायुयान कर्मचारी थे। प्रति दिन और साप्ताहिक चलने वाली सर्विसों की संख्या क्रमशः १६ और ४२ थी। १९४७ के उत्तरार्द्ध में कोई नई कम्पनी रजिस्टर नहीं की गई। १९४८ के पूर्वार्द्ध में भारत में ९ कम्पनियां ३८ सर्विसों पर अपने वायुयान २३ विभिन्न मार्गों पर—१३,६७५ मील—चला रही थी। इनके पास १९१ हवाई जहाज, २२९ विमान चालक तथा १४० अन्य कर्मचारीगण थे। इनमें से १६ सर्विस तो प्रतिदिन और शेष सप्ताह में १ से ६ बार तक चलती थीं। २७ सितम्बर, १९४७ में भारत सरकार ने एक दैनिक सर्विस डाक लाने ले जाने के लिए दिल्ली से सहारनपुर, अम्बाला होकर फिरोजपुर तक चलाई क्योंकि इस समय पूर्वी पंजाब में दंगों के कारण कुछ समय के लिए रेलों का कार्य बन्द हो गया। इसी प्रकार १ दिसम्बर १९४७ से भारत सरकार डालमिया एयरवेज को दिल्ली और काश्मीर के बीच तथा एक अन्य कम्पनी को १४ दिसम्बर १९४७ से कलकत्ता तथा गोहाटी के बीच डाक ले जाने को नियुक्त किया। पाकिस्तान के निर्माण स्वरूप, पूर्वी पाकिस्तान और पश्चिमी बंगाल के बीच दो सर्विसें—कलकत्ता से ढाका और कलकत्ता से चिटगांव (१९४८ के पूर्वार्द्ध में)—चालू की गई। इस समय देश में आठ उड्डयन क्लब थे–दिल्ली, मद्रास, बम्बई, पटना, कलकत्ता, भुवनेश्वर, लखनऊ और इलाहाबाद। तथा निम्न मार्गों पर विभिन्न कम्पनियों की सर्विसें चालू थीं:—

(१) ऐयर इण्डिया लिमीटेड*

	चलन
१. बम्बई—अहमदाबाद—करांची	दैनिक
२. बम्बई—अहमदाबाद—जयपुर—दिल्ली	,,
३. बम्बई—हैदराबाद—मद्रास—कोलम्बो	,,
४. मद्रास—बंगलौर—कोयम्बटूर—कोचीन—ट्रिवैनड्रम	दैनिक (रविवार के अतिरिक्त)
५. बम्बई—कलकत्ता—बम्बई	दैनिक
६. बम्बई—मद्रास—बम्बई	सप्ताह में ५ बार

(२) ऐयर इण्डिया इन्टरनेशनल, लिमीटेड

१. बम्बई-काहिरो-जिनोवा-लन्दन	सप्ताह में १ बार

(३) ऐयर सर्विसेज आफ इण्डिया, लि०, दिल्ली*†

१. करांची-भुज-जामनगर-बम्बई	दैनिक
२. बम्बई-केशोद-पोरबन्दर-जामनगर	सप्ताह में ३ बार
३. बम्बई-इन्दौर-ग्वालियर-दिल्ली	,, ,,
४. बम्बई-भावनगर-अहमदाबाद	बम्बई-अहमदाबाद के बीच सप्ताह में ४ बार तथा बंबई भावनगर के बीच सप्ताह में ३ बार
५. जामनगर-अहमदाबाद-जामनगर	सप्ताह में १ बार
६. जामनगर-मांडवी—जामनगर	

(४) ऐयर वेज (इण्डिया) लि०, नई दिल्ली**

१. कलकत्ता-भुवनेश्वर-विजगापट्टम-मद्रास—बंगलौर	सप्ताह में ६ बार
२. कलकत्ता—ढाका—कलकत्ता	प्रतिदिन (रविवार को छोड़कर)
३. कलकत्ता-बाघदोगरा-गोहाटी-कुम्भीर ग्राम-अगरतला—तेजपुर—डीब्रुगढ़	—

* इस कम्पनी के टिकटघर इन नगरों में थे—अहमदाबाद, बंगलोर, बम्बई, कलकत्ता, कोचीन, कोयम्बटूर, जयपुर, करांची, मद्रास, नई दिल्ली, ट्रिवेन्ड्रम।

*† इसके ठहरने के स्थान ये थे—भावनगर, बम्बई, भुज, कानपुर, ग्वालियर, दिल्ली अहमदाबाद, जामनगर, करांची, नई दिल्ली, पोरबन्दर।

** इस कम्पनी के टिकटघर बंगलौर, कलकत्ता, मद्रास, और विजगापट्टम में थे।

(५) अम्बिका ऐयर लाइन्स, लि०, बम्बई*

१. बंबई-बड़ौदा-अहमदाबाद-पालनपुर—जोधपुर—बीकानेर—अमृतसर	दैनिक
२. बंबई (जूहू)—राजकोट-मोरवी-अहमदाबाद	,,
३. बंबई—पूना—बंगलौर	सप्ताह में ३ बार

(६) भारत ऐयरवेज लि० कलकत्ता†

१. कलकत्ता-पटना-बनारस- लखनऊ-दिल्ली	सप्ताह में ३ बार
२. दिल्ली—अमृतसर—दिल्ली	,, ३ ,,
३. कलकत्ता-गया-इलाहाबाद-कानपुर-दिल्ली	,, ४ ,,

(७) डालमिया ऐयरवेज लि०, कलकत्ता

१. दिल्ली-अमृतसर-जम्मू-श्रीनगर	दैनिक
२. अमृतसर-श्रीनगर-अमृतसर	सप्ताह में ३ बार

(८) दक्कन ऐयरवेज लि०—

१. मद्रास-हैदराबाद-नागपुर-भूपाल-दिल्ली	दैनिक
२. हैदराबाद-बंगलौर-हैदराबाद	,,
३. हैदराबाद-पूना-बंबई	,,

(९) इण्डियन नेशनल ऐयरवेज—लि०*†

१. कलकत्ता-रंगून-कलकत्ता	दैनिक
२. दिल्ली (पालम)-कलकत्ता-दिल्ली	,,
३. दिल्ली-जोधपुर-करांची	,,
४. दिल्ली (विलिंगडन)-लाहौर	,,

(१०) इण्डियन ओवरसीज ऐयर लाइन्स, लि० बम्बई ×

१. बंबई-नागपुर-कलकत्ता	दैनिक
२. नागपुर—बंगलौर—मद्रास	सप्ताह में २ बार

---

* इस कम्पनी के टिकटघर इन स्थानों पर थे—अहमदाबाद, अमृतसर, बंगलौर, बड़ौदा, बीकानेर, दीसा, बम्बई (जूहू), जोधपुर, मोरवी, पूना, राजकोट।

† इसके ठहरने के स्थान ये थे—इलाहाबाद, अमृतसर, बनारस, कानपुर, कलकत्ता, चिट-गांव, दिल्ली, गया, लखनऊ, पटना।

†* इस कम्पनी के प्रमुख स्टेशन ये थे—अमृतसर, कलकत्ता, जोधपुर, करांची, लाहौर, नई दिल्ली, रंगून।

× इस कम्पनी के टिकटघर यहां थे—इलाहाबाद, बंगलौर, बम्बई, कलकत्ता, हैदराबाद, जबलपुर, कानपुर, लखनऊ, मद्रास, नागपुर।

३. नागपुर—जबलपुर—इलाहाबाद—
कानपुर—लखनऊ ,,

(११) जुपीटर ऐयरवेज, लि०, नई दिल्ली

१. दिल्ली—नागपुर—विजगापट्टम—मद्रास दैनिक

उपरोक्त आन्तरिक हवाई सर्विसों के अतिरिक्त अब देशी कम्पनियों की कुछ सर्विस विदेशों को भी जाने लगी। भार. सरकार ने *अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक उडयन व्यवस्था* (International Civil Aviation Organisation) में भी अधिकाधिक सक्रिय भाग लेना आरम्भ किया, इसके फलस्वरूप १९४८ में एक *ऐयर इण्डिया इंटरनेशनल लि०* की स्थापना की गई जिसमें सरकार और टाटा कंपनी दोनों ही संयुक्त रूप से हिस्सेदार बनी। अभी इसमें सरकार का हिस्सा ४९% है किन्तु यदि सरकार को यह अनुभव होने लगे कि निजी कंपनी की व्यवस्था अच्छी नहीं है और उसे आर्थिक हानि हो रही है तो वह अपना हिस्सा ५१% तक बढ़ा सकती है। मुख्य संचालक भी सरकार द्वारा नियुक्त किया गया है जिसके अधिकार बहुत अधिक हैं। सरकार ने प्रारम्भिक ५ वर्षों में इस कम्पनी को आर्थिक सहायता देना भी शुरू किया किन्तु यह सहायता केवल ऋण के रूप में होगी और जब कम्पनी को लाभ होने लगेगा तो यह धन उसे पुनः सरकार को लौटाना पड़ेगा। इस कम्पनी को पश्चिमी देशों को सर्विस चालू रखने का १० वर्ष तक का ठेका मिला है। जून १९४८ से ही इस कंपनी के वायुयान बम्बई लंदन मार्ग पर सप्ताह में तीन बार आने जाने लगे हैं। इस कार्य के लिये एक ४० सीटों वाला वायुयान काम में लाया जाता है। इसी कंपनी के वायुयान जनवरी १९५० से बम्बई, पूर्वी अफीका, अदन, नैरोबी आदि स्थानों को पाक्षिक रूप में आने लगे हैं। २६ मई १९४९ को भारत ऐयरवेज लि० की सर्विस-कलकत्ता-बैंकाग-हांगकांग मार्ग पर भी चालू हो गई। इन सबके अतिरिक्त विदेशों की लगभग १६ सर्विस भारत में होकर ही सुदूरपूर्व और मध्यपूर्व के देशों को जाती हैं जो अनिवार्यतः भारत में ठहरती हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट होगा कि द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् से ही भारत में हवाई यातायात की बड़ी प्रगति हुई है क्योंकि युद्ध की समाप्ति पर भारत को कई प्रथम श्रेणी के एयरोड्रोम हस्तगत हुए तथा बहुत बड़ी संख्या में कई प्रकार के वायुयान भी फौजी विभाग से प्राप्त हुए। उड्डयन क्लबों की अवस्था भी अधिक उत्तम और सामान से पूर्ण सुसज्जित मिली। इन सबके अतिरिक्त भारतीय, वायुयान चलाने की कला में भी शिक्षित हो गये तथा वायु यातायात की प्रगति में देश में उत्साह और रुचि ली जाने लगी। अस्तु कई प्रकार की कठिनाइयां होते हुये भी वायुयान मार्गों की प्रगति हुई जैसा कि नीचे की तालिका से ज्ञात होगा :—

	१९४८	१९४९	१९५०
उड़ान (दस लाख मीलों में)	१२·६	१५·१	१८·९
यात्री ले जाये गए (००० में)	३४९	३५७	४५२
डाक ले जाई गई (दस लाख पौंड में)	१·६	५·०	८·४
वज़न ले जाया गया (,,)	१२·६	२२·५	८०·०
सामान ले जाने की शक्ति (दस लाख पौंड में)	२६·६	३४·६	५२·३

अन्तर्राष्ट्रीय हवाई यातायात संबन्धी व्यवस्था के पूर्ण रूप से सम्पर्क में आने के लिए भारत सरकार ने कई देशों से हवाई यातायात सम्बन्धी समझौते भी किए हैं तथा ३१ मई १९४७ को एक समझौता भारत और नीदरलैंड की सरकार के बीच हुआ जिसके अन्तर्गत वे शर्तें रखी गई हैं जिनका पालन करने पर भारतीय कंपनियां अपने हवाई जहाज इंडोनेशिया और नीदरलैंड के बीच चला सकेंगी और यदि समझौते के फलस्वरूप दोनों देशों में किसी बात पर झगड़ा हो जाय तो वे अपना मामला अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक उड्डयन व्यवस्था के सम्मुख विचारार्थ पेश करेंगी और इसका निर्णय उनको मान्य होगा। १८ जुलाई १९४८ को एक और समझौता फ्रांस और भारत के बीच हुआ। पाकिस्तान और स्वीडन की सरकारों के और भारत सरकार के बीच में भी एक हवाई यातायात सम्बन्धी समझौता हुआ। २४ नवम्बर १९४८ को ईरान और भारत के बीच तेहरान-जहीदान-कराची और बम्बई मार्ग पर भारतीय वायुयान चलाने के लिए एक समझौता हुआ। २१ दिसम्बर १९४८ में भारत और लंका के बीच भी हवाई समझौता हुआ। इस समझौते के फलस्वरूप लंका के वायुयान निम्न मार्गों पर चल सकेंगे—

(१) कोलम्बो–त्रिचनापली; (२) कोलंबो–मद्रास; (३) कोलंबो–ट्रिवैन्ड्रम; (४) कोलंबो–त्रिचनापली और मद्रास तथा बम्बई तक।

भारत सरकार के वायुयान बंबई-कोलंबो; मद्रास-कोलंबो; त्रिचनापली–कोलंबो और त्रिवेन्ड्रम–कोलंबो के बीच चल सकेंगे।

९ नवम्बर १९४८ में भारत सरकार के नागरिक उड्डयन विभाग के अधिकारियों और भारतीय वायुयान कंपनियों की एक बैठक में यह तय किया गया कि सैंटा क्रूज हवाई अड्डे को ३ करोड़ रुपया लगा कर सुधारा जाय। स्वतंत्र भारत की सरकार हवाई यातायात को बराबर प्रोत्साहन देती रही है। १९४९ में भारत ने सरकार हवाई यातायात के विकास और नियंत्रण की एक योजना बनाई। इसके अन्तर्गत हवाई-सर्विसों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया— (१) अन्तर्राष्ट्रीय हवाई यातायात; (२) ट्रंक लाइन्स और (३) सहायक लाइन्स। अस्तु अन्तर्राष्ट्रीय यातायात के विकास के लिए सरकार का पहला कदम—जैसा कि ऊपर कहा जा

चुका है—१९४८ में एक ऐयर इंडिया इन्टरनेशनल कंपनी स्थापित कर इंगलैंड और भारत के बीच हवाई सर्विस चालू करना था। सबसे पहला वायुयान—'मलाबार की राजकुमारी' (Malabar Princes) बंबई के सैंटा क्रूज हवाई अड्डे से ३५ यात्रियों और १७०० पौंड डाक लेकर बम्बई—काहिरो—जिनोवा—लन्दन मार्ग पर उड़ा। इसके अतिरिक्त सुदूर पूर्व और पूर्वी अफ्रीका के देशों को भी वायुयान सर्विस चालू की गई।

(२) ट्रंक लाइनों के विकास के लिये यह तय किया गया कि सम्पूर्ण देश में भारत सरकार १०,५०० मील लंबे मार्ग की व्यवस्था करे। इसके लिए कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली और मद्रास के बीच रात को उड़ने की व्यवस्था की गई। फलस्वरूप भारत सरकार ने डाक आदि ले जाने का ठेका इंडियन ओवरसीज ऐयर लाइन्स को दिया जिसकी सर्विस ३० जून १९४९ को बम्बई—नागपुर—कलकत्ता और मद्रास-नागपुर--दिल्ली मार्ग पर चालू हुई किन्तु ५ महीने में ही इस कम्पनी को आर्थिक हानि उठानी पड़ी अस्तु डाक ले जाने का ठेका एक दूसरी कंपनी—हिमालय एवीएशन कं० को देना पड़ा। इसके बाद ही एक 'All–Up Air Mail Service' चालू की गई जिसके द्वारा अब देश के विभिन्न भागों में डाक आदि ले जाने का काम किया जाता है इस प्रकार युद्धोत्तर काल में हवाई जहाजों के रात के उड़ने की व्यवस्था में काफी सफलता मिली है।

(३) सहायक लाइन्स (Feeder Lines) विकास करने का क्षेत्र सरकार ने व्यक्तिगत व्यवसाय के लिए खुला छोड़ देने का निश्चय किया। *एयर ट्रांसपोर्ट लाइसेंसिंग बोर्ड* के स्वीकृति पत्र के बिना कोई भी हवाई यातायात की कम्पनी कार्य नहीं कर सकती। उड़ान चालू करने के पूर्व इस बोर्ड से आज्ञापत्र प्राप्त करना आवश्यक समझा गया और वह धारा भी रखी गई कि यदि कम्पनी के संचालकों की कोशिशों और उत्तमोत्तम टैकनिकल सुविधाओं के बावजूद भी कम्पनी को हानि उठानी पड़े तो सरकार चाहे तो उसे आर्थिक सहायता प्रदान कर सकती है।

देश में हवाई मार्गों के साथ २ हवाई अड्डों के विकास की भावी योजना भी प्रस्तुत की गई है। अगस्त १९४७ को इस योजना के अन्तर्गत ३ अन्तर्राष्ट्रीय ढंग पर नियंत्रित हवाई अड्डे, ७ प्रधान हवाई अड्डे (major); १३ मध्यम और २२ निम्न श्रेणी के हवाई अड्डे बनाये जायेंगे, तथा ७८ अड्डों पर रात को उड़ने की व्यवस्था भी की जायगी। इस योजना द्वारा एक लाख जनसंख्या वाले ४० नगरों; ५१,००० से अधिक जन संख्या वाले २० नगरों तथा ५१००० से कम जनसंख्या वाले ३६ नगरों को हवाई मार्गों द्वारा जोड़ा जायेगा।

इस समय भारत में ७० हवाई अड्डे हैं जिनका नियंत्रण नागरिक उड्यन विभाग के प्रमुख संचालक के द्वारा होता है जिनमें से २३ हवाई अड्डे उत्तम श्रेणी के हैं, शेष में कईयों में न तो हवाई जहाजों के ठहरने और न उतरने के स्थान ही हैं। भारत में बम्बई (सैंटाक्रूज), कलकत्ता (डमडम) और दिल्ली (पालम) तीन ऐसे हवाई अड्डे हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय ढंग पर नियंत्रित किए जाते हैं। सैंटाक्रूज को सुधारने और विकास करने में ४ करोड़ रुपया; डमडम पर ३·०७ करोड़ और पालम पर २·७५ करोड़ रुपया खर्च किये जाने का अनुमान है। अजमेर, अलीगढ़, बेरहमपुर, कालीकट, कुड्डालोर, देहरादून, हुगली, मंगलोर, नैलोर, उटकमंड, सलेम, रत्नागिरी, सागर और सूरत में नए हवाई अड्डे निर्माण किए गए हैं।

नागरिको को हवाई उड़ान में शिक्षा देने के लिए कुल मिलाकर १२ उड्डयन क्लब हैं जिनको भारत सरकार द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त होती है यह क्लब क्रमशः ये हैं—दिल्ली, बम्बई, मद्रास, बैरकपुर, पटना, भुवनेश्वर, लखनऊ, जलंधर, नागपुर, आसाम, हैदराबाद, बंगलौर। इनके अतिरिक्त तीन क्लब ऐसे भी हैं यथा हैदराबाद (Hyderabad State Aero Club) जोधपुर (State Aviation Club) और बंगलौर (Mysore Government Flying Club) जिनको सरकार द्वारा कोई आर्थिक सहायता नहीं प्राप्त होती है।

सन् १९४८ के १ दिसम्बर को पूना में भारतीय ग्लाइडिंग एसोशिएशन (Indian Gliding Association) की स्थापना की गई है। इसका कार्य Gliding को प्रोत्साहन देना है। इस संघ को भारत सरकार द्वारा १९४८–४९ में हवाई जहाजों आदि के ठहरने के लिए हैंगर्स (Hangars) और मरम्मत के लिए कारखानों आदि के निर्माण के लिए ६०,००० रु० और १९४९–५० में ३२,००० रुपया तथा नौन–रैकरिंग ग्रांट क्रमशः २०,००० रु० और ३०,००० वार्षिक की मिली है।

एयरोनांटिकल कम्यूनिकेशन के इस समय ५१ अच्छे स्टेशन हैं। चालकों आदि के प्रशिक्षण के लिए भी पिछले कुछ वर्षों से प्रयत्न किए गए हैं। इलाहाबाद में १९४८ में नागरिक उड्डयन प्रशिक्षण केंद्र (Civil Aviation Training Centre) है जिनमें चार विभागों की शिक्षा दी जाती है—उड़ना, एयरोड्रोम, इंजीनियरींग और कम्यूनीकेशन। सहारनपुर में भी एक प्रशिक्षण केंद्र है जहां वायुयान चालकों और रेडियो विशेषज्ञों (Technicians) को उपयुक्त शिक्षा दी जाती है। १९४७ में यहां सब मिलाकर ७१२ व्यक्तियों को शिक्षा दी गई। सरकार ने अधिक से अधिक व्यक्तियों को शिक्षा देने के हेतु एक योजना बनाई है जिसके अनुसार तीन वर्षों में ३०० चालकों को प्रशिक्षण किया जायगा इसमें ७५ लाख

रुपये पूंजीगत खर्च और २५ लाख रुपये रैकरिंग खर्च होगा। इसके अतिरिक्त सरकार कई व्यक्तिगत उड्डयन क्लबों को भी आर्थिक सहायता दे रही है।

अनुसंधान और विकास के लिए सफदरजंग हवाई अड्डे में अधिक उत्तम व्यवस्था की गई है।

भारत में इस समय निम्नलिखित देशी वायुमार्ग हैं:—

(१) ऐयर इंडिया लि०, बम्बई (Air India Ltd)

	मील	चलन
१. करांची—अहमदाबाद—बम्बई	१७८०	दैनिक
२. बम्बई—हैदराबाद—मद्रास—कोलंबो		,,
३. बम्बई—अहमदाबाद—जैपुर—दिल्ली	७५०	,,
४. मद्रास—बंगलौर—कोयम्बटूर—कोचीन—त्रिवेन्द्रम	५०८	,,
५. कलकत्ता—गोहाटी-डिब्रूगढ़		दैनिक

(२) इंडिया नेशनल ऐयरवेज लि०, नई दिल्ली (India National Air ways)

१. दिल्ली से लाहौर होकर पेशावर तक	२६४	दैनिक
२. दिल्ली से अमृतसर	२४५	,,
३. दिल्ली से कानपुर और प्रयाग होकर कलकत्ता तक	८१२	,,
४. दिल्ली से जोधपुर होकर करांची तक	६८३	,,
५. कलकत्ता से रंगून		,,
६. दिल्ली अमृतसर जम्मू—श्रीनगर		सप्ताह में ३ बार

(३) ऐयर सर्विसेज आफ इंडिया लि०, बम्बई (Air Services of India Ltd.)

१. बम्बई से पोरबंदर,—जामनगर—भुज होता हुआ करांची तक	६२०	दैनिक
२. बम्बई—भावनगर—राजकोट	२१०	सप्ताह में ३ बार
३. बम्बई—इंदौर—ग्वालियर—दिल्ली	७७४	,, ३ ,,
४. बम्बई—पूना—बंगलौर	—	,, ४ ,,

(४) दक्कन ऐयरवेज लि०, बेगमपेट (Deccan Airways Ltd)

१. दिल्ली—भोपाल—नागपुर—हैदराबाद—मद्रास	११५५	दैनिक
२. हैदराबाद—बंगलौर	३१६	सप्ताह में ४ बार

३. हैदराबाद–पूना–बम्बई	३८७	दैनिक

(५) इंडियन ओवरसीज ऐयरवेज़ लि०, बम्बई
(Indian Overseas Airlines Ltd)

१. बम्बई नागपुर कलकत्ता	१,०३८	दैनिक

(६) अम्बिका ऐयर लाइन्स लि० (Ambika Air Lines Ltd)

१. बम्बई बड़ौदा अहमदाबाद जामपुर	५१३	दैनिक
२. बम्बई राजकोट मोरवी अहमदाबाद	४१३	,,

(७) ऐयरवेज इंडिया लि० (Airways India Ltd)

१. कलकत्ता-विशखापट्टम मद्रास–बंगलोर	१०३६	सप्ताह में ४ बार
२. कलकत्ता–भुवनेश्वर मद्रास बंगलोर		,, ३ ,,
३. कलकत्ता ढाका		दैनिक
४. कलकत्ता–दार्जिलिंग		,,

(८) हिमालयन एवीएशन लि०, कलकत्ता (Himalayan Aviation Ltd)

१. दिल्ली नागपुर मद्रास		दैनिक
२. बम्बई नागपुर कलकत्ता		,,

(९) कलिंगा ऐयर लाइन्स कलकत्ता (Kalinga Air Lines)

१. कलकत्ता अगरतला		सप्ताह में २४ बार

(१०) भारत ऐयरवेज कलकत्ता (Bharat Airways Ltd)

१. दिल्ली अमृतसर जम्मू श्रीनगर	२४५	दैनिक
२. दिल्ली–लखनऊ गया कलकत्ता	८०६	सप्ताह में ३ बार
३. दिल्ली इलाहाबाद कानपुर कलकत्ता	८१६	,, ४ ,,

उपरोक्त सर्विसों के अतिरिक्त भारत की कंपनियां संयुक्तराष्ट्र, बर्मा, चीन और जापान के साथ समुद्र पार सर्विसों का भी नियन्त्रण करती हैं। भारत में होकर जाने वाले मुख्य विदेशी हवाई मार्ग ये हैं :—

(१) ब्रिटिश ओवरसीज ऐयरवेज कारपोरेशन (BOAC)

१. लंदन–त्रिपोली–काहिरा–बसरा–करांची दिल्ली–कलकत्ता	सप्ताह में ३ बार
२. साउथहैम्पटन–काहिरो–बेहरीन–करांची कलकत्ता होकर रंगून–बैंकाक–हांगकांग को	
३. लंदन–रोम–काहिरा–करांची–कलकत्ता होकर	

सिंगापुर—डार्विन—सिडनी को	पखवाड़े में ३ बार
४. लंदन—त्रिपोली—काहिरो—बसरा—करांची—दिल्ली	सप्ताह में ४ बार
५. लंदन—काहिरो—बसरा—करांची—बम्बई—कोलम्बो	,, १ ,,

(२) चाइना नेशनल ऐयरवेज कारपोरेशन (Chinese National Airways Corporation)

१. शंघाई—हांगकांग—कूमिंग—रंगून कलकत्ता	सप्ताह में १ बार

(३) ऐयर सीलोन (Air Ceylon)

१. कोलम्बो—कांकेनसंतुराई—मद्रास	,, ५ ,,
२. कोलम्बो—कांकेनसंतुराई—त्रिचनापली	,, २ ,,

(४) ऐयर फ्रांस (Air France)

१. पेरिस—त्रिपोली—काहिरा—दमिश्क—बसरा करांची—कलकत्ता होता हुआ सैगांव को	,, २ ,,

(५) राइल डच ऐयर लान्इस (K. L. M.)

१. न्यूयार्क—ग्लासगो—लंदन—अमस्टरडैम काहिरो—बसरा—करांची—कलकत्ता होता हुआ बेंगकांक—बटाविया से शंघाई को	दैनिक
२. एमस्टरडैम—रोम—काहिरो—बसरा—करांची कलकत्ता होता हुआ बैंगकाक—सिंगापुर और बटाविया को	सप्ताह में ६ बार

(६) ओरियन्ट ऐयरवेज (Orient Airways Ltd)

१. कलकत्ता—चिटगांव—अक्याब—रंगून
२. करांची—दिल्ली—ढाका—कलकत्ता

(७) पैन अमेरिकन वर्ल्ड ऐयरवेज (Pan American World Airways)

न्यूयार्क—ब्रूसेलस—इस्तंबुल—दमिश्क—करांची दिल्ली—कलकत्ता होता हुआ बेंगकांक—शंघाई—मनीला टोकियो—होनोलूलू और सैनफ्रांसिसको को

(८) ट्रांस वर्ल्ड ऐयरलाइन्स (TWA)

न्यूयार्क—शैनन—पैरिस—जिनोवा—रोम—एथेंस काहिरो—बसरा—बम्बई को।

(६) पाक ऐयरवेज (Pak Airways Ltd)

१. करांची–दिल्ली २. ढाका कलकत्ता
३. करांची बम्बई ४. कलकत्ता चटगांव
५. ढाका दिल्ली ६. दिल्ली–लाहौर

१०) क्वेन्टास ऐयरवेज (Quantas Empire Airways)

१. सिडनी–डार्विन–सुराबिया–सिगापुर–रंगून कलकत्ता–करांची होता हुआ बेहरीन–बसरा काहिरा–मारसलीज और साउथहैम्पटन को
२. सिडनी–डार्विन–सिंगापुर–रंगून–कलकत्ता काहिरा–रोम–लंदन को

हवाई यातायात जांच कमेटी (Air Transport Enquiry Committee 1950)

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् देश में हवाई यातायात का विकास कुछ अव्यवस्थित रूप में हुआ। हवाई यातायात के आज्ञापत्र देने वाला कमेटी के सम्मुख कई हवाई कंपनी के आवेदन पत्र आए जो देश में नई कम्पनियां खोलने का आज्ञा पत्र चाहती थीं। इस लाइसेंसिंग बोर्ड ने आज्ञा पत्र देने में किसी निश्चित नीति का अनुसरण नहीं किया, फलस्वरूप ११ से अधिक कंपनियों को आज्ञा पत्र मिल गये। कई नोन-शिड्यूल्ड कंपनियां रेगूलर कंपनियों से प्रतिस्पर्धा करने लगी जिससे आपसी आर्थिक स्थिति बिगड़ने लगी। सरकार और जनता के लोगों में यह अनुभव होने लगा कि इन कंपनियों की आर्थिक स्थिति संतोषजनक नहीं है। अस्तु फरवरी १९५० में भारत सरकार ने हवाई यातायात जांच समिति की सारी स्थिति की जांच करने और हवाई यातायात की भावी उन्नति के लिए उपयुक्त सुझाव देने के लिए—नियुक्ति की। इस समिति ने सितम्बर १९५० में अपनी रिपोर्ट पेश की जिसमें स्पष्ट रूप से सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया गया कि हवाई यातायात उद्योग की आर्थिक स्थिति बिलकुल संतोषजनक नहीं है और इसका मुख्य कारण यह है कि देश में हवाई यातायात की वर्तमान मांग की दृष्टि से हवाई यातायात की कम्पनियों की संख्या कहीं अधिक है। लाइसेंसिंग बोर्ड ने ११ नई कम्पनियों को आज्ञा पत्र दिए किन्तु केवल ४ कंपनियों को ही देश को आवश्यकता थी। इसका नतीजा यह है कि अनावश्यक और अधिक खर्च होता है और आपस में अनुचित प्रतिस्पर्धा होती है जिससे कम्पनियों को आय में कमी आती है। कंपनियों के पास हवाई जहाज और उनके अतिरिक्त भाग भी आवश्यकता से अधिक हैं। कुछ कंपनियों का संचालन खर्च भी अधिक पाया गया जबकि उनकी आय बहुत थोड़ी थी।

लाइसेंसिंग बोर्ड ने आवश्यकता से अधिक आज्ञा-पत्र जारी करके भी कुछ हद तक इस स्थिति को बिगाड़ने में सहायता पहुंचाई। एक तो कम्पनियों की आर्थिक स्थिति वैसे ही आपसी प्रतिस्पर्धा के कारण निकम्मी थी फिर उनको शिक्षित व्यक्तियों की नियुक्ति में अधिक खर्चा करना पड़ता था अस्तु स्थिति और भी बिगड़ती गई। हवाई जहाजों में प्रयुक्त होने वाले तेल की कीमत में भी प्रति गैलन पीछे १९४६ में ३० आने से १९४९ में ४१ आने की वृद्धि हो गई। सबसे अद्भुत बात तो यह थी कि रात में उडान करने वाली कंपनियां यात्रियों और सामान को कम किराये पर ही ले जाती थी जिनकी प्रतिस्पर्धा का मुकाबला करने के लिए दिन में उडान करने वाले जहाजों को भी किराये में कमी करनी पड़ी। इन्हीं सब बातों का अध्ययन कर इस समिति ने निम्नलिखित सिफारिशें की—

(१) मौजूदा स्थिति में—यात्रियों और माल को ले जाने की संख्या को ध्यान में रखते हुए—देश में केवल चार हवाई यातायात की कम्पनियां होनी चाहिए जिनके दफ्तर बम्बई, दिल्ली, कलकत्ता और हैदराबाद में हों। इस प्रकार कर्मचारियों की संख्या में कमी कर ऊपरी खर्चा घटाया जा सकता है। इसके लिए ज्यादा अच्छा तो यह होगा कि वर्तमान छोटी २ कम्पनियों को बड़ी कम्पनियों में मिला देना चाहिए। डेकन ऐयरवेज और ऐयर सर्विसेज को भी मिला देने की कमेटी ने सिफारिश की। यदि किसी कारणवश कम्पनियों को न मिलाया जा सके तो सरकार को चाहिये कि यह कम्पनियों के लाइसेंसों की अवधि न बढ़ावे जिससे अवधि समाप्ति पर यह कम्पनियां स्वतः बन्द हो जावेंगी। अभी जिन ६ कम्पनियों के पास १० वर्ष तक के लाइसेंस हैं उन्हें चालू रखा जाय। कुछ मार्गों में परिवर्तन किया जाय।

(२) हवाई यातायात में सुधार करने के लिये समिति ने इस बात पर जोर दिया कि अभी जो नोन—शीडयूल्ड कंपनियां जहां चाहे जिस रास्ते पर अपने वायु-यान चलाती हैं वे अब केवल थोड़े ही मार्गों पर अपनी सर्विस चलाने और विशेष कर जिन मार्गों पर नियमित सर्विसें चलती हैं उन पर इनको चलने के लिए आज्ञा पत्र नागरिक उड्डयन विभाग के डायरेक्टर जनरल द्वारा तब तक न दिए जांय जब तक कि उन्हें यह विश्वास न हो जाय कि इन मार्गों पर चलने वाले नियमित सर्विसें, माल और यात्री ले जाने के लिए अपर्याप्त हैं; तथा इन नोन—शीड्यूल्ड कम्पनियों का उन मार्गों पर चलना आवश्यक है। इन नोन-शीडयूल्ड कम्पनियों के लिए उड्डयन विभाग पहले से ही माल और यात्री ले जाने का किराया तय करदें जिससे वे किराया घटा कर नियमित रूप से चलने वाली सर्विसों से प्रतिस्पर्धा न कर सकें।

(३) किराये के बारे में कमेटी का यह मत है कि जहां तक बन सके ३ कंपनियों की आय का अधिकांश भाग यात्रियों के किराए द्वारा ही प्राप्त होना चाहिए। इसने इस बात पर जोर दिया कि स्थायी पूंजी (fixed assets) पर १०% की आय होनी ही चाहिए और इसी आधार पर किराया तय होना चाहिए किन्तु इस बात का भी ध्यान रखना आवश्यक है कि यह अत्यधिक न हो जाय। डाक लेजाने का किराया मामूली माल के किराये तथा १२½% और ऊपर लेकर तय करना चाहिए जिससे अन्य सामान की अपेक्षा डाक ले जाने में प्राथमिकता मिल सके। देश की हवाई यातायात की इस व्यवस्था के फलस्वरूप कम से कम २५ हवाई जहाज अतिरिक्त हो जावेंगे अस्तु यदि इनको ठीक हालत में रखा जाय तो उन पर आने वाला व्यय लगभग २½ लाख रुपया प्रति वर्ष पड़ेगा। इस कमेटी ने सिफारिश की है कि इसका आधा व्यय सरकार सहन करे और आधा कंपनियां। अतिरिक्त कर्मचारियों को भारतीय वायु सेना में ले लिया जाय।

(४) भारत सरकार हवाई यातायात कम्पनियों को जो आर्थिक सहायता दे रही है वह कुछ समय तक (१९५०, दिसम्बर) जारी रखी जाय। यह सहायता पैट्रोल पर लगने वाले आयात कर पर रिबेट के रूप में दी जाती है। कमेटी ने इस बात की सिफारिश की है कि अभी जो यह सहायता रिबेट के रूप में दी जाती है वह सही तरीका नहीं है क्योंकि इससे सभी कम्पनियों को समान आर्थिक सहायता प्राप्त हो जाती है तथा कुछ कम्पनियों को जरूरत से भी कम और कुछ को अधिक सहायता मिलती है, इससे कम्पनियों में विरोध उत्पन्न हो जाता है अस्तु, हवाई यातायात लाइसेंसिंग बोर्ड पहले प्रत्येक कम्पनी की आवश्यकता को मालूम करले और फिर सरकार को सिफारिश करे कि अमुक कंपनी को कितनी सहायता दिया जाना आवश्यक है। कमेटी ने अनुमान लगाया है कि यदि उनकी यह सिफारिश मान्य करली जाती है तो कंपनियों की आर्थिक स्थिति १ जनवरी १९५१ से ही सुधर जायगी। किन्तु कठिनाई यह है कि यह सुझाव शीघ्र कार्यान्वित नहीं किया जा सकता क्योंकि अभी जिन ६ कम्पनियों के पास लाइसेंस हैं वे १९५६ तक चलेगा अस्तु इससे पहले उनके पास लाइसेंसों को रद्द नहीं किया जा सकता। दूसरे, अभी सरकार की आर्थिक स्थिति इतनी दृढ़ नहीं है कि वह इस कार्य को शीघ्र ही हाथ में ले सके।

(५) कमेटी ने इस बात पर जोर दिया है कि आने वाले ५ वर्षों तक कम से कम इस उद्योग में से व्यक्तिगत व्यवसाय को समाप्त नहीं करना चाहिए। ५ वर्षों के पश्चात सरकार पुनः इस प्रश्न पर विचार करे और तब यदि सरकारी हवाई यातायात के राष्ट्रीयकरण का निर्णय करे ही तो कमेटी की राय में Statutory Corporation के द्वारा ही हवाई यातायात का संचालन होना चाहिए जो सरकार के नियन्त्रण से स्वतन्त्र रहे।

कमेटी की सिफारिशें सरकार के विचाराधीन है। कुछ ही समय पूर्व सरकार डैकन ऐयरवेज का राष्ट्रीयकरण करने का निश्चय कर चुकी है इसका संचालन स्टैटयूटरी कारपोरेशन द्वारा ही होगा।

पंच वर्षीय योजना

पंच वर्षीय योजना में हवाई यातायात पर पहले दो वर्षों में १८५ लाख रुपया प्रतिवर्ष के हिसाब से खर्च करने का सुझाव है जिनमें से १५० लाख रुपये वर्कस पर और शेष ३५ लाख रुपये सामान आदि पर व्यय किया जायगा। बाकी के ३ सालों में कुल ६६७ लाख रुपया खर्च करने की योजना है जिसमें से ७०% वर्कस और ३०% सामान आदि पर खर्च किये जाने की योजना है। इसके अतिरिक्त मौजूदा हवाई जहाजों (Dakotas और Vikings) के स्थान पर अधिक आधुनिक ढंग से हवाई जहाज खरीदने की आवश्यकता है। इसके लिए ५ करोड़ की अतिरिक्त पूंजी की आवश्यकता होगी। इस सम्बन्ध में भारत सरकार को कंपनियों को आर्थिक सहायता देने की आवश्यकता हो सकती है। इस काम के लिए योजना में २½ करोड़ रुपया रखा गया है। भारत सरकार यह आर्थिक सहायता कर्ज के रूप में या हिस्सा पूंजी में भाग लेकर या और किसी उपयुक्त प्रकार से दे सकती है। नीचे की तालिका में पंच वर्षीय योजना द्वारा स्वीकृत व्यय इस प्रकार होगा :—

पूंजीगत कार्यों के लिए	१०·०	करोड़ रुपये
यातायात के सामान आदि के लिए	२·०	,,
हवाई स्टेशन	०·७	,,
प्रशिक्षण	०·५	,,
अनुसंधान	०·१	,,
हवाई कम्पनियों को आर्थिक सहायता	२·५	,,
टेलीफोन उद्योग	१·३	,,
कुल व्यय	१७·१	करोड़

उपरोक्त वर्णन से ज्ञात होगा कि भारत में हवाई यातायात का विकास हुए अभी केवल ३०—३५ वर्ष ही हुए हैं किन्तु अल्प काल में काफी प्रगति हुई है। भारत में कुछ ऐसी कठिनाइयां हैं जिनको दूर कर हवाई यातायात की प्रगति और भी द्रुतगति से की जा सकती है। अभी तक हमारे यहां हवाई जहाज के विभिन्न कल पुर्जे और एंजिन नहीं बनाये जाते थे किन्तु अब बंगलौर का कारखाना इस दिशा में सराहनीय प्रयत्न कर रहा है, जहां आजकल ऐयरो-अल्यूमीनियम की चद्दरें हवाई जहाजों के टायर और ट्यूब्स, लकड़ी के स्क्रू, प्लाईवुड और सूती सामान आदि बन रहे हैं। दूसरे, हवाई जहाज संबन्धी शोध-संस्थानों की नितान्त कमी है; इस कमी

को सरकार ने एक रिसर्च लैबोरेटरी खोल कर दूर किया है। इसके अतिरिक्त हवाई जहाजों के ठहरने के स्थानों की कमी, हवाई अड्डों पर होटलों और अन्य सुविधाओं का अभाव, रात्रि में उड़ान की कठिनाइयां तथा कंपनियों की कमजोर आर्थिक अवस्था आदि अन्य दोष हैं जिनको शीघ्र दूर करना आवश्यक है।

हवाई जहाज बनाने का कारखाना (Air Craft Manufactures)

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व भारत में हवाई जहाज बनाने वाला कोई कारखाना नहीं था। उस समय कुछ इंजीनियरिंग वर्कशॉप मरम्मत आदि का कार्य करते थे। टाटा लाइन्स, इंडियन नेशनल ऐयरवेज, ऐयर सर्विसज आफ इंडिया आदि कंपनी इस कार्य में संलग्न थीं किन्तु द्वितीय महायुद्ध में इस उद्योग की तीव्र आवश्यकता अनुभव हुई, अस्तु १९४० में मैसूर सरकार और वालचंद हीराचंद की फर्म की साझीदारी में हिन्दुस्तान एयरक्राफ्ट कम्पनी की स्थापना बंगलोर में की गई। इसको देख रेख करने को अमरिकन विशेषज्ञ भी रखे गये और अधिकृत पूंजी ४ करोड़ रुपये की रखी गई। १९४१ में भारत सरकार भी इस कंपनी में हिस्सेदार बन गई किन्तु अप्रैल १९४२ में भारत सरकार ने सुरक्षा के निमित्त इस कंपनी को वालचंद हीराचन्द से खरीद लिया और अब व्यवस्था संबन्धी सारा काम भारत सरकार के ही हाथ में है। इस कंपनी ने १९४१ में पहला हवाई जहाज बना कर तैयार किया और अब उसकी प्रगति अच्छी हो रही है।

बंगलोर में इस कारखाने की स्थापना के कई कारण थे — (१) हवाई जहाज के लिये एल्यूमिनियम की आवश्यकता होती है जो पास ही ट्रावनकोर के कारखाने से प्राप्त हो जाता है। (२) फौलाद मैसूर राज्य के भद्रावती लोहे के कारखाने से मिल जाता है। (३) दक्षिणी मैसूर में जलविद्युत शक्ति की उन्नति होने के कारण कारखाने के लिए शक्ति भी आसानी से उपलब्ध हो जाती है। (४) भारतीय वैज्ञानिक संस्था भी बंगलोर में है जिससे टेकनीकल सहयोग भी प्राप्त होता है।

वायुयानों की मांग दिन प्रतिदिन बढ़ रही है। शान्ति के समय इसके द्वारा व्यापार में खूब वृद्धि होती है और युद्ध के लिए इनका होना अनिवार्य है। सामरिक दृष्टि से भारत का बड़ा महत्व है। दक्षिण-पूर्वी एशिया और मध्य पूर्व के बीच में होने के कारण हमारी शक्ति में वृद्धि करना आवश्यक है। व्यापारिक दृष्टि से भी भारत के यूरोप और आस्ट्रेलिया के मध्य में स्थित होने के कारण इसका महत्व अधिक है क्योंकि इन दोनों महाद्वीपों में आने जाने वाले वायुयान भारत होकर ही गुजरते हैं। अस्तु देश में वायुयान बनाने के और अधिक कारखाने खुलने की आवश्यकता है। इसके लिये आसनसोल और जमशेदपुर संभावित स्थान हैं क्यों कि यहाँ पर इस व्यवसाय में जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है, वे सभी उपलब्ध हैं।

BIBLIOGRAPHY.

(i) Section on Trade.

C. B. Mamoria : Bharat ka Arthik Bhugol.
P. C Jain : Industrial Problems of India.
Adarkar, B. P. : Indian Fiscal Policy.
Madan, B. K. : India and Imperial Preference.
American Study : Indian Economy, To-day & Tomorrow.
Shah, K. T. : Trade, Tariffs and Transport.
Pandit, Y. S. : Balance of India's Indebtedness.
Knavles, L. C. A. : Economic Development of Overseas Empire.
Austey, V. : Trade of Indian Ocean.
Prashad, I. D. : Some Aspects of Indian Foreign Trade.
Ray, Parimal : India's Foreign Trade Since 1870.
Narayan Swamy, B. V. : Indian Trade.
Cotton, C. W. E. : Handbook of Commercial Information for India.
Vakil, Bose & Deolalkar : Growth of Trade & Industry in Modern India.
Palekar, S. A. : Trade of India.
Jha, L. K. : India's Foreign Trade.
Jathar & Beri : Indian Economics, vol. II.
Vajpai, K. D. : भारतीय व्यापार का इतिहास
Ganguli, B. N. : India's Foreign Trade.
Poduwal, R. N. : Recent Trends in India's Foreign Trade.
N. P. C's Report : Trade.

Reports etc.,

Report on Currency & Finance 1950—51.
Indian & Pakistan year book 1951.
Report of the Fiscal Commission, 1950.

(ii) For Section on Transport

Manoe, H. O. : Road and Rail Transport Problems.
Bonavias : Economics of Transport.
Pitmans : Elements of Transport.
Locklines : Economics of Transportation,
Knoop, D : Outlines of Railway Economics.
Ackworth : Elements of Railway Economics.
Krikaldy & Evay : Transport.
Walker, H. : Road and Rail.
Sadbury etc., : Canals & Inland waterways.

Pant. D. : Transport Problems in India.
Ramnadham, V : Road Transport in India.
Deodikar, G. B. : A Design for the Layout of Indian Transport & Communication System.
Bhatnagar & others : Transport in Modern India.
Tewari, R. D. : Railways in Modern India.
" : Railway Rates Policy.
" : Railway Rates in Relation to Trade & Industry in India
Mehta : Indian Railways
Sanyal : Development of Railways in India.
Fenelon : Transport Co-ordination.
Ghosh, M. K. : Transport Co-ordination.
Naquvi, A. : Air Transport in India
Hazi : Economics of Shipping.
Mehta, A : Indian Shipping
Our Roads (Central Govt's Publication)
Railways going Ahead (do)
Kynnersley, T.R.S. : Roads in India.
Mehta & Reddy : Our Shipping.
Guha, S. K. : Problem of Transport Co-ordination in India.
Mukerjee, R. K. : History of Indian Shipping.
Mukerjee, R. K : Economic History of India.

Reports etc.,

Report of the Acworth Committee (1921)
Mitchell—Kirkness Committee Report (1934)
The Wedgewood Committee Report (1937)
Proceedings of Rail Road Conference (1933)
Report of the Indian Motor Vehicles Enquiry Committee (1950)
Report of the Indian Merchantile Marine Committee (1923)
Post-war Reconstruction Policy Committee on Shipping (1947)
Report of the Indian Air Enquiry Committee Report (1950)
Indian Railway Enquiry Committee (Kunzru Committee) 1947
National Planning Committee Report on Transport (1948)
First Five year Plan (1951)
Indian & Pakistan year book, 1950.
Commerce, Annual 1949, 1950, 1951.
Eastern Economist, Annual, 1950.